

॥ श्री ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६४



शौनकीय

बृहदेवता

(ऋग्वेद के देवताओं और पुराकथाओं का सारांश)

(मूल, द्वितीय अनुवाद, तुलनात्मक टीकाओं और परिशिष्टों से युक्त)

(संपूर्ण)

सम्पादक और अनुवादक

रामकुमार राय

प्राध्यापक

बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी



चैतन्य संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक

पो० बा० चैतन्य, पो० बा० न० ११३६

बहाल भवन, के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

बाबागंजी (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भासंस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी
संस्करण द्वितीय, वि० सं० २०४६
पृष्ठ ६० १००-००

~~~~~  
© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल पाठ  
एव टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार  
प्रकाशक के अधीन हैं ।

~~~~~  
फोन । ६५८८६

ग्रन्थ प्राप्तिसंस्थान

चौखम्भा विश्वभारती

पोस्ट बॉक्स नं० १०८४

चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)

वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)

फोन ५५७६६

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
164

THE
BRHAD-DEVATĀ
ATTRIBUTED TO
ŚAUNAKA

(A Summary of the Deities and Myths of the Rgveda)

*Edited with Original Sanskrit Text, Hindi Translation,
Notes and Appendices*

By
RAMKUMAR RAI
Banaras Hindu University

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
P O Chaukhambha, Post Box No 1139
Jadau Bhawan, K 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI (INDIA)

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*

Phone : 65889

Second Edition 198`

Also can be had of

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Post Box No 1084

Chowk (Opposite Chitra Cinema)

VARANASI-221 001

Phone 54766

Printers

SRIGOKUL MUDRANALAYA

Gopal Mandir Lane,

Varanasi-221 001

भूमिका

यद्यपि वैदिक साहित्य के अस्तर्गत बृहदेवता का वर्णन महत्त्व है, तथापि इधर अनेक वर्षों से इसका एक भी संस्करण उपलब्ध नहीं था। और इसका हिन्दी अनुवाद तो अब तक हुआ ही नहीं। ऐसी स्थिति में जब श्रीलम्बा संस्कृत सीरीज के संचालकों ने मुझ से इसका मूल और हिन्दी अनुवाद सहित एक संस्करण तैयार करने का प्रस्ताव किया तो मैंने इसे स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ अपने गुणों और दोषों के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

मूल बृहदेवता के अब तक दो संस्करण निकल चुके हैं : एक श्री राजेन्द्रलाल मित्रा के सम्पादकत्व में सन् १८८८ में, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, से प्रकाशित हुआ था, और दूसरा श्री ए० ए० मैकडॉनेल के सम्पादकत्व में सन् १९०४ में हर्वर्ड ओरिएण्टल सीरीज में। हर्वर्ड संस्करण में मूल के साथ-साथ अंग्रेजी अनुवाद भी दिया है। प्रस्तुत संस्करण का मूल इस हर्वर्ड संस्करण पर ही आधारित है, क्योंकि, जैसा स्वयं मैकडॉनेल ने भी अपने संस्करण की भूमिका में लिखा है, श्री राजेन्द्रलाल मित्रा के संस्करण का पाठ बहुत शुद्ध नहीं है। साथ ही उसमें अनेक स्थलों पर एक ही श्लोक कई कई बार मिलता है। इसके विपरीत मैकडॉनेल ने उपलब्ध पाण्डुलिपियों के आधार पर बड़ा शुक्ति एक प्रामाणिक और विश्वसनीय मूल प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

जहाँ तक हिन्दी अनुवाद का प्रश्न है मैंने मैकडॉनेल के अंग्रेजी अनुवाद से कोई विशेष सहायता नहीं ली है क्योंकि मेरी समझ से उनका अंग्रेजी अनुवाद कहीं कहीं भ्रामक और भारतीय आत्मा के विपरीत भी है। इस बात के लिये भी मैं सर्वत्र सतर्क रहा हूँ कि हिन्दी अनुवाद मूल श्लोकों का अनुवाद ही रहे टीका या अर्थ न बन जाय। अतः अनुवाद में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है जो श्लोक द्वारा प्रत्यक्ष व्यक्त नहीं होता। इसका अपवाद केवल वे ही स्थल हैं जहाँ वाक्य-विन्यास अथवा अभिव्यक्ति की स्पष्टता की दृष्टि से कुछ बातों का लिखना आवश्यक हो गया है। उदाहरण के लिये, अनेक श्लोकों में वैदिक प्रतीकों का व्यवहार किया गया है तथा वह प्रतीक कहीं तो किसी वैदिक ऋषि को, कहीं अर्थ ऋषि को, और कहीं सम्पूर्ण सूक्त अथवा सूक्त समूह को व्यक्त करते हैं। ऐसी दशाओं में अनुवाद में प्रतीक को लिखने के बाद ' - से आरम्भ सूक्त/ऋषि/अर्थ ऋषि', आदि भी लिखा गया है जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाय। इस प्रकार के स्थलों के अतिरिक्त अनुवाद में और कहीं भी अतिरिक्त व्याख्यानिक सुझावों का समावेश नहीं मिलेगा।

श्रोको पर लिखी टिप्पणियाँ अधिकांशतः मैकडॉनेल के संस्करण से ली गई हैं। किन्तु मैंने केवल तुलनात्मक और सन्दर्भात्मक टिप्पणियों को ग्रहण किया है क्योंकि बृहदेवता के मूल्यांकन में उनका पर्याप्त महत्त्व है। मैकडॉनेल की टिप्पणियों में कहीं कहीं कुछ सन्दर्भ संकेत अशुद्ध भी मिले, किन्तु मैंने उन्हें ठीक कर दिया है। ग्रन्थ के अन्त में विभिन्न परिशिष्टों में बृहदेवता के तुलनात्मक और विस्तृत अध्ययन के लिये प्रायः समस्त उपलब्ध सामग्री प्रस्तुत कर दी गई है। इन परिशिष्टों के लिये भी हर्वर्ड संस्करण से पर्याप्त सहायता मिली है। इस प्रकार मेरा प्रयास इस संस्करण को उपयोगिता की दृष्टि से हर्वर्ड के दुष्प्राप्य संस्करण के समकक्ष बना देना रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं हर्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रति विशेष रूप से आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिसके प्रकाशन अधिकारी ने मुझे मैकडॉनेल द्वारा सम्पादित और हर्वर्ड ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशित बृहदेवता के संस्करण की टिप्पणियों और परिशिष्टों के उपयोग की अत्यन्त उदारतापूर्वक स्वीकृति प्रदान की है।

अनुवाद की पाण्डुलिपि तैयार करने, तथा अनेक अंशों के प्रूफ सशोधन में मुझे पं० शिवचरण शर्मा से पर्याप्त सहायता मिली है, जिसके लिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के उदीयमान संचालक, श्री माहनदास तथा श्री बिट्टलदास जी को क्या धन्यवाद दूँ। इन लोगों की तत्परता और सतत उत्साह के कारण ही न केवल बृहदेवता के प्रस्तुत संस्करण बरन् मेरे अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन सम्भव हो सका है। भारतीय संस्कृति और संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में इन लोगों के प्रयास की हमारे देश के राष्ट्रपति तक ने सराहना की है।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मनुष्य का कोई भी कार्य पूर्ण और निर्दोष नहीं होता, और फिर मैं तो एक साधारण और अल्पज्ञ व्यक्ति हूँ। अतः मुझे आशा है कि विद्वान् पाठक प्रस्तुत कृति के प्रति सहानुभूति-पूर्ण दृष्टिकोण रखते हुये मेरी त्रुटियों को मुझे सूचित करेंगे जिससे मैं भविष्य में उनका परिमार्जन करने के साथ-साथ अपना ज्ञानवर्धन भी कर सकूँ।

रामकुमार राय

विषय-सूची

अध्याय १

वर्ग	पृष्ठ
१ देवताओं को जानने का महत्त्व, वैदिक-त्रयी	३
२ स्तुति और आशीस्	४
३ सूक्तों के विभिन्न प्रकार	५
४ सूक्तों के देवता, मन्त्रों के देवता, और नैपासिक देवता	६
५ नामों की उत्पत्ति	७
६ शौनक का दृष्टिकोण सभी नाम कम से उत्पन्न होते हैं	८
७ मागलिक नाम, विभिन्न प्रकार के मन्त्र	९
८ विभिन्न प्रकार के मन्त्र तथा अभिव्यञ्जनात्मक पद्धतियाँ	१०
९ सज्ञा और क्रिया की परिभाषा	११
१० विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के उदाहरण	१२
११ समस्त स्थावर-जङ्गम के स्रोत के रूप में सूर्य और प्रजापति	१६
१२ अग्नि के तीन रूप	१७
१३ त्रयी और आत्मन्, वाच् के तीन रूप	१८
१४ सूक्त का प्रधान देवता	१९
१५ देवों के नामों की गणना	२०
१६ अग्नि, इन्द्र-वायु, और सूर्य को समर्पित सूक्तों की विशेषता	२१
१७ तीन अग्नि	२२
१८ अग्नि, जातवेदस्, वैश्वानर मूलतः समान, किन्तु इनका विभेद	२३
१९ अबरोहक क्रम से तीनों लोकों के देवता	२४
२० पार्थिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करनेवाले देवता	२५
२१ अग्नि के साथ सम्बद्ध अन्य देवता	२८
२२ इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान का देव-समूह	२९
२३ इन्द्र के क्षेत्र से सम्बद्ध देवता तथा दैवीकृत पदार्थ	३०

अध्याय २

१ इन्द्र-स्थान के देवता	३२
२ सूर्य-क्षेत्र के देवता सूर्य की तीव्र पत्नियाँ	३३

वर्ग	पृष्ठ
३ सूर्य और वैश्वानर, अग्नि के रूप हैं	३५
४ अग्नि के पाँच नाम, अग्नि, द्रविणोदस्, तन्नपत् की उत्पत्ति	३७
५ नराक्षस, यवमान, जातवेदस्	३८
६ इन्द्र के छब्बीस नाम वायु, वरुण, रुद्र, इन्द्र	३९
७ पर्बन्त्य, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, क्षेत्रस्य-पति, ऋत	४०
८ वास्तोष्पति, वाचस्पति, अदिति, क, यम	४२
९ मित्र, विश्वकर्म्मन्, सरस्वत्, वेन, मन्यु	४४
१० असुनीति, अपां नपात्, दक्षिणा, धातृ, ताक्ष्य	४५
११ पुरुरवस्, मृत्यु । सूर्य के नाम सवितृ, भग	४६
१२ पूषन्, विष्णु, केशिन्, विश्वानर, वृषाकपि	४८
१३ विष्णु की व्युत्पत्ति, नैपातिक नामों की गणना नहीं कराई जा सकती	४९
१४ त्रिविध-वाच् उसके पार्थिव और मध्यम रूप	५०
१५ वाच् के अन्य मध्य-स्थानीय रूप, इसके चार दिव्य रूप	५२
१६ ऋषी द्रष्टव्यों के नाम तीन वर्ग	५३
१७ आत्म-स्तुतियों तथा सवाद वाक्यों के देवता, निपात	५५
१८ उपसर्ग, लिङ्ग	५७
१९ संज्ञा, सर्वनाम, आशय अन्वय	५८
२० शब्दों का विग्रह, समास के छ प्रकार	५९
२१ शब्दों का विग्रह और अर्थ	६०
२२ यास्क की अशुद्ध व्याख्यायें, वर्णलोप	६२
२३ शब्द और अर्थ, क्रिया में भावप्रधानता होती है	६४
२४ व्याहृतियों और ॐ के देवता	६५

ऋग्वेद के देवता

२५ प्रथम तीन सूक्त, विश्वेदेव-सूक्तों के ऋषि	६६
२६ विश्वेदेव-सूक्तों की प्रकृति	६८
२७ सरस्वती को संबोधित ऋग्वेद के स्थल । इन्द्र-सूक्त	६८
२८ ऋग्वेद १ ६ मे इन्द्र, मरुतों के साथ सम्बन्ध हैं	७०
२९ ऋग्वेद १ १२, तथा आप्री-सूक्त १ १३ के देवता	७१
३० म्यारह आप्री-सूक्त	७२
३१ आप्री-सूक्तों में तन्नपाम् और नराक्षस, अग्नि का एक रूप इक्ष्म	७३

अध्याय ३

ऋग्वेद १ १३-१२६ के देवता

१ तनूनपात्, नराधस, इक्ष्वा, बहिव्	७५
२ दिव्य द्वार, रात्रि और उषस्	७६
३ दो दिव्य होता, तीन देवियाँ, त्वष्टृ	७७
४ दिव्य त्वष्टृ, दध्यक्ष और मनु की कथा	७९
५ दध्यक्ष का अश्व-शिर, मध्यम त्वष्टृ	८०
६ वनस्पति, स्वाहाकृतियाँ	८१
७ तनूनपात् और नराधस ऋग्वेद १ १४ और १५ के देवता	८३
८ ऋतुओं को समर्पित सूक्त ऋग्वेद १ १५	८४
९ विश्वेदेवों को समर्पित तीन प्रकार के सूक्त	८५
१० किसी सूक्त के देवता का निर्णय कैसे किया जाय	८७
११ प्रसङ्गारम्भक देवता तथा सूक्त का स्वामित्व । वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा	८८
१२ वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की गणना	८९
१३ इषिणोदस् की व्याख्या । ऋग्वेद १ १६-१८ के देवता	९१
१४ ऋग्वेद १ १८ के देवता । प्रजापति के आठ नाम	९२
१५ प्रजापति के नाम (क्रमशः) । ऋग्वेद १ १९ देवता	९४
१६ किसी ऋचा, इत्यादि, के देवता का किस प्रकार निर्धारण करना चाहिये	९५
१७ ऋभुवो और त्वष्टा की कथा	९७
१८ ऋग्वेद १ २०-२१ के देवता	९८
१९ ऋग्वेद १ २२ (क्रमशः), ऋग्वेद १ २३ पूषन् आशुनि	९९
२० ऋग्वेद १ २४-३० के देवता	१०१
२१ ऋग्वेद १ ३१-४० के देवता	१०२
२२ ऋग्वेद १ ४१-४७ के देवता	१०३
२३ ऋग्वेद १ ४८-६० । सव्य की कथा । सतर्षिन्-गण	१०४
२४ ऋग्वेद १ ६१-७३ । म्यारह श्लोक । ऋग्वेद १ ७४-८९	१०५
२५ ऋग्वेद १ ९०-९३ । प्रथम मण्डल के ७४-१६४ सूक्तों के अन्तर्गत सूक्त-समूह	१०७
२६ ऋग्वेद १ ९४-१११ । ऋषयों से सूक्त सूक्तों के ऋषि कश्यप के श्लोक	१०८
२७ ऋग्वेद १ १०५ किस की कथा	१०९
२८ ऋग्वेद १ ११२-१२१ के देवता	११०

बर्त

पृष्ठ

२९ कक्षीयत् और स्वनय की कथा

१११

३० राजा के उपहार । नारायणी ऋचाओं, १' १२६, ६-७, सम्बन्धी विचार ११३

अध्याय ४

ऋग्वेद १ १२७-४ ३२ के देवता

१ रोमशा और इन्द्र । ऋग्वेद १ १२७-१३६ । युगल-स्तुतियाँ	११५
२ विमक्त स्तुतियाँ । ऋग्वेद १ १३७-१३९ । वैश्वदेव सूक्त	११६
३ दीर्घतमस् के जन्म की कथा	११८
४ दीर्घतमस् को प्रकट सूक्त ऋग्वेद १ १४१-१५६	११९
५ दीर्घतमस् की कथा (क्रमश)	१२०
६ ऋग्वेद १ १५७-१६३ के देवता	१२१
७ ऋग्वेद १ १६४ के देवता, तीन अग्नि सवत्सर	१२२
८ ऋग्वेद १ १६४ के विषय-वस्तु का विवरण (क्रमश)	१२३
९ ऋग्वेद १ १६४ (क्रमश) । ऋग्वेद १ १६५ इन्द्र तथा मरुद्गण	१२४
१० इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य ऋग्वेद १ १६९, १७०	१२७
११ ऋग्वेद १ १७१-१७८ । अगस्त्य और लोपामुद्रा ऋग्वेद १ १७९	१२८
१२ अगस्त्य और लोपामुद्रा । ऋग्वेद १ १८०-१९०	१२९

द्वितीय मण्डल

१३ ऋग्वेद २ १, १२ के देवता । गृत्समद, इन्द्र और दैत्यगण	१३०
१४ गृत्समद और इन्द्र	१३१
१५ इन्द्र और गृत्समद की कथा (क्रमश)	१३२
१६ ऋग्वेद २ २३-३० के देवता	१३३
१७ ऋग्वेद २ ३१-३५ के देवता	१३४
१८ ऋग्वेद २ ३६-४३ के देवता । कपिञ्जल के रूप में इन्द्र	१३५

तृतीय मण्डल

१९ विश्वामित्र ऋषि । ऋग्वेद ३ १-६ के देवता	१३६
२० ऋग्वेद ३ ७-२९ के देवता	१३८
२१ ऋग्वेद ३ ३०-३३ के देवता विश्वामित्र, सुदास् और नदियाँ	१३९
२२ ऋग्वेद ३ ३४ एक पुत्रिका-पुत्री । विश्वामित्र और शक्ति	१४०

वर्ग	पृ०
२३ विश्वामित्र और वाक् सप्तर्षी । बसिष्ठो के विरुद्ध अभिचार	१४१
२४ ऋग्वेद ३ ५३, २१-२४ । ऋग्वेद ३ ५४-६० के देवता	१४२
२५ ऋग्वेद ३ ६१-६२ के देवता	१४३

चतुर्थ मण्डल

२६ ऋग्वेद ४ १-१५ के देवता	१४३
२७, २८ ऋग्वेद ४ १८-३० । इन्द्र का जन्म और वामदेव के साथ युद्ध	१४४
२९ विभिन्न देवताओं के वाहनाश्व	१४६

अध्याय ५

ऋग्वेद ४ ३३-७ ४९ के देवता

१ ऋग्वेद ४ ३३-५२ के देवता	१४८
२ ऋग्वेद ४ ५३-५८ के देवता	१४९
३ ऋग्वेद ५ १, २८ के देवता । अथर्वण वृषाजान की कथा	१५१
४ अथर्वण की कथा (क्रमशः)	१५२
५ अन्य कृतियों में ऋग्वेद ५ २ २ ९ के सन्दर्भ । ऋग्वेद ५ २९, ४० के देवता	१५३
६ अग्नि की दान-स्तुति	१५४
७ ऋणचय का वस्तु को दान । ऋग्वेद ५ ४१-५१ के देवता	१५४
८ ऋग्वेद ५ ४१-४३ का विस्तृत वर्णन	१५५
९ ऋग्वेद ५ ५३ (क्रमशः) ४४-४५ के देवता	१५६
१० ऋग्वेद ४ ५१-६० के देवता	१५७
११ द्यावाश्व की कथा	१५८
१२ द्यावाश्व की कथा (क्रमशः)	१५९
१३ द्यावाश्व की कथा (क्रमशः)	१६०
१४ द्यावाश्व की कथा (क्रमशः)	१६१
१५ द्यावाश्व की कथा (समाप्त)	१६३
१६ ऋग्वेद ५ ७३-७८ । सप्तर्षि की कथा	१६३
१७ ऋग्वेद ५ ७९-८७ के देवता । शिल	१६४
१८ प्रजापति और जीवपुत्र के शिल । सप्तर्षि का व्यवहार	१६५
१९ मृग, अश्विनी और अग्नि के जन्म की कथा	१६६

षष्ठ मण्डल

२० भरद्वाज की उत्पत्ति । ऋग्वेद ६ १-४६ के देवता	१६७
२१ ऋग्वेद ६ ३७ ४४ ४५ ४७ के देवता	१६८
२२ ऋग्वेद ६ ४७ (क्रमशः), और ६ ४८ के देवता	१६९
२३ ऋग्वेद ६ ४९-६२ के देवता	१७०
२४ ऋग्वेद ६ ६३-७४ के देवता । सात रत्न	१७१
२५ ऋग्वेद ६ ७५ अम्यावर्तिन् और प्रस्तोक साज्य की कथा	१७२
२६ ऋग्वेद ६ ७५ के देवताओं का विस्तृत उल्लेख	१७२
२७ ऋग्वेद ६ ७५ (क्रमशः)	१७४
२८ आयमान और प्रस्तोक की कथा	१७५

सप्तम मण्डल

२९ वसिष्ठ की वशावलि । कश्यप की पत्नियाँ	१७६
३० मित्र-वरुण और उर्वशी की कथा	१७६
३१ अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म	१७७
३२ वसिष्ठ और उनके वंशज । ऋग्वेद ७ १-३२ के देवता	१७८
३३ ऋग्वेद ७ ३३-३८ के देवता	१७९
३४ ऋग्वेद ७ ३८-४३ के देवता	१८०
३५ ऋग्वेद ७ ४४-४९ के देवता	१८१

अष्टमाय ६

ऋग्वेद ७. ५०-१० १७ के देवता

१ ऋग्वेद ७ ५०-६६ के देवता	१८३
२ ऋग्वेद ७ ६६-८५ के देवता	१८४
३ वसिष्ठ और वरुण का कुत्ता ऋग्वेद ७ ८६-८९	१८५
४ ऋग्वेद ७ ९०-९६ के देवता	१८६
५ नाहुष और सरस्वती की कथा ऋग्वेद ७ ९५-९६	१८६
६ ऋग्वेद ७ ९७-१०४ के देवता	१८७
७ ऋग्वेद ७ १०४ का विस्तृत विवरण	१८८

अष्टम मण्डल

८ कश्यप और प्रमाथ की कथा	१८९
--------------------------	-----

वर्ग	पृष्ठ
९ ऋग्वेद = १-२१ के देवता	१९०
१० ऋग्वेद = ५-१८ के देवता	१९२
११ ऋग्वेद = १९ असदस्यु के दानों की स्तुति	१९३
१२ ऋषि द्वारा मंगि गये वर। सोमरि और विन की कथा	१९४
१३ सोमरि और विन की कथा (क्रमशः) ऋग्वेद = २२-२५	१९४
१४ ऋग्वेद = २६-३१ के देवता। = २९ पृथक्-कर्म-स्तुति है	१९६
१५ ऋग्वेद = २९ और ३१ का विस्तृत विवरण। ऋग्वेद = ३२-३४ के देवता	१९६
१६ इन्द्र और व्यस की बहन। ऋग्वेद = ३५-४६ के देवता	१९८
१७ ऋग्वेद = ४७-५६ के देवता	१९९
१८ ऋग्वेद = ६०-६७ के देवता	१९९
१९ ऋग्वेद = ६८-७५ के देवता	२०१
२० ऋग्वेद = ७६-९० के देवता	२०१
२१ अपाला की कथा	२०२
२२ अपाला की कथा (शेषांश)। ऋग्वेद = ९२-९३ के देवता	२०३
२३ देवों के पास से सोम के पलायन की कथा	२०४
२४ सोम के पलायन की कथा (क्रमशः)	२०५
२५ ऋग्वेद = १०० सम्बन्धी विवरण। विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता	२०६
२६ ऋग्वेद ७ १०१ के देवताओं से सम्बन्धित विवरण	२०७

नवम मण्डल

२७ ऋग्वेद ९ १-८६ के देवता	२०८
२८ ऋग्वेद ९ = ७ ९६ ११२, के देवता	२०९
२९ इन्द्र और ऋषिगण। तप का माहात्म्य	२१०

दशम मण्डल

३० ऋग्वेद १० १-८ के देवता। विष्टिराज और इन्द्र	२१२
३१ ऋग्वेद १० ९-१४ के देवता	२१३
३२ ऋग्वेद १० १४ के देवता (क्रमशः), और १५ १६। तीन वस्ति	२१४
३३ सरण्य की कथा ऋग्वेद १०-१७	२१५

अध्याय ७

ऋग्वेद १० १७-२८ के देवता

१ सरष्पू की कथा (क्रमश)	२१६
२ सरष्पू की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० १७ के देवता	२१६
३ ऋग्वेद के १० १८, अत्येष्टि सूक्त का विस्तृत विवरण	११७
४ ऐसे मन्त्र जिनमें किसी देवता का उल्लेख नहीं होता	२१९
५ ऋग्वेद १९ १९-२७ के देवता	२२०
६ ऋग्वेद १० २७ (क्रमश) । ऋग्वेद १० २८ इन्द्र और वसुक्त का संवाद	२२१
७ ऋग्वेद १० ३०-३३ के देवता	२२२
८ अक्ष-सूक्त १० ३४ । ऋग्वेद १० ३५-४४ के देवता	२२३
९ ऋग्वेद १० ४५-४६ के देवता । घोषा की कथा	२२४
१० घोषा की कथा (शेषांश)	२२५
११ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा	२२५
१२ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (क्रमश)	२२६
१३ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (शेषांश) । अग्नि तथा उनके भ्राताओं की कथा ऋग्वेद १० ५१-५३	२२७
१४ अग्नि के पलायन की कथा (क्रमश)	२२८
१५ 'पञ्चजना' का अर्थ	२२९
१६ अग्नि के पलायन की कथा (क्रमश)	२२९
१७ अग्नि के पलायन की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० ५४-५७	२३०
१८ सुबन्धु की कथा ऋग्वेद १० ५७-५९	२३१
१९ सुबन्धु की कथा (क्रमश)	२३२
२० ऋग्वेद १० ५९ ६० का विस्तृत विवरण	२३३
२१ सुबन्धु की कथा (शेषांश) ऋग्वेद १० ६१-६६ के देवता	२३४
२२ ऋग्वेद १० ६३-६६ का विवरण । ऋग्वेद १० ६७-७२ के देवता	२३५
२३ ऋग्वेद १० ७१ का विस्तृत विवरण	२३६
२४ ऋग्वेद १० ७२-८४ के देवता । खिल	२३७
२५ सूर्या-सूक्त ऋग्वेद १० ८५ । उषस् के तीन रूप	२३८
२६ सूर्या-सूक्त का विवरण (क्रमश)	२३९
२७ चन्द्रमस की व्युत्पत्ति । ऋग्वेद १० ८५, २०-३० का विषय-वस्तु	२४०
२८ ऋग्वेद १० ८५, ३१-४३	२४१

वर्ग	पृष्ठ
२९ सूर्य-सूक्त पर टिप्पणी (शेषांश)	२४२
३० ऋग्वेद १० ८९-९३ के देवता । पुरुरवस् और उर्वशी की कथा	२४३
३१ पुरुरवस् और उर्वशी की कथा (शेषांश)	२४४
३२ ऋग्वेद १० ९६-९७ के देवता । देवापि की कथा १० ९८	२४५

अध्याय ८

ऋग्वेद १० ९८-१०१ (१-२८) के देवता । निष्कर्ष (१९-१४०)	
१ देवापि की कथा (क्रमशः)	२४६
२ देवापि की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० १०१ के देवता	२४७
३ ऋग्वेद १० १०२ १०३ के देवता । नकुल का खिल	२४८
४ ऋग्वेद १० १०४-१०५ के देवता । भूताश काश्यप ऋग्वेद १० १०६ २५०	
५ ऋग्वेद १० १०७ । सरमा और पणियों की कथा ऋग्वेद १० १०८ २५१	
६ सरमा और पणियों की कथा (क्रमशः)	२५२
७ सरमा और पणियों की कथा (शेषांश)	२५३
८ ऋग्वेद १० १०९-१२० के देवता	२५४
९ ऋग्वेद १० १२१-१२९ के देवता । तीन खिल	२५४
१० ऋग्वेद १० १३०-१३७ के देवता	२५५
११ 'भूमि' खिल । ऋग्वेद १० १३८-१४२ के देवता	२५६
१२ ऋग्वेद १० १४३-१५४ के देवता । खिल मेघासूक्त	२५७
१३ ऋग्वेद १० १५५-१५९ के देवता	२५९
१४ ऋग्वेद १० १६०-१६४ के देवता । ऋषि कपोत नेऋत	२५९
१५ ऋग्वेद १० १६५-१७४ के देवता	२६०
१६ ऋग्वेद १० १७५-१८१ के देवता	२६२
१७ ऋग्वेद १० १८२-१८४ के देवता	२६३
१८ नेजमेष' खिल । ऋग्वेद १० १८५-१८८ के देवता	२६४
१९ ऋग्वेद १० १८९ १९० । 'संज्ञानघ' खिल	२६५
२० दो खिल । ऋग्वेद १० १९१ । महानाम्नी ऋचायें	२६६
२१ महानाम्नी ऋचायें सूक्त क्या होता है	२६७
२२ निषिद्, नियद और छन्दो के देवता	२६९
२३ छन्दो, वेदों, वषटकार, स्वाहाकृतियों के देवता । स्वर	२७०
२४ स्वरों के देवता	२७१

वर्ग	पृष्ठ
२५ स्वरों के देवता (सेवास) । प्रस्ताव, उद्गीथ, उपस्रव, प्रतिहार, निबन्ध, के देवता	२७२
२६ वैश्वदेव सूक्तों के विभिन्न नैपातिक देवता	२७३
२७ देवता सम्बन्धी विवरण तथा उनका ज्ञान	२७४
२८ देवताओं को जानने का महत्त्व	२७५
परिशिष्ट १ : बृहदेवता में उद्धृत वैदिक प्रतीकों की सूची	२७७
परिशिष्ट २ : बृहदेवता में उद्धृत आचार्यों के नाम	२८८
परिशिष्ट ३ : बृहदेवता के अनुसार ऋग्वेद के देवताओं की सूची	२८६
परिशिष्ट ४ : बृहदेवता में वर्णित कथाओं की सूची	३०२
परिशिष्ट ५ : अन्य ग्रन्थों में उद्धृत बृहदेवता के स्थलों की सूची	३०४
परिशिष्ट ६ : अन्य ग्रन्थों के साथ बृहदेवता का सम्बन्ध	३०७
परिशिष्ट ७ : संस्कृत शब्दों और नामों की अनुक्रमणिका	३२७



॥ शौनकीयबृहद्देवता ॥

॥ अथ शौनकीयबृहदेवताप्रारम्भ ॥

१-देवताओं को जानने का महत्त्व; वैदिकग्रन्थी

मन्त्रग्रन्थो नमस्कृत्वा समान्नायानुपूर्वशः ।

सूक्तगर्ग्यपादानाम् ऋग्वेदो वक्ष्यामि दैवतम् ॥ १ ॥

मन्त्र ब्रह्मणों को नमस्कार करते हुये, मैं परम्परागत पाठ^१ के सम्बन्ध में (प्रत्येक) ऋचा को उद्दिष्ट करके सूक्तों के देवताओं, ऋचाओं, अर्च्यऋचाओं और मन्त्रों का वर्णन करूँगा ।

^१ ऋग्विधान १ १ १ में 'नमस्कृत्वा मन्त्रग्रन्थ' पाठ है ।

^२ 'समान्नायानुपूर्वशः', ऋग्विधान १ १, २, में भी आता है ।

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः ।

दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति ॥ २ ॥

(सभी व्यक्तियों को) प्रत्येक मन्त्र के देवताओं का ठीक ठीक ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि जो मन्त्रों के देवता को जानते हैं वह उनके अर्थ को भी समझते हैं ।

तद्धितांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रवृष्टिषु ।

विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च ॥ ३ ॥

ऋषियों पर मूलतः प्रकट होने के समय मन्त्रों में निहित अभिप्रायों^१ से परिचित तथा उनके और उनसे सम्बद्ध संस्कारों को ठीक ठीक ग्रहण करने की क्षमता रखनेवाले व्यक्ति ही मन्त्रों के विविध अभिप्रायों तथा कर्मों के सम्बन्ध में प्रामाणिक मत व्यक्त कर सकते हैं,

^१ तु० की० 'एवम् उक्त्वचैर् अभिप्रायैर् ऋषीणां मन्त्रवृष्टयो भवन्ति', निरुक्त ७ १ ।

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम् ।

लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते ॥ ४ ॥

क्योंकि वास्तव में मन्त्रों से सम्बन्धित देवताओं के ठीक-ठीक ज्ञान के बिना लौकिक अथवा वैदिक संस्कारों^१ का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता ।

^१ सर्वानुक्रमणी के अनुसार भी इस प्रकार के ज्ञान के बिना 'भौत' और 'स्मार्त' संस्कारों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता । तु० की० नीचे १ २२, तथा ऋग्विधान १ २, १, भी ।

प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह देवतम् ।

द्वितीयो वायुमिन्द्रं वा तृतीयः सूर्यमेव च ॥ ५ ॥

देवों का प्रथम वर्ग अग्नि देवता के, द्वितीय वायु अथवा इन्द्र के, और तृतीय सूर्य के अन्तर्गत आता है ।^१

^१ तु० की० नीचे १ ६९, निरुक्त ७ ५, सर्वानुक्रमणी, १ ८ ।

अर्थमिच्छन्नुपिर्वेवं यं यन्माहायमस्त्विति ।

प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तदेव एव सः ॥ ६ ॥

ऐसा कथन है कि किसी वस्तु की कामना करते हुये एक ब्रह्म जिस किसी देवता की स्तुति करता है वही उस मन्त्र का देवता होता है ।^१ किसी देवता की प्रमुख रूप से भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाला मन्त्र उसी देवता को सम्बोधित होता है ।

^१ तु० की० निरुक्त ७ १ ।

२-स्तुति और आशीस

स्तुतिस्तु नाम्ना रूपेण कर्मणा बान्धवेन च ।

स्वर्गायुर्धनपुत्राद्यैर् अर्थैराशीस्तु कथ्यते ॥ ७ ॥

स्तुति को जन्म, रूप, कार्य, और बन्धुत्व के द्वारा व्यक्त किया जाता है, किन्तु आशीस को स्वर्ग, आयुश्च, धन और पुत्र के द्वारा ।^१

^१ तु० का० ऋग्विधान, १ १ ६

स्तुत्याशिषौ तु यास्वृक्षु दृश्येतेऽल्पास्तु ता इह ।

ताभ्यश्चाल्पतरास्ताः स्युः स्वर्गो यामिस्तु याच्यते ॥ ८ ॥

ऐसे मन्त्र जिनमें आशीस और स्तुति दोनों हों (ऋग्वेद में) पाये तो जाते हैं किन्तु अत्यन्त कम । इनसे भी कम ऐसे मन्त्रों की संख्या है जिनमें स्वर्गप्राप्ति की याचना की गयी हो ।

स्तुवन्तं वेद सर्वोऽयम् अर्थयत्येष मामिति ।

स्तौतीत्यर्थं ब्रुवन्तं च सार्थं मामेष पश्यति ॥ ९ ॥

हम सभी लोग अपनी स्तुति करनेवालों को जान लेते हैं, और उनके सम्बन्ध में यह भी अनुमान कर लेते हैं कि 'वह (याचना करनेवाला) व्यक्ति हमसे कुछ चाहना है, और अपने अभीष्ट की याचना करनेवाला व्यक्ति

भी हमारे सम्बन्ध में यह समझता है कि हम उसका जमीन उसे प्रदान कर सकते हैं ।

स्तुवद्भिर्वा ब्रुवद्भिर्वा ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।

भवत्युभयमेवोक्तम् उभयं ह्यर्थतः समम् ॥१०॥

किन्तु तत्त्वदर्शी ऋषि जाड़े जासीस करे अथवा किसी बात को कहे उससे दोनों ही बातों की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि यह दोनों ('जासीस' और 'किसी बात का कथन') समान हैं ।

प्रत्यक्षं देवतानाम यस्मिन्मन्त्रेऽभिधीयते ।

तामेव देवतां विद्यान् मन्त्रे लक्षणसंपदा ॥ ११ ॥

यदि किसी मन्त्र में किसी देवता का नाम मध्यम पुरुष^१ में आता है तो भी उसी को उस मन्त्र का देवता समझना चाहिये क्योंकि ऐसे पदों का वही लक्षण होता है ।

^१ तु० की० 'प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वम् इति चैतेन सर्वनाम्ना', निरुक्त ७ २ ।

३-सूक्तों के विभिन्न प्रकार

तस्मात्तु देवतां नाम्ना मन्त्रे मन्त्रे प्रयोगवित् ।

बहुत्वमभिधानां च प्रयत्नेनोपलक्षयेत् ॥१२॥

अतः मन्त्रों के प्रयोग से परिचित व्यक्ति को चाहिये कि यह देवों के नाम और विविध उपाधियों की दृष्टि से मन्त्र में देवता को प्रयत्नपूर्वक देखे ।

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते ।

दृश्यन्ते देवता यस्मिन् एकस्मिन् बहुषु द्वयोः ॥१३॥

किसी ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को सूक्त कहते हैं जिसके एक, दो, अथवा अनेक मन्त्रों में देवता दिखाई देते हैं ।

देवतार्थार्थछन्दस्तो वैविध्यं च प्रजायते ।

ऋषिसूक्तं तु यावन्ति सूक्तान्येकस्य वै स्तुतिः ॥ १४ ॥

श्रूयन्ते तानि सर्वाणि ऋवेः सूक्तं हि तस्य तत् ।

यावदर्थसमाप्तिः स्याद् अर्थसूक्तं वदन्ति तत् ॥ १५ ॥

देवता, आर्षं, विषय वस्तु और छन्द की दृष्टि से सूक्तों में विविधता उत्पन्न

हो जाती है। ऐसे सभी सूक्तों को, जो किसी एक ऋषि की स्तुति के रूप में प्रकट हुये हैं, 'ऋषि सूक्त' कहते हैं, क्योंकि ऐसे सब सूक्त मिलकर उसी ऋषि के सूक्त होते हैं। जहाँ तक (अनेक ऋषियों में मिलकर) एक विषय पूर्ण होता है उसे एक 'अर्थ सूक्त' कहते हैं।

समानछन्दसो याः स्युस् तच्छन्दःसूक्तमुच्यते ।

वैविध्यमेवं सूक्तानाम् इह विद्याद्यथातथम् ॥१६॥

उन ऋषियों को, जिनका छन्द समान होता है, एक 'छन्द-सूक्त' कहते हैं। इस प्रकार लोगों को सूक्तों की वास्तविक विविधता समझना चाहिये।

**४-सूक्तों के देवता, मन्त्रों के देवता, और नैपातिक देवता
देवतानामधेयानि मन्त्रेषु त्रिविधानि तु ।**

सूक्तभाज्यथवर्गमाञ्जि तथा नैपातिकानि तु ॥ १७ ॥

मन्त्रों में देवताओं के नामोश्लेषन का तीन प्रकार होता है एक ऐसे देवता जिनका सम्पूर्ण सूक्त में उल्लेख होता है, दूसरे वह जो केवल एक मन्त्र में आते हैं, और तीसरे जिनका उल्लेख केवल नैपातिक होता है।

^१ तु० की० निरुक्त ७ १३, और १० ४२।

^२ तु० की० निरुक्त १ २०, और ७ १८।

सूक्तभाञ्जि भजन्ते वै सूक्तान्यृग्भाञ्जि वै ऋचः ।

मन्त्रेऽन्यदैवतेऽन्यानि निगद्यन्तेऽत्र कानिचित् ॥१८॥

सम्पूर्ण सूक्त में आनेवाले सम्पूर्ण सूक्त के देवता कहे जाते हैं, और ऋचा मात्र में आनेवाले केवल उसी ऋचा के। किसी एक देवता को सम्बोधित मन्त्र में कुछ अन्य देवताओं के नामों का भी उल्लेख हो सकता है,

सालोक्यात्साहचर्याद्वा तानि नैपातिकानि तु ।

तस्माद्बहुप्रकारेऽपि सूक्ते स्यात्सूक्तभागिनी ॥ १९ ॥

देवता तद्यथा सूक्तम् अविशोष्यं प्रतीयते ।

भिन्ने सूक्ते बदेदेव देवतामिह लिङ्गतः ॥ २० ॥

क्योंकि वह एक ही लोक के अथवा परस्पर सम्बन्ध हो सकते हैं। फिर भी, ऐसे देवताओं का उल्लेख केवल नैपातिक ही होता है। अतः विविध प्रकृति वाले एक सूक्त का भी सम्पूर्ण रूप से एक ही देवता हो सकता है; अर्थात्

देखे सूक्त के सम्बन्ध में यह मानना चाहिये कि उसको निश्चित रूप से निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता ।^१ जब एक सूक्त विभिन्न भागों में विभक्त हो तो उस दृष्टा में उसमें व्यक्त विशिष्ट कथनों^२ के आधार पर ही उसमें निहित देवता को समझना चाहिये ।

^१ इससे सम्भवत एक ऐसे अनिश्चित प्रकृतिवाले सूक्तों का तात्पर्य है जिनमें किसी भी देवता के नाम का उल्लेख नहीं रहता (तु० की० 'अनादिष्ट-देवता', निरुक्त ७ ४), किन्तु सम्पूर्ण रूप से जिसका देवता प्रजापति होता है (तु० की० नीचे ७ १६, सर्वानुक्रमणी, १० १८) ।

^२ अर्थात्, जब इसके अलग अलग मन्त्र सात्कारिक दृष्टि से व्यवहृत होते हैं तो, देवता को उसी मन्त्र में निहित मानना चाहिये तु० की० 'सूक्त-भेद-प्रयोगे', सर्वानुक्रमणी १ १३९ ।

^३ तु० की० सर्वानुक्रमणी, उ० म्भा०, और १ ९४ ।

तत्र तत्र यथावच्च मन्त्रान्कर्मसु योजयेत् ।

देवतायाः परिज्ञानात् तद्धि कर्म समृध्यते ॥ २१ ॥

प्रत्येक दृष्टा में लोगों को देवता का निर्णय करके ही मन्त्रों को तत्सम्बन्धी कर्मों के साथ सम्बद्ध करना चाहिये, क्योंकि देवता के इस प्रकार के परिज्ञान द्वारा उत्पन्न कर्म ही सर्वथा सफल होता है ।^१

^१ तु० की० ऊपर १ ४, जहाँ इसी तथ्य को नकारात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है, १ ११८, २ २०, ८ १२४, भी देखिये ।

५-नामों की उत्पत्ति

आयन्तयोस्तु सूक्तानां प्रसङ्गपरिकीर्तनात् ।

स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मन्त्रवित् ॥ २२ ॥

यत्त स्तोता सूक्तों के आदि और अन्त में ही देवताओं के नाम और प्रसङ्ग की खोजना करते हैं^१ अतः मन्त्रों का ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति को देवताओं के नाम को इन्हीं स्थलों पर सही प्रकार देखना चाहिये ।

^१ अर्थात् ऋषिगण देवताओं की स्तुति से सम्बद्ध स्थितियों के सन्दर्भोद्धरण के साथ उनके नाम का उल्लेख मुख्यतः सूक्त के आदि तथा अन्त में करते हैं ।

तत्स्वल्पाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम आयते ।

सत्त्वानां वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किञ्चन ॥ २३ ॥

वैदिक व्यक्तियों अथवा अन्य लोगों के जो नाम वहाँ आते हैं उनके लिये

वास्तव में लोग यह मग्न पड़ते हैं कि 'कितने कर्मों से नामों की उत्पत्ति होती है ?'

^१ यह व्याहृति 'लोक्यानाम्' के ही समान है, तु० की० 'लोक्यानां वैदिकानां वा', ऊपर १ ४।

नम्रभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये ।

मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते ॥ २४ ॥

व्युत्पत्ति शास्त्रियों अथवा नैरुक्तों का कथन है कि नौ (कर्मों) से इनकी (नामों की) उत्पत्ति होती है, पौराणिक ऋषिगण, और मधुक, श्वेतकेतु तथा गालव आदि कवि भी ऐसा ही विचार रखते हैं।

निवासात्कर्मणो रूपान् मङ्गलाद्वाच आशीसः ।

यदृच्छयोपवसनात् तथामुष्यायणाच्च यत् ॥ २५ ॥

इन नौ के अन्तर्गत आवास, कर्म, रूप, मङ्गलत्व, वाच्, आशीस, स्वेच्छा, निकटवास तथा उच्च कुलत्व आते हैं।

चतुर्भ्य इति तत्राहुर् यास्कगार्ग्यरथीतराः ।

आशिषोऽथार्थवैरूप्याद् वाचः कर्मण एव च ॥ २६ ॥

इसी समस्या के सम्बन्ध में यास्क, गार्ग्य, और रथीतर ने चार आधार, अर्थात् आशीस, अर्थ-वैरूपता^१, वाच्, तथा कर्म, निश्चित किये हैं।

^१ यहाँ 'अर्थ वैरूप्य' उपरोक्त २५वें के 'रूप' के समान है।

६-शौनक का दृष्टिकोण सभी नाम कर्म से उत्पन्न होते हैं

सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः ।

आशी रूपं च वाच्यं च सर्वं भवति कर्मतः ॥ २७ ॥

किन्तु शौनक का कथन है कि सभी नाम कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं, अर्थात् आशीस, रूप, वाच्, आदि सभी की उत्पत्ति कर्म से ही होती है।^१

^१ यहाँ 'रूप' उपरोक्त २६वें श्लोक के 'अर्थ वैरूप्य' के तथा 'वाच्य', 'वाच्' के समान हैं।

यदृच्छयोपवसनात् तथामुष्यायणाच्च यत् ।

तथा तदपि कर्मैव तच्छृणुध्वं च हेतवः ॥ २८ ॥

इसी प्रकार स्वेच्छा, निकटवास तथा उच्च कुल से उत्पन्न नामों की

भी कर्म द्वारा ही उत्पन्न मानना चाहिये । इस स्थापना का आधार क्या है, उसे सुनें

प्रजाः कर्मसमुत्था हि कर्मतः सत्त्वसंगतिः ।

कचित्संजायते सच्च निवासात्सत्प्रजायते ॥ २९ ॥

प्राणियों की उत्पत्ति कर्म से ही होती है; कर्म से सत्त्व-संगति विकसित होता है; और प्रत्येक व्यक्ति वास्तव में किसी न किसी स्थान पर ही अस्तित्व धारण करता है, अर्थात् वह अपने निवास से ही उत्पन्न होता है ।

यादृच्छिकं तु नामाभिधीयते यत्र कुत्रचित् ।

औपम्यादपि तद्विद्याद् भावस्यैवेह कस्यचित् ॥ ३० ॥

स्वेच्छया रखे गये नाम भी किसी न किसी स्थान पर ही रखे जाते हैं । अतः लोगों को जानना चाहिये कि यहाँ यह भी अस्तित्व के किसी न किसी भाव की तुलना में ही निष्पन्न होते हैं,

नाकर्मकोऽस्ति भावो हि न नामास्ति निरर्थकम् ।

नान्यत्र भावान्नामानि तस्मात्सर्वाणि कर्मतः ॥ ३१ ॥

क्योंकि अस्तित्व का कोई भी रूप ऐसा नहीं जो कर्म से सम्बद्ध न हो, और न कोई नाम ही ऐसा है जो निरर्थक हो । नामों का अस्तित्व के अतिरिक्त और कोई स्रोत है ही नहीं । इस प्रकार सभी नाम कर्म से ही निष्कृष्ट होते हैं ।

७-मांगलिकनाम, विभिन्नप्रकार के मन्त्र

मङ्गलात्क्रियते यच्च नामोपवसनाच्च यत् ।

भवत्येव तु सा ह्याशीः स्वस्त्यादेर्मङ्गलादिह ॥ ३२ ॥

मांगलिकता की दृष्टि से निमित्त और निवास से सम्बन्धित नाम भी 'स्वस्ति' जैसे सौभाग्य सूचक शब्दों के आधार पर केवल आशीस का रूप धारण कर लेते हैं ।

अपि कुत्सितनामायम् इह जीवेत्कथं चिरम् ।

इति क्रियन्ते नामानि भूताना विदितान्यपि ॥ ३३ ॥

प्राणियों के प्रसिद्ध नाम इस (मङ्गलशब्द के) विद्वान् पर ही निर्मित

होते हैं कि 'बृह कुत्सित नामवाका व्यक्ति चिरकाल तक कैसे जीवित रह सकता है ?'^१

^१ अर्थात् साधारण नाम भी अमाह्निकता को बचाने के सिद्धान्त पर ही निर्मित होते हैं। तु० की० निरुक्त १ २०, जहाँ यदि पशु (शृग) की उपाधि है तो उस दशा में 'कु-वर' शब्द के 'कु' की 'कुत्सित' के रूप में व्याख्या की जा सकती है, किन्तु यदि यह (कु-वर) किसी देवता के लिये व्यवहृत हुआ है तो ऐसा अर्थ नहीं होगा।

मन्त्रा नानाप्रकाराः स्युर् दृष्टा ये मन्त्रवर्शिभिः ।

स्तुत्या चैव विभूत्या च प्रभावाद्देवतात्मनः ॥३४॥

मन्त्र ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र देवता के अपने प्रभाव से उत्पन्न विभूति तथा स्तुति की दृष्टि से नाना प्रकार के हो सकते हैं।

स्तुतिः प्रशंसा निन्दा च संशयः परिदेवना ।

स्पृहाशीः कथ्यना याञ्ज्या प्रभः प्रैषः प्रवलिहका ॥३५॥

स्तुति (४०)^१, प्रशंसा (४८), निन्दा (४९), सज्ज (५१), परिदेवन (५०), स्पृहा (५३), आशीस (५०), दग्ध (५१), याचना (४९), प्रैष (५०), प्रैष (५०), प्रवलिहका (५०),

^१ ३५-३९ श्लोकों के अर्थ में कोष्ठों में लिखी सख्याओं से प्रस्तुत अध्याय के उन श्लोकों का तात्पर्य है जिनमें इन व्याहृतियों की व्याख्या की गई है। तु० की० निरुक्त ७ ३, जहाँ 'स्तुति', 'आशीस', 'आचिख्यास', 'परिदेवना', 'निन्दा', और 'प्रशंसा', के उदाहरण दिये गये हैं।

नियोगश्चानुयोगश्च श्लाघा विलपितं च यत् ।

आचिख्यासाथ संलापः पवित्राख्यानमेव च ॥ ३६ ॥

नियोग (५१), अनुयोग (५२), श्लाघा (५३), विलाप (५३), वृत्तान्तकथन (५८), वार्तालाप (५२), पवित्र आख्यान (५३),

^१ इसके लिये ५३वें श्लोक में 'विलाप' का प्रयोग किया गया है।

^२ ५३वें श्लोक में केवल 'आख्यान' है।

८-विभिन्न प्रकार के मन्त्र तथा अभिव्यंजनात्मक पद्धतियाँ

आहनस्या नमस्कारः प्रतिराधस्तथैव च ।

संकल्पश्च प्रलापश्च प्रतिवाक्यं तथैव च ॥ ३७ ॥

प्रतिषेधोपदेशौ च प्रमादापह्नौ च ह ।

उपप्रेषश्च यः प्रोक्तः संज्वरो यश्च विस्मयः ॥ ३८ ॥

आक्रोशोऽभिष्टव्यश्च क्षेपः शापस्तथैव च ।

उपसर्गो निपातश्च नाम चाक्यातमित्यपि ॥ ३९ ॥

भूतं भव्यं भविष्यं च पुमान् स्त्री च नपुंसकम् ।

एवंप्रकृतयो मन्त्राः सर्ववेदेषु सर्वशः ॥ ४० ॥

कामनात्मक श्लोक (५५), नमस्कार (५४), प्रतिश्राव (५५), सकक्षप (५५), प्रलाप (५५), उत्तर (५०); प्रतिषेध और उपदेश (५२) प्रमाद और अपह्नव (५६, ५७), तथा जिसे आमन्त्रण (५६), सञ्चोम (५६) और विस्मय (५७) कहते हैं; आक्रोश (४८), अभिष्टव्य^१, आक्षेप (४९), शाप^२ (४९, ५८); उपसर्ग, निपात, सञ्ज्ञा, और क्रिया^३; भूत, वर्तमान^४, और भविष्य, पुच्छिज्ञ, क्षीलिज्ञ, स्त्रीव^५, इत्यादि की प्रकृति से युक्त मन्त्र ही समस्त वेदों में सर्वत्र मिलते हैं ।

^१ इस वर्ग का नीचे कोई उदाहरण नहीं मिलता, जिसका कारण सम्भवतः व्यावहारिक दृष्टि से 'स्तुति' के साथ इसकी समानता ही है ।

^२ देखिये नीचे (४७-५८) जहाँ व्याहृतियों की इन समस्त पैंतीस प्रकृतियों के ('अभिष्टव्य' के अतिरिक्त) उदाहरण दिये गये हैं ।

^३ व्याकरण सम्बन्धी इन चार कोटियों की नीचे (१ ४२-४५ और २ ८९-९८) विवेचना की गई है ।

^४ 'भव्य' का यहाँ 'वर्तमान' तथा १ ६१ में 'भविष्य' अर्थ है ।

^५ तु० की० नीचे २ ९६ ।

वाक्यार्थदर्शनार्थीया ऋचोऽर्चर्चाः पदानि च ।

ब्राह्मणे चाथ कल्पे च निगद्यन्तेऽत्र कानिचित् ॥ ४१ ॥

ऋचाओं, अर्च्यऋचाओं और पदों का प्रयोजन अपने वाक्यार्थ को स्पष्ट करना ही होता है, साथ ही ब्राह्मण और कल्प की भी कुछ ऋचाओं वहाँ उद्धृत हैं ।

९-संज्ञा और क्रिया की परिभाषा

शब्देनोचरितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते ।

तदक्षरविधौ युक्तं नामेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४२ ॥

कोई भी उच्चरित शब्द, जिससे किसी द्रव्य या वस्तु का बोझ हो, जब उच्चारणानुसृत अक्षर विन्यास से पुक होता है तो उसे मनीषिगण 'सज्ञा' कहते हैं।

अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थेषु विभक्तयः ।

तन्नाम कवयः प्राहुर् भेदे वचनलिङ्गयोः ॥ ४३ ॥

जिसमें विभिन्न अर्थों में आठ विभक्तियों का प्रयोग होता है उसे कविगण 'सज्ञा' कहते हैं, और उसमें लिङ्ग तथा वचन का भी भेद होता है।

क्रियासु बह्वीष्वभिसंश्रितो यः पूर्वापरीभूत इहैक एव ।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यातशब्देन तमर्थमाहुः ॥

अनेक क्रियाओं से सम्बद्ध पूर्व अथवा अपर रूप धारण करने पर ओ,^१ एक होते हुये यदि कोई शब्द क्रिया की निर्वृत्ति द्वारा सिद्ध होता है तो उसे 'क्रिया' (आख्यात) शब्द से व्यक्त किया जाता है।

^१ अर्थात् वह जो कालक्रम को व्यक्त करता है यह यावृत्ति निरुक्त १ १ से गृहीत है।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशोपजातः

कृदन्तशब्दाभिहितो यदा स्यात् ।

संख्याविभक्त्यव्ययलिङ्गयुक्तो

भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्यः ॥ ४५ ॥

जो भाव किसी क्रिया की निर्वृत्ति से उत्पन्न हो, और जो कृदन्त शब्द से व्यक्त हो तथा जो संख्या, विभक्ति (अथवा) अव्यय और लिङ्ग से संयुक्त हो, उसे 'द्रव्य' मानना चाहिये।

१०-विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के उदाहरण

यथा नानाविधैः शब्दैर् अपश्यन्नृषयः पुरा ।

विविधानीह वाक्यानि तान्यनुक्रमतः शृणु ॥ ४६ ॥

अब क्रम से यह सुनिये कि पूर्वकाल में ऋषियों ने विभिन्न प्रकार के शब्दों से किस प्रकार उनके विभिन्न वाक्यों को देखा था।

रूपादिभि स्तुतिः प्रोक्ता आशीः स्वर्गादिभिस्तथा ।

यानि वाक्यान्यतोऽन्यानि तान्यपि स्युरनेकधा ॥

सुगन्धरूपादि व्यवहृत्य करमेवाके वाक्य स्तुति कहलाते हैं; स्वर्णादि व्यवहृत्य करमेवाके आशीस कहलाते हैं; इनसे अन्य जो वाक्य हैं वे भी अनेक प्रकार के हो सकते हैं ।

मन्त्रे प्रशसा मोजस्य चित्र इत् सोमरे स्तुतिः ।

आक्रोशार्थास्तु दृश्यन्ते माता चेत्यभिमेयति ॥ ४८ ॥

‘चित्र इत्’ (ऋग्वे० ८. २१, १८) मन्त्र में सोमरि द्वारा उदार दाता की स्तुति एक प्रशसा है । आक्रोश की अभिव्यक्ति करनेवाले मन्त्र भी दृष्टिगत होते हैं, जैसे ‘माता च’ ।

वास० २३ २४, २५ तैस० ७ ४, १९, ३, मैस० ३ १३, १ शतमा० १३ ५, २, ५, तैमा० ३ ९, ७, ४ आश्रौ० १० ८, १०, शांश्रौ० १६ ४, १ ।

ऋङ् मोघमशं निन्दा च शापो यो मेत्यृगेव तु ।

याञ्ज्या यदिन्द्र चित्रेति क्षेपोऽभीदमिति त्वृचि ॥ ४९ ॥

‘मोघम् अशम्’ (ऋग्वे० १० ११७, ६) ऋचा में निन्दा का, तथा ‘यो मा’ (ऋग्वे० ७ १०४, १६) में शाप का भाव निहित है । इसी प्रकार यद् इन्द्र चित्र’ (ऋग्वे० ५ ३९, १) में याचना का और ‘अभीदम्’ (ऋग्वे० १० ४८,) में आक्षेप का भाव है ।

आशीस्तु वात आ वातु दण्डेति परिदेवना ।

प्रश्नश्च प्रतिवाक्य च पृष्ठामि त्वेत्यृचौ पृथक् ॥ ५० ॥

‘वात आ वातु’ (ऋग्वे० १० १८६, १) आशीस, और ‘दण्डा’ (ऋग्वे० ७ ३३, ६) परिदेवन है, जब कि ‘पृष्ठामि त्वा’ (ऋग्वे० १ १६४, ३४ ३५) से आरम्भ होनेवाली वो ऋचाओं में क्रमशः प्रश्न और उत्तर है ।

संशयोऽधः स्विदासीच्च कथना स्यादहं मनुः ।

इमं नो यज्ञमित्यस्यां नियोगः पाद उच्यते ॥ ५१ ॥

‘अधः स्विद् आसीत्’ (ऋग्वे० १० १२९, ५) में सत्य और ‘अहं मनु’ (ऋग्वे० ४ २६, १) में दम्भ का भाव है । ‘इमं नो यज्ञम्’ (ऋग्वे० ३ २१, १) मन्त्र के प्रथम पाद में नियोग का कथन है ।

इह ब्रवीत्वनुयोगः संलाप ऋगुपोप मे ।

प्रतिषेधोपदेशौ तु अक्षौर्मैत्यक्षसंस्तुतौ ॥ ५२ ॥

‘इह गवीतु’ (ऋग्वे० १ १३४, ७) में अनुबोध और ‘उपो मे’ (ऋग्वे० १ १२५, ७) में वार्ताकाप है, किन्तु वासे^१ के श्लोक की स्तुति करनेवाले ‘अवैर् मा’ (ऋग्वे० १० ३४, १३) में प्रतिषेध और उपदेश दोनों हैं।

^१ अर्थात् अंश-सूक्त १० ३४।

आख्यानं तु ह्ये जाये विलापः स्यान्नदस्य मा ।

अवीरामात्मनः श्लाघा सुदेव इति तु स्पृहा ॥ ५३ ॥

‘ह्ये जाये’ (ऋग्वे० १० ९५, १) आख्यान^१ और ‘नदस्य मा’ (ऋग्वे० १ १७९, ४) विलाप^२ है। ‘अवीराम्’ (ऋग्वे० १० ८१, ९) में आत्मश्लाघा है जब कि ‘सुदेव’^३ (ऋग्वे० १० ९५, १४) में स्पृहा की अभिव्यक्ति है।

^१ यहाँ ‘आख्यान’ उपरोक्त ३६वें श्लोक के ‘पवित्राख्यान’ के समान है।

^२ यहाँ ‘विलाप’ उपरोक्त ३६वें श्लोक के ‘विलपितम्’ के समान है। निरुक्त ५ २ में भी ऋग्वेद (१ १७९, ४) के सन्दर्भ में ‘विलपितम्’ का ही प्रयोग किया गया है।

^३ निरुक्त ७ ३ में इस स्थल को ‘परिदेवना’ कहा गया है।

नमस्कारः शुनःशोपे नमस्ते अस्तु विद्युते ।

संकल्पयन्निदं तुल्योऽहं स्यामिति यदुच्यते ॥ ५४ ॥

शुन शोप से सम्बद्ध मन्त्र ‘नमस् ते अस्तु विद्युते’ (अवे० १ १३, १)^१ में नमस्कार व्यक्त किया गया है, किन्तु जब व्यक्ति शब्दों से व्यक्त भाव द्वारा संकल्प कर लेता है जैसे ‘इदं तुल्योऽहं स्याम’^२, तो,

^१ तु० की० नीचे ८ ४४।

^२ ‘संकल्प’ का उदाहरण दे सकने में असमर्थ होने के कारण यहाँ लेखक केवल उसकी परिभाषा मात्र से सन्तोष कर लेता है।

संकल्पस्तु यदिन्द्राहं प्रलापस्त्वैतशस्य यः ।

महानग्न्याहनस्या स्यात् प्रतिराधो भुगित्यपि ॥ ५५ ॥

उसे ‘संकल्प’ कहते हैं। ‘यद् इन्द्राहम्’ (ऋग्वे० ८ १४, १; अवे० २० २७, १) ऐतश^१ के प्रलाप का उदाहरण है, जब कि ‘महानग्नी’ (अवे० २० १३६, ५) एक कामनाभिव्यक्त मन्त्र है। पुनश्च, ‘भुक्’ (अवे० २० १३५, १-३)^२ में प्रतिराध व्यक्त किया गया है।

^१ देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ६ ३३, १ और इस पर सायण भाष्य। हाँ ऐतरेय ब्राह्मण, भाग २, पृ० ४३४ भी देखिये।

^२ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ६. ३३ १९, हाँ उ० पु०, पृ० ४३५।

प्रमादस्त्वेष हन्ताहं न स स्व इत्यपह्वः ।

इन्द्राकुत्सेत्युपग्रैवो न विजानामि संज्वरः ॥ ५६ ॥

‘हन्ताह्व’ (ऋग्वे० १० ११९, ९) मन्त्र में प्रत्याह; ‘न स स्व’ (ऋग्वे० ७ ८९, ६) में अपह्व; ‘इन्द्राकुत्सा’ (ऋग्वे० ५ ३१, ९) में आमन्त्रण; और ‘न वि जानामि’ (ऋग्वे० १ १६४, ३७) में संज्वर है ।

होता यक्षदिति ग्रैवः को अद्येति तु विस्मयः ।

जामयेऽपह्वो नैषा विततादिः प्रवर्त्तिहका ॥ ५७ ॥

‘होता यक्षद’ (ऋग्वे० १ १३९, १०) में ग्रैव, ‘को अद्य’ (ऋग्वे० १ ८४, १६, अथवा ४ २५, १) में विस्मय, ‘न जामये’ (ऋग्वे० ३ ३१, २) में अपह्व, और ‘वितती’ (अथे० २० १३३, १-६)^१ में प्रवर्त्तिहका है ।

^१ तु० की० नीचे ४ १११ । यदि यहाँ पाठ (जामयेऽपह्वो न) शुद्ध है तो ‘न’ की स्थिति महत्वपूर्ण है, और इस प्रकार हमें ‘अपह्व’ के तो दो उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु ‘अमिष्टव’ के एक भी नहीं । ऊपर १ ३९ पर टिप्पणी देखिये ।

^२ ‘विततादि’ की सन्धि इस पंक्ति में एक द्वितीय अनियमितता का देती है ।

न मृत्युरासीदित्येताम् आचिरुयासां प्रवक्षते ।

अभिशापोऽग्रजाः सन्तु भद्रमाशीस्तु गोतमे ॥ ५८ ॥

‘न मृत्युर् आसीद’ (ऋग्वे० १० १२९, २) से आरम्भ होनेवाली ऋचा को वृत्तान्तकथन कहा गया है^१, और ‘अग्रजा सन्तु’ (ऋग्वे० १ २५, ५) एक साथ^२ है; जब कि ‘भद्रम्’ (ऋग्वे० १ ८९, ८) में गोतम^३ का आशीस^४ है ।

^१ निरुक्त ७ ३ में भी इस ऋचा का वर्णन करने के लिये इसी शब्द का प्रयोग किया गया है ।

^२ इसका दो बार उदाहरण दिया गया है एक बार ४९वें श्लोक में (शाप द्वारा) और दूसरी बार प्रस्तुत श्लोक में (अभिशाप द्वारा) ।

^३ ऋग्वेद १ ८९ का प्रणेता ।

^४ यद् ‘आशिस्’ (३५) का दूसरा उदाहरण है ।

बहूप्येवंप्रकारं तु शक्यं द्रष्टुमितीदृशम् ।

वक्तुं प्रयोगतश्चैषाम् ऋक्सूक्तार्थसंभितम् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण भी निकल सकते हैं और किसी भी

आद्या, सूक्त, अथवा अर्च्यत्वा में निहित अभिप्रायों को उनके प्रयोग के आधार पर उक्त प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है ।

एते तु मन्त्रवाक्यार्था देवतां सूक्तभागिनीम् ।

संश्रयन्ते यथान्यायं स्तुतिस्त्वत्रानुमानिकी ॥ ६० ॥

मन्त्रों के वह वाक्यार्थ अपने सूक्त के देवता के साथ उपयुक्त सम्बन्ध होते हैं, किन्तु यहाँ उनकी स्तुति अनुमान का विषय है ।

११-समस्त स्थावर जङ्गम के स्रोत के रूप में सूर्य और प्रजापति

भवद्भूतस्य भव्यस्य जङ्गमस्थावरस्य च ।

अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥ ६१ ॥

कुछ लोग, जो कुछ था, है, अथवा होगा, और जो कुछ स्थावर अथवा जङ्गम है, उस सबके प्रभव तथा प्रलय का सूर्य को ही कारण मानते हैं ।

^१ ऊपर (१ ४०) 'भव्य का 'वर्तमान' के आशय में प्रयोग हुआ है ।

असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।

यदक्षरं च वाच्यं च यथैतद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

जो कुछ है (सत्) अथवा नहीं है (असत्) उन दोनों का वास्तविक स्रोत वह प्रजापति ही है, जिसे शाश्वत ब्रह्म के समान अनन्तर (अक्षरम्) तथा वाच्य कहते हैं ।

कृत्वैष हि त्रिधात्मानम् एषु लोकेषु तिष्ठति ।

देवान्यथायथं सर्वान् निवेद्य स्वेषु रश्मिषु ॥ ६३ ॥

वह (सूर्य) अपने को तीन भागों में विभक्त करके इन लोकों में प्रतिष्ठित है, और वही अन्य सब देवताओं को यथाक्रम अपनी रश्मियों में निविष्ट रखता है ।

एतद्भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा ।

ऋषयो गोभिर्नर्चन्ति व्यञ्जितं नामभिस्त्रिभिः ॥ ६४ ॥

जो अग्नि के रूप में भूतो म और लोकों में त्रिधात्मक रूप से स्थित है, तीन नामों से व्यक्त होने वाले के रूप में उसी की ऋषिगण अपने गायत्रों द्वारा अर्चना करते हैं ।

तिष्ठत्येष हि भूतानां जठरे जठरे ज्वलन् ।

त्रिस्थानं चैनमर्चन्ति होत्रायां वृक्तवर्हिषः ॥ ६५ ॥

यत्त वही प्रत्येक प्राणी के अन्तर में उज्ज्वल रूप से स्थित है, अतः यज्ञीय कुत्सासन कैला कर 'तीन स्थानोंवाले' के रूप में होतागण उसकी अर्चना करते हैं ।

१२-अग्नि के तीन रूप

इहैष पवमानोऽग्निर् मध्यमोऽग्निर्वनस्पतिः ।

अमुष्मिन्नेव विप्रंस्तु लोकेऽग्निः शुचिरुच्यते ॥ ६६ ॥

पुरोहितगण उसे यहाँ (पृथ्वी पर) 'अग्नि पवमान', मध्य क्षेत्र में 'अग्नि वनस्पति',^१ किन्तु दिव्यलोक में 'अग्नि शुचि' के नाम से पुकारते हैं ।

^१ अथर्ववेद, ५ २४, २, में अग्नि को 'वनस्पति' करा गया है ।

^२ तत्तिरीय संहिता २ २, ४, २, तथा पुराणों में अग्नि के तीन नाम 'पवमान', 'शुचि', और पावक' हैं । तु० की० नीचे (७ ६१) अग्नि के आताओं के नाम ।

इहाग्निभूतस्त्वृषिभिर् लोके स्तुतिभिरीकितः ।

जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि ॥ ६७ ॥

ऋषिगण उसका हम लोक में 'अग्नि' के रूप में, मध्य लोक में 'जातवेदस्' के रूप में, तथा दिव्य लोक में 'वैश्वानर' के रूप में स्तवन करते हैं ।^१

^१ अग्नि, जातवेदस्, और वैश्वानर, की त्रयी का नैघण्टुक के दैवतकाण्ड में सर्वप्रथम उल्लेख है । यास्क (निरुक्त ७ २३) का कथन है कि प्राचीन याज्ञिकों ने 'अग्नि वैश्वानर' को आदित्य माना ग, जब कि शाकपूणि के मत से पार्थिव अग्नि ही 'अग्नि वैश्वानर' है । इस द्वितीय दृष्टिकोण से यास्क (निरुक्त ७ ३१) बहुत अशो तक सहमत हैं । तु० की० नीचे २ १७ ।

रसान् रश्मिभिरादाय वायुनायं गतः सह ।

वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥ ६८ ॥

यतः अपनी रश्मियों से जहाँ को ग्रहण करके वायु के साथ वह इस लोक पर वर्षा करता है, अतः उसे इन्द्र कहते हैं ।

अग्निरस्मिन्नेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेष च ।

सूर्यो विधीति विज्ञेयास् तिस्र एवेह देवताः ॥ ६९ ॥

इस लोक में अग्नि, मध्य लोक में इन्द्र और वायु, तथा दिव्य लोक में सूर्य की ही बहनों तीन देवता मानना चाहिये ।'

^१ तु० की० 'तिस्र एव देवता', निरुक्त ७ ५, और षडगुरुशिष्य के माध्य सहित सर्वानुक्रमणी २ ८ ।

एतासामेव माहात्म्यान् नामान्यत्वं विधीयते ।

तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७० ॥

इन देवों की महानता^१ के कारण इनके लिये विभिन्न नामों का व्यवहार किया गया है, और इनके क्षेत्रों के विभाजन के अनुसार ही इनके नामों में विविधता दिखाई पड़ती है ।

^१ तु० की०, 'तासा माहात्म्याद् एकेनस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति', निरुक्त ७ ५ ।

१३-त्रयी और आत्मन्, वाच् के तीन रूप

तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः ।

आहुस्तासां तु मन्त्रेषु कथयोऽन्योन्ययोनिताम् ॥ ७१ ॥

यह इनकी विभूति का ही परिणाम है कि इनको अनेक नाम दिये गये हैं । फिर भी कवियों ने इन देवों की उत्पत्ति को मन्त्रों में अन्योन्याश्रित माना है ।^१

^१ निरुक्त ७ ४ में देवों वा 'इतरेतरजन्मान' कहा गया है ।

यथास्थानं प्रदिष्टास्ता नामान्यत्वेन देवताः ।

तद्भक्तास्तत्प्रधानाश्च केचिदेवं वदन्ति ताः ॥ ७२ ॥

यह देवता अपने नाम भेद के कारण ही यथास्थान प्रतिष्ठित हैं । कुछ लोगों का ऐसा कथन है कि जो जिस देवता का भक्त होता है वह उसे ही उस स्थान पर प्रधान मानता है ।

पृथक्पुरस्ताद्ये तूक्ता लोकाधिपतयस्त्रयः ।

तेषामात्मैव तत्सर्वं यद्यद्भक्तिः प्रकीर्त्यते ॥ ७३ ॥

पृथक् पृथक् रूप से उपरोक्त तीन लोकाधिपतियों का जिसे गुण (भक्ति) कहते हैं, वही उनका सर्वस्व^१ आत्मा है ।

^१ तु० की० 'आत्मा सर्वं देवस्य', निरुक्त ७ ४ ।

तेजस्वेवायुषं प्रातुर् वाहनं चैव यस्य यत् ।

इमामैन्द्रीं च दिव्यां च वाचमेवं पृथक् स्तुताम् ॥७४॥

ऋषियों का कथन है कि तेज ही किसी देवता का आयुष होता है ।^१

इसी प्रकार उनका कथन है कि इन्द्र (पार्थिव), ऐन्द्री (अन्तरिक्ष), तथा दिव्य लोक-रूपों में वाच् की ही इन देवताओं के वाहन के रूप में स्तुति करनी चाहिये ।

^१ देखिये 'आत्मा एव एषां रथ भवति, आत्मा अथ, आत्मा आयुषम्', निरुक्त ७ ४ । तु० की० नीचे ३ ८५, ४ १४३ ।

बहुदेवता स्तुतयो द्विषत्संस्तुतयश्च याः ।

प्राधान्यमेव सर्वासु पतीनामेव तास्वपि ॥ ७५ ॥

अनेक देवताओं को सम्बोधित स्तुतियों में और उन सम्मिलित स्तुतियों में भी जो द्विवाचक होती हैं, इन्हीं तीन लोकाधिपतियों की प्रधानता रहती है ।

१४-सूक्त का प्रधान देवता

स्थानं नामानि भक्तीश्च देवताया स्तुतौ स्तुतौ ।

संपादयन्नुपेक्षेत यां कांचिदिह संपदम् ॥७६॥

प्रत्येक स्तुति में किसी देवता के स्थान, नाम, और गुण (वक्ति) को व्यक्त करने के लिये, व्यक्ति को वहाँ प्रत्येक सम्भव माध्यमों का आश्रय लेना चाहिये ।

अग्निभक्तिस्तुतान्सर्वांश्च अग्नावेव समापयेत् ।

यदिन्द्रभक्ति तथेन्द्रे सूर्ये सूर्यानुगं च यत् ॥७७॥

उन समस्त देवताओं को, जिनकी अग्नि के गुणों के साथ स्तुति की गई है, अग्नि में ही निहित मानना चाहिये । इसी प्रकार जिनकी इन्द्र के गुणों के साथ स्तुति हो उनको इन्द्र में, तथा जो सूर्य के साथ सम्बद्ध हों उन्हें सूर्य में, निहित मानना चाहिये ।

निरूप्यते हविर्यस्यै सूक्तं च भजते च या ।

सैव तत्र प्रधानं स्थानं न निपातेन या स्तुता ॥ ७८ ॥

जिस देवता को जहाँ हवि समर्पित की गई हो, और उसे कोई सूक्त दे वृ •

सम्पन्न हो', वहीं स्तुति के करने बड़ी प्रशान् होना है, वह देवता वहीं विस्तृति स्तुति केन्द्र वैश्विक हो ।

^१ तु० की० 'यस् तु सुकंभजते, तस्मै इदिर निरुप्यते', निरुक्त ७ १८ ।

इति त्रयाणामेतेषाम् उक्तः सामासिको विधिः ।

समासेनैवमुक्तस्तु विस्तरेण त्वनुक्रमः ॥७९॥

इस प्रकार इन तीन प्रमुख देवताओं से सम्बद्ध विधियों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया । किन्तु इस संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् देवों की विस्तृत वाकिका इस प्रकार प्रस्तुत है ।

अवश्यं वेदितव्यो हि भागां सर्वस्य विस्तरः ।

न हि नामान्यविज्ञाय मन्त्राः शक्या हि वेदितुम् ॥८०॥

हमें प्रत्येक देवता के नाम के विस्तृत विवरण से परिचित होना ही चाहिये, अन्यथा नामों के ज्ञान के बिना मंत्रों को समझना असम्भव होगा,

१५-देवों के नामों की गणना

सम्मान्यमूर्तान्यपि च देवताबन्महर्षयः ।

तुष्टुसुर्कषयः शक्त्या तासु तासु स्तुतिष्विह ॥ ८१ ॥

क्योंकि महान ऋषियों अवस्था प्रज्ञाओं ने भी अपनी विभिन्न स्तुतियों में कदाचित् असूत पदार्थों तक को देववत् मान कर उनका स्तवन किया है ।

यैस्त्वग्निरिन्द्रः सोमश्च वायुः सूर्यो बृहस्पतिः ।

चन्द्रोऽथ विष्णुः पर्जन्यः पूषा चाप्यृमबोऽश्विनौ ॥८२॥

ऋषियों ने, अग्नि, इन्द्र, सोम, वायु, सूर्य, बृहस्पति, चन्द्रमा, विष्णु, पर्जन्य, इन्द्र, ऋषियों, अश्विनौ,

रोदसी मरुतो देवाः पृथिव्यापः प्रजापतिः ।

देवौ च मित्रावरुणौ पृथक् सह च तावुभौ ॥ ८३ ॥

दोनों लोकों, दिव्य मरुतों, पृथिवी, जलों, प्रजापति, एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् दिव्य मित्र-वरुण,

विश्वे च देवाः सविता त्वष्टा वै रूपकृन्मतः ।

अश्वोऽसृष्ट्विजो वज्रो प्रावणो रथसंयुताः ॥८४॥

स्तुताः पृथक् पृथक् स्तूयन्ते तैः तैः श्रद्धापूर्वकम् नामभिः ।

स्तुतौ स्तुतौ प्रवक्ष्यामि तानि तेषामनुकमात् ॥८५॥

विशेषतः, सवित्र, सूर्यो के निर्माता तथा, अन्न, जल, अतिथि, वन, श्वाने के पत्थर, तथा इन सभी देवताओं की उनके रथों सहित, अपने विभिन्न स्थलों और श्रृंखलाओं में जिन नामों से पुष्क-पुष्क स्तुति की है, उन नामों का मैं प्रत्येक स्तुति में वहाँ यथाक्रम उल्लेख करूँगा ।

१६-अग्नि, इन्द्र-वायु, और सूर्य को समर्पित सूक्तों की विशेषता

व्यवस्येन्मन्त्रमाप्तेयं लिङ्गैरप्येव लक्षितम् ।

हविष्पङ्क्तिप्रधानैश्च नामाहानैश्च केवलैः ॥ ८६ ॥

किसी मन्त्र को उसी समय अग्नि का आवाहन करनेवाला समझना चाहिये जब उसमें अग्नि के विशिष्ट लक्षण उपलब्ध हों; और इन लक्षणों के अन्तर्गत एक ओर तो प्रमुखतः पाँच प्रकार की दृष्टिपरिकर्षा आती है और दूसरी ओर केवल नाम से आवाहन ।

ऐन्द्रस्तु मन्त्रो वायव्यैर् लिङ्गैरेन्द्रैः लक्ष्यते ।

नामधेयैश्च वज्रस्य बलकृत्स्या' बलेन च ॥ ८७ ॥

इन्द्र का आवाहन करके उसके मन्त्रों की वायु तथा इन्द्र दोनों के ही विशिष्ट लक्ष्णों, और वज्र, महान् कार्यों, तथा ब्रह्म के उद्देश्य द्वारा, जाना जा सकता है।

^१ निरुक्त ७ १०, में यही व्याप्ति (वल्लुति) इन्द्र के लिये व्यवहृत हुई है ।

सौर्यस्तु लिङ्गैः सूर्यस्य गुणैः सर्वैश्च तैजसैः ।

नामधेयैश्च चन्द्रस्य सूक्तं च भजतेऽत्र यैः ॥ ८८ ॥

सूर्य का आवाहन करनेवाले मन्त्र की विशेषता सूर्य के विविध गुणों के वर्णन के साथ-साथ तेज से सञ्चल समस्त गुण, तथा चन्द्रमा के उन भागों का उल्लेख है जिनसे वह सूर्य में ग्वक होता है।

एतासां देवतानां तु नामधेयानुकीर्तनैः ।

यस्य यस्येह यावन्ति न व्यवस्यन्त्यतोऽन्यथा ॥८९॥

किसी वृद्धा के उम्र समस्त सुखों का, जिनका हन देवों के नामों के आकार पर निर्णय नहीं किया जा सकता, अन्य जाकारों पर निर्णय करना चाहिये ।

अयं प्रयोगस्त्वेतेषां ज्योतिषां त्रिषु वर्तताम् ।

लोकेषु मन्त्रविद्विद्वान् प्रयोगे नावसीदति ॥ १० ॥

इन तीन ज्योतिषों का क्रमानुसार तीनों लोकों में यह प्रयोग विदित हो (इस ज्ञान के फलस्वरूप) मन्त्रों का ज्ञान रखनेवाले विद्वान् इनका क्रमानुसार प्रयोग करने में कभी असफल नहीं होते ।

^१ तु० की० नीचे १ ९७, और निरुक्त ७ २० ।

१७-तीन अग्नियाँ

नीयतेऽयं वृभिर्यस्मान् नयत्यस्मादसौ च तम् ।

तेनेमौ चक्रतुः कर्म सनामानौ पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

यत इस (पार्थिव) अग्नि को मनुष्य अग्नसर करते हैं, और यह (दिव्य) अग्नि इसको इस संसार से अग्नसर करता है, अतः नामों की समानता होते हुये भी यह दोनों (अग्नि) अपने-अपने कर्मों पर पृथक् पृथक् अग्नसर रहते हैं ।

^१ यहाँ व्युत्पत्तिशास्त्रीय दृष्टि में 'नी' धातु नाम के द्वितीय अक्ष से सम्बद्ध है (तु० की० 'नी पर', निरुक्त ७ १४) ।

यद्विद्यते हि जातः सम् जातैर्यद्वात्र विद्यते ।

तेनेमौ तुल्यनामानौ उमौ लोकौ समामृतः ॥ १२ ॥

यत यह जन्म लेने पर ही जाना जाता है, अथवा यह यहाँ पर जीवों द्वारा जाना जाता है, अतः यह दोनों, समान नाम (अर्थात् 'जातवेदस') होते हुये भी, दोनों लोकों को पृथक् पृथक् व्यास करते हैं ।

^१ यद् व्युत्पत्ति निरुक्त ७ १९ में ली हुई पाँच में से प्रथम से भिन्न है, किन्तु द्वितीय, आशय में यास्क ('जातानि वेद तानि वै न िदु') के द्वितीय के समान है । यास्क के साथ सहमत अन्य व्युत्पत्तियों का उल्लेख नीचे २ ३० ३१, में मिलेगा ।

^२ अर्थात् पार्थिव और दिव्य

विस्वजग्नयमेतेषां भ्राजते व्योम्नि मध्यमः ।

निपातमात्रे कथ्यन्ते तथाग्नेयानि कानिचित् ॥ १३ ॥

यत यह (अग्नि) आकाश के मध्य में स्थित होकर प्रकाशित होते हुये भ्राजा करता है, अतः यहाँ इसका केवल नैपातिक उल्लेख है । इसी प्रकार अन्य आग्नेय मंत्रों में भी अग्नि के नैपातिक नाम हो सकते हैं ।

^१ तु० की नीचे ५० 'विस्वजग्न अप' और ऊपर १ ६८ में 'वर्षति भी ।

अग्निमिः केश्ययं त्वग्निर् विष्णुर्ऋषेव मध्यमः ।

असौ तु रश्मिभिः केशी तेनैनानाह केशिनः ॥ १४ ॥

यह (पार्थिव) अग्नि उजालाओं-रूपी, और मध्य में स्थित विष्णु-रूपी केशों से युक्त है । जब कि यह (दिव्य) अग्नि रश्मियों के केश से युक्त है अतः कविगण उसे 'केशिन' नाम से पुकारते हैं ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १२ २५-२७, और नीचे २ ६५ ।

एतेषां तु पृथक्त्वेन त्रयाणां केशिनामिह ।

संलक्ष्यन्ते प्रक्रियासु त्रयः केशिन इत्यृषि ॥ १५ ॥

यहाँ इन तीन केश युक्तों की पृथक् पृथक् प्रकृति के कारण ऋषियों में भी इन तीनों का इनकी विशिष्टताओं के आधार पर विभेद किया गया है, जैसे 'त्रय केशिन' (ऋग्वे० १ १६४, ४४) ।

^१ तु० की० ऋग्वे० १ १६४, पर सर्वानुक्रमणी ।

१८-अग्नि, जातवेदस्, वैश्वानर मूलतः समान, किन्तु इनका विभेद न चैवैषां प्रसूतिर्वा विभूतिस्थानजन्म वा ।

निर्वक्तुं शक्यमेतैर्हि कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत् ॥ १६ ॥

इनकी उत्पत्ति अथवा इनकी विभूति, स्थान, और जन्म की व्याख्या करना असम्भव है ^१ क्योंकि यह समस्त लोक इनने पूर्णतया व्याप्त है ।

^१ क्योंकि, जैसा १ १७ में व्याख्या की जा चुकी है, यह वास्तव में समान हैं, जिसके कारण ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इनके जन्म, आवास, और शक्तियाँ परस्पर भिन्न हैं ।

वैश्वानरं अग्नितो ह्यग्निर् अग्निं वैश्वानरः अग्नितः ।

अनयोर्जातवेदास्तु तथैते जातवेदसी ॥ १७ ॥

अग्नि वैश्वानर में निहित है, वैश्वानर अग्नि में निहित है, तथा जातवेदस् इन दोनों में, अतः यह दोनों जातवेदस् के ही दो रूप हैं ।^१

^१ तु० की० ऊपर १ १०, और 'एते उत्तरे ज्योतिषी जातवेदसी उच्यते', निरुक्त ७ २० ।

सालोक्याद्यैकजातत्वाद् व्याप्तिमन्वास्तु तेजसः ।

तस्य तस्येह देवत्वं दृश्यन्ते च पृथक् स्तुताः ॥ १८ ॥

यहाँ प्रत्येक देवता की दिव्य प्रकृति, उनके एक ही लोक के और समाज कर्म के होने से, तथा सभी में तेज के विहित होने से ही, निष्कृष्ट है; फिर भी इसकी पृथक्-पृथक् स्तुति की गई प्रतीत हो सकती है।^१

^१ जैसा कि नीचे के श्लोक में कहा गया है, आकाश, उत्पत्ति, और प्रकृति का इष्टि से समान होते हुये भी सूक्तों में इनकी अलग-अलग देवों के रूप में स्तुति की गई हो सकती है। तु० की० नीचे १ १०१ भी।

यत्स्वामेयमिति ब्रूमः सूक्तभाक् तत्र पार्थिवः ।

जातवेदस्यमित्युक्ते सूक्तेऽस्मिन्मध्यमः स्मृतः ॥ ९९ ॥

जब हम किसी सूक्त द्वारा अग्नि को सम्बोधित करते हैं तो उस दशा में उस सूक्त का देवता पार्थिव अग्नि होता है, किन्तु जब कोई सूक्त जातवेदस् को सम्बोधित किया जाता है तो मध्यम स्थित अग्नि को उसका देवता मानना चाहिये।

वैश्वानरीयमिति तु यत्र ब्रूमोऽथ वा क्वचित् ।

सूर्यः सूक्तस्य भाक् तत्र ज्ञेयो वैश्वानरस्तुतौ ॥ १०० ॥

अथवा, पुनः, जब हम कहीं कहीं किसी सूक्त को वैश्वानर को सम्बोधित करते हैं तो उस दशा में वैश्वानर की स्तुति में सूर्य को ही उस सूक्त का देवता मानना चाहिये।

१९-अवरोहक क्रम से तीनों लोकों के देवता

सूर्यप्रसूतावग्नी तु हष्टौ पार्थिवमध्यमौ ।

एतेषामेव लोकानां त्रयाणामध्वरेऽध्वरे ॥ १०१ ॥

रोहात्प्रत्यवरोहेण चिकीर्षन्नाग्निमारुतम् ।

शस्त्रं वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते ॥ १०२ ॥

अब, पार्थिव और मध्यम (अग्नि) सूर्य से उत्पन्न हुए दृष्ट होते हैं प्रत्येक यज्ञ के समय अवरोहक क्रम से, जो इन तीन लोकों के आरोहक क्रम का उल्टा है,^१ अग्नि तथा मरुतों की प्रार्थना करने की इच्छा रखनेवाला (पुरोहित) वैश्वानर^२ को सम्बोधित सूक्त से प्रतिपादन करता है।

^१ अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश।

^२ अर्थात् आकाश के सूर्य। यहाँ शब्द विन्यास बहुत कुछ निष्क ७ २३ (एषां लोकानाम् रोहेण रोहान् प्रत्यवरोह-चिकीर्षित। ताम अनुकृति होता अग्निमारुते शस्त्रे, वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते) के ही समान है।

ततस्तु मध्यमस्थाना देवतास्त्यनुशांसति ।

इदं च महत्तमैव स्तोत्रियेऽग्निमिर्म पुनः ॥ १०३ ॥

इसके उपरान्त वह, मध्यम स्थान के देवता इद और महत्तों की प्रशंसा, तथा पुनः, 'इस (पार्थिव) अग्नि का स्तोत्रिय' में स्तव्य करता है ।

^१ अर्थात् पृथ्वी को तृतीय स्थान देता है ।

^२ जो विशेषतः अग्नि के लिये प्रयुक्त होता है देखिये निरुक्त प. २३, जहाँ वास्तव वह मत व्यक्त करते हैं 'तत आगच्छति मध्यस्थाना देवता इदं च महत्तमं, ततः अग्निम् इदं स्थानम् अत्रैव स्तोत्रिय शसति ।'

यथैतदुक्तमेतेषां विमूर्तिस्थानसंभवम् ।

तथा च देवदेवस्य तत्र तत्रेह हृदयते ॥ १०४ ॥

जिस प्रकार इन तीन को, अपने अपने विमूर्ति तथा स्थान से उत्पन्न कहा गया है, ठीक उसी प्रकार यहाँ वह अपने अपने स्थानों पर देवों के देव (प्रजापति)^१ के लिये भी व्यवहृत हो सकता है ।

^१ जिसके ही यह सब रूप हैं, देखिये ऊपर १ ६२, ६३ ।

यद्यत्र पृथिवीस्थानं पार्थिवं चाग्निमाश्रितम् ।

तत्सर्वमानुषूर्ध्वेण कथ्यमानं निबोधत ॥ १०५ ॥

जो कुछ और कहीं भी पृथ्वी-स्थान से सम्बद्ध और पार्थिव अग्नि में निहित प्रतीत हो, वह उससे सम्बद्ध होता है जिसका अब बचावक वर्णन किया जायगा ।

२०-पार्थिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करनेवाले देवता

जातवेदाः अतो अग्निम् अग्निं वैश्वानरः अितः ।

द्रविणोदास्त्येधमश्च अितश्चाग्निं तनूनपात् ॥ १०६ ॥

जातवेदस् अग्नि में निहित है, और वैश्वानर भी अग्नि में निहित है, इसी प्रकार द्रविणोदस्, ईधम और तनू नपात् भी अग्नि में ही निहित हैं ।^१

^१ प्रस्तुत तथा अगले वर्ग (१०६-११४) में उल्लिखित देवों की तालिका नैषण्डुक ७ १-३ के पार्थिव देवों की तालिका के ही समान है । दोनों तालिकाओं में केवल यही अन्तर है कि ११२ में लोक में 'इळा' (नैषण्डुक ५ ५ में मध्य स्थान की एक देवी) को सम्मिलित कर लिया गया है । नैषण्डुक ५. १-२ में वसित स्रेण्ड नामों के क्रम का भी बचावत अनुसरण किया गया है (१०६-१०९ में) । फिर भी नैषण्डुक ५ ३ में वसित नामों के क्रम तथा रूप की दृष्टि से यहाँ कुछ विवेक भिन्नता है (१०९-११४ में) । बारह आग्नी देवों (इधम-स्वाहाकृतयः, नैषण्डुक

५. २) का ऋग्वेद १. १३ (नीचे २. १४७-५५) के सम्बन्ध में पुनः गणना कराई गई है, और इनके नामों की व्युत्पत्ति का नीचे २. १५८, ३. १-३० में विवेचन किया गया है ।

नराशंसः अतिश्वैनम् एनमेवाश्रितस्त्विषः ।

बर्हिर्द्वारश्च देव्योऽग्निम् एनमेव तु संश्रिताः ॥ १०७ ॥

नराक्षस इसी में निहित है, इक्ष भी इसी में निहित है; बर्हिस् और विष्णु द्वार भी इसी अग्नि में निहित हैं ।

नक्षोषासा' च दैव्यौ च होतारावेतदाश्रयौ ।

देव्यस्तिष्ठः श्रिताश्वैनं त्वष्टा चैवैतदाश्रयः ॥ १०८ ॥

रात्रि और उषस्, तथा दो दिव्य होता इसी में निहित हैं; तीन देवियों इसी में निहित हैं, और त्वष्टा भी इसी में निहित हैं ।

^१ 'नक्षोषासा', २. १४८ में भी (३. ८ में 'नक्षोषासौ' है); जब कि नैषण्डुक ५. २ में 'उषासानक्ता' है ।

श्रितो वनस्पतिश्वैनं स्वाहाकृतय एव च ।

अश्वश्च शकुनिश्वैव मण्डूकाश्वैतदाश्रयाः ॥ १०९ ॥

वनस्पति और स्वाहाकृतिर्वा भी इसी में निहित हैं; और^१ अश्व, पक्षी, मण्डूक्य भी इसी में निहित हैं ।

^१ १०९-११४ में मिलनेवाले यह सैंतीस नाम नैषण्डुक ५. ३ के छत्तीस नामों के समान हैं । अन्तर इतना है कि यहाँ ११२ में इक्षा को भी सम्मिलित कर लिया गया है जो नैषण्डुक ५. ३ में नहीं बरन् ५. ५ में मिलता है ।

प्रावाणश्वैनमक्षाश्च नराशंसस्तथा रथः ।

कुन्नुभिश्चेषुचिश्चैनं हस्तग्नोऽभीशवो धनुः ॥ ११० ॥

और दक्षिण के चक्रर इसी में निहित हैं, अश्व,^१ नराक्षस,^२ रथ और कुन्नुभि, तथा तरकस, हस्तग्न, चक्रगावें और धनुष भी इसी में निहित हैं,

^१ नैषण्डुक ५. ३ में नामों का क्रम 'अक्षा प्रावाण' है ।

^२ 'नराक्षस' की (ऊपर १. १०७), एक पार्थिव देवता (= नैषण्डुक ५. २) के रूप में उद्धरण देते हुये, निरुक्त ९. ९ (येन नरा प्रशस्यन्ते स नाराशसो मन्त्र) में व्याख्या की गई है (तु० की० नीचे ३. १५४) ।

क्या चतदाश्रितेषुश्च श्रिता अश्वजनी च या ।

वृषभो वृषणश्वैनम् एनं पितुरुत्सलम् ॥ १११ ॥

और वसुध की प्रत्यक्षा और वाय इत्सी में निहित हैं; तथा इत्सी में प्रसिष्कल, वृषभ, हवीषा, पेथ और उल्लसल^१ भी निहित हैं;

^१ नैषण्डक ५ ३ में 'उल्लसलम्', 'वृषभ' के पहले आता है।

नयश्चैवैनमापञ्च सर्वा ओषधयश्च ह।

रात्र्यप्याग्नाद्व्यरण्यानी अद्वेळा पृथिवी तथा ॥ ११२ ॥

और नदियाँ और जल, तथा ओषधियाँ इत्सी में निहित हैं; रात्री, अग्ना, अग्नाची, अरण्यानी, अद्वा, इळा,^१ और पृथिवी^२ भी इत्सी में निहित हैं।

^१ 'इळा' शब्द नैषण्डक ५ ३ में ही नहीं आता बरन् इसे ५ ५ से लिया गया है।

^२ यह देवियों नैषण्डक ५ ३ (इळा को ५ ५ से लिया गया है) की तालिका की नौ देवियों के समान हैं तथा इनमें से प्रथम चार का क्रम भी वही है। यह देवियाँ नीचे (२ ७३-७५) में भी आती हैं जहाँ 'इळा' के स्थान पर 'उषस्' और 'सरस्वती' को सम्मिलित किया गया है।

भजेते चैनमेवार्ली द्वन्द्वभूते च रोदसी।

मुसलोल्लखले चैनं हविर्धाने च यं स्मृते ॥ ११३ ॥

और वसुध के दोनों किनारे इत्सी के हैं, युग्म के रूप में दोनों लोक^१ और मूसल तथा उल्लखल^२ इत्सी के हैं, और जिन्हें दो हविर्धान कहते हैं वह भी इत्सी के हैं।

^१ नैषण्डक ५ ३ के 'भावापृथिवी' के स्थान पर यहाँ 'रोदसी' है।

^२ नैषण्डक ५ ३ के 'उल्लखलमुसले' के स्थान पर यहाँ 'मुसलोल्लखले है।'।

जोष्ट्री चोर्जाहुती चैनं शुतुद्रया च विपाट् सह।

यौ च देवी शुनासीरौ तौ चाग्नी चैतदाश्रयौ ॥ ११४ ॥

दो चाग्नी देवियाँ और दो ऊर्जाहुतियों^१ द्वारा पूज्य इत्सी में निहित हैं; विपाट् तथा साथ ही साथ शुतुद्री, दो अग्निर्षी, तथा शुव और सीर^२ भी इत्सी में निहित हैं।

^१ तु० की० निरुक्त ९ ४१-४२।

^२ जिनकी भाष्यकारों ने 'इन्द्र' और 'आदित्य' के रूप में व्याख्या की है (तु० की० नीचे ५. ८)।

लोकोऽयं यश्च वै प्रातः सवर्नं क्रियते मखे।

वसन्तशरदौ चतुर् स्तोमोऽनुष्टुभयो त्रिष्टुत् ॥ ११५ ॥

यह लोक, प्रातःकालीन यज्ञ के समय का सोम-सवन, वसन्त तथा शरद्^१ ऋतुओं, अनुष्टुप्^२ छन्द, और त्रिवृत् स्तोम,

^१ यह तथा नाचे के साधे चार श्लोक प्रमुखतः निरुक्त ७ ८ पर आधारित हैं। अग्नि के क्षेत्र वाले (अग्निभक्तीनि) पदार्थों की निरुक्त के उक्त स्थल पर इस प्रकार गणना कराई गई है 'अयं लोक प्रातःसवन वसन्तो गायत्री त्रिवृत्स्तोमो रथंतरं साम ये च देवगणा ममास्त्राता प्रथमे स्थाने।' 'शरद्' और 'अनुष्टुप्' को निरुक्त ७ ११ से लिया गया है जहाँ इन दोनों तथा 'एकविंशस्तोम' तथा 'वैराज साम' को पृथ्वी-स्थानीय (पृथिव्यायतनानि) बताया गया है।

^२ 'अनुष्टुप्' को, 'स्तोम' तथा 'त्रिवृत्' के बीच, कुछ कौतूहलवर्धक उद्गार से निश्चित रूप से छन्द को दृष्टि में रखकर ही रखा गया है। स्वाभाविक क्रम का एक अन्य इसी प्रकार का व्यतिक्रम २ ११ (असी, तृतीय सवन, लोक) में मिलता है।

२१-अग्नि के साथ सम्बद्ध अन्य देव

गायत्री चैकविंशश्च यज्ञं सामं रथंतरम्।

साध्याः सामं च वैराजम् आप्त्याश्च वसुभिः सह ॥ ११६ ॥

गायत्री, एकविंश (स्तोम),^१ रथंतरं साम, और वैराज साम,^२ साध्यागण और आप्त्यागण, तथा वसुगण^३ (अग्नि स्थान में ही स्थित हैं)।

^१ देखिये ऊपर श्लोक ११५ पर टिप्पणी १।

^२ किन्तु नैषण्डुक ५ ५-६ के अनुसार इन तीन वर्गों में से कोई भी पार्थिव स्थान से सम्बद्ध नहीं है।

इन्द्रेण च मरुद्भिश्च सोमेन बरुणेन च।

पर्जन्येनर्तुमिध्रौ च विष्णुना चास्य संस्तवः ॥ ११७ ॥

यह इन्द्र और मरुतों के साथ, सोम और वरुण के साथ, पर्जन्य और ऋतुओं, तथा विष्णु^२ के साथ, स्तुतिओं को ग्रहण करता है।

^१ निरुक्त ७ ८ में मरुतों का उल्लेख नहीं है, वरन् अग्नि के साथ स्तुतियों को ग्रहण करनेवाले देवों के अतर्गत केवल इन्द्र, सोम वरुण, पर्जन्य, ऋतु (अस्य मत्स्रविका देवा) को ही रखा गया है।

^२ निरुक्त ७ ८ के अनुसार ऋग्वेद में विष्णु के साथ अग्नि केवल यज्ञ भाग ग्रहण करते हैं, स्तुतियाँ नहीं (अग्नावैष्णव हविर, न त्वं ऋक् मत्स्रविको दशतयीषु विभते)।

अस्यैवाग्नेस्तु पूज्या च साम्राज्यं बरुणेन च।

देवतामर्थतत्त्वज्ञो मन्त्रैः संयोजयेद्धविः ॥ ११८ ॥

यही अग्नि, पूज्य^१ और वरुण के साथ साम्राज्य के भागी हैं। ओ (मंत्रों के) अधिपति^२ तत्त्व को जानता है उसे मंत्रों के माध्यम से देवता और हवि को सम्बद्ध करना चाहिये।

^१ यहाँ सम्भवत निरुक्त ७ ८ का बड़ा आशय उद्दिष्ट है कि युगल रूप में अग्नि-पूषन् केवल हवि को ही ग्रहण करते हैं किसी स्तुति को नहीं (अघ्रापौष्ण हविर, न तु संस्तव)। फिर भी यास्क अग्नि और पूषन् का पूषक-पूषक स्तवन (विभक्ति स्तुति) करनेवाले के रूप में (युगल रूप में नहीं) ऋग्वेद १० १७, ३ का उद्धरण देते हैं।

असंस्तुतस्यापि सतो हविरेकं निरुप्यते ।

देवतावाहनं चैव वहनं हविषां तथा ॥ ११९ ॥

अहाँ एक देवता की किसी अन्य के साथ (युगल रूप से) स्तुति नहीं की जाती, वहाँ भी एक ही और समान हवि कभी कभी दोनों को समर्पित की जाती है। देशों को छाना और उनके पास हवि को ले जाना,

^१ इससे नि स देह निरुक्त ७ ८ का यास्क का यह आशय ही उद्दिष्ट है कि अग्नि विष्णु और अग्नि पूषन् को साथ-साथ हवि तो समर्पित हो सकती है, किन्तु स्तुति नहीं। अर्थात् जिन युगल देवों की सम्मिलित स्तुति होती है उन्हें सम्मिलित हवि तो समर्पित की जा सकती है, किन्तु जब उनकी सम्मिलित स्तुति नहीं मिलती तो भा उन्हें सम्मिलित हवि तो समर्पित हो ही सकती है। 'अग्नि पूषन्' के सम्बन्ध में दुर्ग यह टिप्पणी करते हैं 'मृग्यम् उद्राहरण येन संस्तव'।

कर्म दृष्टे च यत्किञ्चिद् विषये परिवर्तते ।

इत्युक्तोऽयं गणः सर्वः पृथिव्यग्न्याश्रयो महान् ॥ १२० ॥

उसका ही कार्य है; दृष्टि-क्षेत्र में जो कुछ भी गतिशील होता है, वह भी उसी के कार्य से सम्बद्ध है।^१ इस प्रकार पार्थिव अग्नि में निहित इस महान देव-समूह का वर्णन किया गया।

^१ अर्थात् पदार्थों को दृश्य बनाना भी अग्नि के कार्यों में से एक है।

२२-इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान का देव-समूह

यश्चैन्द्रो मध्यमस्थानो गणः सोऽयमतः परः ।

विमानानि च दिव्यानि गणाप्सरसां तथा ॥ १२१ ॥

अब इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान के गणों का वर्णन किया जायगा, जिनके अन्तर्गत दिव्य रथ और अप्सरसायें भी सम्मिलित हैं।

इन्द्राश्रयस्तु पर्जन्यो रुद्रो वायुर्बृहस्पतिः ।

वरुणः कश्च मृत्युश्च देवश्च ब्रह्मणस्पतिः ॥ १२२ ॥

इन्द्र' में ही पर्जन्य, रुद्र, वायु, बृहस्पति, वरुण, 'क', सूर्य और
ब्रह्मणस्पति नामक देवता निहित हैं ।

^१ प्रस्तुत तथा निम्न सात श्लोकों में मध्य-स्थान के जिन देवताओं की गणना कराई
गई है, वह नैवण्डुक ५ ४-५ की तालिका के ही समान हैं । फिर भी यहाँ इन
देवों के क्रम में पर्याप्त अन्तर, तथा दो अन्य ('सीता' और 'लाक्षा') को सम्मिलित
कर लिया गया है ।

मन्युश्च विश्वकर्मा च मित्रः क्षेत्रपतिर्यमः ।

ताक्ष्यो वास्तोष्पतिश्चैव सरस्वाञ्चैवमत्र ह ॥ १२३ ॥

मन्यु, विश्वकर्मान्, मित्र, क्षेत्रपति,^१ यम, ताक्ष्य, तथा साथ ही साथ
वास्तोष्पति और सरस्वत् भी यहीं हैं,

^१ नैवण्डुक ५ ४, में 'क्षेत्रस्य पनि' है ।

अपांनपादधिकाश्च सुपर्णोऽथ पुरुरवाः ।

ऋतोऽसुनीतिर्वेनश्च तस्यैतस्याश्रयेऽदितिः ॥ १२४ ॥

अपां नपात् और दधिका, और फिर सुपर्ण, पुरुरवस्, ऋत, असुनीति,
वेन भी इसी में स्थित हैं, और इसी के क्षेत्र में अदिति भी है;

त्वष्टा च सविता चैव वातो वाचस्पतिस्तथा ।

धाता प्रजापतिश्चैव अथर्वाणश्च ये स्मृताः ॥ १२५ ॥

और त्वष्टा तथा सविन्, वात तथा वाचस्पति, धातु और प्रजापति, तथा
वह सब जिन्हें अथर्वन् कहते हैं;

इयेनश्चैवैवमग्निश्च तथेळा चैव या स्मृता ।

विधातेन्दुरहिर्बुध्न्यः सोमोऽहिरथ चन्द्रमाः ॥ १२६ ॥

और इसी प्रकार इयेन, अग्नि, तथा साथ ही साथ वह जिसे इळा कहते
हैं इसी में स्थित हैं, विधातु, इन्दु, अहिर्बुध्न्य, सोम, अहिरथ, और चन्द्रमा

२३-इन्द्र के क्षेत्र से सम्बद्ध देवता तथा वैवीकृत पदार्थ

विश्वानरश्च वै देवो रुद्राणां संस्तुतो गणः ।

मरुतोऽङ्गिरसश्चैव पितरश्चर्षुभिः सह ॥ १२७ ॥

और दिव्य विश्वानर, और रुद्रगण तथा मरुगण, साथ ही साथ, अङ्गिरसों,
पितरों, ऋषियों की भी इसी के साथ स्तुति की जाती है ।

राका वाक् सरमाप्त्याश्च भृगवोऽध्वन्या सरस्वती ।

यम्युर्वशी सिनीवाली पथ्या स्वस्तिरुषाः कुहूः ॥१२८॥

राका, वाक्, सरमा, आपबभ्रव, भृगुवाक्, अध्वना, सरस्वती, यमी, उर्वशी, सिनीवाली, पथ्या, स्वस्ति, उषस्, कुहू,

पृथिव्यनुमतिर्धेनुः सीता लाक्षा तथैव गौः ।

गौरो च रोदसी चैव इन्द्राण्याश्चैव चै पतिः ॥ १२९ ॥

पृथिवी, अनुमती, धेनु, सीता,^१ लाक्षा,^२ गो और गौरी, और साव ही साथ रोदसी भी इसी प्रकार (इन्द्र के क्षेत्र में) विहित हैं; और वह (इन्द्र) इन्द्राणी का पति है ।

^१ उक्त श्लोकों (१२२-१२९) में केवल 'सीता' और 'लाक्षा' ही ऐसे नाम हैं जो नेघण्डुक ५ ४-५ में नहीं मिलते ।

^२ देखिये नीचे, २ ८४ (आर्षानुक्रमणी १० १०२ भी) और ८ २१ ।

छन्दस्त्रिष्टुप् च पङ्क्तिश्च लोकानां मध्यमश्च यः ।

एतेष्वेवाश्रयो विद्यात् सवनं मध्यमं च यत् ॥१३०॥

त्रिष्टुप्^१ और पङ्क्ति छन्द, और लोकों के केन्द्र, तथा मध्याह्न के सोम-सवन को भी, इन्हीं देवों की अति इन्द्र के क्षेत्र में ही स्थित जानना चाहिये ।

^१ प्रस्तुत तथा नीचे के श्लोक की उक्ति निरुक्त ७ १० (अथेतानान्द्रमस्तीनि अन्तरिक्षलोको माध्यदिन सवन ग्रीष्मस् त्रिष्टुप् बृहत् साम), तथा ७ ११ (हेमन्त पक्ति शाकर सामेत्य अन्तरिक्षायतनानि) पर आधारित हैं ।

ऋतू च ग्रीष्महेमन्तौ यश्च सामोच्यते बृहत् ।

शकरीषु च यद्गीतं नाज्ञा तत्साम शाकरम् ॥१३१॥

दो ऋतुयें ग्रीष्म तथा हेमन्त, और बृहत् नामक साम, और शकरी श्लोकों^१ में गाया जानेवाला शकर नामक साम भी, इसी के क्षेत्र से सम्बद्ध हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त ७ १०-११ पर दुर्ग ।

॥ इति बृहदेवतायां प्रथमोऽध्यायः ॥



१-इन्द्र-स्थान के देवता

आह चैवास्य द्वौ स्तोमाब् आश्रयौ शाकटायनः ।

यश्च पञ्चदशो नाज्ञा संख्यया त्रिणवश्च यः ॥ १ ॥

इसके अतिरिक्त शाकटायन का कथन है कि उनके (इन्द्र) लिये दो स्तोमों का विधान है, यथा एक तो वह जिसे 'पञ्चदश' कहते हैं, और दूसरा वह जो संख्या में नौ का त्रिगुणित (अर्थात्, सत्ताहस) होता है ।^१

^१ निरुक्त ७ १०-११ में भी कमश यह कहा गया है कि 'पञ्चदश स्तोम' तथा 'त्रिणव स्तोम' इन्द्र से सम्बद्ध हैं ।

सस्तुतश्चैव पूरुणा च विष्णुना वरुणेन च ।

सोमवाय्वग्निर्कुत्सैश्च ब्रह्मणस्पतिनैव च ॥ २ ॥

पूषन् के साथ, विष्णु और वरुण के साथ, और सोम, वायु, अग्नि, कुत्स, तथा ब्रह्मणस्पति के साथ, और^१

^१ प्रस्तुत तथा बाद के श्लोक में जिन दस देवताओं को इन्द्र के साथ स्तुत्य बताया गया है, उनका निरुक्त ७ १० (अथ अस्य सस्तविका देवा अग्नि, मोमो वरुण पूषा बृहस्पतिर् ब्रह्मणस्पति पर्वत कुत्सो विष्णुर् वायु) में भी इमा आशय में उल्लेख है ।

बृहतस्पतिना चैव नाज्ञा यश्चापि पर्वतः ।

कासुचित्केचिदित्याहुर् निपाता स्तुतिषु स्तुताः ॥ ३ ॥

बृहतस्पति,^१ तथा उसके साथ भी जिसका नाम पर्वत^२ है, इनकी (इन्द्र की) स्तुति की जाती है । लोगों का कथन है कि कुछ स्तुतिचों में कुछ देवों की केवल नैपातिक^३ स्तुति होती है ।

^१ इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ 'बृहतस्पति' व्युत्पत्ति की दृष्टि से (तु० की० 'बृहत पाता', निरुक्त १० ११) 'बृहस्पति' के ही समान है ।

^२ तु० की० नीचे ४ ५ जहाँ 'पर्वत' की, इन्द्र के वज्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले के रूप में व्याख्या की गई है ।

^३ यहाँ 'निपाता' का 'नपातिन' के रूप में ही प्रयोग किया गया है तु० की० निरुक्त १० १३ (काश चिद्—देवता—निपातभाज) ।

मित्रश्च श्रूयते देवो वरुणेन सहासकृत् ।

रुद्रेण मोमः पूरुणा च पुनः पूषा च वायुना ॥ ४ ॥

वातेनैव च पर्जन्यो लक्ष्यतेऽन्यत्र नै कश्चित् ।

सहस्रवर्षेषु पादेषु सृष्टोष्णेषु तु कृत्स्नशः ॥ ५ ॥

और मित्र देव की अक्सर कृतियों में कवच के साथ, सोम की वज्र और पूषण के साथ, तथा पुनः, इन्द्र की बाहु के साथ और पर्जन्य की बात के साथ स्तुति^१ की गई है; फिर भी, अन्वय यह (इन्द्र) पञ्च-यज्ञ ऋषियों, ऋषि ऋषियों, मन्त्रों (अथवा), सम्पूर्ण सृष्टों (अथवा के) में एक देव के रूप में आता है ।

^१ अर्थात् इन्द्र (अथ) के क्षेत्र में । देवताओं के इन पाँच गुणों की स्तुति सम्बन्धी इस उक्ति का आधार निरुक्त ७ १० है (अथापि मित्रो वरुणेन सत्सृजते पूष्णा न्द्रेण च सोमोऽग्निना च पूषा वातेन च पर्जन्यः) ।

रसादानं तु कर्मस्य वृत्रस्य च निवर्हणम् ।

स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य बलस्य निबिला कृतिः ॥ ६ ॥

आर्द्रता को ग्रहण करना और वृत्र का विनाश करना—जो कि उसकी स्तुतियों की एक प्रमुख विशेषता है—तथा हर प्रकार के शक्तिपूर्ण कार्यों को पूर्णतया सम्पन्न करना उसका कार्य है ।^२

^१ यहाँ प्रथम दृष्टि में 'रसादानम्' पाठ को ग्रहण करने की प्रवृत्ति हो सकती है तु० की० निरुक्त ७ १० में 'रसानुप्रदानम्', जब कि यहाँ 'रसादानम्' को सूर्य का काय बताया गया है (देखिये नाचे १९ वें श्लोक) । किन्तु यहाँ 'रसादानम्' पाठ ऊपर १ ६८ द्वारा पुष्ट होता है जहाँ इसे मध्यम (जातवेदस्) अग्नि का कार्य बताया गया है (रसान् आदाय वर्षति), नाचे ४ ३८ में (मध्यम) अग्नि के कार्य का 'हरणम्' बारो विसर्ग पुनर एव च' के रूप में वर्णन किया गया है ।

^२ यह श्लोक निरुक्त ७ १० पर आधारित है, जहाँ इन्द्र के तीन कार्यों के अन्तर्गत रसादान, वृत्त के वध, तथा बल के कार्यों की गणना कराई गई है, (अथास्य कर्म रसानुप्रदान वृत्रवधो वा च का च बलकृतिर इन्द्रकर्मैव तत्) ।

२-सूर्य-क्षेत्र के देवता • सूर्य की तीन पत्नियाँ

इत्यैन्द्रो मध्यमस्थानो गणः सम्यगुदाहृतः ।

यः परस्तु गणः सौर्यो युस्थानस्तं निबोधत ॥ ७ ॥

इस प्रकार मध्यम-स्थान में स्थित इन्द्र-वर्ग के देवों का वसोचित उल्लेख किया गया । अब सूर्य के सम्बद्ध द्विज-स्थानीय देवों का ज्ञान प्राप्त करें ।

तस्य मुकयतमौ देवाब् अभिनौ सूर्यमाभितौ ।

वृषाकपायी सूर्योषाः सूर्यस्यैव तु पत्नयः ॥ ८ ॥

सूर्य से सम्बन्ध इस वर्ग के दो प्रमुख देवता^१ 'अभिनवृष' हैं, जबकि वृषाकपायी, सूर्या और उषस्^२, सूर्य^३ की पत्नियाँ हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त १२ १ 'तासाम् (चुस्थानानां देवतानाम्) अभिनौ प्रथमागामिनौ भवत' ।

^२ प्रस्तुत तथा इसके बाद के चार श्लोकों (८-१२) में उन्हीं सब देवताओं का वर्णन है जिनका नैषण्डक ५ ६ में उल्लेख है, फिर भी यहाँ इनके क्रम में अन्तर है और 'त्वष्टा' को छोड़ दिया गया है (यम्भवत इसलिये कि यह ऊपर दो बार १ १०८ और १ १२५ में आ चुका है) ।

^३ तु० की० नीचे ३ १० ।

^४ तु० की० निरुक्त १० ७ 'सूर्या सूर्यस्य पत्नी ।'

अमुतोऽर्वाङ् निवर्तन्ते प्रतिलोमास्तदाश्रयाः ।

पुरोदयात्तामुषसं सूर्या मध्यंदिने स्थिते ॥ ९ ॥

उसके (सूर्य के) आश्रय में वह सब उस दिव्य लोक से ऊपर आते हैं, और फिर लौट जाते हैं । उसे सूर्योदय^१ के पूर्व उषस्, मध्याह्न के समय^२ सूर्या,

^१ अमुतोऽर्वाङ् शब्द नि सन्देह सूर्य की रहिमियों के मन्दम में निरुक्त ७ २४ (अमुतोऽर्वाङ् पर्यावर्तन्ते) से गृहीत है ।

^२ तु० की० 'प्राग् उदयात्', नीचे ३ १० और देखिये ७ १२१ आ ।

^३ 'मध्यदिने स्थिते' व्याहृति ऋग्विधान १ ९, २ में भी आती है ।

वृषाकपायी सूर्यस्य तामेवाहुस्तु निब्रुषि ।

तस्याश्रये सरण्यृश्च भगः पूषा वृषाकपिः ॥ १० ॥

यमो वैश्वानरो विष्णुर् वरुणश्चैकपादजः ।

पृथिवी च समुद्रश्च देवाः सप्तर्षयश्च ये ॥ ११ ॥

आदित्याः केशिसाध्याश्च सविता वसुभिर्मनुः ।

दध्यङ्ङथर्वा विश्वे च वाजिनो देवपत्नयः ॥ १२ ॥

किन्तु सूर्यास्त के समय वृषाकपायी कहते हैं । उसी के आश्रय में सरण्यृ, भग, पूष, वृषाकपि, यम, वैश्वानर, विष्णु, वरुण, अज एकपाद, और पृथिवी और समुद्र, देवगण तथा सप्तर्षिगण, अदिष्यगण, केसिनगण और

साध्वयज, सविद, वसुगम, मनु, वृषभ, अश्वर्ष, विन्देव, अश्व, तथा देवों की प्रसिद्धी भी स्थित है ।

^१ नैषण्डक ५ ६ में 'केही' और 'केहिनि' दोनों आते हैं ।

^२ प्रस्तुत ग्रन्थ में विन्देवों के छिन्ने अक्सर 'विन्ने' का ही प्रयोग किया गया है ।

असौ तृतीयं सवनं लोकः साम च रैवतम् ।

वैरूपं चैव वर्षाश्च शिशिरोऽथ ऋतुस्तथा ॥ १३ ॥

अयस्त्रिंशश्च य स्तोमः कलृप्स्या सप्तदशश्च यः ।

छन्दश्च जगती नाम्ना तथातिछन्दसश्च याः ॥ १४ ॥

उसी दिव्य लोक में तृतीय सोम-सवन, रैवत और वैरूप साम, और वर्षा तथा शिशिर ऋतु, और तैत्तिरीय स्तोम, तथा वह जो व्यवस्था में सप्तदश है, और जगती तथा अतिछन्दस् छन्द भी स्थित हैं ।^१

^१ उक्त दोनों श्लोक निरुक्त ७ ११ की इस उक्ति पर आधारित हैं 'अथेतान्य् आदित्यभक्तीनि असौ लोकस् तृतीयसवन वर्षा जगती सप्तदशस्तोमो वैरूप साम' और 'शिशिरोऽतिछन्दास् अयस्त्रिंशस्तोमो रैवत सामेति बुभक्षीनि ।'^२

पौरुषं चाहुरस्यैतत् सर्वमेव ते पौरुषम् ।

एतस्यैव तु विज्ञेया देवाः संस्तविकास्तथा ॥ १५ ॥

जो कुछ भी पुरुष से सम्बद्ध है वह उसका ही कहा गया है, और यह सब कुछ (विश्व) पुरुष^१ से ही सम्बद्ध है । (मिथ्याकल्पित) तीन देवताओं को स्तुति में उससे (सूर्य से) ही सम्बद्ध माना गया है :

^१ तु० की० ऊपर १ ७३ ।

चन्द्रमाश्चैव वायुश्च यं च संवत्सरं विदुः ।

केचित्तु निर्बपन्त्यस्य सौर्यवैश्वानरं हविः ॥ १६ ॥

चन्द्रमा, वायु, और वह जिसे सवत्सर कहते हैं ।^१ कुछ लोग उसको सूर्य और^२ वैश्वानर को समर्पित हवि भी समर्पित करते हैं ।

^१ यह पक्ति निरुक्त ७ ११ (चन्द्रमसा वायुना सवत्सरेणेति सत्तव) का अनुसरण करती है ।

^२ तु० की० १० ८८ पर षडगुरुशिष्य 'सौर्यवैश्वानरीयम् सूर्यदेवस्य वैश्वानरगुणाग्नि-देवस्य च ।'

३-सूर्य और वैश्वानर अग्नि के ही रूप हैं

सौर्यवैश्वानरीयं हि तत्सूक्तमिष हृद्यते ।

ऋगर्चर्षोऽथवा पादो दृष्टो वा यदि वा तृचः ॥ १७ ॥

पाहे आका हो अथवा अर्ध-आका, पाहे मन्त्र हो अथवा हो या तीन
पक्षों का झोक, सूर्य और वैश्वानर' को सम्बोधित होने पर सूर्य का ही सूक्त
प्रतीत होता है ।

^१ ऋग्वेद १० ८८, देखिये इस सूक्त पर सायण तथा सर्वानुकमणी, तु० की० ऊपर
१ १०० और १०२, और निरुक्त ७ २६ और २४ ।

अनेन तु प्रधावेन दृष्टा सूर्यन्वता स्तुतिः ।

सूर्यवैश्वानराग्नीनाम् ऐकात्म्यमिह दृश्यते ॥ १८ ॥

किन्तु जिस व्याप्ति में 'सूर्यन्व' शब्द होता है उसकी स्तुति स्पष्ट है ।
जहाँ सूर्य, वैश्वानर और अग्नि की एकात्मकता दृष्टिगत होती है ।

^१ ऋग्वेद १० ८८, ५ ६ (सूर्यन्वता) जहाँ अग्नि का, शीर्ष (सूर्या) अथवा विश्व
के शीर्ष पर (सूर्यन्) स्थित होने के रूप में वर्णन किया गया है, तु० की०
निरुक्त ७ २७ भी ।

हरणं तु त्वस्वैतत् कर्मागुत्र च रश्मिभिः ।

येन जातिविजानन्ति सर्वभूतानि चक्षुषा ॥ १९ ॥

अपनी रश्मियों द्वारा उस दिव्य लोक में आर्द्रता का हरण भी उसका
ही कार्य है, जिसे सभी प्राणी अपने चक्षु से स्पष्टतया जान नहीं पाते ।

^१ जहाँ इस शब्द का प्रयोग सम्भवतः निरुक्त, ७ ११ (अथास्य कर्म रसादान रश्मि-
भिश्च रसाधारणम्) के दोहरे आशय (रश्मियों से आर्द्रता को ग्रहण करना
तथा उसे अपने में धारण कर रखना) को व्यक्त करने के लिये किया गया है ।

विभागमिममेनेषां विभूतिस्थानसंभवम् ।

संयग्विजानन्मन्त्रेषु तं तु कर्मसु योजयेत् ॥ २० ॥

अध्यापयन्नीयानो मन्त्रं चैवानुकीर्तयन् ।

स्थानं सालोक्यं सायुज्यम् एतेषामेव गच्छति ॥ २१ ॥

मन्त्रों में, वेदों और स्थान की दृष्टि से उत्पन्न (इन तीन देवों की)
विक्रमताओं के वितरण को ठीक-ठीक समझते हुये, और अध्यापन, अध्ययन,
तथा मन्त्रों का उच्चारण करते हुये, अनुज्य इन्हीं देवों के स्थान और लोक को,
तथा उनके साथ अनिष्ट सायुज्य को, प्राप्त करता है ।

^१ जहाँ 'विभूति-स्थान-संभवम्', बहुव्रीहि है जैसा कि १ १०४ में भी है, किन्तु
२९६ में 'विभूति-स्थान-अन्व', इन्द्र है ।

४-अग्नि के पाँच नाम; अग्नि, द्रविणोदस्, तनूनपात् की उत्पत्ति
अग्नेस्तु यानि सूक्तानि पञ्च नामानि कारयः ।

षड्विंशतिस्तथेन्द्रस्य प्राहुः सूर्यस्य सप्त च ॥ २२ ॥

अब, सूक्तों में ऋषिगण अग्नि के पाँच, इन्द्र के षड्विंश, और सूर्य के सात
नामों की घोषणा करते हैं ।

तेषां पृथङ्निर्वचनम् एकैकस्येह कर्मजम् ।

उच्यमानं यथान्यार्यं ऋणुध्वमस्मिलं मया ॥ २३ ॥

यहाँ मैं इनमें से प्रत्येक (देवता) की कर्म' पर आधारित पृथक्-पृथक्
व्याख्या करूँगा, जिसे सुने :

^१ 'पृथक्-निर्वचन कर्मजम्' की ऊपर २० वें श्लोक के 'विभागं विभूति-स्थान-सम्पदम्'
के साथ तुलना करें ।

जातो यदग्रे भूतानाम् अग्रणीरध्वरे च यत् ।

नाम्ना संनयते षाङ्गं स्तुतोऽग्निरिति सूरिभिः ॥ २४ ॥

यत उसका जन्म सभी भूतों के पूर्व हुआ था, और यतः वह यज्ञ का
अग्रणी है, अथवा यत वह (अपने) शरीर को एकीभूत कर लेता है, अतः
ऋषिगण उसकी 'अग्नि' के नाम से स्तुति करते हैं ।

^१ यहाँ अग्नि का प्रकृति का वर्णन करनेवाले तीनों शब्द प्रत्यक्षत निष्कृत ७ ८४
(अग्रणीरभवति, अग्र यज्ञेषु प्रणीयते, अग्र नयति संनयमानः) के समान हैं;
तु० की० ऊपर १ ११ भी ।

द्रविणं धनं बलं वापि प्रायच्छयेन कर्मणा ।

तत्कर्म दृष्ट्वा कुत्सस्तु प्राहेनं द्रविणोदसम् ॥ २५ ॥

धन और बल प्रदान करनेवाले उसके कार्य को देख कर कुत्स' ने
उस द्रविणोदस्, ^१ (१) कहा है ।

^१ ऋग्वेद १ १६, ८ में ।

अयं तनूनपादग्निर् असी हि तननास्तनुः ।

ततस्तु मध्यमो जज्ञे स्थानेऽयं मध्यमास्ततः ॥ २६ ॥

वह पार्थिव अग्नि 'तनूनपात्' (१) है । क्योंकि वह (दिव्य) अग्नि
'मध्यम' (विस्तृत) से 'तनु' हुये : उसके ही मध्यम-स्थान के अग्नि क

अथ द्रुमा, और पुन, मन्वस-स्थान के अग्नि से अपने (उपकुक्ष) स्थान पर वह (पार्थिव) अग्नि उत्पन्न हुये ।^१

^१ तु० की० नीचे ३ ६४ ।

५-नराशंस, पवमान, जातवेदस्

अनन्तरा^१ प्रजामाहुर् नपादिति कृपण्यवः ।

नपादमुच्य चैवायम् अग्निस्तेन तनूनपात् ॥ २७ ॥

कविगण, प्रथम वंशज क अनन्तर वंशज को पौत्र कहते हैं—और यह (पार्थिव) अग्नि उस (विष्व) अग्नि के पौत्र^२ हैं; अत इन्हें 'तनूनपात्' कहते हैं ।

^१ यह व्याहृति निरुक्त ८ ५ (नपाद् इति अनन्तराया प्रजाया नामधेयम्) म गृहीत है ।

^२ यास्क ने भी 'तनूनपात्' की 'पौत्र' के रूप में ही व्याख्या की है, यद्यपि एक भिन्न आशय में, क्योंकि उनके अनुसार यह शब्द 'आज्य' का श्रोतक है ।

पृथक्त्वेन समासैस्तु यज्ञे यच्छस्यते नृभिः ।

स्तुवन्त्याग्नीषु तेनेमं नराशंसं तु कारवः ॥ २८ ॥

यत वज्र के समान मनुष्यगण (नृ)^१ एक साथ ही इनकी पृथक् पृथक् प्रशस्ति (संस्) करते हैं, अत आग्नी सूक्तों में कवियों ने इस अग्नि की 'नराशंस' (३) के रूप में स्तुति की है ।

^१ यह 'नराशंस' के रूप में अग्नि की शाकपूणि द्वारा प्रस्तुत व्याख्या (निरुक्त ८ ६) 'नरै प्रशस्यो भवति', पर आधारित है । काटुक्य द्वारा प्रस्तुत 'यज्ञ' के रूप में 'नराशंस' की व्याख्या के लिये देखिये नीचे ३ २ ।

पुनाति यदिदं विश्वम् एवाग्निः पार्थिवोऽथ च ।

वैश्वानसर्षिभिस्तेन पवमान इति स्तुतः ॥ २९ ॥

और यतः यह पार्थिव अग्नि विश्व को पवित्र करते हैं, अत ऋषि वैश्वानस उनकी 'पवमान' (४) के रूप में स्तुति करते हैं ।^१

^१ तु० की० ऊपर १ ६९ ।

भूतानि वेद यज्जातो जातवेदाथ कथ्यते ।

यद्येष जातवियोऽभूद् विसं जातोऽविधेति वा ॥ ३० ॥

विद्यते सर्वभूतैर्हि यद्वा जातः पुनः पुनः ।

तेनैव मध्यभागेन्द्रो जातवेदा इति स्तुतः ॥ ३१ ॥

यत जन्म लेने पर अग्नि प्राणियों को जानते हैं, यतः उन्हें जातवेदस् (५) कहते हैं । और यतः वह (अग्नि) वह बने जिसमें विद्या का जन्म हुआ, अथवा यत जन्म लेने पर वह अभिवेदि होते हैं, अथवा यतः बार-बार जन्म लेने पर सभी प्राणी उन्हें जान लेते हैं, अतः 'मध्यम-स्थान' के इन्द्र की ही भाँति इनकी भी 'जातवेदस्'^१ के रूप में स्तुति होती है ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९९, जहाँ 'जातवेदस्' को समर्पित सूक्त से मध्यम-स्थान के अग्नि के सम्बोधन का तात्पर्य है, तु० की० ऊपर १ ६७ भी ।

^२ 'जातो विद्यते' और 'जातेर विद्यते' के रूप में 'जातवेदस्' की दो व्युत्पत्तियाँ ऊपर १ ९२ में दी जा चुकी हैं, जिनमें से प्रथम उक्त ३०-३१ श्लोकों के चौथे के ही समान है । इस प्रकार जातवेदस् की पाँच व्युत्पत्तियाँ हुईं जो न्यूनाधिक मात्रा में निरुक्त ७ १९ (जातविद्या, जातानि वेद, जानानि वा एन विदु, जाते जाते विद्यते, जातवित्) के ही समान हैं ।

६-इन्द्र के छम्बीस नाम वायु, वरुण, रुद्र, इन्द्र
अणिष्ठ एष यस्तु त्रीन् व्याप्यैको व्योम्नि तिष्ठति ।

तेनैनमृषयोऽर्चन्तः कर्मणा वायुमब्रुवन् ॥३२॥

किन्तु यत वह अत्यन्त सूक्ष्म रूप से तीनों लोकों को व्याप्त करता हुआ वायुमण्डल में प्रतिष्ठित है, अतः कर्म की दृष्टि से उसकी भजना करते हुये उसे वायु (१) कहते हैं ।

^१ मध्य-स्थान के देवों की नैघण्टुक (५ ४) की तालिका में 'वायु' सर्वप्रथम आता है तु० की० निरुक्त १० १ । इन छम्बीस नामों में से तेजस (प्रथम आठ वसी क्रम से) तो नैघण्टुक (५ ४) के नत्सीस के अन्तर्गत आ जाते हैं और शेष तीन नैघण्टुक ५ ५ में आते हैं । तु० की० ऊपर १ १२२-१२९ ।

त्रीणीमान्यावृणोत्येको मूर्तेन तु रसेन यत् ।

तयैनं वरुणं शकत्या स्तुतिष्वाहुः कृपणयवः ॥ ३३ ॥

किन्तु यत स्थूल आर्द्रता से केवल वही इन लोकों को आवृण (वृणोति)^१ करते हैं अतः उनके इस कर्म के कारण ऋषिगण स्तुतिवियों में उन्हें वरुण (२) के नाम से पुकारते हैं ।

^१ यह निरुक्त १० ३ (वरुणो वृणोतीति सत) की व्युत्पत्ति का अनुसरण करता है ।

अरोदोदन्तरिक्षे यद् विद्युद्वृष्टिं पदसृणाम् ।

चतुर्भिर्हविभिस्तेन रुद्र इत्यमिसंस्तुतः ॥ ३४ ॥

यत उन्होंने अन्तरिक्ष में गर्जन करते हुये अजुप्तों के स्त्रिये विद्युत

अद्वित्य वर्णों की, अतः चार ऋषियों^१ ने उनकी रुद्र (३) के रूप में आत्यधिक स्तुति की।

^१ यह 'रुद्र' की व्युत्पत्तियों में से एक है जो निरुक्त १० ५ (यद् अरोदित् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् इति हारिद्रविकम्) में दी हुई है। यास्क के अनुसार यह नाम 'रु' धातु से भी व्युत्पन्न हुआ हो सकता है।

^२ अर्थात् कण्व (ऋग्वेद १ ४३), कुत्स (ऋग्वेद १ ११४), गृत्समद (ऋग्वेद २ ३३) और वसिष्ठ (ऋग्वेद ७ ४६)।

चतुर्विधानां सूतानां प्राणो भूत्वा व्यवस्थितः ।

ईष्टे चैवास्य सर्वस्य तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥ ३५ ॥

चार प्रकार के प्राणियों के जीवन का व्यवस्थित स्रोत बन कर वह इस विश्व पर शासन करते हैं; अतः उनको 'इन्द्र' (४) नाम दिया गया है।

इरां हणाति यत्काले मरुद्भिः सहितोऽम्बरे ।

रवेण महता युक्तस् तेनेन्द्रमृषयोऽब्रुवन् ॥ ३६ ॥

जब उन्होंने मरुतों के साथ सम्बद्ध होकर उपयुक्त समय पर भीषण गर्जन के साथ आकाश में ज्यों (इराम्)^१ को प्रकट किया, अतः ऋषिगण उन्हें इन्द्र नाम से पुकारते हैं।

^१ यह निरुक्त १० ८ में दी हुई अनेक व्युत्पत्तियों में से प्रथम के समान है।

७-पर्जन्य, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, क्षेत्रस्य-पति, ऋत

यदिमां प्रार्जयत्येको रसेनाम्बरजेन गाम् ।

कालेऽग्निरौर्वशाश्वर्षी तेन पर्जन्यमाहृतः ॥ ३७ ॥

जब केवल वही उपयुक्त समय पर आकाश में उपवृत्त भार्जता इस पृथिवी को प्रधान^१ करते हैं, अतः ऋषि अग्नि^२ तथा उर्वशी पुत्र^३ (वसिष्ठ) उन्हें पर्जन्य (५) के नाम से पुकारते हैं।

^१ प्रस्तुत तथा बाद के श्लोक में दी गई पर्जन्य की चार यु पत्तियों निरुक्त १० १० (पर्जन्यस् त्वेर् आधन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्य, परो जेता वा जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्) के ही समान हैं।

^२ पर्जन्य-सूक्त (ऋग्वेद ५ ८३) के प्रणेता के रूप में।

^३ वसिष्ठ, जिन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक बार इस मातृनामोद्धत नाम से व्यक्त किया गया है (यथा २ ४४, १५६, ३ ५६, तु० की० ५ १४९, १५०), अन्य दो पर्जन्य सूक्तों (ऋग्वेद-७ १०१ और १०२) के भी प्रणेता हैं।

तर्पयत्येष यल्लोकाब् अन्यो जनहितम् यत् ।

परो जेता जनयिता यद्वाग्नेयस्ततो जगौ ॥ ३८ ॥

यतः वह कोकों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं, और यतः वह समस्त जनों के हितैषी हैं, अथवा यतः वह परम विजेता या जनयिता हैं, अतः (कुमार) आग्नेय^१ ने उनकी (पराजय के रूप में) स्तुति की ।

^१ ऋग्वेद ७ १०१ और १०२ के एक अन्य प्रणेता के रूप में तु० की० इन सूक्तों पर आर्षानुक्रमणी (अग्निपुत्र कुमारो वा वसिष्ठो वा स्वयं मुनि) और सर्वानुक्रमणी (एते कुमार आग्नेवीऽपश्यद्वसिष्ठ एव वा वृष्टिकाम) ।

बृहन्तौ पाति यल्लोकाब् एष द्वौ मध्यमोत्तमौ ।

बृहता कर्मणा तेन बृहस्पतिरितीकृतः ॥ ३९ ॥

यतः वह दो बृहत्, मध्यम और उत्तम, कोकों की रक्षा करते हैं अतः इस महान् कर्म के कारण उन्हें बृहस्पति^१ (१) कहते हैं ।

^१ तु० की० यास्क की व्युत्पत्ति 'बृहस्पतिर् बृहत् पाता प्राकथिता वा (निरुक्त १० ११) जहाँ दुर्ग ने 'बृहत्' की 'महतो अस्व जगत उदकस्य वा' के रूप में व्याख्या की है । तु० की० 'बृहत् पतिना' (ऊपर २ १) ।

ब्रह्म वाग् ब्रह्म सत्यं च ब्रह्म सर्वमिदं जगत् ।

पातारं ब्रह्मणस्तेन शौनहोत्रं स्तुवन्नगौ ॥ ४० ॥

वाच् भी ब्रह्म है, और सत्य भी ब्रह्म है; वह समस्त जगत भी ब्रह्म है; अतः शौनहोत्र^१ (गृत्समद) ने स्तुति करते हुये उन्हें ब्रह्म का रक्षक^२ (अर्थात् 'ब्रह्मणस्पति') (७) कहा ।

^१ ऋग्वेद २ २३-२६ में ।

^२ निरुक्त १० १२ (ब्रह्मणस्पतिर् ब्रह्मण पाता वा प्राकथिता वा) ।

अन्नं क्षितिभ्यो विदधद् यहतुष्वविशस्त्रितौ ।

तेनैनमाह क्षेत्रस्य वामदेव स्तुवन्नपतिम् ॥ ४१ ॥

यतः वह उपयुक्त समय पर पृथिवी^१ में प्रवेश करके पृथिवी-वासियों को अन्न प्रदान करते हैं, अतः स्तुति करते हुये वामदेव^२ उन्हें 'क्षेत्रों का अधिपति' (८) कहते हैं ।

^१ देखिये निरुक्त १० १३ 'क्षेत्रस्य पति' क्षेत्रं क्षिपतेर निवासकर्मणस्, तस्य पाता वा प्राकथिता वा ।

^२ ऋग्वेद ४ ५६ में ।

मनसेमं तु यदृष्ट्यं मध्यमं लोकमाश्रितम् ।

अंसत्सत्येन सत्ये वै स एष स्तुतबाह्वतम् ॥ ४२ ॥

वतः उन्हींने ही उसको प्रगट किया जो मध्यम-स्थान से सम्बद्ध होते हुये, सत्य^१ में सत्य के साथ केवल मन से इष्टिगत होता है, अतः उसी वामदेव ने इनकी 'ऋत'^२ (९) के रूप में स्तुति की ।

^१ निरुक्त ४ १९ में 'ऋत' की 'सत्य वा यद्वा' के रूप में व्याख्या की गई है ।
तु० की० ऋग्वेद ४ २३, ८ पर सायण भी ।

^२ ऋग्वेद ४ २३, ८ का वास्क ने ('ऋत' के उदाहरण में) निरुक्त १० ४१ में विवेचन किया है ।

रवेणान्तारसैः क्षिप्तै स्थितो व्योमन्येष मायया ।

ऋतस्य भ्लोक इत्येष पुनश्चैनं ततोऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥

और वत वह अपनी मायावी शक्ति से गर्जन के साथ बरसनेवाली आन्तरिक आर्द्रता^१ के साथ आकाश में स्थित है, अतः उसने (वामदेव ने) पूछा: 'उन्हें ऋत श्लोकों^२ में व्यक्त किया ।

^१ 'जल' के अर्थ के सन्दर्भ में प्रयुक्त (निरुक्त २, २५ 'ऋतम् इत्युदकनाम)
तु० की० नीचे २ ५० ।

^२ अर्थात् पहले 'सत्य' के रूप में और अब 'जल' (अर्थात् मेघ-जल) के रूप में ।

^३ ऋग्वेद ४ २३, ८ देखिये निरुक्त १० ४१ ।

८-वास्तोष्पति, वाचस्पति, अदिति, क, यम

वास्तुप्रयच्छ्लोकस्य मध्यमः स तु पाति यत् ।

तेन वास्तोष्पतिं प्राह चतुर्भिरिममौर्वशः ॥ ४४ ॥

वतः मध्यम स्थान में स्थित होने के कारण वह ससार को आवास प्रदान करते हुये उसकी रक्षा^१ करते हैं, अतः उर्वशी पुत्र (वसिष्ठ) ने उन्हें चार मन्त्रों^२ में 'वास्तोष्पति' (१०) कहा है ।

^१ निरुक्त १० १६ 'वास्तोष्पतिर् वास्तु वसतेर् निवासकर्मणः, तस्य पाता वा पालयिता वा ।'

^२ ऋग्वेद ८ ५४, १-३, ५५, १ ।

वाचा वेदा आधोयन्ते वाचा छन्दसि तत्र ह ।

अथो वाक् सर्वमेवेवं तेन वाचस्पति स्तुतः ॥ ४५ ॥

वतः वेदों की वाणी द्वारा ही ग्रहण, और उनके छन्दों का शक्ती द्वारा

ही उच्चारण किया जा सकता है, और यतः बाणी ही वह विषय है, अतः उनकी 'बाणी के अधिपति' (वाचस्पति, ११)^१ के रूप में स्तुति की जाती है ।

^१ निरुक्त १० १७ 'वाचस्पतिर् वाच पाता वा पाळयिता वा ।'

न कुतश्चन यद्दीनो वृत्त्वा तिष्ठति मध्यमः ।

राहुगण ऋषिस्तेन प्राहैनं गोतमोऽदितिम् ॥ ४६ ॥

यत वह सत्सार को आबुक्त^१ करते हुये मध्यम-स्थान में स्थित, और किसी भी दिशा से हीन नहीं हैं, अतः राहुगण गोतम^२ ऋषि ने उन्हें 'अदिति'^३ (१२) कहा है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० ९०, १ 'स भूमिं विश्वनी वृत्त्वानिष्ठम् ।'

^२ ऋग्वेद १ ८९, १० में (देखिये निरुक्त ४ २२, २३) ।

^३ निरुक्त ४ २२, 'अदितिर् अदीना देवमाता ।'

प्रजाभ्यस्त्वेष यच्छर्म कमिच्छन्मनसा सुखम् ।

हिरण्यगर्भस्तेनैनम् ऋषिरर्चमुवाच कम् ॥ ४७ ॥

किन्तु यत वह प्राणियों के रक्षक हैं और अपने हृदय में प्राणियों के सुख^१ की कामना करते हैं, अतः हिरण्यगर्भ^२ ऋषि ने उनकी अर्चना^३ करते हुये उन्हें 'क' (१३) कहा है ।

^१ निरुक्त १० २२ (क कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा) में 'क' की तीन व्याख्याओं में से एक 'सुख' भी है ।

^२ ऋग्वेद १० १२१ का प्रसिद्ध द्रष्टा, देखिये आर्षानुक्रमणी १० ५९ और ऋग्वेद १० १२१ पर सर्वानुक्रमणी ।

^३ तु० की० ऊपरा २ ३२ में 'अर्चन्त ।'

इह प्रजाः प्रयच्छन्स संगृहीत्वा प्रयाति च ।

ऋषिर्विवस्वतः पुत्रं तेनाहैनं यमो यमम् ॥ ४८ ॥

वह यहाँ सत्तान प्रदान^१ करते हैं, और उनको एकत्र करके दूसरे लोक में ले जाते हैं;^२ अतः यम^३ ऋषि उन्हें विवस्वत-पुत्र 'यम'^४ (१४) कहते हैं ।

^१ निरुक्त १० १९ 'यमो यच्छतीति सत ।'

^२ तु० की० ऋग्वेद १० १४, १ जिसकी निरुक्त १० १९ (परेयिवांसम् सगमन अनानाम) में व्याख्या की गई है ।

^३ ऋग्वेद १० १४ का प्रसिद्ध द्रष्टा, तु० की० आर्षानुक्रमणी १० ६ और इस सूक्त पर सर्वानुक्रमणी ।

^४ ऋग्वेद १० १४, १ (विवस्वतं... यमम्) ।

^५ तु० की० निरुक्त १० २० - 'अभिर् अपि यम उच्यते ।'

९-मित्र, विश्वकर्मन्, सस्वत्, वेन, मन्यु
मित्रीकृत्य जना विश्वे यदिमं पर्युपासते ।

मित्र इत्याह तेनैनं विश्वामित्रं स्तुवन्स्वयम् ॥ ४९ ॥

यत सभी मनुष्यगण उन्हें अपना मित्र मान कर उनकी उपासना करते हैं, अतः स्वयं विश्वामित्र^१ भी उनकी स्तुति करते हुये उन्हें 'मित्र' (१५) कहते हैं ।

^१ ऋग्वेद ३ ५९, १ में, जिस पर निरुक्त १० २२ में टीका की गई है ।

निदाघमासातिगमे यद्वेतेनावति क्षितिम् ।

विश्वस्य जनयन्कर्म विश्वकर्मा^१ तेन सः ॥ ५० ॥

यत ग्रीष्म मासों की समाप्ति पर वह पृथिवी को जलों^१ से तृप्त और सभी वस्तुओं में क्रियाशीलता^२ उत्पन्न कर देते हैं, अतः उन्हें विश्वकर्मन् (१६) कहते हैं ।

^१ तु० की० ऊपर २ ४३ ।

^२ तु० की० निरुक्त १० ७५ विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता ।

सरांसि घृतवन्त्स्यस्य सन्ति लोकेषु यत्त्रिषु ।

सरस्वन्तमिति ग्राह वाच प्राहुः सरस्वतीम् ॥ ५१ ॥

यत उनके पास तीनों लोकों में घृत से परिपूर्ण सरोवर हैं, अतः ऋषिगण^१ उन्हें 'सरस्वत्'^२ (१७) और 'वाच्' को सरस्वती कहते हैं ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ७ ९६, ४-६ में वसिष्ठ, इन मंत्रों में से एक का यास्क (निरुक्त १० २४) ने उद्धरण तो दिया है कि तु व्याख्या नहीं की है ।

^२ यास्क (निरुक्त १० २४) 'सरस्वत्' की व्याख्या नहीं करते, बरन् केवल ऐसी टिप्पणी कर देते हैं 'सरस्वान् व्याख्यात ।'

प्राणभूतस्तु भूतेषु यद्वेनत्येषु तिष्ठति ।

तेनैनं वेनमाहर्षिर् वेनो नामेह भार्गवः ॥ ५२ ॥

यत उनका (भूतों का) प्राण होने के कारण वही उनमें गतिशील^१ होते हैं, अतः वेन भार्गव^२ नामक ऋषि ने उन्हें 'वेन' (१८) कहा है ।

^१ वास्क (निरुक्त १० ३८) ने 'इच्छा करने' के आशय में 'वेन' की, 'वेन्' क्रिया से व्युत्पन्न हुये होने के रूप में व्याख्या की है (वेनते कान्तिकर्माण) । यह क्रिया नैषण्डुक २ ६ के 'कान्तिकर्माण' में से एक है, नैषण्डुक २ १४ में यह 'गति-कर्माण' के अन्तर्गत भी जाती है ।

^१ ऋग्वेद १० १२३ का प्रसिद्ध द्रष्टा । इसके प्रथम मन्त्र की यास्क ने निरुक्त १० १८ में व्याख्या की है । तु० की० आर्षानुक्रमणी १० ६० 'विनो नाम मन्त्रो सुत ।'

ससृजे मासि मास्येनम् अभिमस्यं तपोऽग्रजम् ।

तेनैनं मन्युरित्याह मन्युरेव तु तापसः ॥ ५३ ॥

अतः इच्छा करते हुये अग्रज तप ने उनका प्रतिमास सृजन किया; अतः मन्यु तापस^१ उन्हें 'मन्यु' (१९) कहते हैं ।

^१ यास्क (निरुक्त १० २९) ने 'मन्यु' को 'मन्' से व्युत्पन्न माना है (मन्युर मन्यते^२ दीप्तिकर्मण क्रोधकर्मणो वर्षकर्मणो वा ।)

^२ आर्षानुक्रमणी १० ३३ और ऋग्वेद १० ८३ पर सर्वानुक्रमणी के अनुसार मन्यु तापस, ऋग्वेद १० ८१-८४ के द्रष्टा हैं । इस वाद के सूक्त (१० ८४) के प्रथम मन्त्र पर यास्क ने (निरुक्त १० ३० में) टिप्पणी की है ।

१०-असुनीति, अषां नपाद्, दधिका, धाद्, तास्यं

यदन्तकाले भूतानाम् एक एव नयत्यसून् ।

तेनासुनीतिरुक्तोऽयं स्तुवता श्रुतबन्धुना ॥ ५४ ॥

अतः जब प्राणी की मृत्यु होती है तो केवल यही उसकी आत्मा^१ का पथ प्रदर्शन करते हैं, अतः इनकी स्तुति करनेवाले श्रुतबन्धु^२ ऋषि ने उन्हें 'असुनीति' (२०) कहा है ।

^१ निरुक्त १० ३९ 'असुनीतिर असुन् नयति ।'

^२ ऋग्वेद १० ५९ का प्रसिद्ध प्रणेता । इस सूक्त के पाँचवे मन्त्र पर निरुक्त १० ४०, में टिप्पणी की गई है ।

निषाधमासातिगमे जन्म मध्ये भवत्यपाम् ।

नसारमाह तेनैनम् ऋषिर्गुत्समव स्तुवन् ॥ ५५ ॥

तप्त मासों की समाप्ति के समय उनके बीच^१ इनका जन्म होता है । अतः गुत्समव^२ ऋषि ने उनकी स्तुति करते हुये उन्हें 'जलों' का पुत्र (२१) कहा है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० ३०, ४ में 'अप्स् अन्तर', जिस पर निरुक्त १० १९ में टिप्पणी की गई है । यहाँ 'मध्यम-स्थान' का तात्पर्य नहीं है, जैसा कि प्रथम दृष्टि में ऊपर २ ४४ में 'मध्यम' तथा २ ३१ में 'मध्यभागेन्द्र' के प्रयोग से मानने की प्रवृत्ति हो सकती है ।

^२ ऋग्वेद २ ३५ में (तु० की० निरुक्त १० १९) ।

^३ तु० की० निरुक्त १० १८ 'अषां नपाद् तनूनपा व्याख्यात', देखिये ऊपर २ २७ ।

अपामम्बरगर्भोऽधम् आदधत्सोऽष्टमासिकम् ।

यत्क्रन्दत्यसकृन्मध्ये दधिक्रास्तेन कथ्यते ॥ ५६ ॥

यत वह आठ मास तक आकाश^१ में जलों को धारण कर रखते हैं और उनके बीच कभी-कभी गर्जन^२ भी करते हैं, अतः उन्हें 'दधिका' (२२) कहा गया है ।

^१ तु० की० 'अतारसा', ऊपर २ ४३ ।

^२ यह निरुक्त २ २७ (दधत् क्रन्दतीति वा दधदाकारी भवतीति वा) में दी हुई तीन व्युत्पत्तियों में से एक है ।

मासेन संभृतं गर्भं नवमेनाथ मासिकम् ।

स्वयं क्रन्दन्वधात्युर्व्याधातेत्यग्निः स गीयते ॥ ५७ ॥

उसके पश्चात् स्वयं गर्जन करते हुये नवें मास में वह विकसित गर्भ को एक मास तक पृथिवी में स्थापित रखते हैं । अतः (ऋग्वेद की) ऋचाओं में उनका 'धातु' (२३) के रूप में गायन किया गया है ।

^१ निरुक्त में इसकी कोई याख्या नहीं मिलता केवल इतना ही कथन मिलता है 'धाता सर्वस्य विधाता', (१६ १०) ।

स्तीर्णेऽन्तरिक्षे क्षियति यद्वा तूर्णं क्षरत्यसौ ।

अरिष्टनेमिस्ताक्षर्यर्षिस् ताक्षर्यं तेनैवमुक्तवान् ॥ ५८ ॥

वह विस्तीर्ण^१ अन्तरिक्ष में निवास करते, अथा उसमें तीव्र गति से चरित होते हैं, अतः अरिष्टनेमि ताक्षर्य^२ ऋषि ने उन्हें 'ताक्षर्य' (२४) के रूप में व्यक्त किया है ।

^१ निरुक्त १० २७ 'ताक्षर्यस त्वष्टा व्यापान' (देखिये ८ १३ त्वष्टा तूर्णम् अश्नुत इति नैरुक्ता) 'स्तीर्णेऽन्तरिक्षे क्षियति तूर्णम् अर्थं रक्षत्य अक्षोते वा ।' तु० की० नीचे ३ १६ में दी हुई 'त्वष्टृ' की व्युत्पत्ति भी ।

^२ ऋग्वेद १ १७८ का प्रसिद्ध प्रणेता (आर्षानुक्रमणो १० ६१) इस सूक्त के प्रथम मात्र पर निरुक्त १० २८ में गिप्पणी की गई है ।

**११-पूरुवस्, मृत्यु । सूर्य के नाम सवितृ, मग
रुवन्वयोऽन्युदयं याति कृन्तन्नाद्विसृजन्नपः ।**

पूरुवसमाहैनं स्वधाक्येनोरुवासिनी ॥ ५९ ॥

आकाश में गर्जन के साथ वह सूर्योदय की ओर अग्रसर होते हुये विहीर्ण गर्त से वर्षा करते हैं^१, अतः उरुवासिनी^२ (अर्थात् उर्वशी) उन्हें अपने जन्म^३ में 'पूरुवस्' (२५) कहती हैं ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९३ ।

^२ यहाँ यह 'उर्वेशी' का ही एक व्युत्पन्न रूप है, किन्तु यह यास्क द्वारा निरुक्त ५ १३ में दी हुई तीनों व्युत्पत्तियों से भिन्न है ।

^३ ऋग्वेद १० ९५, ७ में, (इस पर यास्क ने निरुक्त १० ४७ में टिप्पणी की है ।)

^४ तु० की० निरुक्त १० ५६, 'पूरुवा बहुधा रोरुयते ।'

यस्तु प्रच्यावयन्नेति घोषेण महता मृतम् ।

तेन मृत्युमिमं सन्तं स्तौति मृत्युरिति स्वयम् ॥ ६० ॥

नाम्ना संक्रुसुको नाम यमपुत्रो जघन्यजः ।

संवर्तयंस्तमः सूर्याद् उषसं च प्रवर्तयन् ॥ ६१ ॥

यत वह अत्यधिक घोष के साथ मृतक^१ को ले जाते हैं, अतः सकुसुक^२ नामक यम के सबसे छोटे पुत्र स्वयं 'मृत्यु'^३ (२६) के रूप में उनकी स्तुति करते हैं ।

सूर्य से अन्धकार को हटाते और उषा को प्रकट करते हुये,

^१ निरुक्त ११ ५ पर शतबलाक्ष मौद्गल्य की व्याख्या (मृत्युर मारयतीति मनो, मृत च्यावयतीति वा शतबलाक्षो मौद्गल्य ।)

^२ ऋग्वेद १० १८ का प्रणेता (इसके प्रथम मन्त्र का यास्क ने निरुक्त ११ ७ में उद्धरण दिया है) । तु० की० आर्षानुक्रमणी १० ८, और ऋग्वेद १० १८ पर सर्वानुक्रमणी ।

^३ इन नामों में से तीस तो नैवण्डुक ५ ४ में, और तीन (अदिति, धातु, मृत्यु) ५ ५ में आते हैं । इनमें से अधिकांश की निरुक्त १० में व्याख्या की गई है ।

दिवाकरं प्रसौत्येकः सविता तेन कर्मणा ।

उदितो भासयंल्लोकान् इमांश्चैव स्वरश्मिभिः ।

स्वयं वसिष्ठस्तेनैनम् ऋषिराह स्तुवन्भगम् ॥ ६२ ॥

अकेले वही दिन के तारे को अपसर^१ करते हैं इस कर्म के कारण उन्हें 'सविद्' (१) कहते हैं । और यत वह अपनी रश्मियों से इन लोकों को भासमान करते हुये उदित हुये; अतः स्वयं वसिष्ठ^२ स्तुति करते हुये उन्हें 'भग'^३ (२) कहते हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त १० ३१ 'सविता सर्वस्य प्रसविता ।' सूर्य के सात, नामों की गणना इसी श्लोक से आरम्भ होती है ।

^२ ऋग्वेद ७ ४१, २ के प्रणेता (इस पर निरुक्त १२ १४ में टिप्पणी की गई है ।)

^३ तु० की० निरुक्त १ १६ - 'रात्रेर् जरयिता स यव भासाम् ।'

१२-पूषन्, विष्णु, केशिन्, विश्वानर, वृषाकपि
पुष्यन् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिमिस्तामः ।

तेनैनमस्तौत्पूषेति भरद्वाजस्तु पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

पोषण करते हुये वह पृथिवी की जीवन-बुद्धि, और रश्मियों से अन्धकार को विसर्जित करते हैं, अतः भरद्वाज ने उनकी पाँच सूक्तों में 'पूषन्' (१) के रूप में स्तुति की ।

^१ तु० की० निरुक्त १२ १६ 'यद् रश्मिपोष पुष्यति तत् पूषा भवति ।'

^२ ऋग्वेद ६ ५३-५६ और ५८ । इस वाद के सूक्त के प्रथम मन्त्र पर यास्क ने निरुक्त १२ १७ में टिप्पणी की है । तु० की० नीचे ५ ११८ ।

त्रीणि भान्ति रजांस्यस्य यत्पदानि तुतेजसा ।

तेन मेधातिथिः प्राह विष्णुमेनं त्रिविक्रमम् ॥ ६४ ॥

यतः तीनों क्षेत्र उन्हीं के पादों के रूप में प्रकाशमान होते हैं, अतः मेधातिथि^१ उन्हें तीन पाद प्रक्षेप करमेवाला 'विष्णु' (४) कहते हैं ।

^१ ऋग्वेद १ २२, १७, जिस पर यास्क ने निरुक्त १२ १९ में टिप्पणी की है ।

ऋग्वेद के इस मूल स्थल के 'त्रिधा निदधे पदम्' शब्दों की व्याख्या करते हुये यास्क ने शाकपूणि के इस मत का उद्धरण दिया है कि इनसे तीन लोकों (पृथिव्याम अन्तरिक्षे दिवि) का तात्पर्य है । बृहदेवता के प्रस्तुत श्लोक में भी इसी मत का अनुसरण किया गया है ।

कृत्वा सायं पृथग्याति भूतेभ्यस्तमसोऽत्यये ।

प्रकाशं किरणैः कुर्वस् तेनैनं केशिनं विदुः ॥ ६५ ॥

यत अक्षकालिक पृथक् निवास के पश्चात् अन्धकार के प्रस्थान के समय वह अपनी रश्मियों से जीवों के लिये प्रकाश उत्पन्न करते हैं, अतः ऋषिगण उन्हें 'केशिन्' (५) कहते हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त १० २५ 'केशी, केश रश्मयस्, तेस् तद्वान् भवति, काशनाद्य वा प्रकाशनाद् वा ।' तु० की० ऊपर १ ९४ भी ।

संप्रत्येकैकशस्त्वेन यन्मन्यन्ते पृथङ्नराः ।

विश्वे विश्वानरस्तेन कर्मणा स्तुतिषु स्तुतः ॥ ६६ ॥

यत सभी मनुष्य अपने अपने मत के अनुसार, और पृथक् पृथक् उनके सम्बन्ध में ही विचार करते हैं, अतः इस कार्य के कारण उनको 'विश्वानर' (६) के नाम से स्तुति की जाती है ।

^१ यास्क की व्याख्या में 'मन्' नहीं बरन 'नी' क्रिया का प्रयोग हुआ है 'विश्वान् नरान् नयति विश्वं यन नरा नयन्तीति वा' (निरुक्त ७ २१ ।)

वृषैव कपिलो भूत्वा यन्नाकमधिरोहति ।
 वृषाकपिरसौ तेन विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।
 रश्मिभिः कम्पयन्नेति वृषा वर्षिष्ठ एव सः ॥ ६७ ॥
 सायाह्नकाले भूतानि स्वापयन्नस्तमेति यत् ।
 वृषाकपिरितो वा स्याद् इति मन्त्रेषु दृश्यते ॥ ६८ ॥
 त्रिषु धन्वेति होन्द्रेण प्रयुक्तो वारिषाकपे ।

यत एक कपिल वृषभ^१ का रूप धारण करके यह आकाश में ऊपर चढ़ते हैं, अतः 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'^२ (ऋग्वेद १० ८६, २) ऋषा में यह 'वृषाकपि' (७) हैं; (अथवा) यह उत्तमम वृषभ अपनी रश्मियों^३ से कम्पित करते हुये जाते हैं, क्योंकि यह सन्ध्या-समय प्राणियों को प्रसुप्त^४ करते हुये अपने गृह को आते हैं, इस कारण इनका 'वृषाकपि' नाम इस कर्म से भी व्युत्पन्न हुआ हो सकता है। वृषाकपि-सूक्त^५ की 'धन्व' से आरम्भ होनेवाली तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८६, २०-२२) में इन्द्र ने इनकी इसी प्रकार स्तुति की है।

^१ तु० की० नीचे ७ १४१।

^२ ऋग्वेद १० ८६ सूक्त के इक्कीसवें मन्त्र पर यास्क ने निरुक्त १२ २८ में टिप्पणी की है।

^३ यह दूसरी व्युत्पत्ति यास्क के निरुक्त १२ २७ (यद् रश्मिभिर् अभिप्रकम्पयन्न एति तद् वृषाकपिर् भवति वृषाकम्पन) पर आधारित है।

^४ इससे 'रश्मिभिः कम्पयन्न एति' की व्याख्या की गई है।

^५ श्लोक में छन्द की आवश्यकता के कारण ही कदाचित् 'वारिषाकप' के स्थान पर 'वारिषाकप' का प्रयोग किया गया है।

१३-विष्णु की व्युत्पत्ति। नैपातिक नामों की गणना नहीं कराई जा सकती

विष्णातेर्विंशतेर्वा स्याद् वेवेष्टेर्यासिकर्मणः ।

विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्व सर्वान्तरश्च यः ॥ ६९ ॥

व्याप्ति को व्यक्त करते हुये 'विष्णु'^१ नाम 'विष्' (विष्णाति) अथवा 'विश्व' (विशति) अथवा 'वेविष्' (वेवेष्टि)^२ (चातु) से व्युत्पन्न हुआ है, अतः विष्णु की उस सूर्य के रूप में व्याख्या की गई है जो सब कुछ^३ और सब में व्याप्त है।

^१ ऊपर ६४ वें श्लोक में न दी गई होने के कारण विष्णु की व्युत्पत्ति को यहाँ सूर्य के नामों की तात्त्विका के अन्त में दिया गया है।

^१ तु० की० निरुक्त १२ १८ 'अथ यद् विधितो भवति तद् विष्णुर् भवति, विष्णुर् विशतेर वा व्यश्नोतेर वा ।'

^३ तु० की० नीचे २ १५८ ।

पञ्च षड्विंशतिश्चैव यानि नामानि सप्त च ।

सम्यग्भीन्द्रसूर्याणां तान्युक्तानि यथाक्रमम् ॥ ७० ॥

इस प्रकार अग्नि के पाँच, इन्द्र के छठवीस, और सूर्य^१ के सात नामों का यथाक्रम वर्णन किया गया ।

^१ तु० की० ऊपर २ २२ ।

नैपातिकानां नाम्नां तु प्रागुक्तैर्नामलक्षणैः ।

संपन्नानां पृथक्त्वेन परिसंख्या न विद्यते ॥ ७१ ॥

किन्तु उक्त^१ नामगत लक्षणों के साथ-साथ आनेवाले नैपातिक नामों^२ की पृथक् गणना विद्यमान नहीं है ।

^१ ऊपर १ ८६-८८ ।

^२ अर्थात् उदाहरण के लिये 'वृत्रहन्' जैसी उपाधियों की, जो नियमित नामों (जैसे 'इन्द्र') के साथ आती हैं, गणना नहीं कराई जा सकती । तु० की० निरुक्त ७ १३ 'अभिधानै सयुज्य हविश् चौदयतीन्द्राय वृत्रह्म इन्द्राय वृत्रतुर इन्द्रायाहोमुच इति, तान्य् अप्य् एके समामनन्ति, भूवासि तु समास्मानात् ।' तु० की० नीचे २ ९३ भी ।

१४-त्रिविध-वाच् उसके पार्थिव और मध्यम रूप

पार्थिवी मध्यमा दिव्या वागपि त्रिविधा तु या ।

तस्याः सूक्तानि नामानि यथास्थानं निबोधत ॥ ७२ ॥

'वाच्' के भी, जो पार्थिव, मध्यम और दिव्य रूपों में त्रिविध है, स्थाना-नुसार नामों और सूक्तों (के विवरण) को सुनें ।

कृत्स्नं तु भजते सूक्तम् एषा नय स्तुता भुवि ।

यदा चैनं भजन्त्यापो यदा चौषधयो यदा ॥ ७३ ॥

ऐसे सभी सूक्तों को जिनमें पृथिवी के नदियों की, जलों, और पौधों^१ की, स्तुति हो, सम्पूर्णतः इसके ही सूक्त जानना चाहिये ।

^१ नदियों, जलों, पौधों का यहाँ उसी क्रम से उल्लेख है जो नैषण्डिक ५ ३ और ऊपर १ ११२ में मिलता है ।

अरण्यानी च रात्री च अद्वा चोषाः सरस्वती ।

पृथिवी चैव नामैषा भूत्वाप्यर्चं भजन्ति च ॥ ७४ ॥

और जब यह अरण्यानी और रात्री, अद्वा, उषस्, तथा पृथिवी नाम से, और आप्सा' के रूप में जाती है, तो भी (इन विविध नामों से) इसकी ही स्तुति होती है ।

^१ देखिये नीचे श्लोक ७५ पर प्रथम टिप्पणी ।

अग्नायी नामतोऽप्येषा भूत्वाग्नेयेषु केषुचित् ।

स्तुता निपातमात्रेण तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७५ ॥

और जब यह अग्नायी^१ बन जाती है तो (ऋग्वेद के) विभिन्न स्थलों पर अग्नि को सम्बोधित सूक्तों में इसकी केवल नैपातिक स्तुति ही होती है ।

^१ देवियों के उपरोक्त ग्यारह नामों में से नौ तो नैषण्डुक ५ ३ ('नष' से 'अग्नायी' तक) की पार्थिव देवियों की सूची के ही समान हैं, और 'उषस्' तथा 'सरस्वती' को नैषण्डुक (५ ५) की अन्तरिक्ष-देवियों की सूची से लिया गया है । देवि की यह सूची ऊपर १ ११२ की दस देवियों की सूची के समान है (जहाँ इन्हें पार्थिव अग्नि के साथ सम्बद्ध किया गया है) किन्तु अन्तर केवल इतना है कि उक्त स्थल की 'इळा' के स्थान पर यहाँ 'उषस्' और 'सरस्वती' को सम्मिलित कर लिया गया है ।

मध्ये सत्यदितिर्वाक् च भूत्वा चैषा सरस्वती ।

समग्रं भजते सूक्तं त्रिभिरेव तु नामभिः ॥ ७६ ॥

जब मध्यम स्थान के वाक्' के रूप में यह अदिति और सरस्वती बन जाती है, तब भी केवल अपने तीन नामों से यही सम्पूर्ण सूक्त की 'ममिमी' होती है ।^२

^१ इस ७६ से लेकर ७८ वें श्लोक तक मध्यम-वाक् के जिन उन्नीस नामों की गणना कराई गई है उनमें से 'रोमशा' (और दुर्गा) को छोड़कर अन्य सभी नैषण्डुक ५ ५ (मध्य-स्थानीय देवियों) में मिलते हैं, और 'देवपत्न्य' को नैषण्डुक ५ ६ (दिव्य देवियों) से लिया गया है, जब कि नैषण्डुक ५ ५ की चार देवियों के नाम (पृथिवी, गौरी, उषस्, और इळा) को छोड़ दिया गया है । वह सभी अधिकांशतः ऊपर (१ १२८ १२९) वर्णित इन्द्र से सम्बन्धित देवियों के ही समान हैं ।

^२ अर्थात् मध्य-स्थानीय 'वाक्' केवल इन्हीं तीन नामों से 'सूक्तभाज' है, जब कि अन्य नामों से, जो नैपातिक हैं, यह केवल 'ऋग्भाज' मात्र ही होती है ।

१५-वाच् के अन्य मध्य-स्थानीय रूप; इसके चार दिव्य रूप

एवैव दुर्गा भूत्वर्चं कृत्वा स्यात्सूक्तभागिनी ।^१

तन्नामानि यमीन्द्राणी सरमा रोमशोर्वशी ।

अवस्थग्र्या सिनीवाली राका चानुमतिः कुङ्कः ॥ ७७ ॥

[दुर्गा वच कर और एक ऋचा का उच्चारण करते हुये यह (सम्पूर्ण) सूक्त की भागिनी होती है]^१ । इसके अन्य नाम यमी, इन्द्राणी, सरमा, रोमका,^२ उर्वशी हैं; यह सर्वप्रथम^३ सिनीवाली और राका, अनुमति, तथा कुङ्क, वचती है,

^१ इसमें सन्देह नहीं कि यह पंक्ति प्रक्षिप्त है, क्योंकि वैदिक देवी न होने के कारण 'दुर्गा' का नैषण्डुक में उल्लेख नहीं है ।

^२ उपरोक्त नामों में से केवल यही एक ऐसा है जो नैषण्डुक ५ ५ ६ में नहीं आता । तु० बी० ऊपर ७६वें श्लोक की दिव्यी ।

^३ इससे कदाचित् यह तात्पर्य है कि नैषण्डुक ५ ५ में अनुमति, राका, सिनीवाली, और कुङ्क का वर्ग यमी, उर्वशी, पृथिवी, और इन्द्राणी के पहले आता है ।

गौर्वेनुर्वेवपत्न्योऽध्वन्या पथ्या स्वस्तिश्च रोदसी ।

नैपातिकानि ऋग्भाञ्जि येषां नामानि कानिचित् ॥ ७८ ॥

और इनके बाद गो, धेनु, देवों की पत्नियाँ, अध्वन्या, पथ्या, स्वस्ति, तथा रोदसी । जिस देवता^१ का नाम नैपातिक^२ रूप से आता है वह केवल उस ऋचा विशेष का ही भागी होता है ।

^१ यहाँ 'वेषा' का सामान्य प्रयोग हुआ है अतः इससे केवल गत पत्नियों में वर्णित देवियों मात्र का आशय नहीं है ।

^२ जहाँ मध्यम वाच् के नैपातिक नाम (७४, ७५ वें श्लोक में वर्णित इसके पार्थिव रूपों के ही समान) केवल 'ऋग्भाज्' मात्र होते हैं, 'सूक्तभाज' नहीं, जैसे कि ७६ वें श्लोक (तथा ७३ वें और ७९ वें) के श्मवे नाम हैं ।

यदा तु वाग्भवत्येषा सूर्यामुं लोकमाश्रिता ।

तथा सूक्तमुषा भूत्वा सूर्या च भजतेऽखिलम् ॥ ७९ ॥

किन्तु अब यह वाच् 'सूर्या' बन जाती है तो यह दिव्य लोकगत हो जाती है, अतः उपस्, और साथ ही साथ सूर्या के रूप में यह सम्पूर्ण सूक्त की भागिनी होती है ।^१

^१ यह दिव्य वाच् के प्रधान नाम हैं, इसी कारण सूर्या को एक (ऋग्वे० १० ८५) तथा उपस् को अनेक सम्पूर्ण सूक्त समर्पित हैं ।

वृषाकपाय्युचं भूत्वा सरण्यूर्द्धं च ते भुवम् ।

निपातमात्रं भजते शुवच्च पृथिवी सती ॥ ८० ॥

और जब वह वृषाकपायी (और) सरण्यू^१ बन जाती है तो यह दोनों रूपों में नि सन्वेह ऋचा^२ की ही भागिनी होती है । जब यह शुवच^३ और पृथिवी होती है तो यह केवल नैपातिक^४ रूप से ही किसी ऋचा की भागिनी होती है ।

^१ उषस्, सूर्या, वृषाकपायी और सरण्यू का, साथ-साथ और इसी क्रम से दिव्य क्षेत्र की देवियों के रूप में नैषण्डुक ६ ६ में उल्लेख है ।

^२ वृषाकपायी और सरण्यू का ऋग्वेद (क्रमशः १० ८६, १३ और १० १७, २) में केवल एक एक बार ही उल्लेख है ।

^३ अर्थात् दिव्य स्थानीय होने के रूप में, क्योंकि पृथिवी का नैषण्डुक ५ ३, ५, ६, में तीनों ही स्थानों में से प्रत्येक के अन्तर्गत उल्लेख है ।

^४ पृथिवी को केवल एक ही सम्पूर्ण (तीन ऋचाओं के) सूक्त (ऋग्वेद ५ ८४) में सम्शोधित किया गया है, जहाँ इसे नीचे (५ ८८ में) 'मध्यमा' कहा गया है । किन्तु ऊपर २ ७४, ७६, ८०, के अनुसार पृथिवी का कोई भी रूप 'सूक्तमात्र' नहीं है ।

सूर्यामेव सतीमेतां गौरीं वाचं सरस्वतीम् ।

पश्यामो वैश्वदेवेषु निपातेनैव केवलाः ॥ ८१ ॥

हम देखते हैं कि जब वह वाच^१ सूर्या, गौरी^२ और सरस्वती होती है तो इसके यह नाम केवल विश्वदेवों की स्तुति करनेवाले सूक्तों में केवल नैपातिक रूप से ही आते हैं ।

^१ मध्य-स्थान (नैषण्डुक ५ ५) की एक देवी जिसको ऊपर (७७ वें और ७८ वें श्लोक में) कीं गणनाओं में छोड़ दिया गया है । निरुक्त १२ ४०, ४१, में ऋग्वेद १ १६४, ४१-४२, को 'गौरी' के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है ।

१६-स्त्री द्रष्टियों के नाम तीन वर्ग

घोषा गोघा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत् ।

ब्रह्मजाया जह्नूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः ॥ ८२ ॥

इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी ।

लोपामुद्रा च नयश्च यमी नारी च शश्वती ॥ ८३ ॥

श्रीर्लक्षा सार्वराज्ञी वाक् अद्वा मेघा च दक्षिणा ।

रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ॥ ८४ ॥

लोका^१, गोधा^२, विश्वधारा^३, अपाका^४, उपनिषद्, निषद्^५, ब्रह्मजाया
शिविका नाम जुहू^६ है, अगस्त्य की भगिनी^७, भद्रिती^८, इन्द्राणी^९ और
इन्द्र की माता^{१०}, सरमा^{११}, रोमसा^{१२}, उर्वशी^{१३} और कोपामुद्रा^{१४} और
वद्विर्वा^{१५}, यमी^{१६} तथा पक्षी शम्भरी^{१७}, भी^{१८}, लाक्षा^{१९}, सार्वराज्ञी^{२०},
वाक्^{२१}, अद्वा^{२२}, मेघा^{२३}, दक्षिणा^{२४}, रात्री^{२५} और सूर्या सावित्री^{२६}, इन सभी
को ऋषि अथवा ब्रह्मवादिनी कहा गया है।^{२७}

^१ ऋग्वेद १० ३९, ४० ।

^२ ऋग्वेद १० १३४, ६-७ ।

^३ ऋग्वेद ५ २८ ।

^४ ऋग्वेद ८ ९१ ।

^५ यह दोनों 'प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य'
से आरम्भ होनेवाली सात ऋचाओं
के खिल की द्रष्टव्य हैं जिनका
कश्मीर की खिलों का पाण्डुलिपि
में इस प्रकार वर्णन है 'प्र', सप्त,
ब्रह्मणी [अर्थात् ब्राह्म्यो = ब्रह्म
वादिन्यौ] निषदुपनिषदौ' ।

^६ ऋग्वेद १०, १०९ की ऋषि जुहू
ब्रह्मजाया, देखिये आर्षानुक्रमणा
१० ५१, और ऋग्वेद १० १०९
पर सर्वानुक्रमणी ।

^७ ऋग्वेद १० ६०, ६ की ऋषि
तु० की० आर्षानुक्रमणी १० २४
ऋग्वेद १० ६० पर सर्वानुक्रमणी ।

^८ ऋग्वेद ४ १८ की कुछ ऋचाओं
की ऋषि ।

^९ ऋग्वेद १० ६८ (की अनेक
ऋचायें) और १४५ ।

^{१०} 'इन्द्रमातर' को ऋग्वेद १० १५३
में ऋषि बताया गया है, आर्षानु
क्रमणी १० ७९ ।

^{११} ऋग्वेद १० १०८ की अनेक
ऋचाओं में ।

^{१२} ऋग्वेद १ १२६, ७ ।

^{१३} ऋग्वेद १० ९५ की अनेक
ऋचाओं में ।

^{१४} ऋग्वेद १ १७९, १० ।

^{१५} ऋग्वेद १ ३३ की कुछ ऋचाओं में ।

^{१६} अर्थात् ऋग्वेद १० १० और १५४
में 'यमीवैवस्वता' ।

^{१७} ८ १, ३४ तु० की० ऋग्वेद ८
१, पर सर्वानुक्रमणी, और नीचे
६ ४० ।

^{१८} ऋग्वेद ५ ८७ के बाद के खिल या
आसूक्त की ऋषि ।

^{१९} खिल का ऋषि तु० की० नीचे
८ ५१ ।

^{२०} ऋग्वेद १० ८९ ।

^{२१} ऋग्वेद १० १२५ ।

^{२२} ऋग्वेद १० १५१ ।

^{२३} ऋग्वेद १० १५१ के बाद के खिल,
या मैधासूक्त का ऋषि ।

^{२४} ऋग्वेद १० १०७ ।

^{२५} ऋग्वेद १० १२७ ।

^{२६} ऋग्वेद १० ८५ ।

^{२७} यह तीनों श्लोक (८२-८४) आर्षा
नुक्रमणी (१० १००-१०२) के
समान हैं ।

नवकः प्रथमस्तथासां वर्गस्तुष्टाव देवताः ।

ऋषिभिर्देवताभिश्च समूदे मध्यमो गणः ॥ ८५ ॥

इन ऋषियों में से नौ^१ के प्रथम वर्ग ने देवताओं की स्तुति की; बीच के वर्ग^२ ने ऋषियों तथा देवताओं से वार्तालाप किया ।

^१ अर्थात् जिनकी ऊपर २ ८२ में गणना कराई गई है ।

^२ वह नौ जिनकी ऊपर २ ८३ में गणना कराई गई है ।

आत्मनो भाववृत्तानि जगौ वर्गस्तथोत्तमः ।

उत्तमस्य तु वर्गस्य य ऋषिः सैव देवता ॥ ८६ ॥

इनके अन्तिम वर्ग ने आत्मा^१ की 'भाववृत्ति'^२ का गायन किया । इस अन्तिम वर्ग में वे (किसी एक द्वारा रचित सूक्त का) जो ऋषि है वह स्वयं देवता भी^३ है ।

^१ भाववृत्ति' की परिभाषा के लिये देखिये, नीचे २ १०० ।

^२ सर्वानुक्रमणी के अनुसार, 'मार्पराक्षी' (ऋग्वे० १० १८९ 'आत्मदैवतम्'), 'वाव' (ऋग्वे० १० १२५ 'नुस्तावात्मानम्'), 'अद्वा' (ऋग्वे० १० १५१), 'दक्षिणा' (ऋग्वे० १० १०७), 'रात्री' (ऋग्वे० १० १०७), 'सूर्वा सावित्री' (ऋग्वे० १० ८५ 'आत्मदैवतम्'), आदि, की दशा में ऋषि तथा देवता दोनों एक ही हैं । अन्य तीन (श्री, लाक्षा और मेधा) खिलों के ऋषि तथा देवता हैं ।

^३ क्योंकि स्तुति का विषय 'आत्मा' है ।

१७-आत्म-स्तुतियों तथा संवाद-वाक्यों के द्वाता, निपात

आत्मानमस्तौद्वर्गस्तु देवतां यस्तथोत्तमः ।

तस्मादात्मस्तवेषु स्याद् य ऋषिः सैव देवता ॥ ८७ ॥

इस प्रकार इस अन्तिम वर्ग के प्रत्येक ने देवता के रूप में अपनी स्तुति की है; अतः इस आत्म-स्तुति में जो ऋषि है वह साथ ही साथ देवी भी है ।

संवादेष्वाह वाक्यं यः स तु तस्मिन्मवेहृषिः ।

यस्तेनोच्येत वाक्येन देवता तत्र सा भवेत् ॥ ८८ ॥

जो वाक्यों का संवाद के रूप में उच्चारण करता है, उसे ही उसमें

(सवाव-वाक्य में) ऋषि^१, और उस सवाव-वाक्य द्वारा जो सम्बोधित हो उसे ही उसमें देवता मानना चाहिये ।^२

^१ तु० का० सर्वानुक्रमणी 'यस्य वाक्य स ऋषि' ।

^२ तु० की० वही 'या तेनोच्यते सा देवता', और देखिये ऋग्वेद १ १६५ पर षड्गुरुशिष्य की देवतानुक्रमणी ।

उच्चावचेषु चार्थेषु निपाताः समुदाहृताः ।

कर्मोपसंग्रहार्थे च कचिच्चौपम्यकारणात् ॥ ८९ ॥

'निपातों' की विभिन्न आशयों में—सम्बद्धात्मक क्रियाओं के उद्देश्य से, और अक्सर उपमा के उद्देश्य से—गणना कराई गई है ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १ ४ अथ निपाता उच्चावचेष्व् अर्थेषु निपतन्त्य् अप्य उपमा र्थेऽपि कर्मोपसंग्रहार्थे ।

जनानां पूरणार्था वा पादानामपरे कचित् ।

मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु पूरणार्थास्त्वनर्थकाः ॥ ९० ॥

पुन अग्य का दोषपूर्ण पादों को पूर्ण^१ करने के लिये प्रयोग किया जाता है । ऐसे निपात, जिनका क्षणात्मक स्थलों पर केवल पादों की दोषपूर्ति मात्र की दृष्टि से प्रयोग किया जाता है वह निरर्थक होते हैं :^२

^१ तु० की० निरुक्त १ ४ 'अथ निपाता अपि पदपूर्णा' ।

^२ निरुक्त १ ९ पर आधारित 'अथ ये प्रवृत्तेऽर्थमित्ताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्यपूरणा आगच्छन्ति, पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्व् अनर्थका कम् ईम् इद् व् इति ।' इनके उदाहरण निरुक्त १ १० में उद्धृत हैं । तु० की० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ९, और बाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य २ १६ ।

कमीमिद्विति विज्ञेया ये त्वनेकार्थकाश्च ते ।

इव न चिह्न चत्वार उपमार्था भवन्ति ते ॥ ९१ ॥

ऐसे निपातों के अन्तर्गत 'कम्', 'ईम्', 'इद्', 'न्' आते हैं ।^१ किन्तु निपात ऐसे भी होते हैं जिनके विभिन्न आशय होते हैं । 'इव', 'न', 'चिद्', 'नु', यह चार ऐसे हैं जिनका उपमार्थक आशय है ।^२

^१ निरुक्त १ ९ ।

^२ निरुक्त १ ४ 'एते चत्वार उपमार्थे भवन्तीति' ।

उपमार्थे नकारस्तु कचिदेव निपात्यते ।

मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु प्रतिषेधे त्वनल्पशः ॥ ९२ ॥

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में निपात के रूप में 'व' उपसर्गक आक्षेप में केवल कभी कभी ही, किन्तु 'नकारात्मक' भास्य में बहुधा प्रयुक्त होता है ।'

^१ तु० की० निरुक्त १ ४ 'नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्, उभयम् अन्वयान्—
प्रतिषेधार्थीय - उपसर्गीय ।'

इयन्त इति संख्यानां निपातानां न विद्यते ।

वशात्प्रकरणस्यैते निपात्यन्ते षडे षडे ॥ ९३ ॥

निपात कितने हैं इसकी ठीक ठीक गणना विद्यमान नहीं ।' प्रकरण के अनुसार निपातों का षड् षड् पर प्रयोग होता है ।'

^१ ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ९ में भी इन्हीं शब्दों (नेयन्त इत्य् अस्ति सख्या) का प्रयोग है किन्तु वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य (२ १६ और ८ ५७) में इनकी सख्या चौदह गिनार्ह गड़ है । फिर भी, यास्क, निरुक्त १ ४ और बाद, में बाइस का उल्लेख करते हैं, जिसके अन्तर्गत वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य में उल्लिखित सख्या में से पाँच नहीं आते ।

^२ तु० को० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ९ (अर्थवशात्) । देखिये हेमचन्द्र अधिधान विन्तामणि ।

१८-उपसर्गः, लिङ्ग

उपसर्गास्तु विज्ञेयाः क्रियायोगेन विंशतिः ।

विवेचयन्ति ते ह्यर्थं नामाख्यातविभक्तिषु ॥ ९४ ॥

क्रिया के योग^१ से उपसर्गों की सख्या बीस^२ जाननी चाहिये; वह (उपसर्ग) सज्ञा और क्रिया (आख्यात)^३ की विभक्तियों में अर्थ-वेद^४ उत्पन्न कर देते हैं ।

^१ तु० का० पाणिनि १ ४, ५९ 'उपसर्गा क्रियायोगे ।'

^२ ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ६, ७ में स्पष्ट रूप से इसी सख्या का उल्लेख है । निरुक्त १ ३, वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य ६ २४, और 'प्रादव' वग, में भी वही सख्या मानी गई है ।

^३ तु० की० निरुक्त १ ३ 'नामाख्यातयोर् अर्थविकरणम् ।'

^४ तु० की० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ८ 'उपसर्गो विज्ञेयकृत ।'

अथ श्रवन्तरित्येतान् आचार्यः शाकटायनः ।

उपसर्गान् क्रियायोगान् मेने ते तु त्रयोऽधिकाः ॥ ९५ ॥

'अथ', 'अद्', 'अन्तर्'—इन्हें आचार्य शाकटायन ने क्रिया के साथ योग के कारण उपसर्ग माना है; इनके अन्तर्गत तीन और आते हैं ।

^१ 'अकम्', 'अन्तर' और 'अक्ष', पाणिनि १ ४, ६४ ६५ ६९ में 'गतिषी' हैं।
पाणिनि १ ४, ५९, के वार्तिक-कार ने उपसर्गों की तात्पर्या में 'अद्' भी सम्मिलित कर दिया है।

त्रीण्येव लोके लिङ्गानि पुमान् स्त्री च नपुंसकम् ।

नामसूक्तप्रयोगेषु वार्य्यं प्रकरणं तथा ॥ ९६ ॥

लोक-प्रचलित लिङ्गों की संख्या तीन है, यथा : पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग।^१ सज्ञा, जिसका प्रयोग बताया जा चुका है^२, के प्रकरण का इस प्रकार वर्णन किया जाना चाहिये।^३

^१ तु० की० ऊपर १ ४०।

^२ इससे सम्भवतः ऊपर १ २३-४५ का तात्पर्य है।

^३ अर्थात् लिङ्ग के सम्बन्ध में।

१९-संज्ञा, सर्वनाम, आशय, अन्वय

तेषां तु नामभिरिङ्गैर् ग्रहणं सर्वनामभिः ।

कृताकृतस्य सदृशो गृहीतस्य पुनर्ग्रहः ॥ ९७ ॥

इन नामों का न केवल सज्ञाओं के ही, बल्कि लिङ्ग के माध्यम से भी उल्लेख होता है। सर्वनामों के द्वारा किसी पूर्वोद्धृत सज्ञा का, और इसी प्रकार किसी कृत अथवा अकृत कार्य का बार बार उल्लेख किया जाता है।

पादसूक्तकर्गर्चर्चनामान्यन्यानि यानि च ।

सर्वे नामानि चैवाहुर् अन्ये चैव यथा कथा ॥ ९८ ॥

सभी (आचार्य) यह कहते हैं कि श्लोकों, सूक्तों, श्रुत्याओं, अर्थ श्रुत्याओं में, और अन्वय भी कहीं आनावाले नाम, सज्ञा होते हैं; कुछ लोग परिस्थिति के अनुसार भी इन्हें ऐसा कहते हैं।

^१ क्रियाविशेषण 'कथा' का कुछ प्राचीन सा प्रयोग हुआ है, तु० की० निरुक्त ४ ३ और १० २६ में 'यथा कथा च'।

प्रधानमर्थः शब्दो हि तदुणायत्त इच्छते ।

तस्मात्तानान्वयोपायैः शब्दानर्थवशं नयेत् ॥ ९९ ॥

आशय ही प्रधान होता है;^१ क्योंकि किसी शब्द को आशय^२ के गुणों पर निर्भर रहना पड़ता है; अतः अन्वय के विविध उपायों द्वारा हमें शब्दों को आशय के अन्तर्गत लाना चाहिये।

^१ तु० की० निरुक्त २ १ 'अर्थनित्य परीक्षित' ।

^२ यहाँ श्लोक में 'तत्' से 'अर्थ' का ही सम्बन्ध होना 'शब्दान् अर्थवश नयेत्' द्वारा स्पष्ट है ।

अतिरिक्तं पदं त्याज्यं हीनं वाक्ये निवेशयेत् ।

विप्रकृष्टं च संवध्याद् आनुपूर्वी च कल्पयेत् ॥१००॥

अतिरिक्त पदों का त्याग, जब कि अनुपस्थित पद का वाक्य में समावेश करना चाहिये; और ऐसा शब्द जो बहुत दूर हो उसे सन्निकट काना, तथा उसके बाद शब्दों के क्रम को यथोचित रूप से व्यवस्थित करना चाहिये ।

लिङ्गं धातुं विभक्तिं च संनमेस्तत्र तत्र च ।

यद्यत्स्याच्छान्दसं मन्त्रे तत्तत्कुर्यात्तु लौकिकम् ॥१०१॥

लिङ्ग, धातु और विभक्ति को उनके अपने अपने स्थान पर ही (आशय के अनुकूल) ग्रहण करना चाहिये । किसी भी मन्त्र में जो कुछ भी वैदिक हो उसे लौकिक^२ बना लेना चाहिये ।

^१ तु० की० निरुक्त २ १ 'यथार्थ विभक्ती संनमयेत्' ।

^२ तु० की० ऊपर १ ४ और २३ ।

२०-शब्दों का विग्रह, समास के छ प्रकार

यावतामेव धातूनां लिङ्गं रुढिगतं भवेत् ।

अर्थश्चाप्यभिधेयः स्यात् तावद्भिर्गुणविग्रहः ॥१०२॥

रुढिगत विशिष्ट गुणों से युक्त और जिससे आशय को व्यक्त किया जा सकता है, उन धातुओं की सहायता से गुणों का विग्रह करना चाहिये ।^१

^१ 'धातु' से यहाँ प्रकृति^२ अथवा 'प्रधान' रूप का तात्पर्य है, तु० की० नीचे २ १०८, और ५ ९६ ।

धातूपसर्गावयवगुणशब्दं द्विधातुजम् ।

बह्वेकधातुजं वापि पदं निर्वाच्यलक्षणम् ॥ १०३ ॥

दो धातुओं, अनेक धातुओं, अथवा एक धातु से ही व्युत्पन्न पद ऐसी ध्वनि (शब्द) से युक्त होता है जिसमें धातु, उपसर्ग अवयव और गुण वर्तमान होते हैं ।

धातुजं धातुजाञ्जानं समस्तार्थजमेव वा ।

वाक्यजं व्यतिकीर्णं च निर्वाच्यं पञ्चधा पदम् ॥१०४॥

किसी पद की पाँच प्रकार से व्याख्या की जा सकती है, यथा : किसी धातु से व्युत्पन्न होने, किसी धातु के व्युत्पन्न रूप से व्युत्पन्न होने,^१ किसी समस्तार्थ^२ से व्युत्पन्न होने, तथा किसी वाक्य^३ से व्युत्पन्न होने के रूप में, और उसके आधार पर भी जिसकी व्युत्पत्ति व्यतिकीर्ण^४ (मिश्रित, अस्तव्यस्त) हो।

^१ नीचे (१०६ वें श्लोक में) और निरुक्त २ २, के 'तद्धित' के समान।

^२ अर्थात् एक 'समासान्त' प्रत्यय सहित व्युत्पन्न। तु० की० 'तद्धित-समासेषु', निरुक्त २, २।

^३ जैसे उदाहरण के लिये 'इतिहास' (= इति हास)।

'व्यतिकीर्ण' अर्थात् अक्षरों के हेरफेर द्वारा, तु० की० निरुक्त २ १ 'अध् अन्त-विपर्यय'।

द्विगुर्द्वन्द्वोऽयधीभावः कर्मधारय एव च।

पञ्चमस्तु बहुव्रीहिः षष्ठस्तत्पुरुषः स्मृतः ॥ १०५ ॥

द्विगु, द्वन्द्व, अयधीभाव और कर्मधारय, तथा पाँचवाँ बहुव्रीहि और छठवाँ तत्पुरुष, समास होता है।^१

^१ निरुक्त २ २, पर दुर्ग ने अपने भाष्य में इस श्लोक का उद्धरण दिया है।

वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य (१ २७ और ५ १, पर भाष्य) में 'द्विगु' अथवा कर्मधारय का उल्लेख न होने से केवल चार का ही विभेद किया गया है।

विग्रहान्निर्वचः कार्य समासेष्वपि तद्धिते।

प्रविभज्यैव निर्भ्रूयाद् दण्डाहो दण्ड इत्यपि ॥ १०६ ॥

समस्त तथा तद्धित पदों की विग्रह के आधार पर व्याख्या करनी चाहिये अर्थात् खण्डों का पृथक् करके व्याख्या करनी चाहिये, इस प्रकार 'दण्ड' की 'दण्डाहो' (दण्ड के योग्य) के रूप में व्याख्या करनी चाहिये,

^१ तु० की० निरुक्त २ तद्धित-समासेषु पूर्व पूर्वम् अपरम् अपर प्रविभज्य निर्भ्रूयाद्।

^२ तद्धित का एक उदाहरण तु० की० निरुक्त २ 'दण्ड्य दण्डम् अर्हति'। देखिये पाणिनि ५ १, ६६, भी।

२१-शब्दों का विग्रह और अर्थ

भार्या रूपवती चास्य रूपवद्भार्य इत्यपि।

इन्द्रश्च सोमश्चेत्येवम् इन्द्रासामौ निदर्शनम् ॥ १०७ ॥

और 'रूपवद् भार्य' (रूपवती पत्नी) की 'रूपवती भार्या' (उसकी

पत्नी रूपवती है) के रूप में व्याख्या करनी चाहिये । इसी प्रकार इन्द्र और सोम के लिये प्रयुक्त 'इन्द्रा सोमौ' इन्द्र का उदाहरण है ।

^१ बहुव्रीहि के उदाहरण के रूप में । यास्क ने निरुक्त २ २, ३, में केवल तत्पुरुष मात्र का उदाहरण दिया है, और वह भी बिना इसके नाम के उद्देश के ही ।

शब्दरूपं पदार्थश्च व्युत्पत्तिः प्रकृतिर्गुणः ।

सर्वमेतदनेकार्थं दशानवगमे गुणाः ॥ १०८ ॥

शब्द के रूप, पद के अर्थ, व्युत्पत्ति, प्रकृति, गुण, इन सब के अनेक आशय होते हैं अनवगमन (मिथ्या-ग्रहण) की दृष्टा में (व्याख्या के) इस गुण होते हैं ।^१

^१ अर्थात् उक्त वर्गों के अन्तर्गत पाँच शुद्ध और पाँच अशुद्ध ।

सामान्यवाचिनः शब्दा विशेषे स्थापिताः कश्चित् ।

पलायने यथा वृत्तिः को नु मर्या इतीषते ॥ १०९ ॥

कभी कभी सामान्य अर्थवाले शब्द किसी विशेष आशय में व्यवहृत होते हैं, इस प्रकार 'को नु मर्या' (ऋग्वेद ८ ४५, ३७) मन्त्र में 'इषते' (जाता है) का आशय 'पलायन' है ।

^१ ऋग्वेद ८ ४५, ३७, में 'इषते' शब्द की यास्क ने इस स्थल पर अपनी टिप्पणी में (निरुक्त ४ २) 'पलायते' के रूप में व्याख्या की है, जब कि नैषण्डिक २ १४ में इसकी उन क्रियाओं के अन्तर्गत गणना कराई गई है जिनका अर्थ 'जाना' है ।

विशेषवाचिनस्त्वन्ये सामान्ये स्थापिताः कश्चित् ।

हिमेनाग्निमिति मन्त्रे हिमशब्दो निदर्शनम् ॥ ११० ॥

किन्तु कुछ अन्य विशेषार्थक शब्द कभी कभी सामान्य अर्थ में व्यवहृत होते हैं, 'हिमेनाग्निम्' (ऋग्वेद १ ११६, ८) मन्त्र में 'हिम' शब्द इसका उदाहरण है ।

^१ ऋग्वेद १ ११६, ८ पर अपनी टिप्पणी में यास्क ने (निरुक्त ६ ३६) 'हिमेन' की 'उदकेन ग्रीष्मात्ते' द्वारा व्याख्या की है, तु० की० १ ११६, ८ पर सायण भी ।

पदमेकं समादाय द्विधा कृत्वा निरुक्तवान् ।

पूरुषादः पदं यास्को वृक्षेवृक्ष इति त्वृचि ॥ १११ ॥

'वृक्षे वृक्षे' (ऋग्वेद १० २७, २२) ऋचा में 'पूरुषाद्' जैसे एक पद की यास्क ने दो^२ भागों में विभक्त करके व्याख्या की है ।

^१ इस तथा नाच के श्लोकों (१११-११४) में अनवगमन के कारण पाँच अशुद्ध विरूपणों का उदाहरण दिया गया है।

^२ निरुक्त २ ३६ में यास्क ने 'पुरुषाद्' की 'पुरुषान्' अदनाय के रूप में व्याख्या की है, किन्तु इस आलोचना का कि उन्होंने 'पुरुषाद्' को दो शब्द माना है, कोर्र औचित्य नहीं।

२२-यास्क की अशुद्ध व्याख्यायें, वर्णलोप

अनेकं सप्तथा चान्यद् एकमेव निरुक्तवान् ।

अरुणो मा सकृन्मन्त्रे मासकृद्विग्रहेण तु ॥११२॥

इसी प्रकार 'अरुणो मा सकृत्' (ऋग्वेद १ १९५, १८) मन्त्र में एक अन्य व्याख्या की, जो एक पद नहीं है, उन्होंने (यास्क ने) 'मासकृत' के रूप में ग्रहण करते हुये, केवल एक पद के रूप में ही व्याख्या की है।

^१ इस ऋचा पर अपनी टिप्पणी में यास्क (निरुक्त ५ २१) ने इस शब्द की 'मासानां कर्ता' के रूप में व्याख्या की है। प्रस्तुत ग्रन्थकार पदपाठ से सहमत है। देखिये ऋग्वेद १ १९५, १८, पर सायण भी।

पदव्यवायेऽपि पदे एकीकृत्य निरुक्तवान् ।

गर्भं निधानमित्येते न जामय इति त्वृचि ॥ ११३ ॥

'न जामये' (ऋग्वेद ३ ३१ २) मन्त्र में उन्होंने (यास्क ने) दो पदों—'गर्भं निधानम्'—को एक पद बना कर ही व्याख्या की है, यद्यपि इन दोनों के बीच एक अन्य पद भी आता है।

^१ अर्थात् निरुक्त ३ ६, में इनकी व्याख्या 'गर्भनिधानीम्' है।

^२ 'मनितुर्' ऋग्वेद ३ ३१, २, में 'गर्भं मनितुर् निधानम्' है।

पदजातिरविज्ञाता त्वः पदेऽर्थः शितामनि ।

स्वरानवगमोऽधायि बने नेत्यृचि दर्शितः ॥११४॥

'त्व' ^१ पद में पद की जाति का पता नहीं और न 'शितामन्' ^२ में आज्ञय का ही पता है। 'अधायि' में स्वर का अनवगमन 'बने न' ^३ (ऋग्वेद १० २९, १) ऋचा में व्यक्त होता है।

^१ नि सदेह एक प्राचीन दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुये यास्क (निरुक्त १ ७) ने 'त्व' की निपातों के अन्तर्गण गणना करा है, किन्तु उन्होंने इसे स्पष्ट एक विकृत शब्द माना है (वही १ ८)। अतः प्रस्तुत ग्रन्थकार ने यास्क के इस वाद के दृष्टिकोण की ही आलोचना की है।

^२ यास्क (निरुक्त ४ ३) का कथन है कि इस शब्द का अर्थ 'अग्रवाहु' (दोस्) है, और यहाँ उन्होंने शाकपूणि, तैटीकि, तथा गालव, के विभिन्न विचारों का उद्धरण भी दे दिया है ।

^३ ऋग्वेद १० २९, १ पर टिप्पणी करते हुये यास्क (निरुक्त ६ २८) ने 'बायो नि अथावि' पाठ माना है, जब कि पदपाठ में 'बा यो नि अथायि' है ।

शुनःशेषं नराशांसं यावा नः पृथिवीति च ।

निरस्कृतेतिप्रभृतिष्व् अर्थादासीत्क्रमो यथा ॥११५॥

जिस प्रकार 'शुन-छेपम्'^१, 'नरा-शसम्'^२, 'यावा नः पृथिवी'^३, 'निर अस्कृत'^४ तथा अन्य में अर्थ के अनुसार पदों का क्रम व्यवस्थित किया गया है,

^१ ऋग्वेद ५ २, ७ में 'शुनश् चिच् छेपम्' के लिये, देखिये ऋग्वेद प्रातिशाख्य २ ४३ और ११ ८ ।

^२ ऋग्वेद १० ६४, ३, में 'नरा वा शसम्' के लिये, देखिये ऋग्वेद प्रातिशाख्य ७० स्था० ।

^३ अर्थात् ऋग्वेद २ ४१, २० में इन शब्दों को 'यावापृथिवी न' पठना चाहिये, तु० की० निरुक्त ९ ३८ ।

^४ ऋग्वेद १० १०७, ३, में 'निर् उ स्वसारम अस्कृत' के लिये, तु० की० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १० ४ ११ ५ ।

^५ अर्थात् कर्मपाठ में । इस, तथा वाक् के श्लोक के क्रम का सम्बन्ध इस प्रकार प्रतीत होता है जिस प्रकार आशय की दृष्टि से शब्दों को उपयुक्त क्रम (पद क्रम) से रखना आवश्यक है, उन्ही प्रकार युत्पत्ति के लिये वर्णों को भी उपयुक्त क्रम (वर्ण क्रम) से व्यवस्थित करना आवश्यक है ।

वर्णस्य वर्णयोर्लोपो बहूनां व्यञ्जनस्य च ।

अत्राणीति कपिर्नामा दनो यामीत्यघासु च ॥११६॥

उसी प्रकार एक वर्ण, दो वर्ण, और एक व्यञ्जन का छोप भी होता है, जैसे 'अत्राणि'^१, 'कपिः'^२, 'नामा'^३, 'दन'^४, 'यामिः'^५ और 'अघासु' ।^६

ऋग्वेद १० ७९, २ में 'अत्राणि' के लिये ।

^२ ऋग्वेद १० ८६, ५ में 'वृषा-कपि' के लिये, देखिये निरुक्त १२ २७ ।

^३ ऋग्वेद में 'नामौ' के अतिरिक्त, व्यञ्जनों के पूर्व मिलनेवाला एक सामान्य रूप ।

^४ ऋग्वेद १ १७४, २ पर यास्क (निरुक्त ६ ३१) ने 'दानमनस' के रूप में व्याख्या की है ।

^५ त्वा त्वा यामि (ऋग्वेद १ २४, ११, अथवा ८ ३, ९) में वर्णलोप का यास्क (निरुक्त २ १) द्वारा दिया गया उदाहरण । दुर्ग ने इसकी 'याचामि' के रूप में व्याख्या की है ।

^६ ऋग्वेद १० ८५, १३ में, इसे 'अघासु' माना गया है (अथर्ववेद) का पाठ) ।

२३-शब्द और अर्थ; किया में भावप्रधानता होती है
अर्थात्पदं स्वाभिधेयं पदाद्वाक्यार्थनिर्णयः ।

पदसंघातजं वाक्यं वर्णसंघातजं पदम् ॥११७॥

अर्थ से पद और उसकी अभिधा उत्पन्न होती है, पद से किसी वाक्य के अर्थ का निर्णय होता है। वाक्य का पदों के समूह से, और पदों का वर्णों के समूह से निर्माण होता है।

अर्थात्प्रकरणाद्विज्ञाद् औचित्यादेशकालतः ।

मन्त्रेष्वर्थविवेकः स्याद् इतरेष्विति च स्थितिः ॥११८॥

किसी पद के अर्थ से प्रकरण, छिद्ग, और औचित्य का, तथा देश और काल के विचार से किसी मन्त्र के सम्पूर्ण अर्थ का विवेचन किया जा सकता है; अन्य (मन्त्रों) के सम्बन्ध में भी वही निर्धारित नियम है।

इति नानान्वयोपायैर् नैरुक्ते यो यतेत सः ।

जिज्ञासुर्ब्रह्मणो रूपम् अपि दुष्कृत्परं व्रजेत् ॥११९॥

ब्रह्म^१ के रूप की जिज्ञासा रखनेवाला जो अन्वय के विविध उपायों द्वारा व्युत्पत्ति का इस प्रकार अध्ययन करता है, वह दुष्कर्मी होते हुये भी परम^२ (ब्रह्म) के पास गमन करता है।

^१ अर्थात् वेद ।

^२ तु० की० निरुक्त १ १८ 'योऽर्थज्ञ इत् सकल भद्रम् अश्नुते नाकम् एति शान-
विभूतपाप्मा ।'

यथेदमग्रे नैवासीद् असदप्यथवापि सत् ।

जज्ञे यथेदं सर्वं तद् भाववृत्तं वदन्ति तु ॥१२०॥

किस प्रकार आरम्भ में यह लोक नहीं था—अर्थात् यह अस्तित्वहीन था अथवा अस्तित्व युक्त, किस प्रकार इस विश्व का अस्तित्व हुआ, इस सब सृष्टितत्त्व को 'भाववृत्तम' कहा गया है।

भावप्रधानमाख्यातं षड्विकारा भवन्ति ते ।

जन्मास्तित्वं परीणामो वृद्धिर्हानं विनाशनम् ॥१२१॥

भाव प्रधानता आख्यात का प्रमुख लक्षण होता है और इसके छ विकार^१ माने गये हैं जन्म, अस्तित्व, परीणाम (बदलना), वृद्धि, हानम (घटाव), और विनाश ।^३

^१ यह परिभाषा निरुक्त १ १ (गद्यप्रधानम् वाक्यतन्) के समान है । तु० की०
अन्वेद प्रातिशब्द २ १२, ८ ।

^२ इसे वाक् (निरुक्त १ २) ने बाष्पायणि के मत के रूप में उद्धृत किया है (यह
भावविकारा भवन्ति) ।

^३ निरुक्त १ २ में, जिस पर ही इन षड्विकारों के नाम आधारित हैं । इनके नाम
इस प्रकार हैं 'वायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽप्रक्षीयते विनश्यतीति' ।

२४ व्याहृतियों और ॐ के देवता

एतेषामेव षणां तु यऽन्ये भावविकारजाः ।

ते यथावाक्यमभ्यूह्याः सामर्थ्यान्मन्त्रविस्तमैः ॥१२२॥

किन्तु इन ष 'भावविकारों' से जो अन्य विकार उत्पन्न होते हैं, उनकी,
मन्त्रविद् व्यक्तियों को अपने श्रेष्ठतम सामर्थ्य द्वारा प्रत्येक दशा में वाक्य^२ के
अनुसार ही कल्पना करनी चाहिये,

^१ निरुक्त का वह स्थल (१ ३) जिस पर यह आधारित हैं, अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट
है 'अन्ये भावविकारा एतेषाम् एव विकारा भवन्ति' ।

^२ तु० की० निरुक्त १ ३ 'ते यथावचनम् अभ्यूहितव्या' ।

देवानां च पितॄणां च नमस्कारैस्तथैव च ।

अथ व्यस्तं समस्तं वा शृणु व्याहृतिदेवतम् ॥१२३॥

और इसी प्रकार उनकी, देवों और पितरों को प्रस्तुत नमस्कारों^१ की
प्रकृति के अनुसार भी, कल्पना करनी चाहिये ।

अब वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से व्याहृतियों^२ के देवताओं को सुनें ।

^१ अर्थात् भावविकार की कल्पना केवल वाक्यानुसार ही नहीं बल्कि उसमें निहित
नमस्कार के आधार पर भी करनी चाहिए ।

^२ अर्थात् तीन रहस्यात्मक शब्द 'भूर्, भुव, स्व' ।

व्याहृतीनां समस्तानां दैवतं तु प्रजापतिः ।

व्यस्तानामयमग्निश्च वायुः सूर्यश्च देवताः ॥१२४॥

अब, सामूहिक रूप से व्याहृतियों के देवता प्रजापति^१ हैं, जब कि पृथक्-
पृथक् इनके वैयक्तिक देवता क्रमशः अग्नि, वायु, और सूर्य हैं ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी, भूमिका २ १० 'समस्तानां प्रजापति' ।

वाग्देवत्योऽथवाप्यैन्द्रो यदि वा परमेष्ठिनः ।

ओंकारो वैश्वदेवो वा ब्राह्मो देवः क एव वा ॥ १२५ ॥

ओंकार का देवता वाक् होता है; अथवा वह इन्द्र को सम्बोधित होता

है; अथवा इसका देवता परमेष्ठिन् होता है; अथवा यह विश्वेदेवों को, अथवा ब्रह्म को, अथवा सामान्य रूप से देवों को सम्बोधित होता है, अथवा 'क' इसका देवता होता है ।^१

^१ सर्वानुक्रमणा, भूमिका ० ११, इसी श्लोक पर आधारित है, किन्तु उसमें वाच् और इन्द्र को सम्मिलित नहीं किया गया है, तथा 'क' के स्थान पर 'आध्यात्मिक' (देखिये षड्गुरुशिष्य) है ।

ऋग्वेद के देवता

२५ प्रथम तीन सूक्त विश्वेदेव-सूक्तों के ऋषि

आग्नेयं प्रथम सूक्त मधुछन्दस आर्षकम् ।

ज्ञेयाः सर्वेऽन्यदेवत्यास् तृचाः सप्तात् उत्तराः ॥१२६॥

प्रथम सूक्त अग्नि को सम्बोधित है । इसके ऋषि मधुछन्दस् हैं । इसके बाद की तीन तीन ऋचाओं के सात त्रिकों को विभिन्न देवों को सम्बोधित मानना चाहिये ।

^१ अर्थात् वह जो ऋग्वेद १ २-३ में आते हैं ।

वायव्यः प्रथमस्त्वेषाम् ऐन्द्रवायव उत्तरः ।

मैत्रावरुणोऽथाश्विनोऽप्यैन्द्रोऽतो वैश्वदेवकः ॥१२७॥

इनमें से प्रथम तीन (१ २, १-३) वायु को सम्बोधित हैं, उसके बाद (२, ४-६) इन्द्र तथा वायु को, उसके बाद (२, ७-९) मित्र-वरुण को, तथा फिर (३, १-३) अश्विनों को, और उसके बाद (३, ४-६) इन्द्र, तथा फिर (३, ७-९) विश्वेदेवों को ।

तन्नामा विश्वलिङ्गो वा गायत्रोऽन्त्यस्तु यस्तृचः ।

बहुदैवतमन्यत्तु वैश्वदेवेषु शस्यते ॥१२८॥

अब, गायत्री छन्द में रचित अन्तिम तीन ऋचाओं के त्रिक का (१ ३, ७-९) प्रमुख लक्षण वह नाम^१ अथवा 'विश्व' का उल्लेख है । किन्तु विश्वेदेव सूक्तों^२ के स्थान पर अनेक देवताओं को सम्बोधित किसी अन्य सूक्त द्वारा भी स्तुति की जा सकती है ।

^१ अर्थात् इसमें से प्रत्येक ऋचा में 'विश्वे देवास' नाम आता है, अथवा, दूसरे शब्दों में 'विश्व' शब्द का प्रयोग इनका प्रमुख लक्षण है ।

^२ यास्क (निरुक्त १२ ४०) के अनुसार विश्वेदेवों को सम्बोधित केवल यहाँ ऋचायें (१ ३, ७-९) गायत्री छन्द में रचित हैं । किन्तु इनका यह भी कथन है कि अनेक देवों को सम्बोधित किसी भी सूक्त का विश्वदेवों की स्तुति के लिए व्यवहार

किया जा सकता है 'अथ तु किं विद् बृहदेकवक्त्रं वैश्वदेवानां स्थाने पुण्यते'।
त० की० सर्वानुकमणी १ १३९, पर बृहदगुरुक्षिप्त्वा भी।

लुशे दुवस्यौ शार्याते गोतमेऽथ ऋजिष्वनि ।
अवत्सारे पुरुषे अत्रौ दीर्घतमस्युषौ ॥१२९॥
वसिष्ठे नामानेदिष्टे गये मेधातिथौ मनौ ।
कञ्जीवति विह्व्ये च बहुष्वन्येष्वथर्षिषु ॥१३०॥
अगस्त्ये बृहदुष्ये च विश्वामित्रे च गाथिनि ।
हृद्यन्ते विप्रवादाश्च तासु तासु स्तुतिष्विह ॥१३१॥

लुश^१, दुवस्यु^२, शार्याते^३, गोतम^४, ऋजिष्व^५, अवत्सारे^६, वसिष्ठे^७,
अत्रि^८, ऋषि दीर्घतमस्^९, वसिष्ठ^{१०}, नामानेदिष्ट^{११}, गय^{१२}, मेधातिथि^{१३}, मनू^{१४},
कञ्जीवत्^{१५} विह्व्य^{१६}, तथा अनेक अन्य ऋषिषी^{१७}, और अगस्त्य^{१८}, बृहदुष्य^{१९},
विरवामित्र^{२०} तथा गाथिन्^{२१}—इन सब की अपनी-अपनी स्तुतिषीं
(ऋग्वेद की) में विभेद^{२२} उल्लिखित होते हैं ।^{२३}

^१ ऋग्वेद १० ३५ ३६ का ऋषि ।

^२ ऋग्वेद १० १०० का ऋषि ।

^३ ऋग्वेद १० ५२ का ऋषि ।

^४ ऋग्वेद १ ८९ ९० का ऋषि ।

^५ ऋग्वेद ६ ४९-५२ का ऋषि ।

^६ ऋग्वेद ५ ४४ का ऋषि ।

^७ ऋग्वेद १ १३९ का ऋषि ।

^८ ऋग्वेद ६ ४१-४३ का ऋषि ।

^९ ऋग्वेद १ १६४ का ऋषि ।

^{१०} ऋग्वेद ७ ३४-३७ ३९ ४० ४२
४३ के ऋषि ।

^{११} ऋग्वेद १० ६१ ६२ के ऋषि ।

^{१२} ऋग्वेद १० ६३ ६४ के ऋषि ।

^{१३} ऋग्वेद १ १४ का ऋषि ।

^{१४} ऋग्वेद ८ २७-३० के ऋषि ।

^{१५} ऋग्वेद १ १२१ १२२ के ऋषि ।

^{१६} ऋग्वेद १० १०८ का ऋषि ।

^{१७} वहाँ उल्लिखित बीस ऋषिषीं के

अतिरिक्त ऋग्वेद के विश्वदेव-सूक्त
के दस अन्य ऋषि भी हैं, देखिये
ऑफरेकृत ऋग्वेद, भाग दो, पृ०
६६८, पर 'देवा' के नीचे ।

^{१८} ऋग्वेद १ १८६ का ऋषि ।

^{१९} ऋग्वेद १० ५६ का ऋषि ।

^{२०} ऋग्वेद ३ ५७ का ऋषि ।

^{२१} ऋग्वेद ३ ९० का ऋषि ।

^{२२} अर्थात् इन सब ऋषिषीं द्वारा अपने
अपने विश्वदेव सूक्तों में सम्मोहित
देवीं में परस्पर अन्तर मिलता है ।

^{२३} इन तीनों श्लोकों में उल्लिखित बीसों
ऋषि ऋग्वेद के विश्वदेव-सूक्तों के
प्रणेता हैं । इनमें से तीन (अत्रि,
गाथिन् और नामानेदिष्ट) को छोड़
कर शेष सबके नामों को नीचे
३ ५५-५९ में पुनः डहराते हुए
बीस अन्य का भी उल्लेख है ।

२१-विश्वेदेव-सूक्तों की प्रकृति

बहूनीनां संनिपातस्तु यस्मिन्मन्त्रे प्रहृश्यते ।

आचार्यो यास्कशाण्डिल्यौ वैश्वदेवं तदाहृतुः ॥१३२॥

यास्क^१ तथा शाण्डिल्य नामक ऋषियों का कथन है कि कोई भी मन्त्र, जिसमें अनेक (देवताओं) का सम्मिश्रण हो, विश्वेदेवों को सम्बोधित होता है ।

^१ निरुक्त १२ ४० में ।

पादं वा यदि वार्षर्ष्यम् ऋचं वा सूक्तमेव वा ।

वैश्वदेवं वदेत्सर्वं यत्किंचिद्बहुदैवतम् ॥१३३॥

अनेक देवताओं को सम्बोधित श्लोक, अर्षऋषा, ऋषा, अथवा सूक्त, चाहे जो कुछ भी हो, उसके सब कुछ को विश्वेदेवों को सम्बोधित कहना चाहिये ।^१

^१ देखिये ऊपर २ १२८ १३२, और निरुक्त १२ ४० ।

ऋषिभिर्देवताः सर्वा विश्वामि स्तुतिभि स्तुताः ।

संज्ञा तु विश्वमित्येषा सर्वावाप्तौ निपातिता ॥१३४॥

सर्व देवताओं की ऋषिगण विश्व-स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हैं, यहाँ इस 'विश्व' संज्ञा से सर्व-व्याप्तता^१ का नैपातिक तात्पर्य है ।

^१ अर्थात् हमका 'विश्वेदेवा' के आशय में प्रयोग किया गया है ।

२७-सरस्वती को संबोधित ऋग्वेद के स्थल । इन्द्र-सूक्त ।

सारस्वतस्तु सप्तम एताः प्रउगदेवताः ।

सरस्वतीति द्विविधम् ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता ॥१३५॥

अब तीन ऋषियों का सातवाँ श्रिक (१ ३, १० १२) सरस्वती को सम्बोधित किया गया है । यह प्रउग देवी है ।^१ इसकी सभी मन्त्रों में सरस्वती के नाम से दो विधियों से स्तुति की गई है

^१ ऋग्वेद १ ३, १०-१२ की, जहाँ सरस्वती एक प्रउग देवी के रूप में आती है, निरुक्त ११ २६, २७ में व्याख्या की गई है । ऋग्वेद २ ४१, १६-१८, में सरस्वती पुनः एक प्रउग देवी के रूप में आती है । तु० की० नोवे ४ ९२ ।

नदावहेवतावश्च तत्राचार्यस्तु शौनकः ।

नदीवन्निगमाः षट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह ॥१३६॥

एक नदी के रूप में और एक देवी के रूप में । इस सम्बन्ध में आचार्य

सौम्य का कथन है कि नदी' के रूप में इसकी स्तुति करनेवाले एक ऋः हैं सातवाँ यहाँ :

^१ तु० की० निरुक्त २ २३ 'सरस्वतीत् पतस्य नदीवद् देवतावच् च निगमा भवन्ति' ।

अम्येका च ह्यष्टस्यां चित्र इव सरस्वती ।

इयं शुष्मेभिरित्येतं मेने यास्कस्तु सप्तमम् ॥१३७॥

इन ऋ के अन्तर्गत 'अग्नि-तमे' (ऋग्वेद २ ४१, ६),^१ 'एका' (ऋग्वेद ७ ९५, २), 'ह्यष्टस्याम्' (ऋग्वेद ३. २३, ४), 'चित्र इव' (ऋग्वेद ८ २१, १८), 'सरस्वती' (ऋग्वेद १० ६४, ९, और ६ ५२, ६) आते हैं । फिर भी यास्क ने 'इयं शुष्मेभि' (ऋग्वेद ६ ६१, २)^२ को सातवाँ माना है ।

^१ इस स्थल पर सरस्वती पुन एक प्रजग देवी है तु० की० ऊपर २ १३५ पर टिप्पणी ।

^२ ऋग्वेद में 'सरस्वती' से आरम्भ होने वाले तीन पाद हैं 'सरस्वती सरष्टु सिन्धु' (१० ६४, ९), 'सरस्वती सिन्धुभि पिन्वमाना' (६ ५२, ६), और 'सरस्वती माधयन्ती पियम्' (२ ३, ८) ।

^३ यास्क ने इस मन्त्र को स्पष्टत नदी के रूप में सरस्वती को सम्बोधित माना है ('अथेतन नदीवद्', निरुक्त २ २३) ।

पशोः सारस्वतस्यैतां याज्यां मैत्रायणीयके ।

प्राधान्याद्धविषः पश्यन् वाच एवैतरोऽब्रवीत् ॥१३८॥

ऐतर् ' मे मैत्रायणीय ' में सरस्वती को समर्पित हवि के लिये इस मन्त्र को 'याज्या' मानते हुये इसे 'वाच्' को सम्बोधित माना है, क्योंकि यहाँ हवि की ही प्रधानता है ।

^१ यह नाम अन्यत्र नहीं मिलता ।

^२ ४ १४, ७ ('याज्यानुवाक्या' मन्त्रों के अन्तर्गत) ।

^३ अर्थात् सरस्वती = वाच्, तु० की० निरुक्त ७ २३ जहाँ सरस्वती भी वाच् के स्तुति नामों में से एक है । नैषण्डक १ ११ भी देखिये ।

^४ अर्थात् वह की दृष्टि से देखते हुये यह मानना पड़ेगा कि यहाँ नदी नहीं बरन् देवी को ही सम्बोधित किया गया है ।

सुरूपकृत्तुमित्येन्द्रं सप्त चान्यान्यतः परम् ।

पळावद् स्वधामनु माकृत्योऽनन्तरा कृत्वाः ॥१३९॥

'सुरूपकृत्तु' श्रुत (ऋग्वेद १. ४) तथा इसके बाद के सप्त अन्य (१

५-११) इन्द्र को सम्बोधित है। इनमें लगातार छः मन्त्र ('आवृ स्वधा-
मनु', ऋग्वेद १ ६, ४-९, से आरम्भ होनेवाले) मन्त्रों को सम्बोधित हैं।

२८-ऋग्वेद १ ६ में इन्द्र, मरुतों के साथ सम्बद्ध हैं
एका बीळु चिदिन्द्राय मरुद्भिः सह गीयते।

तस्या एकान्तरायास्तु अर्धर्षोऽन्त्यो द्विदेवतः ॥१४०॥

उक्त छ मन्त्रों में से एक ('बीळुचिद्', ऋग्वेद १ ६, ५) का मरुतों
के साथ इन्द्र की प्रशस्ति में गायन किया गया है। किन्तु बाद के मन्त्र की
अर्ध-ऋचा (अर्थात् ऋग्वेद १ ६, ७)^१ दो देवों को सम्बोधित है।

^१ अर्थात् पृतीयपाद, क्योंकि यह मन्त्र गायत्री छन्द में है।

मरुद्गणप्रधानो हीत्थं चेन्द्रो विचिकित्सित।

मन्दु समानवर्चसा मन्दुना वा सर्वर्चसा ॥१४१॥

क्योंकि, यद्यपि यह (उक्त अर्ध-ऋचा) प्रमुखतः मरुद्गणों को सम्बोधित
है, तथापि इसमें इन्द्र की विशिष्टता इस प्रकार दिखाई गई है 'दोनों ही एक
समान तेज वाले हैं' (मन्दु समानवर्चसा); अथवा इसका यह अर्थ है
'उसके साथ जो समान तेज वाला है।'^१

^१ व्याख्याओं के यह दोनों विकल्प निरुक्त ४ १२ (मन्दु मदिष्ण युवास्थ अपि वा
मन्दुना तेनेति स्यात्, समानवर्चसेत्य एतेन व्याख्यातम्) पर आधारित हैं।

मन्दु इति प्रगृह्णन्ति येषामेव द्विदेवतः।

एकदेवत्यमाभ्राव्यो विज्ञायाध्ययनात्पदम् ॥ १४२ ॥

जिन्हें यह अर्ध-ऋचा दो देवों को सम्बोधित प्रतीत होती है वह 'मन्दु'
की 'प्रगृह्ण'^२ के रूप में व्याख्या करते हैं। किन्तु अपने अध्ययन के आधार
पर जो इस पाद में केवल एक देवता मानता है, उसे भी सुनना चाहिये,

^१ यहाँ दो देवता मरुद्गण तथा इन्द्र होंगे।

^२ पदपाठ में 'मन्दु' को प्रगृह्ण माना गया है।

रोदसी देवपत्नीनाम् अथर्वाङ्गिरसे यथा।

मरुद्गणप्रधानेयम् आचार्याणां स्तुतिर्मता ॥१४३॥

जैसे अथर्ववेद में रोदसी की वेशों की पत्नियों में से एक माना गया है।^१

इस स्तुति को आचार्यों ने प्रमुखतः मरुद्गण को ही सम्बोधित माना है।

^१ ऋग्वेद ५ ४६, ८ के पदपाठ में 'रोदसी' को प्रगृह्ण माना गया है। यही मन्त्र
अथर्ववेद ७ ४६, ८ में भी आता है। इस पर टिप्पणी करते हुए वास्क (निरुक्त

१२. ४६) के 'रोदसी' की 'रुद्रस्व पत्नी' के रूप में व्याख्या की है। तु० की० ऋग्वेद ५. ४६, ८ पर सावय भी।

मरुद्गणप्रधानत्वाद् इन्द्रस्तु विधिकित्सितः ।

मरुद्गणं महेन्द्रस्य समांशं सकलं विदुः ॥१४४॥

यद्यपि यहाँ प्रमुखतः मरुतों को ही सम्बोधित किया गया है, तथापि इन्द्र का भी निवेद किया गया है, क्योंकि समस्त मरुद्गण महान इन्द्र के साथ अन्न के भागी होते हैं।

२९-ऋग्वेद १ १२, तथा आप्री-सूक्त १ १३ के देवता

अग्निमित्यग्निदैवत्यं पादस्तत्र द्विदेवतः ।

निर्मथ्याहवनीयार्थाद् अग्निनाग्निः समिध्यते ॥१४५॥

अग्निम्' सूक्त (ऋग्वेद १ १२) के प्रमुख देवता अग्नि हैं। इस सूक्त का एक पाद (अग्निनाग्निं सम् इध्यते १ १२, ६) को देवताओं को सम्बोधित किया गया है जिनसे निर्मथ्य और आहवनीय' का तात्पर्य है।

'यह दोनो अग्नि के रूप हैं, जिनमें से प्रथम मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि का नाम है और द्वितीय हवि की अग्नि का। तु० की० ऋग्वेद १ १२ पर सर्वानुक्रमणी 'पादो द्व्यग्निदैवतो निर्मथ्याहवनीयो'।

द्वितीये द्वादशर्चे तु प्रत्यृषं यास्तु देवताः ।

स्तूयन्ते अग्निना सार्वं तासां नामानि मे शृणु ॥१४६॥

अब मुझसे प्रत्येक ऋचा के अनुसार उन देवताओं के नाम सुनें जिनकी बारह मंत्रों के दूसरे सूक्त (अर्थात् १ १३) में अग्नि के साथ स्तुति की गई है।

प्रथमायां स्तुतश्चेध्मो द्वितीयायां तनूनपात् ।

नराशंसस्तृतीयायां चतुर्थ्यां स्तूयते त्विळः ॥१४७॥

प्रथम ऋचा में 'इध्म' की स्तुति है, दूसरे में 'तनूनपात्' की, और तीसरे में 'नराशंस' की, किन्तु चौथे में 'इळ' की स्तुति है।

बहिरेष तु पञ्चम्यां द्वारो देव्यस्ततोऽन्यथा ।

नक्तोषास्ता तु सप्तम्याम् अष्टम्यां संस्तुतौ सह ॥१४८॥

दैव्याविति तु होतारी नवम्यामृचि संस्तुताः ।

तिन्नो देव्यो दशम्यां तु ज्ञेयस्त्वष्टैव तु स्तुतः ॥१४९॥

चौथे में बहिर्ष की, उसके बाद (की ऋचा में) दिव्य द्वारों की

(३ वीं ऋचा में), सातवें में नक्षोपासा (रात्रि और उषस) की, जबकि आठवें में साथ साथ दो दिव्य होताओं की स्तुति है, नवें में तीन देवियों की स्तुति की गई है; किन्तु दसवें में स्वप्न की स्तुति जानना चाहिये ।

३०-ग्यारह आग्नी सूक्त

एकादश्यां तु सूक्तस्य स्तुतं विद्याद्वनस्पतिम् ।

द्वादश्यां तुस्तुता देवीर् विद्यात्स्वाहाकृतीरिति ॥१५०॥

इस सूक्त की ग्यारहवीं ऋचा में वनस्पति की स्तुति जानना चाहिये; किन्तु बारहवीं में दिव्य स्वाहाकृतियों की स्तुति जानना चाहिये ।

सूक्तेऽस्मिन्प्रत्यृचं यास्तु देवता. परिकीर्तिताः ।

ता एव सर्वास्वाग्नीषु द्वितीया तु विकल्पते ॥१५१॥

इस सूक्त (१ १३) की प्रत्येक ऋचा में जिन जिन देवताओं की प्रशस्ति है वह सब आग्नी सूक्तों में भी आते हैं, फिर भी द्वितीय देवता वैकल्पिक है ।^१

^१ यह विकल्प किस प्रकार व्यवहृत हुआ है, इसके लिये देखिये नीचे २ १५५-१५७ ।

प्रैषैः सहाग्नीसूक्तानि तान्येकादश सन्ति च ।

यजूंषि प्रैषसूक्तं वा दशैतानीतराणि तु ॥१५२॥

प्रैषों तथा आग्नी सूक्तों की सख्या ग्यारह है; अथवा प्रैष सूक्त^१ में यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र (यजूंषि) हैं, जब कि इन अन्ध (ऋग्वेद के सूक्तों) की सख्या दस है ।^२

^१ इ हैं बारह यजूंषि कहते हैं, अर्थात् वाजसनेयि संहिता (२१ २९-४०) में आने वाले सूक्त । यास्क (निरुक्त ८ २२) ने इनको 'प्रैषिकम्' के रूप में व्यक्त किया है और इन्हें ग्यारह आग्नी सूक्तों के अन्तर्गत रक्खा है (तान्य् एतान्य् एकादशा प्रीसूक्तानि) ।

^२ ऋग्वेद के दस आग्नी सूक्तों की, सर्वानुक्रमणी के मैकडोनेल के संस्करण की अनुवाकानुक्रमणी (१०-१२, पृ० ४८) में गणना कराई गई है । देखिये आश्वलायन श्रौतसूत्र ३ २, ५ और बाद, भी ।

सौत्रामणानि तु त्रीणि प्राजापत्याश्वमेधिके ।

पुरुषस्य तु यन्मेधे यजुःष्वेव तु तानि षट् ॥१५३॥

इन (आग्नी सूक्तों) में से तीन सौत्रामणी^१ से और एक प्राजापति^२ से सम्बद्ध हैं, तथा एक का अश्वमेध^३ के समय और एक का पुरुषमेध^४ के समय व्यवहार होता है; षट् छ यजुर्वेद में आते हैं ।

- अर्थात् वाक्सनेयि संहिता २० ३६-४६ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १३ ९, २, १६), २० ५५-६६ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १२ ८, २, १९); २१ १२-२२ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १२ ९, ३, १६) ।
- २ अर्थात् वाक्सनेयि संहिता २७. ११-२२ (देखिये प्रथम सन्ध पर भाष्य और तु० की० शतपथ ब्राह्मण ६ २, २, १ और बाद) ।
- ३ वाक्सनेयि संहिता २९ १-११ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १३ २, २, १४) ।
- ४ शाङ्खायन श्रौतसूत्र १६ १२, ८ में 'अग्निर् सृष्टुः' से आग्रस्य होने वाले के रूप में उद्धृत ।

अत्रैव प्रैषसूक्तं स्यान् न यजुःष्वाम्रियेत तत् ।

तेषां प्रैषगतं सूक्तं यच्च दीर्घतमा जगौ ॥१५४॥

यहाँ केवल प्रैष-सूक्त (वाक्सनेयि संहिता २१ २९-४०) पर ही विचार करना है, जिनका यजुर्वेद में उल्लेख है उसके सम्बन्ध में नहीं ।

उक्त (ग्यारह) सूक्तों में से प्रैष से सम्बद्ध, और जिसका दीर्घतमस् ने गाथन (ऋग्वेद १ १४२) किया,

२१-आग्नीसूक्तों में तनूनपात् और नराशंस; अग्नि का एक रूप इधम मेधातिथौ यदुक्तं च त्रीण्येवोभयवन्ति तु ।

ऋषौ गृत्समदे यच्च वाभ्र्यद्वे च यदुच्यते ॥१५५॥

और जिसका मेधातिथि (१ १३) में उल्लेख है—केवल इन्हीं तीन में दोबों^१ (तनूनपात् और नराक्षस) निहित हैं । जिनका गृत्समद^२ (२३) और वाभ्र्य^३ (१० ७०) में उल्लेख है,

^१ जो ऊपर १ १४, १५ के अनुसार ऋषि सूक्त हैं ।

^२ 'उभयवन्ति' देखिये निरुक्त ८ २२ 'मैधातिथि दैष्टतमस प्रैषिकम् इत्य् उभयवन्ति' ।

नराशंसवदत्रेभ्य ददर्श च यदौर्वशः ।

तनूनपादगस्त्यश्च जमदग्निश्च यज्जगौ ॥ १५६ ॥

अग्नि के दो (५५), और उसमें जिसका उर्वशी-पुत्र (वसिष्ठ) ने दर्शन किया था (७ २), नराक्षस निहित है । तनूनपात् उनमें जाता है जिनका जमदग्नि (१ १८८) और जमदग्नि^१ (१० ११०) ने गाथन किया,

^१ तु० की० शांख निरुक्त ८ ४-२१ ।

विश्वामित्र ऋषिर्यश्च जगौ वै काश्यपोऽसितः ।

मेधातिथेर्ऋषां यास्तु प्रोक्ता द्वावश्च देवताः ॥ १५७ ॥

और (उनमें जी) जिनका ऋषि विश्वामित्र (३४) और करषप-युव
असित (९५) ने गायन किया ।

उन बारह देवताओं के सम्बन्ध में, जिनका मेधासिद्धि की ऋचाओं
(११३,१—१२) में आनेवालों के रूप में उल्लेख किया गया है,

^१ ऊपर २ १४६-१५० ।

संपद्यन्ते यथाग्नि तां संपदं तां निबोधत ।

इध्मो यः सर्वमेवाग्निर् अयं हीध्मः समिध्यते ॥

ध्मातेर्वैतत्कृत् रूपं ध्मातो हीध्मः समिध्यते ॥१५८॥

उस पद्धति को जानिये जिसके अनुसार यह अग्नि को व्यक्त करते हैं ।

इध्म वह अग्नि है जो सब कुछ है, क्योंकि यह अग्नि ईंधन के रूप में ही
प्रज्वलित होते हैं । अथवा यह रूप 'ध्मा धातु से बना है, क्योंकि धौकने से
ही ईंधन को प्रज्वलित किया जाता है ।

^१ यह शु पति यास्क द्वारा निरुक्त ८ ४ (इध्म समिधनात्) में दो हुई एकमात्र
शुत्पत्ति के समान है ।

॥ इति बृहदेवतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥



किया जा सकता है 'यत् तु किं विद् बहुदेवसं त्वं त्रैमदेवानां स्थाने भुज्यते' ।
त० को० सर्वानुक्रमणी १. १३९, पर बहुश्रुतिष्व भी ।

तुशे दुवस्यौ शार्याति गोतमेऽथ ऋजिष्वनि ।
अवस्तारे परुछेपे अघौ दीर्घतमस्युषौ ॥१२९॥
वसिष्ठे नामानेदिष्ठे गये मेधातिथौ मनौ ।
कक्षीवति विहव्ये च बहुष्वन्येष्वथर्विषु ॥१३०॥
अगस्त्ये बृहदुष्ये च विश्वामित्रे च गाथिनि ।
हृद्यन्ते विप्रवादाश्च तासु तासु स्तुतिष्विह ॥१३१॥

तुश^१, दुवस्यु^२, शार्याति^३, गोतम^४, ऋजिष्व^५, अवस्तार^६, परुछेप^७,
अत्रि^८, ऋषि दीर्घतमस्^९, वसिष्ठ^{१०}, नामानेदिष्ठ^{११}, गय^{१२}, मेधातिथि^{१३}, मनु^{१४},
कक्षीवत्^{१५} विहव्य^{१६}, तथा अनेक अन्य ऋषियों^{१७}, और अगस्त्य^{१८}, बृहदुष्य^{१९},
विश्वामित्र^{२०} तथा गाथिन्^{२१}—इन सब की अपनी-अपनी स्तुतियों
(ऋग्वेद की) में विशेष^{२२} उल्लिखित होते हैं ।^{२३}

- ^१ ऋग्वेद १० ३५ ३६ का ऋषि ।
- ^२ ऋग्वेद १० १०० का ऋषि ।
- ^३ ऋग्वेद १० ९२ का ऋषि ।
- ^४ ऋग्वेद १ ८९ ९० का ऋषि ।
- ^५ ऋग्वेद ६ ४९-५२ का ऋषि ।
- ^६ ऋग्वेद ५ ४४ का ऋषि ।
- ^७ ऋग्वेद १ १३९ का ऋषि ।
- ^८ ऋग्वेद ६ ४१-४३ का ऋषि ।
- ^९ ऋग्वेद १ १६४ का ऋषि ।
- ^{१०} ऋग्वेद ७ ३४-३७ ३९ ४० ४२
४३ के ऋषि ।
- ^{११} ऋग्वेद १० ६१ ६२ के ऋषि ।
- ^{१२} ऋग्वेद १० ६३ ६४ के ऋषि ।
- ^{१३} ऋग्वेद १ १४ का ऋषि ।
- ^{१४} ऋग्वेद ८, २७-३० के ऋषि ।
- ^{१५} ऋग्वेद १ १२१ १२२ के ऋषि ।
- ^{१६} ऋग्वेद १० १२८ का ऋषि ।
- ^{१७} यहाँ उल्लिखित बीस ऋषियों के

- अतिरिक्त ऋग्वेद के विश्वेदेव-सूक्त
के दस अन्य ऋषि भी हैं, देखिये
ऑफरसेत्त ऋग्वेद, भाग दो, पृ०
६६८, पर 'देवा' के नीचे ।
- ^{१८} ऋग्वेद १ १८६ का ऋषि ।
 - ^{१९} ऋग्वेद १० ५६ का ऋषि ।
 - ^{२०} ऋग्वेद ३ ५७ का ऋषि ।
 - ^{२१} ऋग्वेद ३ २० का ऋषि ।
 - ^{२२} अर्थात् इन सब ऋषियों द्वारा अपने
अपने विश्वेदेव सूक्तों में सम्बोधित
देवों में परस्पर अन्तर मिलता है ।
 - ^{२३} इन तीनों श्लोकों में उल्लिखित बीसों
ऋषि ऋग्वेद के विश्वेदेव-सूक्तों के
प्रणेता हैं । इनमें से तीन (अत्रि,
गाथिन् और नामानेदिष्ठ) को छोड़
कर शेष मन्त्र के नामों को नीचे
६ ५५-५९ में पुनः दुहराते हुए
बीस अन्य का भी उल्लेख है ।

२६-विश्वेदेव-सूक्तों की प्रकृति
 बह्वीनां संनिपातस्तु यस्मिन्मन्त्रे प्रहृश्यते ।
 आचार्यो यास्कशाण्डिल्यौ वैश्वदेवं तदाहतुः ॥१३२॥

यास्क^१ तथा शाण्डिल्य नामक आचार्यों का कथन है कि कोई भी मन्त्र, जिसमें अनेक (देवताओं) का सन्निवेश हो, विश्वेदेवों को सम्बोधित होता है ।

^१ निरुक्त १२ ४० में ।

पादं वा यदि वार्ध्वम् ऋचं वा सूक्तमेव वा ।
 वैश्वदेवं वदेत्सर्वं यत्किञ्चिद्बहुवैतम् ॥१३३॥

अनेक देवताओं को सम्बोधित रखेक, अर्धऋचा, ऋचा, अथवा सूक्त, चाहे जो कुछ भी हो, उसके सब कुछ को विश्वेदेवों को सम्बोधित कहना चाहिये ।^१

^१ देखिये ऊपर २ १२८ १३२, और निरुक्त १० ४० ।

ऋषिभिर्देवताः सर्वा विश्वाभि स्तुतिभि स्तुताः ।
 संज्ञा तु विश्वमित्येषा सर्वावाप्तौ निपातिता ॥१३४॥

सर्व देवताओं की ऋषिगण विश्व-स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हैं, यहाँ इस 'विश्व' संज्ञा से सर्व-व्याप्तता^१ का नैपातिक तात्पर्य है ।

^१ अर्थात् हमका 'विश्वेदेवा' के आशय में प्रयोग किया गया है ।

२७-सरस्वती को संबोधित ऋग्वेद के स्थल । इन्द्र-सूक्त ।

सारस्वतस्तु सप्तम एताः प्रउगदेवताः ।
 सरस्वतीति द्विविधम् ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता ॥१३५॥

अब तीन ऋचाओं का सातवाँ त्रिक (१ ६, १०-१२) सरस्वती को सम्बोधित किया गया है । यह प्रउग देवी है ।^१ इसकी सभी मन्त्रों में सरस्वती के नाम से दो विधियों से स्तुति की गई है

^१ ऋग्वेद १ ३, १०-१२ की, जहाँ सरस्वती एक प्रउग देवी के रूप में आती है, निरुक्त ११ २६, २७ में व्याख्या की गई है । ऋग्वेद २ ४१, १६-१८, में सरस्वती पुन एक प्रउग देवी के रूप में आती है । जु० को० नीचे ४ ९२ ।

नदावद्देवतावश्च तत्राचार्यस्तु शौनकः ।
 नदीवस्निगमाः षट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह ॥१३६॥

एक नदी के रूप में और एक देवी के रूप में । इस सम्बन्ध में आचार्य

कीनक का कथन है कि यही' के रूप में इसकी स्तुति करवेवाके लक्ष्य का है साक्षर्यो यही :

^१ तु० की० निरुक्त २ २३ 'सरस्वतीत् पतस्य नदीवद् देवतावद् च निगमा भवन्ति' ।

अम्ब्येका च हृषद्भृत्यां चित्र इव सरस्वती ।

इयं शुष्मेभिरित्येतं मेने यास्कस्तु सप्तमम् ॥१३७॥

इव इ: के अन्तर्गत 'अम्बि-समे' (ऋग्वेद २. ४१, ६),^१ 'यका' (ऋग्वेद ७ ९५, २), 'हृषद्भृत्याम्' (ऋग्वेद ३. २३, ४), 'चित्र इव' (ऋग्वेद ८ २१, १८), 'सरस्वती' (ऋग्वेद १०. ६४, ९, और ६ ५२, ६) आते हैं। फिर भी यास्क ने 'इव शुष्मेभि' (ऋग्वेद ६ ६१, २)^२ को साक्षर्यो माना है।

^३ इस स्थल पर सरस्वती पुन एक प्रलय देवी है तु० की० ऊपर २ १३५ पर टिप्पणी।

^४ ऋग्वेद में 'सरस्वती' से आरम्भ होने वाले तीन पाद हैं 'सरस्वती सरसु सिन्धु' (१० ६४, ९), 'सरस्वती सिन्धुभि पिन्बमाना' (६ ५२, ६), और 'सरस्वती साधयन्ती धियम्' (२ ३, ८)।

^५ यास्क ने इस मन्त्र को स्पष्टन नदी के रूप में सरस्वती को सम्बोधित माना है ('अथैतन नदीवद्', निरुक्त २ २३)।

पशोः सारस्वतस्यैतां याज्यां मैत्रायणीयके ।

प्राधान्याद्विषः पश्यन् वाच एवैतरोऽब्रवीत् ॥१३८॥

ऐतर् ^१ ने मैत्रायणीय ^२ में सरस्वती को समर्पित हवि के लिये इस मन्त्र को 'याज्या' मानते हुये इसे 'वाच्'^३ को सम्बोधित माना है, क्योंकि यहाँ हवि की ही प्रधानता^४ है।

^५ यह नाम अन्यत्र नहीं मिलता।

^६ ४ १४, ७ ('याज्यानुवाक्या' मन्त्रों के अन्तर्गत)।

^७ अर्थात् सरस्वती = वाच्, तु० की० निरुक्त ७ २३ जहाँ सरस्वती भी वाच् के सत्तावन नामों में से एक है। नैषण्डक १ ११ भी देखिये।

^८ अर्थात् वह की दृष्टि से देखते हुये वह मानना पड़ेगा कि यहाँ नदी नहीं वरन् देवी को ही सम्बोधित किया गया है।

सुरूपकृत्तुमित्यैन्द्रं सप्त चान्धान्यतः परम् ।

वकायद् स्वधामनु मास्तथोऽनन्तरा ऋचः ॥१३९॥

'सुरूपकृत्तु' श्रुत (ऋग्वेद १. ७) तथा इसके बाद के सप्त अन्व (१.

५-११) इन्द्र की सम्बोधित हैं। इनमें लगातार छः मन्त्र ('आवृह स्वयन्-मनु', ऋग्वेद १ ६, ४-९, से आरम्भ होनेवाले) मन्त्रों को सम्बोधित हैं।

२८-ऋग्वेद १ ६ में इन्द्र, मरुतों के साथ सम्बद्ध हैं
एका बीळु विदिन्द्राय मरुद्भिः सह गीयते।

तस्या एकान्तरायास्तु अर्चर्चोऽन्त्यो द्विदेवतः ॥१४०॥

उक्त छ मन्त्रों में से एक ('बीळुचित', ऋग्वेद १ ६, ५) का मरुतों के साथ इन्द्र की प्रशस्ति में गायन किया गया है। किन्तु बाद के मन्त्र की अर्च-ऋचा (अर्थात् ऋग्वेद १ ६, ७)^१ दो देवों को सम्बोधित है।

^१ अर्थात् तृतीयपाद, क्योंकि यह मन्त्र गायत्री छन्द में है।

मरुद्गणप्रधानो हीत्थं चेन्द्रो विचिकित्सितः।

मन्दू समानवर्चसा मन्दुना वा सर्वर्चसा ॥१४१॥

क्योंकि, यद्यपि वह (उक्त अर्च-ऋचा) प्रमुखतः मरुद्गणों को सम्बोधित है, तथापि इसमें इन्द्र की विशिष्टता इस प्रकार दिखाई गई है 'दोनों ही एक समान तेज वाले हैं' (मन्दू समानवर्चसा); अथवा इसका यह अर्थ है 'उसके साथ जो समान तेज बाका है।'^२

^२ व्याख्याओं के यह दोनों विकल्प निरुक्त ४ १२ (मन्दू मद्विष्णु युवास्थ अपि वा मन्दुना तेनेति स्यात्, समानवर्चसेत्य् एतेन व्याख्यातम्) पर आधारित हैं।

मन्दू इति प्रगृह्णन्ति येषामेव द्विदेवतः।

एकदेवस्यमाभ्राव्यो विज्ञायाध्ययनात्पदम् ॥ १४२ ॥

जिन्हें वह अर्च-ऋचा दो देवों को सम्बोधित प्रतीत होती है वह 'मन्दू' की 'प्रगृह्ण' के रूप में व्याख्या करते हैं। किन्तु अपने अन्वयन के आधार पर जो इस पाद में केवल एक देवता मानता है, उसे भी सुनना चाहिये,

^१ यहाँ दो देवता मरुद्गण तथा इन्द्र होंगे।

^२ पदपाठ में 'मन्दू' को प्रगृह्ण माना गया है।

रोदसी देवपत्नीनाम् अथर्वाङ्गिरसे यथा।

मरुद्गणप्रधानेयम् आचार्याणां स्तुतिर्मता ॥१४३॥

जैसे अथर्ववेद में रोदसी को देवों की पत्नियों में से एक माना गया है।^१

इस स्तुति को आचार्यों ने प्रमुखतः मरुद्गण को ही सम्बोधित माना है।

^१ ऋग्वेद ५ ४६, ८ के पदपाठ में 'रोदसी' को प्रगृह्ण माना गया है। वहीं मन्त्र अथर्ववेद ७ ४६, ८ में भी जाता है। इस पर टिप्पणी करते हुए वात्स (निरुक्त

१२. ४६) ने 'रोदसी' की 'रुद्रत्व यत्नी' के रूप में व्याख्या की है। तु० की० ऋग्वेद ५. ४६, ८ पर साक्ष्य भी।

मरुद्गणप्रधानत्वाद् इन्द्रस्तु विधिकित्सितः ।

मरुद्गणं महेन्द्रस्य समांशं सकलं विदुः ॥१४४॥

यद्यपि यहाँ प्रमुखतः मरुतों को ही सम्बोधित किया गया है, तथापि इन्द्र का भी विरोध किया गया है, क्योंकि समस्त मरुद्गण प्रधान इन्द्र के साथ अश के भागी होते हैं।

२९-ऋग्वेद १ १२, तथा आप्री-सूक्त १ १३ के देवता

अग्निमित्यग्निदैवत्यं पादस्तत्र द्विदेवतः ।

निर्मध्याहवनीयार्थाव् अग्निनाग्निः समिध्यते ॥१४५॥

अग्निम्' सूक्त (ऋग्वेद १ १२) के प्रमुख देवता अग्नि हैं। इस सूक्त का एक पाद (अग्निनाग्निं सय इष्यते १ १२, ६) दो देवताओं को सम्बोधित किया गया है जिनसे निर्मध्य और आहवनीय' का तात्पर्य है।

^१ यह दोना अग्नि के रूप है, जिनमें से प्रथम मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि का नाम है और द्वितीय इषि की अग्नि का। तु० की० ऋग्वेद १ १२ पर सर्वानुक्रमणी 'पादो द्व्यग्निदैवतो निर्मध्याहवनीयो'।

द्वितीये द्वादशर्षे तु प्रत्यृचं यास्तु देवताः ।

स्तूयन्ते अग्निना सार्वं तासां नामानि मे शृणु ॥१४६॥

अब मुझसे प्रत्येक ऋचा के अनुसार उन देवताओं के नाम सुनें जिनकी बारह मंत्रों के दूसरे सूक्त (अर्थात् १ १३) में अग्नि के साथ स्तुति की गई है।

प्रथमायां स्तुतश्चेध्मो द्वितीयायां तनूनपात् ।

नराशंसस्तृतीयायां चतुर्थ्यां स्तूयते त्विद्धः ॥१४७॥

प्रथम ऋचा में 'इध्म' की स्तुति है, दूसरे में 'तनूनपाद' की, और तीसरे में 'नराशंस' की, किन्तु चौथे में 'इद्धा' की स्तुति है।

बहिरेव तु पञ्चम्यां द्वारो देव्यस्ततोऽन्यथा ।

नक्तोषासा तु सप्तम्याम् अष्टम्यां संस्तुतौ सह ॥१४८॥

देव्याधिति तु होतारौ नवम्यामृचि संस्तुताः ।

तिष्ठो देव्यो दशम्यां तु ज्ञेयस्त्वष्टैव तु स्तुतः ॥१४९॥

पौषमें मैं बहिल् की, उसके बाद (की ऋचा में) दिव्य द्वारों की

(६ वीं ऋचा में), सातवें में मन्त्रोवासा (रात्रि और कर्कश) की, अष्टमि आठवें में साथ साथ दो विष्णु होताओं की स्तुति है; नवें में तीन देवियों की स्तुति की गई है; किन्तु दसवें में स्वप्न की स्तुति जानना चाहिये ।

३०-ग्यारह आग्नी-सूक्त

एकादश्यां तु सूक्तस्य स्तुतं विद्याद्वनस्पतिम् ।

द्वादश्यां तु स्तुता देवीर् विद्यात्स्वाहाकृतीरिति ॥१५०॥

इस सूक्त की ग्यारहवीं ऋचा में वनस्पति की स्तुति जानना चाहिये; किन्तु बारहवीं में विष्णु स्वाहाकृतियों की स्तुति जानना चाहिये ।

सूक्तेऽस्मिन्प्रत्यूषं यास्तु देवता. परिकीर्तिताः ।

ता एव सर्वास्वाग्नीषु द्वितीया तु विकल्पते ॥१५१॥

इस सूक्त (१ १३) की प्रत्येक ऋचा में जिन-जिन देवताओं की प्रशंसा है वह सब आग्नी सूक्तों में भी आते हैं, फिर भी द्वितीय देवता वैकल्पिक है ।^१

^१ यह विकल्प किस प्रकार व्यवहृत हुआ है, इसके किये देखिये नीचे २ १५५-१५७ ।

प्रैषैः सहाग्नीसूक्तानि तान्येकादश सन्ति च ।

यजूंषि प्रैषसूक्तं वा वशैतानीतराणि तु ॥१५२॥

प्रैषों तथा आग्नी सूक्तों की संख्या ग्यारह है, अथवा प्रैष सूक्त में यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र (यजूंषि) हैं, जब कि इन अन्व्य (ऋग्वेद के सूक्तों) की संख्या दस है ।^२

^१ इन्हें बारह यजूंषि कहते हैं, अर्थात् वाजसनेयि संहिता (२१ २९-४०) में आने वाले सूक्त । यास्क (निरुक्त ८ २२) ने इनको 'प्रैषिकम्' के रूप में व्यक्त किया है और इन्हें ग्यारह आग्नी सूक्तों के अन्तर्गत रक्ता है (तान्य् एतान्य् एकादशा-ग्नीसूक्तानि) ।

^२ ऋग्वेद के दस आग्नी सूक्तों की, सर्वानुक्रमणी के मैकडोनेल के संस्करण की अनुवाकानुक्रमणी (१०-१२, पृ० ४८) में गणना करार गई है । देखिये आश्वलायन श्रौतसूत्र ३ २, ५ और बाद, भी ।

सौत्रामणानि तु त्रीणि प्राजापत्याश्वमेधिके ।

पुरुषस्य तु यन्मेघे यजुःष्वेव तु तानि षट् ॥१५३॥

इन (आग्नी सूक्तों) में से तीन सौत्रामणी^१ से और एक प्राजापति^२ से सम्बद्ध हैं, तथा एक का अश्वमेध के समय और एक का पुरुषमेध के समय व्यवहार होता है; यह छ यजूंषि में आते हैं ।

- अर्थात् वाजसनेयि संहिता २०. ३६-४६ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १३ ९, ३, १६), २० ५५-६६ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १२ ८, २, १९), २१ १२-२२ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १२ ९, ३, १६) ।
 २ अर्थात् वाजसनेयि संहिता २७ ११-२२ (देखिये प्रथम मन्त्र पर भाष्य और तु० की० शतपथ ब्राह्मण ६ २, २, १ और बाद) ।
 ३ वाजसनेयि संहिता २९ १-११ (तु० की० शतपथ ब्राह्मण १३ २, २, १४) ।
 ४ शाङ्खायन श्रौतसूत्र १६ १२, ८ में 'अग्निं मृत्युः' से अग्रम्भ होने वाले के रूप में उद्धृत ।

अग्नैव प्रैषसूक्तं स्यान् न यजुःष्वद्विद्येत तत् ।

तेषां प्रैषगतं सूक्तं यच्च दीर्घतमा जगौ ॥१५४॥

यहाँ केवल प्रैष-सूक्त (वाजसनेयि संहिता २१ २९-४०) पर ही विचार करना है, जिनका यजुर्वेद में उल्लेख है उसके सम्बन्ध में नहीं ।

उक्त (ग्यारह) सूक्तों में से प्रैष से सम्बद्ध, और जिसका दीर्घतमस् ने गायन (ऋग्वेद १ १४२) किया,

३१-आग्नीसूक्तों में तनूनपात् और नराशंस, अग्नि का एक रूप इष्म मेधातिथौ यदुक्तं च ग्रीण्येवोभयवन्ति तु ।

ऋषौ गृत्समदे यच्च वाभ्यश्चे च यदुच्यते ॥१५५॥

और जिसका मेधातिथि (१ १३) में उल्लेख है—केवल इन्हीं तीन में दोनों^२ (तनूनपात् और नराशंस) निहित हैं । जिनका गृत्समद^१ (२ ३) और वाभ्यन्त्र^३ (१० ७०) में उल्लेख है,

^१ जो ऊपर १ १४, १५ के अनुसार ऋषि सूक्त हैं ।

^२ 'उभयवन्ति', देखिये निरुक्त ८ २२ 'मैधातिथि दैवतमस प्रैषिकम् इत्यु उभयवन्ति' ।

नराशंसवदग्नेश्च ददर्श च यदीर्वशः ।

तनूनपादगस्त्यश्च जमदग्निश्च यज्जगौ ॥ १५६ ॥

अग्नि के दो (५५), और उसमें जिसका उर्वशी-पुत्र (वसिष्ठ) ने वर्णन किया था (७ २), नराशंस निहित है । तनूनपात् उनमें आता है जिनका अगस्त्य (१.१८८) और जमदग्नि^१ (१० ११०) ने गायन किया,

^१ तु० की० यास्क निरुक्त ८ ४-२१ ।

विश्वामित्र ऋषिर्यश्च जगौ वै काश्यपोऽसितः ।

मेधातिथेर्ह्यां यास्तु प्रोक्ता द्वादश देवताः ॥ १५७ ॥

और (उनमें भी) जिनका ऋषि विश्वामित्र (१७) और करवप-पुत्र
अस्मिन् (१५) ने शासन किया ।

उन बारह देवताओं के सम्बन्ध में, जिनका मेधातिथि की ऋचाओं
(११३,१—१२) में आनेवालों के रूप में उल्लेख किया गया है,

ऊपर १४६-१५० ।

संपद्यन्ते यथाग्नि ताः संपदं तां निषोद्यत ।

इध्मो यः सर्वमेवाग्निर् अयं हीध्मः समिध्यते ॥

ध्मातेर्वैतत्कृतं रूपं ध्मातो हीध्मः समिध्यते ॥१५८॥

उस पद्धति को जानिये जिसके अनुसार यह अग्नि को व्यवहृत करते हैं ।

इध्म वह अग्नि है जो सब कुछ है, क्योंकि यह अग्नि ईंधन' के रूप में ही
प्रज्वलित होते हैं । अथवा यह रूप 'ध्मा धातु से बना है, क्योंकि धौकने से
ही ईंधन को प्रज्वलित किया जाता है ।

यह शु पति यास्क द्वारा निरुक्त ८ ४ (इध्म समिन्धनात्) में दी हुई एकमात्र
युत्पत्ति के समान है ।

॥ इति बृहदेवतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥



१— तनूनपात् नराशंस इत्येव चर्हिस्मिन्

तनूनपाद्यं स्वेव नाम्ना यत्प्रत्यसौ तनुम् ।

नापादिति प्रजामाहुर् अमुनाऽस्य च संभवम् ॥१॥

इन्हीं अग्नि का नाम तनूनपात्^१ भी है । वह (दिव्य अग्नि) अपने शरीर को फैलाते हैं ।

ऐसा कथन है कि 'नपात्' का अर्थ ब्रह्मण^२ है, और इसकी (तनूपात की) उससे^३ (अग्नि से) उत्पत्ति हुई है ।

१ तु० की० ऊपर २ २६ 'अर्थ तनूनपात् अग्नि' ।

२ तु की० वही 'असौ हि तनूनात् तनु' ।

३ तु० की० ऊपर २ २७ 'अनन्तरा प्रजान् आहुर नपात् इति' ।

४ तु० की० वही नपात् अमुष्य वैवायव्य अग्नि' ।

नराशंसमिहैके तु अग्निमाहुरथेतरे ।

नराः शंसन्ति सर्वेऽस्मिन् आसीना इति बाध्वरे ॥२॥

कुछ का कहना है कि नराक्षस वहाँ अग्नि है ।^१ पुनश्च, कुछ लोग यह कहते हुये कि 'सब मनुष्य इस पर आसीन होकर प्रशस्तियों का उच्चारण करते हैं, इसे यज्ञ^२ के आशय में ग्रहण करते हैं ।

१ यास्क के अनुसार ('अग्निर् इति शाकपूणिर् नरै प्रशस्यो भवति', निष्क ८ ६) यह शाकपूणि का मत है ।

२ यह काटुक्य का दृष्टिकोण है, तु० की० वही 'नराशंसो यज्ञ इति काटुक्यो नरा अस्मिन् आसीना शसन्ति' ।

एतमेवाहुरन्येऽग्नि नराशंसोऽध्वरे क्षयम् ।

नरैः प्रशस्य आसीनैर् आहुर्धैर्वित्वजो नरः ॥ ३ ॥

अन्य इसे इसलिये अग्नि बताये हैं कि यज्ञ स्थल पर आसीन होकर मनुष्यों द्वारा प्रशस्त के रूप में ही यही नराशंस होते हैं;^१ ऋत्विजों का भी यही कथन है ।

१ गत दो श्लोकों में व्यक्त दृष्टिकोण निष्क ८ ६ के उस कथन के अनुकूल हैं जिसके अनुसार (१) नराक्षस, अग्नि ('नरै प्रशस्य, शाकपूणि) और (२) यज्ञ है ('नरा अस्मिन् आसीना शंसन्ति', काटुक्य) । प्रस्तुत श्लोक में वर्णित क्षत्रीय दृष्टिकोण एक दोनों का सम्मिश्रण है (नरैर् आसीनैर् अश्वदे प्रशस्य) । वह ऊपर २ २८ (यज्ञे यच् अस्यते नृभिः) के अनुकूल है ।

इळस्तृषिकृतं रूपम् ईडेअ स्तुतिकर्मणः ।

इळावांस्तेन योक्तोऽग्निर् इडिना बर्हिकर्मणा ॥ ४ ॥

इळ ऋषियों द्वारा बनाया गया रूप है जो स्तुतिवाचक 'ईड्' वातु से व्युत्पन्न हुआ है । इस वातु के आधार पर, अथवा बुद्धि-वाचक वातु 'इड्' के आधार पर, अग्नि को 'इळावान्' कहा गया है ।

१ यास्क (निरुक्त ८ ७) ने इळ को 'ईड्' अथवा 'इड्' से व्युत्पन्न माना है 'ईडे स्तुतिकर्मण इत्यतेर वा' ।

बर्हिरेवायमग्निस्तु सर्वं हि परिवृंहितम् ।

अग्नेन यद्धतो वा सन्न इध्मेन परिवृंहितः ॥ ५ ॥

पुन, यह अग्नि बर्हिस् है, क्योंकि इसका (बर्हिस् का) सर्वस्व अन्न से समृद्ध होता है, अथवा इस लिये भी कि यज्ञ के समय यह (अग्नि) ईधन से समृद्ध किये जाते हैं ।

१ इसकी व्युत्पत्तिशास्त्रीय व्याख्या यास्क (निरुक्त ८ ८) के 'बर्हि परिवृंहणात् के ही समान है ।

२ अर्थात् इवि आदि इस पर ही रक्खा जाता है ।

२—दिव्य द्वार, रात्रि और उषस्

द्वारस्तु देव्यो याः प्रोक्ता विश्वेषा तास्तु पत्नयः ।

अप्तायीमनुवर्तन्ते तथागनाय्यग्निमेव च ॥ ६ ॥

जैसा कि इन्हें कहा जाता है, दिव्य द्वार विश्वदेवों की पत्नियाँ हैं, यह भी अग्नायी का उसी प्रकार अनुवर्तन करती हैं जैसे अग्नायी अग्नि का ।^२

१ ऋग्वेद १० ११०, ५ (वि आयन्तां पतिभ्यो न जनय देवेभ्यो भवत सुप्रा यणा) द्वारा यह स्पष्ट है । इस पर निरुक्त ८ १०, में टिप्पणी की गई है ।

२ इस शक्ति का प्रयोजन 'देव्यो द्वार' तथा 'अग्नि' (१० की० ऊपर १ १०७) का समीकरण व्यक्त करना है देवों की पत्नियों के रूप में यह अग्नि की पत्नी उस अग्नायी का प्रतिनिधित्व करती है जिसके अन्तर्गत समस्त पार्थिव देवियों या बातों हैं (देखिये ऊपर १ १०५, १०६) । निरुक्त ८ १०, में शाकपूणि ने इन्हीं अग्नि के साथ समीकृत किया है 'यन्ते गृहदार इति कात्थक्य अग्निर् इति शाकपूणि' ।

अग्नौ ध्रुवं स्थितास्तास्तु संस्तूयन्तेऽग्निना सह ।

प्राचान्य तास्तु कैवाग्ने स्तुतिष्वेव हविषु च ॥ ७ ॥

अग्नि में ध्रुव रूप से स्थित होने के कारण इनकी अग्नि के साथ-साथ

स्तुति को जाती है। इनको दसा में जो स्तुति तथा इष्टि में अग्नि की प्रधानता रहती है।

^१ क्योंकि इन्हें तथा अन्य आग्नी देवों को केवल अग्नि का ही रूप माना गया है।

नक्तोषासौ च ये वेद्याव् आग्नेय्यावेव ते स्मृते।

इयाव्याग्नेयी हि कात्तस्य तस्यैवोषाः कलेव तु ॥ ८ ॥

जहाँ तक दो देवियों, रात्रि और उषस्, का प्रश्न है, इन्हें भी अग्नि से सम्बन्ध माना गया है। क्योंकि अन्धकार (इषावी) अग्नि के साथ सम्बन्ध है,^२ जब कि उषस् भी उसी काल^३ (समय) की एक कला (सोखइयाँ) का है।

^१ नैषण्डुक १ ७ में उल्लिखित रात्रि के तेहस नामों में से 'इषावी' प्रथम है।

^२ इस प्रकार, इषावी = रात्रि, एक अग्नि सूक्त (ऋग्वेद १ ७१, १) के प्रथम मन्त्र में आता है।

^३ अर्थात् 'इषावी' का एक भाग होने के कारण उषस् भी अग्नि के साथ सम्बन्ध है।
तु० की० निरुक्त २ १८ 'उषा रात्रेर् अपर काल'।

तम उछत्युषा नक्तानक्तोमां हिमबिन्दुभिः।

अपि वाच्यक्तवर्णेति नञ्पूर्वाच्चेरिदं भवेत् ॥ ९ ॥

उषस् अन्धकार को हलका^१ कर देती है, रात्रि उसे हिम बिन्दुओं से मण्डित कर देती है,^२ अथवा यह 'नञ्' उपसर्ग के साथ 'अञ्च' धातु से व्युत्पन्न है और इसका अर्थ 'अव्यक्त वर्ण'^३ भी हो सकता है।

^१ तु० की० निरुक्त २ १८ 'उषा कस्माद् उछतीति'।

^२ निरुक्त ८ १० 'नक्तोति अनक्ति भूतास्य अवस्थावेव', तु० की० 'रात्रि' के लिये 'रात्रे' या 'स्याद् दानकर्मण प्रदीयन्तेऽस्याम् अवस्थाया' (वही, २, १८)।

^३ तु० की०, 'अपि वा नक्तव्यक्तवर्णा', निरुक्त ८ १०।

सा हि दोषा भवत्यादौ निशीथे सा तमस्वती।

नाम्ना भवत्युषाश्चैव सैषा प्रागुदयाद्रवेः ॥ १० ॥

क्योंकि आरम्भ में यह 'दोषा'^१ और मध्यरात्रि में 'तमस्वती' होती है, तथा सूर्योदय के पूर्व इसका नाम उषस् होता है।^२

^१ 'दोषा' और 'तमस्वती,' तथा साथ ही साथ 'इषावी' और 'नक्त' नैषण्डुक १ ७, में 'रात्रि' के पर्वण्य के रूप में आते हैं।

३— दो दिव्य होता, तीन देवियों; त्वष्टृ

वेद्याविति तु होताराव् आग्नी पार्थिवमध्यमौ।

दिद्यादग्नेर्हि जज्ञाते वैद्वौ तेनेह जन्मना ॥ ११ ॥

द्वो दिव्य होता अग्नि के पार्थिव तथा मध्यम रूप हैं ।^१ यतः इनका सम्म दिव्य अग्नि से हुआ था, अतः ये दिव्य जन्मा^२ हैं ।

^१ वह निश्चय ८ ११ में वाक् की व्याख्या (देव्यो होतास्वा अथ चाग्निर् अतो च मध्यमः) के भी अनुकूल है ।

^२ अर्थात् 'दैव्य' की यहाँ पैतृक नाम का रूप प्रदान किया गया है ।

तिस्रस्तु देव्यो याः प्रोक्तास् त्रिस्थानैवेह सा तु वाक् ।

त्रिविधेनोच्यते नाम्ना ज्योतिःषु त्रिषु वर्तिनी ॥१३॥

जिन्हें तीन देवियों कहते हैं वह यहाँ तीन स्थानों की वाक् ही हैं । तीन ज्योतिषों^१ में निहित इसे त्रिविध नामों^२ से व्यक्त किया जाता है ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९० ।

^२ वाक् के तीन रूपों के लिये देखिये ऊपर २ ७२ और बाद ।

अग्निमेवानुगेष्ठा तु मध्यं प्राप्ता सरस्वती ।

अमुं स्थिताधि लोकं तु भारती भवति ह्यसौ ॥ १३ ॥

इहा अग्नि का अनुगमन^१ करती है, सरस्वती^२ मध्यम से सम्बद्ध है, जब कि दिव्य लोक में स्थित होने के रूप में वह (वाक् का दिव्य रूप) भारती होती है ।

^१ 'अनुगा' तु० की० ऊपर १ ६ में 'अनुवर्तते' ।

^२ तु० की० ऊपर २ ७६ ।

सैषा तु त्रिविधा वाग्बै दिवि च व्योम्नि चेह च ।

व्यस्ता चैव समस्ता च भजत्यग्नीनिमानपि ॥१४॥

अब यही वाक् दिव्य, आन्तरिच, तथा यहाँ (पृथिवी पर) होने के रूपों में त्रिविध है । अकेले और समस्त, दोनों ही रूपों में, वह इन अग्निवर्षों^१ से सम्बद्ध है ।

^१ इस प्रकार न केवल पार्थिव वाक् के रूप में इहा पार्थिव अग्नि के क्षेत्र में स्थित है वरन् तीनों ही देवियों पार्थिव अग्नि में (ऊपर १ १०८) और साथ ही साथ अग्नि के दो अन्य रूपों में भी स्थित हैं ।

त्वष्टा तु यस्त्वयमेव पार्थिवोऽग्निरिति स्तुतिः ।

पार्थिवस्यास्य वर्षः स्युः कस्याप्यृक् चार्तवेषु च ॥१५॥

अज त्वष्टा के लिये भी पार्थिव अग्नि के समान ही स्तुति है,^१ अथवा

पार्थिव के रूप में इनकी अर्चना करने वाली ऋचायें हैं,^१ तथा ऋतुओं के सूक्तों में भी एक ऋचा है जो एक न एक अग्नि के रूप में इन्हें समर्पित है।

^१ अर्थात् आप्री सूक्तों में प्रस्तुत ग्रन्थकार निरुक्त ८ १४ में उद्धृत शाकपूणि के दृष्टिकोण (अग्निर् इति शाकपूणि) के साथ, तथा जैबण्डक के उस दृष्टिकोण के साथ भी सहमत है जिसके अनुसार 'त्वष्टा' का सर्वप्रथम आप्री देवों के अन्तर्गत (५ २), द्वितीय अतरिक्ष देवों के अन्तर्गत (५ ४), तथा तृतीय दिव्य देवों के अन्तर्गत (५ ६) उल्लेख है। अन्य लोगों के दृष्टिकोण के अनुसार 'त्वष्टा' को मध्य स्थानीय कहा गया है (माध्यमिकस् त्वष्टा इत्य् आहु, मध्यमे च स्थाने समान्नात, निरुक्त ८ १४)। इन्हें नीचे (१ २५) 'रूपकर्ता' के रूप में मध्यमवर्गीय कहा गया है।

^२ अर्थात् इन्हें सम्बोधित आप्री सूक्तों की ऋचाओं में यह पार्थिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

^३ तीन ऋतु सूक्तों (ऋग्वेद १ १५, २ ३६, २ ३७) में से दो की तृतीय ऋचा त्वष्टा को सम्बोधित है, यद्यपि इनका नाम केवल २ ३६, ३, में ही आता है।

^४ अर्थात् ऋतु सूक्तों में अग्नि के तीनों रूपों में से किसी भी एक का तात्पर्य हो सकता है।

४ — दिव्य त्वष्टृ, दध्यञ्च और मधु की कथा

त्वष्टितस्त्वक्षतेर्वा स्यात् तूर्णमधनुत एव वा।

कर्मसूत्तारणो वेति तेन नामैतदधनुते ॥ १३ ॥

त्वष्टा 'त्विष्' से अथवा 'त्वच्' से व्युत्पन्न हो सकता है, अथवा 'वह बीज्रतापूर्वक प्राप्त करते हैं' या 'वह कर्मों में सहायता देते हैं',^१ इस कारण ही यह नाम प्राप्त करते हैं।

^१ यह तीन व्युत्पत्तियाँ निरुक्त ८ १३ से की गई हैं 'त्वष्टा तूर्णम् अधनुत इति नेरुक्ता, त्विषेर् वा स्याद् बीसिकर्मणस् त्वक्षतेर् वा स्याद् करोतिकर्मण'।

^२ यह अतिरिक्त व्युत्पत्ति यास्क के 'त्वक्षते करोतिकर्मण' से ली गई हो सकती है।

यः सहस्रतमो रश्मी रवेश्चन्द्रमुपाश्रितः।

सोऽपि त्वष्टारमेवाग्निं परं चेह च यन्मधु ॥ १७ ॥

सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो चन्द्रमा में आश्रित हैं, तथा वह मधु भी जो पृथ्वी पर तथा उसके ऊपर है, उसी त्वष्टा में निहित हैं जो अग्नि हैं।^१

^१ यह वह दिव्य त्वष्टा ही है जो चन्द्रमा में स्थित दिव्य सोम के रक्षक है। अग्नि को भी सोम का रक्षक कहा गया है। बाद के पुराणवाद्यात्मक में यह कथन है कि जब देवों द्वारा सोम पान कर लिये जाने के कारण चन्द्रमा घटने लगे तो सूर्य ने उन्हें पुन सम्बद्धित किया था। दिव्य मधु के साथ त्वष्टा के सम्बन्ध का इस प्रकार

वर्णन करने के पश्चात् नीचे के श्लोकों में यह बताया गया है कि अग्निर्मै ने किस प्रकार मधु को दध्यञ्ज से प्राप्त किया था ।

प्रावादब्रह्मापि सुप्रीतः सुताय तदथर्वणः ।

स चाभवद्विस्तेन ब्रह्मणा दीप्तिमन्तरः ॥ १८ ॥

अग्नी प्रकार प्रसन्न होकर (इन्द्र ने) अधर्वन् के पुत्र (दध्यञ्ज) को बह ब्रह्म^१ (अग्निचार) प्रदान किया, और इस ब्रह्म द्वारा वह ऋषि और भी दीप्त हो गये ।

^१ प्रस्तुत से लेकर २१ वें श्लोक में दध्यञ्ज की जो कथा वर्णित है वह ऋग्वेद १ ११६, १२ पर नीतिमजरी में उद्धृत है । ऋग्वेद के इसी स्थल पर माध्य करते हुये सायण ने भी इसका वर्णन किया और यह कहा है कि इसका शाठ्यायनक तथा वाजसनेयक में विस्तार से वर्णन है । यह कथा शतपथ ब्राह्मण (१४ १, ३१ १८-२५) में भी मिलती है ।

^२ जो सोम के आवास को प्रगट करता है ।

तमृषिं निषिवेधेन्द्रो मैवं वोचः क्वचिन्मधु ।

न हि प्राक्ते मधुन्यस्मिञ् जीवन्तं त्वात्सृजाम्यहम् ॥ १९ ॥

इन्द्र ने ऋषि को निषेध करते हुये कहा 'इस प्रकार उद्घाटित मधु की कहीं भी चर्चा न करना क्योंकि यदि इस मधु की घोषणा कर दी गई तो मैं तुम्हें जीवित नहीं बचने दूँगा ।'

तमृषि त्वश्विनौ देवौ विषक्ते मध्वयाचताम् ।

स च ताम्यां तदाचष्टे यदुवाच शचीपतिः ॥ २० ॥

अब, दिव्य अग्निर्मै ने ऋषि से गुप्त रूप से मधु की याचना की, और उन लोगों से ऋषि ने यह बताया कि शचीपति (इन्द्र) ने क्या कहा था ।

५—दध्यञ्ज का अश्व-शिरः मध्वम त्वष्टृ

तमब्रूतां तु नास्त्याव् आश्वयेन शिरसा भवान् ।

मध्वाशु ग्राहयत्वावा मेन्द्रश्च त्वा वधीत्ततः ॥ २१ ॥

उनसे नासत्त्यों ने कहा आप हम दोनों को क्षीप्रता से अश्व शिर धारण करके मधु ग्रहण करावें, इसके लिये इन्द्र आपका बध नहीं करेंगे ।

आश्वयेन शिरसा तौ तु दध्यङ्काह यदश्विनौ ।

तदस्येन्द्रोऽहरत्स्वं तन् न्यघत्तामस्य यच्छिरः ॥ २२ ॥

वतः अथ शिर के रूप में दधन्वा ने अश्विनद्वय को रक्षस्व वत्स दिया था अतः इन्द्र ने उनके उस शिर को पृथक् कर दिया, किन्तु अश्विनी ने उनके शिर की उम पर पुनः स्थापित कर दिया ।^१

^१ शतपथ ब्राह्मण तथा सायण ने केवळ शिर के पुनर्स्थापन तक की कथा का वर्णन किया है, तु० की० 'अथऽस्य स्नं शिर आहत्य तद् वऽस्य प्रति दधत्तु', शतपथ ब्राह्मण १४ १, १, २३; 'स्वेकीयं मानुषं शिर प्रत्यवत्तम्', सायण ।

वधीचक्ष शिरश्चाद्वयं कृतं वज्रेण वज्रिणा ।

पपात सरसो मध्ये पर्वते शर्यणावती ॥ २३ ॥

वज्रधर द्वारा अपने वज्र से पृथक् कर दिया गया दधन्व का अश्व-शिर शर्यणावत् पर्वत पर स्थित एक सरोवर में गिर पड़ा ।

तदद्भ्यस्तु समुत्थाय भूतेभ्यो विविधान्वरान् ।

प्रादाय युगपर्यन्तं यास्वेवाप्सु निमज्जति ॥ २४ ॥

जलों के ऊपर उठ कर तथा जीवित प्राणियों को विविध वरदान देते हुए वह युगपर्यन्त उन्हीं जलों में डूबा रहता है ।

त्वष्टा रूपविकर्ता च योऽसौ माध्यमिके गणे ।

स्तुतः स च निपातेन सूक्त तस्य न विद्यते ॥ २५ ॥

वही त्वष्टा, जो मध्व-स्थानीय^१ गणों के अन्तर्गत आते हैं, रूपों के विकर्ता^२ है। इनकी भी नैपातिक स्तुति ही होती है, इनको कोई सूक्त समर्पित नहीं है ।

^१ तु० की० निरुक्त ८ १४ : 'माध्यमिकस् त्वष्टा इत् आहुर्, मध्वने च स्थाने समान्नात् ।'

^२ ऋग्वेद में त्वष्टा को अक्सर रूपों का निर्माता, तथा तैत्तिरीय संहिता में 'रूपकृत्' कहा गया है ।

६—वनस्पति; स्वाहाकृतियाँ

वतस्पति तु यं प्राहुर् अयं सोऽग्निर्वनस्पतिः ।

अयं बनानां हि पतिः पाता पालयत्योति वा ॥ २६ ॥

जिसे वनस्पति कहा गया है वह वन के पति के रूप में इसी अग्नि^१ का एक रूप है; क्योंकि रक्षक के रूप में अग्नि ही वनों के पति हैं, अथवा इसलिये भी कि वह वनों का पालन^२ करते हैं ।

^१ एक आग्नी देव के रूप में (ऋग्वेद १ १३, ११, १) वनस्पति को पार्थिव अग्नि के साथ समीकृत किया गया है, किन्तु ऊपर (१ ३६), जहाँ अग्नि के तीन रूपों का विभेद किया गया है, वनस्पति उसी प्रकार मध्यम अग्नि का प्रतिनिधित्व करता है जिस प्रकार ३७ (ऊपर) में जातवेदस् ।

^२ तु० की० निरुक्त ८ ३ 'बनाना पाता वा पाळयिता वा ।'

अग्निगृत्समदेनायं वनस्पतिरिति लिखितः ।

मन्दस्वेत्यस्य सूक्तस्य षष्ठ्यस्य तृतीयया ॥ २७ ॥

इस ऋचाओं वाले 'मन्दस्व' (ऋग्वेद १ ३७) (से आरम्भ होने वाले) सूक्त की तृतीय ऋचा^१ में गृत्समद ने इस अग्नि की भी वनस्पति के रूप में स्तुति की है ।

^१ निरुक्त ३ में यास्क ने वनस्पति के उदाहरण के लिये इसी ऋचा की विवेचना की है । एक आग्नी देव के रूप में वनस्पति के सम्बन्ध में यास्क (निरुक्त ८ १७-२०) ने चार अर्थ ऋग्वेद १० ११०, १०, ३ ८, १, तथा दो ऐसी ऋचायें जो ऋग्वेद की नहीं हैं) का उदाहरण दिया है ।

यूपवत्तरुवच्चैव स्तुतिर्यास्य प्रसङ्गजा ।

सर्वणाञ्जन्तिसूक्तेन तृतीये सा तु मण्डले ॥ २८ ॥

किन्तु एक यज्ञ-यूप,^१ और एक वृक्ष के रूप में उसकी (वनस्पति की) अञ्जन्ति^२ से आरम्भ होने वाले (ऋग्वेद ३ ८) सम्पूर्ण^३ सूक्त द्वारा प्रसङ्गारमक स्तुति तृतीय मण्डल में मिलती है ।

^१ तु० की० नीचे ४ १०० ।

^२ ऋग्वेद ३ ८, १ पर अपनी टिप्पणी ने यास्क (निरुक्त ८ १६) ने वनस्पति के सम्बन्ध में केवल 'अग्निर् इति शाकपूणि' मात्र ही कहा है । किन्तु ऋग्वेद १० ११०, १० पर टिप्पणी करते हुये (निरुक्त ८ १७) में वह इस प्रकार मत व्यक्त करते हैं 'तत्तु को वनस्पति १ यूप इति काटुक्य, अग्निर् इति शाकपूणि ।'

स्वाहाकृतयोऽनेकाश्च विदुषां मतयोऽभवन् ।

तत्सर्वं त्वयमेवाग्निर् भवतीति विनिश्चयः ॥ २९ ॥

स्वाहाकृतियों के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं । फिर भी यह एक निश्चित निष्कर्ष है कि यह^१ केवल इसी अग्नि की रूप है ।^२

^१ तु० की० निरुक्त ८ २० में दो हुई इस शब्द की विभिन्न व्याख्याएँ ।

^२ तु० की० निरुक्त ८ २२ में प्रयाजास् और 'अनुयाजास्' के साथ समीकृत विभिन्न देवों के उल्लेख के बाद यास्क की यह टिप्पणी 'आग्नेया इति तु स्थिति, भक्ति मानस इतरत् ।'

अयं हि कर्ता स्वाह्नां कृतिस्तस्यभिहैकजा ।

अयं प्रसूतिर्मृतानां सर्वेषामयमव्ययः ॥ ३० ॥

क्योंकि यही स्वाहा का कर्ता है, यहाँ इसके कृतिस्व की प्रकृति एक समान (एकज) है यही सब में अव्यय तथा मृतों का स्रोत है ।

^१ इस व्युत्पत्ति में 'कृति' को 'कटु' द्वारा व्याख्या की गई है । यहाँ तात्पर्य यह है कि जहाँ अनेक प्रकार के 'स्वाहा' हैं, वहाँ इनका कर्ता केवल एक अग्नि ही है जो समस्त मृतों का स्रोत है (तु० की० ऊपर १ ६१) ।

७- तनूनपात् और नराशंसः ऋग्वेद १ १४ और १५ के देखता

तनूनपाद्विद्वतोया च नराशंसवती च या ।

समस्येते प्रयोक्तव्ये त्रिष्वेवोभयवत्सु तु ॥ ३१ ॥

द्वितीय (ऋचा) में तनूनपात् तथा जिसमें नराशंस भी हो, ऐसा समस्त प्रयोग करने वाले कबल तीन^१ सूक्त ही हैं, जिनमें यह दोनों ही मिलते हैं ।

^१ देखिये ऊपर २ १५५ ।

^२ अर्थात् तनूनपात् और नराशंस ।

नराशंसवती वा स्याद् द्वितोया च प्रजार्थिनाम् ।

बलकामोऽन्नकामो वा भूतिमिच्छेदधापि यः ॥ ३२ ॥

नराशंस तथा साथ ही साथ द्वितीय^१ से युक्त ऋचा उनकी हो सकती है जिन्हें सम्मान की कामना, बल की कामना, अथवा अन्न की कामना, या समृद्धि की कामना होती है ।

^१ अर्थात् 'तनूनपात्' से युक्त ।

आग्नेयं सूक्तमैभिर्यद् वैश्वदेवमिहोच्यते ।

तद्विश्वलिङ्गं गायत्रं वैश्वदेवेषु शस्यते ॥ ३३ ॥

अग्नि^१ का आवाहन करने वाला सूक्त 'ऐभि' (ऋग्वेद) १ १४ का, जिसे यहा विश्वेदेवों को सम्बोधित कहा गया है, विश्वेदेव-सूक्तों के अन्तर्गत उच्चारण किया जाता है क्योंकि गायत्री छन्द में होने के कारण इसमें 'विश्वस्व'^२ का लिङ्ग वर्तमान है ।

^१ सम्बोधन के रूप में इस सूक्त में केवल अग्नि का ही आवाहन किया गया है, किन्तु इसमें ऐसे देवों का, जिनकी तीन बार 'विश्वे' लक्षण के साथ चर्चा है, अनेक बार उल्लेख है । साथ ही अनेक वैयक्तिक देवों का भी (३ और १० मन्त्रों में) उल्लेख है । तु० की० नीचे ३ ५१ ।

^२ तु० की० नीचे ३ ५३ और ऊपर २ १२८, १३३, १३४ ।

इन्द्र सोमं पिबेतीदं यद्व्याधितकामर्तवम् ।

तस्मिन्सहर्तुना सप्त प्रत्यृचं सौति देवताः ॥ ३४ ॥

बारह ऋचाओं वाले तथा ऋतुओं^१ को सम्बोधित 'इन्द्र सोम पिब' (ऋग्वेद १ : १५) सूक्त ऋतु के साथ-साथ ऋचाओं में सात देवों की स्तुति करता है ।

^१ अर्थात् 'ऋतुयाजस्' के देव, तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण २ : २९ ।

^२ जिनकी नीचे ३७ वें तथा ३८ वें श्लोक में गणना कराई गई है ।

तत्रर्तुनेति षट्सृक्षु चतसृष्वृत्तुभिः सह ।

पुनर्द्वयोक्तुनेति बहुत्वैकत्वलक्षिताः ॥ ३५ ॥

इससे देवों को छ ऋचाओं (१-६) में 'ऋतु' के साथ, चार में 'ऋतुओं' के साथ तथा पुन दो में 'ऋतु के साथ बहुवचन तथा एकवचन में व्यक्त किया गया है ।^१

^१ अहाँ तक ऋग्वेद के इस सूक्त का प्रश्न है, यह वक्तव्य अनुमानात्मक ही है (ऋतुना), १-४ और ६ में जाता है, जब कि ५ में 'ऋतुर्' है, 'ऋतुभि' केवल ९ और १० में आता है, और ७ तथा ८ में 'ऋतु का कोई भी रूप नहीं है, ११ और १२ में 'ऋतुना' आता है), कि तु ऋतु स्तुति के लिये पारद 'प्रेवों का इसमें विष्कुल ठोक ठोक वर्णन है, देखिये तैत्तिरीय संहिता ६ ५, ३ ऐतरेय ब्राह्मण २ : २९, २-४ ।

८- ऋतुओं को समर्पित सूक्त ऋग्वेद १, १५ ।

ऋतवो देवताभिश्च निपातेनेह संस्तुताः ।

तथर्तुप्रैषसूक्ते च तथा गात्सर्मदेऽपि च ॥ ३६ ॥

यहाँ देवों के साथ ऋतुओं की केवल नैपातिक स्तुति है ऋतुओं को समर्पित प्रैष-सूक्त तथा गृत्सर्मद^१ के सूक्त में भी ऐसी ही स्थिति है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद २ : ३६, तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ५ : ९, ६ ।

मुख्यया त्विन्द्रमेवास्तौ महतस्तु द्वितीयया ।

तृतीयया तु त्वष्टारं चतुर्थ्या चाग्निमेव च ॥ ३७ ॥

पञ्चम्या तु पुनः शक्रं षष्ठ्या देवावृतावृधौ ।

सप्तम्याद्याभिरग्निं च चतुर्भिर्द्रविणोदसम् ॥ ३८ ॥

उसने (ऋषि ने) प्रथम^१ ऋचा से इन्द्र की, द्वितीया से मरुतों की, तृतीया से त्वष्टा^२ की और चतुर्थ से अग्नि की स्तुति की, पुन पाँचवें से शक्र

(इन्द्र) की, जूझों से सख में बुद्धि को प्राप्त करने वाले देवों (विश्व-वक्त्र) की, और सायबों से आरम्भ होने वाली चार ऋचाओं (७-१०) में अग्नि ऋषिणोदस् की स्तुति की ।

^१ 'मुल्यबा' के साथ नीचे ५ १ के 'मुले तु ब' की तुलना कीजिये ।

^२ ऋगु-सूक्तों में त्वष्टा के लिये तु० की० ऊपर ३ १५ ।

आदेशादैवतं ज्ञेयम् ऋग्मन्त्राणां न लिङ्गतः ।

न शक्यं लिङ्गतो व्यासां ज्ञातुं तत्त्वेन देवतम् ॥

ऋग्वेद के मन्त्रों के देवताओं को लिङ्ग के आधार पर नहीं बरन् आधिकारिक वक्तव्यों के आधार पर ही जानना चाहिये, क्योंकि मन्त्रों के लिङ्ग के आधार पर उनके देवताओं का तत्त्वतः ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता ।

^१ तु० की० नीचे ३ १०९ ।

^२ अर्थात् अग्नि को उनके वास्तविक नहीं बरन् उस लाक्षणिक नाम 'ऋषिणोदस्' से ही व्यक्त किया गया है जो किसी अन्य देवता का भी बोधक हो सकता है (यद्यपि यह अग्नि की एक सुविख्यात उपाधि है, तु० की० ऊपर ३ १०६, २, १५, किण्डु देखिये नीचे ३ ६१) ।

एकादश्या तु नासत्यौ द्वादश्याग्निमिमं पुनः ।

पृथक्पृथक्स्तुतीदं तु सूक्तमाह रथीतरः ॥ ४० ॥

ग्यारहवें से बह नासत्यों का, तथा बारहवें से पुन इस अग्नि की स्तुति करता है । फिर भी; रथीतर का कथन है कि इस सूक्त में पृथक्-पृथक् स्तुतिबाँ है ।^१

^१ दूसरे शब्दों में यह एक 'पृथक्स्तुति' है जो विश्वदेवों को समर्पित तीन प्रकार के स्तुति-सूक्तों में से एक है, तु० की० नीचे ४६ वाँ श्लोक ।

९-विश्वदेवों को समर्पित तीन प्रकार के सूक्त

बहुदैवे द्विदैवे वा गुणैर्वा यत्र कर्मजैः ।

स्तूयते देवतैर्कैका विभक्तस्तुति तद्विदुः ॥ ४१ ॥

जहां अनेक देवताओं अथवा दो दो देवताओं वाले सूक्त में प्रत्येक देवता को अकेले^१ उसके कर्म^२ से उत्पन्न गुणों के आधार पर स्तुति की गई हो, उसे 'विभक्त-स्तुति'^३ मानते हैं ।

^१ तु० की० नीचे ३ ८२, जहाँ 'एकवत् (एकवचन' में) का प्रयोग किया है ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ८ २९, पर नीचे ३ ६९ ।

^३ यास्क ने निरुक्त ७ ८ में 'संस्तव' (सम्मिलित स्तुति) के विपरीत 'विभक्ति-स्तुति' के लिये ऋग्वेद १० १७, ६ का उदाहरण दिया है जहाँ पूषन् और अग्नि की पृथक्-पृथक् एकवचन में स्तुति की गई है ।

वैश्वदेवानि सूक्तानि त्रिविधानि भवन्ति तु ।

सूर्यसंस्तवसंयुक्तं विश्वलिङ्गं पृथक्स्तुति ॥ ४२ ॥

विश्वदेव सूक्त तीन प्रकार के होते हैं, जिसमें सूर्य के साथ सम्मिलित स्तवण होता है (सूर्य संस्तव), जिसमें 'विश्व लिङ्ग' होता है, और वह जिसमें 'पृथक्स्तुति' होती है ।

पृथक्स्तुतीति यत्प्रोक्तं तद्विद्याद्बहुदैवतम् ।

विश्वलिङ्गं तु तद्यत्र विश्वैः स्वैः कमेजैर्गुणैः ॥ ४३ ॥

जिसे 'पृथक् स्तुति' कहते हैं उसे अनेक देवताओं को सम्बोधित मानना चाहिये, जो 'विश्व लिङ्ग' से युक्त होता है उसमें देवों की उनके कर्म^२ से उपपन्न 'विश्व'^३ गुणों के साथ स्तुति की जाती है ।

^१ 'विश्व लिङ्ग' शब्द निरुक्त १२ ४० में आता है जहाँ यास्क ने शाकपूणि का यह मत उद्धृत किया है कि केवल उन्हीं सूक्तों को 'वैश्वदेव' कहते हैं जिनमें विशेष लक्षण शब्द 'विश्वे' प्रयुक्त होता है ।

^२ तु० की नीचे ६ ६९ ।

^३ तु० की० ऊपर २ १३४ ।

विश्वानुद्दिश्य यदेवान् स्तौति सूर्यमनेकधा ।

देवानेवाभिसंस्तौति तं प्राहुः सूर्यसंस्तवम् ॥ ४४ ॥

जो विश्वदेवों को उद्दिष्ट करके अनेकधा सूर्य की स्तुति करते हुये इन देवों को भी स्तुति करता है, उसे 'सूर्य संस्तव' कहते हैं ।

न तु भागस्य सूक्तादौ सूक्तेष्वेवौषसेषु वा ।

न सावित्रे हयामीति न सूर्यायां ऋतौ मखे ॥ ४५ ॥

किन्तु यह शब्द (विश्वदेव) भग के सूक्त के आरम्भ में व्यवहृत नहीं होता, और न यह उषस् के वा सावित्र के सूक्त 'हयामि'^२ (ऋग्वेद १ ३५) में, या सूर्य के सूक्त^३ में ही यज्ञात्मक दृष्टि से प्रयुक्त होता है ।

^१ 'भागस्य सूक्तादौ' = 'भागस्य सूक्तस्यादौ' ऋग्वेद में भग को समर्पित एक मात्र सूक्त ७ ४१ की प्रथम ऋचा में अनेक अन्य देवों का तो उल्लेख है किन्तु 'वैश्वदेवी' का नहीं ।

^१ इस सूक्त की प्रथम ऋचा में यद्यपि सवितृ को अनेक सम्बन्ध देवों के साथ सम्बन्ध किया गया है, किन्तु यह 'वैश्वदेवी' नहीं है।

^२ ऋग्वेद १० ८५ की प्रथम ऋचा के सम्बन्ध में भी उपरोक्त टिप्पणी की जा सकती है।

१०-किसी सूक्त के देवता का निर्णय कैसे किया जाय

न चैवैवं प्रवादेषु मन्त्रेष्वन्येषु केषुचित्।

न च यत्र सजोषेति पदं वा स्यात्सजूरिति ॥ ४६ ॥

और न तो इसी प्रकार किसी अन्य ऐसे मन्त्र में इसका प्रयोग होता है जो प्रवाद^१ हों, अथवा जिसमें 'सजोषा' या 'सज्' शब्द आये हों।

^१ अर्थात् जहाँ केवल नामों का ऐसा उल्लेख हो जिसमें आह्वान निहित न हो।

यस्मिन्प्रसङ्गादपि तु बहूनां परिकीर्तनम्।

वैश्वदेवं तदप्याह स्थबिरो लामकायनः ॥ ४७ ॥

किन्तु वृद्ध लामकायन ऐसे सूक्तों तक को विश्वदेवों को सम्बोधित मानते हैं जिसमें अनेक देवताओं की केवल प्रसङ्गवशा ही प्रशंसित होती है।

अमस्तुतं स्तुतं वापि प्रदिष्टं दैवतं कश्चित्।

मन्त्रैस्तद्वचयोऽर्चन्ति तां तु बुध्येत शाम्भवि ॥ ४८ ॥

ऐसे देवता की, जिसकी स्तुति हो अथवा नहीं, किन्तु जिसके नाम का सूक्त में कहीं न कहीं^१ संकेत हो, द्रष्टाण मन्त्रों से अर्चना करते हैं। शाम्भवि^२ को ऐसे देवता पर ध्यान देना चाहिये।

^१ तु० की० नीचे का श्लोक, देखिये ऊपर १ २२ भी।

आदौ हि मध्ये चान्ते च पृथक्त्वेषु च कर्तृभिः।

कर्माण्यनपदिष्टानि प्रदिष्टान्यपि तु कश्चित् ॥ ४९ ॥

(देवों के) कर्मों को चाहे उनके प्रतिनिधि नामों^१ द्वारा ही क्यों न व्यक्त किया गया हो, उनका कहीं न कहीं, आरम्भ में, मध्य में, अन्त में, अथवा पृथक् स्थलों पर निर्देश^२ अवश्य होता है।

^१ अर्थात् इन कर्मों को करने वाले देवों के नाम का उल्लेख नहीं भी हो सकता, जैसे ऋग्वेद ८ २९ में है।

^२ अर्थात् हमें इन देवों के साथ सम्बन्ध अवश्य किया जाता है, जिसकी ये विधिष्ट ताये होते हैं।

कर्मैव तावत्सावित्र्या निविदि स्तौति कर्मणा ।

यद्धेनुः सप्त्यनड्वाहौ वोळ्हा दोग्ध्याशुरेव वा ॥५०॥

सावित्र के निविदि^१ में स्वयं कर्म ही द्वारा कर्म की स्तुति की गई है ।^२ क्योंकि धेनु, अणव्वाह और बौह को (कर्मण) दोग्ध करके बाळा, द्रुतगामी अथवा बाहक^३ कहा गया है ।

^१ ऋग्वेद १ २४, ३ सावित्र का 'निविदि' है तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ५ १७, ७ ।

^२ तु० की० नीचे ३ ७८, ऊपर १ ७ ('स्तुतिस् तु कर्मणा,' इत्यादि) भी देखिये ।

^३ बाजसनेयि संहिता २२ २२ में 'दोग्धी धेनुर् वोढामड्वास्त आधु सति', इसे कुछ विभेद के साथ नीचे ३ ७९ में उद्धृत किया गया है ।

११-प्रसगात्मक देवता तथा सूक्त का स्वामित्व । वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा

भागे यत्स्तौति चाग्न्यादीन् मित्रादींश्चाश्वसंस्तुतौ ।

यदैभिरिति चैतस्मिन् वैश्व देवेऽग्निमर्चति ॥ ५१ ॥

तदाहुरादावन्ते च प्रायशोऽन्या स्तुवन्नृचः ।

प्रतियोगात्प्रसङ्गाद्वा स्तौत्यन्यामपि देवताम् ॥ ५२ ॥

जब कभी कोई (ऋषि) अग्नि तथा अन्य की 'भता'^१ के सूक्त (ऋग्वेद ७ ४१) द्वारा और मित्र तथा अन्य की अश्व की प्रशस्ति (ऋग्वेद १ ११२)^२ द्वारा स्तुति, और विश्वदेव^३ सूक्त 'देभि' (ऋग्वेद १ १४) द्वारा अग्नि की अचना करता है, तो वहाँ ऐसा कहा गया है यद्यपि वह अपने स्तवन में अधिकोक्त (किसी सूक्त के) आदि तथा अन्त^४ में अन्य ऋचाओं^५ का व्यवहार करता है, तथापि वह साथ ही साथ प्रतियोग से अथवा प्रसङ्गक अन्य देवताओं की भी स्तुति करता है ।^६

^१ अर्थात् प्रथम मन्त्र में, देखिये ऊपर ३ ४५ ।

^२ अर्थात् प्रथम मन्त्र में ।

^३ देखिये ऊपर ३ १३ 'आग्रवं सूक्तम् वैश्वदेवम् इहोच्यते', तु० की० नीचे ३ १४१ ।

^४ तु० की० ऊपर १ २२, और नीचे ५ १०१ ।

^५ अर्थात् सूक्त के मध्य में प्रयुक्त छन्दों से भिन्न ऋचाएँ । उदाहरण के लिये मग सूक्त (ऋग्वेद ७ ४१) की प्रथम ऋचा 'जगती' छन्द में तथा शेष 'त्रिष्टुभ' में है, सवित्र-सूक्त का (ऋग्वेद १ २५), जिसका इसी सन्दर्भ में ऊपर (४५ में श्लोक में) उल्लेख किया जा चुका है, प्रथम मन्त्र भी 'जगती' तथा शेष 'त्रिष्टुभ' में है ।

^६ अर्थात् किसी सूक्त की प्रथम और अन्तिम ऋचा में छन्द तथा देवता की दृष्टि से अवसर विभेद होता है ।

यस्यां वयस्यर्थवादान् सा ज्ञेया सूक्तभागिनी ।

यां तु स्तौति प्रसङ्गेन सा विज्ञेया निपातिनी ॥ ५३ ॥

उस देवता को, जिसे वह किसी अर्थ प्राप्ति^१ के लिये सम्बोधित करता है, सूक्त का भागी माना जाता है, किन्तु जिसकी वह केवल वसत्यार्थ स्तुति करता है, उसे वैपातिक^२ मानना चाहिये ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९ 'अर्थं भवन्तम्' ।

^२ तु० की० १ १७, १८ ।

१२- वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की गणना

चतुर्धा भण्यते तस्मिन् सूक्ते वा सूक्तभागिनी ।

यस्मिन्सर्वास्तु राजर्षीन् ऋषीन्वापि स्तुवन्नृषिः ॥ ५४ ॥

मेधातिथिरगस्त्यस्तु बृहदुक्थो मनुर्गयः ।

ऋजिश्वा वसुकर्णश्च शार्यातो गोतमो लुशः ॥ ५५ ॥

स्वस्त्यात्रेयः परुळेपः कक्षीवान् गाथिनौर्वशौ ।

नामाकश्चैव निर्दिष्टो दुवस्युर्ममतासुतः ॥ ५६ ॥

विहव्यः कश्यप ऋषिर् अबत्सारश्च नाम यः ।

वामदेवो मधुछन्दाः पार्थो वक्षसुतावितिः ॥ ५७ ॥

जुहूर्गृत्समदश्चर्षिर् देवाः सप्तर्षयश्च ये ।

यमोऽग्निस्तापसः कुत्सः कुसोदो त्रित एव च ॥ ५८ ॥

बन्धुप्रभृतयश्चैव चत्वारो आतरः पृथक् ।

विष्णुश्च नेजमेषश्च नाम्ना सर्वननश्च यः ॥ ५९ ॥

यह कहा जा सकता है कि ऐसे सूक्तों में सूक्त के भागी देवता को चार प्रकार से निर्दिष्ट^१ किया जाता है जिनमें कोई द्रष्टा समस्त राजर्षियों अथवा ऋषियों की इन नामों से स्तुति करता है ।

मेधातिथि^२, अगस्त्य^३, बृहदुक्थ^४, मनु^५, गय^६ ऋषिचन्द्र^७, वसुकर्ण^८, शार्यात^९, गोतम^{१०}, लुश^{११}, स्वस्त्यात्रेय^{१२}, परुळेप^{१३}, कक्षीवन्^{१४}, गाथिव के पुत्र (विरवामिव)^{१५}, और उर्वशी के पुत्र (बलिष्ठ)^{१६}, नामाक^{१७}, दुवस्यु^{१८}, और ममता के पुत्र (दीर्घतमस्)^{१९}, विहव्य^{२०}, ऋषि कश्यप^{२१}, और वह भिष्मका नाम अबत्सार^{२२}, है, वामदेव^{२३}, मधुछन्दा^{२४} पार्थ^{२५}, वक्ष की पुत्री

अदिति^{२६}, छट्^{२७}, और ऋषि सुत्सम^{२८}, और वह जो दिव्य सप्तर्षि हैं^{२९}, यम^{३०}, अग्नितापस^{३१}, कुत्स^{३२}, कुत्सीदिन्^{३३}, और जित^{३४}, और चार वज्र^{३५}, तथा वही धृक्-पृथक् मी^{३६}, विष्णु^{३७}, और मेजमेज^{३८}, और वह जिनका नाम संधनम^{३९} है।

^१ ५५ ५९ में इलोक में गिनाये गये सैंतीस नाम (नामाक' के अतिरिक्त) वैश्वदेव सूक्तों के प्रसिद्ध द्रष्टा हैं। ५५ ६७ में इलोक में आनेवाले चौबीस पुरुष नामों में से सत्रह का ऊपर (२ १२९ १३१) दो हुई वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की सूची में नाम आता है।

- ^२ ऋग्वेद १ १४ का द्रष्टा।
- ^३ ऋग्वेद १ १८६ का द्रष्टा।
- ^४ ऋग्वेद १० ५६ का द्रष्टा।
- ^५ ऋग्वेद ८ २७ ३० के द्रष्टा।
- ^६ ऋग्वेद १० ६३, ६४ के द्रष्टा।
- ^७ ऋग्वेद ६ ४९-५२ के द्रष्टा।
- ^८ ऋग्वेद १० ६५, ६६ के द्रष्टा।
- ^९ ऋग्वेद १० ९२ के द्रष्टा।
- ^{१०} ऋग्वेद १ ८९ ९० के द्रष्टा।
- ^{११} ऋग्वेद १० ३१, ३६ के द्रष्टा।
- ^{१२} ऋग्वेद ५ ५०, ५१ के द्रष्टा।
- ^{१३} ऋग्वेद १ १३९ का द्रष्टा।
- ^{१४} ऋग्वेद १२१, १२२ के द्रष्टा।
- ^{१५} ऋग्वेद १ ३, ७९ १०, १३७, ५ के द्रष्टा, इन्हें किसी सम्पूर्ण वैश्वदेव सूक्त के प्रणयन का श्रेय नहीं दिया गया है।
- ^{१६} ऋग्वेद ७ ३४ ३७ ३९, ४०, ४२ ४३ के द्रष्टा।

^{१७} नामाक (ऋग्वेद ८ ३९ ४२ का द्रष्टा) को किसी भी वैश्वदेव सूक्त अथवा ऋचा का द्रष्टा नहीं कहा गया है। दूसरी ओर, नामानेदिष्ट, जिसका वैश्वदेव सूक्त के द्रष्टाओं की एक मत तालिका (ऊपर २ १२९-१३१) में उल्लेख है, दो वैश्वदेव-सूक्तों (ऋग्वेद १० ६१

६२) का द्रष्टा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'निदिष्टो' शब्द कदाचित् 'नेदिष्टो' का ही एक अष्ट पाठ है।

- ^{१८} ऋग्वेद १० १० का द्रष्टा।
- ^{१९} ऋग्वेद १ १६४ का द्रष्टा।
- ^{२०} ऋग्वेद १० १२८, का द्रष्टा।
- ^{२१} ऋग्वेद १० १३७, २, और ८ २९ का द्रष्टा।
- ^{२२} ऋग्वेद ५ ४४ का द्रष्टा।
- ^{२३} ऋग्वेद ४ ५५ का द्रष्टा।
- ^{२४} ऋग्वेद १ ३, ७९ का द्रष्टा।
- ^{२५} अर्थात् ऋग्वेद १० ९३ का द्रष्टा 'ता व पार्थ'।
- ^{२६} अर्थात् 'अदिति दाक्षायणी' जो ऋग्वेद १० ७२ की ऋषि है तु० की० सर्वां नुकमणी अथानुकमणी १० २९।
- ^{२७} ऋग्वेद १० १०० का द्रष्टा।
- ^{२८} ऋग्वेद २ ९, ३१ के द्रष्टा।
- ^{२९} ऋग्वेद १० १३७ का द्रष्टा।
- ^{३०} ऋग्वेद १० १४ तथा १० १० ले एक अश के द्रष्टा।
- ^{३१} ऋग्वेद १० १४१ के द्रष्टा।
- ^{३२} ऋग्वेद १० ६ १०७ के द्रष्टा और १ १०१ के वैकल्पिक द्रष्टा भी।
- ^{३३} ऋग्वेद ८ ८३ का द्रष्टा।
- ^{३४} ऋग्वेद १० १-७ के द्रष्टा और १ १०१ के वैकल्पिक द्रष्टा।
- ^{३५} ऋग्वेद ५ २४ और १० ५७-६० के द्रष्टागण।
- ^{३६} अर्थात् ऋग्वेद ५ २४ में, तु० की० आर्षानुकमणी ५ ११, जहाँ इनके नामों की गणना करार है और

इस 'वृषा' का अर्थ है : अग्नि-
 अथर्व २०. १८४ का अर्थ है : अग्नि-
 अथर्व २०. १८४ का अर्थ है : अग्नि-

एते तु सर्व एवाहव विन्वेः स्वीः कर्मजैर्गुणैः ।

सकलैरेव च कर्मजैः पृथक्पृथक् तु तुष्टुः ॥ ६० ॥

इन सब ने पृथक्-पृथक् सुखों में उसकी (विशेष की) कर्मों के उत्पन्न
 'विन्वे' सुखों के साथ शक्ति की है, चाहे इन सुखों का सम्बन्धिक रूप से अथवा
 पृथक् पृथक् ही उत्पन्न हो ।

अर्थात् वेद-सुखों के द्वारा इन सुखों में अग्नि की शक्ति 'वेद' सुखों के साथ
 करते हैं, जैसा अथर्व १. १४ में है, तु० की० ऊपर ३. २६, और ३. १२५ ।

१३-इविणोदस् की व्याख्या । अथर्व १. १३-१८ के वेदका

पार्थिवो इविणोदोऽग्निः पुरस्तात्पुनः कीर्तितः ।

तमाहुर्निर्वातृत्वाद् एके तु बलविशयोः ॥ ६१ ॥

अब 'इविणोद' को, जिसे ऊपर (३. १८) पार्थिव अग्नि कहा गया है,
 कुछ लोग इसलिये इन्द्र^१ कहते हैं कि यह शक्ति अथवा अग्नि का दायता है ।

^१ तु० की० निरुक्त ८. २, जहाँ यह कहते हुये कि 'क्रौञ्चिक के विचार से 'इविणो-
 दस्' इन्द्र है, इस मत का प्रतिपाद किया गया है ।

^२ तु० की० ऊपर २. २५, जहाँ कुत्स द्वारा अग्नि की इविणोदस् को जाने का वही
 कारण बताया गया है ।

अयं हि इविणोदोऽग्निर् अयं वाता बलस्य हि ।

जायते च बलेनायं मथमत्युपिभिरध्वरे ॥ ६२ ॥

यह पार्थिव अग्नि ही इविणोद है, क्योंकि यह शक्ति के वाता और
 शक्ति द्वारा उत्पन्न हुये हैं, अर्थात् बल के समर्थ अविनाश इनका ही सम्बन्ध^२
 करते हैं ।

^१ तु० की० ऊपर २. २५ ।

^२ तु० की० निरुक्त ८. २ बलेन 'अथमानो जायते ।'

हवींषि इविणं प्राहुर् इविणो यत्र जायते ।

वातासमर्त्यजस्तेषां इविणोदास्ततः स्वयम् ॥ ६३ ॥

यह अग्नि को इन्द्र (इविण)^१ कहते हैं क्योंकि यह अग्नि से ही उत्पन्न होता
 है; अतः वाता ही इविणोदा होते हैं, अतः वही स्वयं 'इविणोद'^२
 की है ।

^१ तु० की० ऊपर ३. २५, निरुक्त ८. २ ।

१०. की० निरुक्त ८. २ 'ऋत्विजोऽत्र द्रविणोदस उच्यते इति चोक्तम्' ॥
 ११. बहुवचन 'द्रविणोद' ऋग्वेद १. ५३, १० में आता है। वस्तु के केवल 'द्रविणोदस्' रूप ही स्मृत किया है।

ऋषीणां पुत्र इत्येषां उच्यते सहस्रो यदो।

मध्यसाहस्रं यतो जज्ञे नरमात्रं द्राविणोदसः ॥ ६४ ॥

अथवा अठ (अग्नि) इसलिये 'द्राविणोदस' कहें जाते हैं कि यह 'ऋषियों' के पुत्र, 'वक्त्र' के 'पुत्र' अग्नि उक्तिओं द्वारा इसके साथ संयुक्त प्रतीत होते हैं; अथवा इसलिये कि यह मध्य (अग्नि) से उत्पन्न हुआ है।

१०. की० निरुक्त ८. २ 'यदीयतद् अग्नि द्राविणोदसम् आदिति' ऋत्विजोऽत्र द्रविणोदस ते चैन जनयन्ति, 'ऋषीणां पुत्रो अभिराज एव' इत्यपि निगमो अस्ति। ११ 'ऋषीणां पुत्र' शब्द वाजसनेयि संहिता ५४ में आता है।

१२. अग्नि की उक्ति में अक्सर 'सहस्रो यदो' (१. २४, १० इत्यादि) के रूप में सम्बोधित किया गया है। तु० की० निरुक्त ८. २ 'वक्त्रे मध्यसाहस्रं जायते, तस्माद् एनम् आह सहस्रं पुत्र सहस्रं सूनु, सहस्रो यदुम्। 'ऋषीणां पुत्र' की व्याख्या में 'सहस्रो यदो' का इस अर्थ में प्रयोग किया गया है कि ऋत्विजगण शक्ति के द्वारा अग्नि को उत्पन्न करते हैं (देखिये ऊपर ६२ वां श्लोक)।

१३. अर्थात् 'द्रविणोदस्' से व्युत्पन्न होने के कारण इन्हें 'द्राविणोदस' कहते हैं। तु० की० निरुक्त ८. २ 'अथाप्यग्नि द्राविणोदसम् आह ए पुनर् इतरमाज् जायते।'

द्रविणोदोऽग्निरेवाय द्रविणोदास्तदोच्यते।

आग्नेयेष्वेव हृदयन्ते प्रवादा द्रविणोदसः ॥ ६५ ॥

यह पार्थिव अग्नि ही धन के दाता (द्रविणोद) है, इसी लिये इन्हें 'द्रविणोदस्' कहते हैं; केवल अग्नि को सम्बोधित सूक्तों में ही 'द्रविणोदस्' के प्रवाद दृष्टिगत होते हैं।^१

१. अर्थात् जब यह पार्थिव होते हैं।

१०. की० निरुक्त ८. २ 'अथन एवाग्नि द्रविणोदा इति शाकपूणिर् आग्नेयेष्व एव हि सूक्तेषु द्राविणोदसा प्रवादा भवन्ति।

१४-ऋग्वेद १. १८ के देखता। प्राजापति के आठ नाम

ऐन्द्रस्थ नवकस्येह यदेन्द्रावरुणं परम्।

तस्यात्तरं च सोमानं स्तूयते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ६६ ॥

ऋग्भिः पञ्चभिराद्याभिस तिसृभिः सदसस्पतिः।

नराशांसोऽन्त्यया चर्चा सोमेन्द्रौ तु निपातितौ ॥ ६७ ॥

चतुर्थी सोम इन्द्रश्च पञ्चम्या अग्निर्वायुश्च ।

प्रसङ्गादग्निना प्रोक्ताः सम्मन्वा स्थानलोकयोः ॥६८॥

यहाँ इन्द्र को समर्पित की जायज्यों के लक्ष (ऋग्वेद १.१४) के बाद भी जाता है वह इन्द्र वरुण (१.१७) की सम्मोहित है। इसके बाद का 'सोमानम्' (ऋग्वेद १.१८) है जिसमें प्रथम पाँच जायज्यों में ब्रह्मणस्पति की स्तुति है।

उसके बाद का तीन जायज्यों (१-८) में सदसस्पति की और अग्निम जाय (९ वीं) में नराशम की स्तुति है; चतुर्थ में सोम-इन्द्र की नैपातिक स्तुति है; और पाँचवीं में सोम और इन्द्र तथा 'अग्नि' की भी। अग्नि ने स्थान और इन्द्र की क-सदस्य की प्रसङ्गवशात् स्तुति की है।

^१ अर्थात् उन्को का अन्तर इसलिये स्थाप-साध इच्छेय होता है कि स्थान और लोक (पायिब, अथवा अ-तरिणीय, अथवा दिव्य) की दृष्टि से वह सम्बद्ध होते हैं।

प्रजापत्यं तथेन्द्रः स्याद् इति तस्येह व्यसनी ।

कथिले द्वे च षट् चान्यान्य एषां चाद्यः प्रजापतिः ॥६९॥

इस प्रकार, प्रजापति का एक नाम इन्द्र हो सकता है : इस विद्वान्त के आधार पर इनके दो नामों का यहाँ उल्लेख है। इसके अतिरिक्त छ और भी हैं; प्रजापति इनमें से प्रथम है।

^१ क्योंकि यहाँ उल्लिखित प्रजापति के आठ नामों में से चार, अर्थात् ब्रह्मणस्पति, वाचस्पति, 'क' और प्रजापति, नैषण्डुक ५.४ में इन्द्र-स्थानीय देवताओं की तालिका में आते हैं।

^२ अर्थात् ६६ वें में 'ब्रह्मणस्पति' और ६७ वें में 'सदसस्पति'।

शिष्टानि यानि नामानि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ।

सत्पतिः कश्च कामश्च सदसस्पतिरेव च ॥७०॥

इहस्पतिर्वाचस्पतिस् ततस्तु ब्रह्मणस्पतिः ।

तृतीयान्ये तु सूक्तस्य प्रथमं पञ्चमं च यत् ॥७१॥

अब मैं शेष नामों का उल्लेख करूँगा :—सत्पति,^१ क, काम, और सदस-स्पति, इहस्पति, वाचस्पति, और फिर ब्रह्मणस्पति किसी सूक्त^२ में इनमें से तृतीय और अन्तिम^३, तथा प्रथम और पाँचवाँ आते हैं;

- ^१ 'सप्तपति' वैष्णविक में नहीं आता। ऋग्वेद में यह प्रयुक्तः कर्म की प्रशंसा की है (तु० की० ऊपर ६९)। प्रजापति के इन नामों में से 'सप्तपति' से अन्वय मिलता है।
^२ यहाँ 'सूक्तान्' की 'यक सूक्त' नामक सूक्तों में आनेवाला के रूप में ही व्याख्या की जाती चाहिये, 'सूक्तानां' के समानार्थी के रूप में नहीं, क्योंकि 'क' अन्वा 'सप्तसप्तपति' की ओर भी सम्पूर्ण सूक्त सप्तपति नहीं किया गया है।
^३ अर्थात् 'क'। प्रयुक्त प्रत्यय में केवल एक ऋचा (ऋग्वेद १. २४, १) ही 'क' की सम्पत्ति बतलाई गई है।
^४ अर्थात् 'महासप्तपति', जिसे अनेक सूक्त सम्पत्ति है।
^५ अर्थात् 'प्रजापति' जिसे ऋग्वेद १० १२१ सम्बोधित है।
^६ अर्थात् 'अद्वयसप्तपति', जिसे ऋग्वेद की तीन ऋचाओं (१ १८, ६-८) ही सम्बोधित है।

१५-प्रजापति के नाम (कर्मदा)। ऋग्वेद १ १९ के देवता

चतुर्मिरितरेस्त्वेनं न सूक्तं नाप्यगदुल्ले।

सर्वाण्येष तु सर्वासां देवतानां प्रजापतेः ॥ ७२ ॥

नामानि कथयन्त्येते सम्यग्भक्तिविदक्षवः।

तदाहुर्नैतदेवं स्याद् अष्टानामेष हि स्मृतः ॥ ७३ ॥

क्यों कि अन्वय चार नामों से इनका न तो कोई सूक्त है और न कोई ऋचा।

अब भक्ति में सम्यग् दृष्टि की दृष्टि रखनेवाले कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सभी देवताओं के सभी नाम प्रजापति के ही हैं। इस सम्बन्ध में (अन्वय लोगों का) यह कथन है कि ऐसा नहीं होना चाहिये, क्योंकि इनकी (प्रजापति की) केवल आठ नामों वाले के रूप में ही स्मृति की जाती है,

^१ क्योंकि यह सभी के स्मृत हैं, तु० की० ऊपर १ ६२।

तैरेव चास्य कल्प्यन्ते क्रतवश्च हवींषि च।

मरुद्भिर्मध्यमस्थानैर् अयमग्निस्तु पार्थिवः ॥ ७४ ॥

नवकेनेह सूक्तेन प्रति त्यमिति संस्तुतः।

मरुता साहचर्यात्तु सूक्तेऽस्मिन्नाग्निमारुते ॥ ७५ ॥

मन्यते मध्यमं चैव यान्कोऽग्निं न तु पार्थिवम्।

स्यादयं पार्थिवस्त्वेव तथा रूपं हि दृश्यते ॥ ७६ ॥

और केवल इन्हीं नामों से इन्हें वज्र तथा हवि सम्पत्ति किये जाते हैं।

अब, इन मन्त्रों के साथ जो मन्त्र-स्थावीर हैं, इस पार्थिव अग्नि की वही वी ऋचाओं वाले 'मध्यम' (ऋग्वेद १. १९) सूक्त से स्मृति की गई है।

किन्तु अग्नि-शब्दों की सम्बन्धित इस श्रृंखला में नहीं है। साथ ही हमें सम्बन्ध के कारण वाचक का विचार है कि यहाँ पायिब नहीं कर-आत्मन अग्नि का तात्पर्य है। किन्तु यह केवल पायिब अग्नि ही हो सकते हैं, क्योंकि यहाँ इनका ऐसा ही रूप है।

११ अग्नेह १ १९ की प्रथम श्रृंखला पर टिप्पणी करते हुए वाचक (नियम १० ११) यह कहते हैं 'कम् अन्यं मध्यमाद् एवम् अवदन्तु।'

१६-किसी श्रृंखला, इत्यादि, के देवता का किस प्रकार निर्धारण करना चाहिये।

हूयस पीतये^१ चेति वैद्युते न तदस्ति हि।

अथ स्यादभिज्ञानस्य देवतायाः प्रथक् प्रथक् ॥७७॥

हम प्रकार की स्तुति, जैसे, 'तुम्हें पीने के लिये आहूत करता हूँ,' को विद्युत् (अग्नि) के लिये नहीं जानना चाहिये। अतः यह आवाहन प्रथक्-प्रथक् देवताओं के नाम से सम्बन्ध होना चाहिये।^२

१ 'हूयसे पीतये' शब्दों से सम्बन्ध; अग्नेह के ११९, १ के इन शब्दों से तात्पर्य प्रतीत होता है 'गोपीयाय प्र हूयसे'।

२ अर्थात् हमें देवता के नाम से ही इसे सम्बन्ध करना चाहिये। इसलिये यहाँ 'अग्नि' को पायिब और मरुतो को आन्तरिक्ष-देवता के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

श्रृंखलाऽर्चस्य पादस्य कथं ज्ञायेत् देवतम्।

यथा निबिदि माविश्यां स्तूयते कर्म कर्मणा ॥७८॥

किसी श्रृंखला, अर्च-श्रृंखला और पाद के देवता^१ को किस प्रकार जानना चाहिये? जैसे कि सवि^२ के निबिद में हैं, (किसी देवता के) कर्म की कर्म के आधार पर स्तुति को जाती है,^३

१ यह सन्देह (उपर ७५, ७६ में) कि किस अग्नि से तात्पर्य है, प्रत्युत अन्य के लेखक को इस प्रश्न पर विचार करने के लिये प्रेरित करता है कि किसी सम्पूर्ण सूक्त के देवता की तुलना में श्रृंखला, अर्च-श्रृंखला या किसी पाद विशेष के देवता की किस प्रकार जाना जा सकता है? इसका प्रश्नकार यह उत्तर देता है कि किसी देवता विशेष के विशिष्ट कर्म के उल्लेख द्वारा ही उसकी अर्पित स्तुति की जाना जा सकता है।

२ अग्नेह १ ४२, २ 'अग्निं त्वा देव सवितरो ज्ञाने कर्वाणाम्। सदा यन्मागमीये'।

३ देखिये अन्तरिक्ष-श्रृंखला ५. १७, ७ 'अग्निं त्वा देव सविर्वरुणं सविणम्'।

४ देखिये ऊपर १ ५०।

**दोग्धी धेनुर्धोवाकृत्वाऽन आशुः सतिः पुरविष्यः ।
यथा च शन्नो मित्रिया वरुणः प्राविता भुवत् ॥ ७९ ॥**

(जैसा कि) 'दुग्धा गाय, अश्वत्थान, तीव्र गतिवाला 'सति' और उद्योग-शील (की)',^१ तथा 'हां नो मित्र' (ऋग्वेद १ ९०, ९), तथा 'वरुण प्राविता भुवत्' (ऋग्वेद १ २३, ६)^२ मंत्रों में है,

^१ यह वाक्य वाजसनेयि संहिता २२ २२, से उद्धृत है। ऊपर ३ ५० में भी इसका सन्दर्भ है।

^२ अर्थात् इन दो मंत्रों में मित्र और वरुण की क्रमशः 'दयावान' और 'रक्षक' के रूप में स्तुति की गई है।

सूक्तप्रावेणौभिरग्ने परीक्ष्यास्तत्र देवताः ।

शब्दानां द्वैपदादीनां द्विदैवबहुदैवतम् ॥ ८० ॥

(और) 'देभिर् अग्ने' (ऋग्वेद १ १४, १)^१ में है इन सभी दृष्टाओं में सूक्त के सामान्य प्रयोजन के अनुसार ही देवताओं का परीक्षण करना चाहिये।

दो अथवा अधिक पद^२ वाले शब्दों से दो अथवा अनेक देवता सम्बद्ध हो सकते हैं।^३

^१ ऊपर ३, ५१, में इसी सन्दर्भ में इसका उद्धरण दिया जा चुका है।

^२ अर्थात् 'देवताद्वन्द्व' से दो अथवा अधिक देवताओं की स्तुति का तात्पर्य है।

^३ 'द्विदैव-बहुदैवतम्' सम्भवतः 'द्विदैवत बहुदैवतम्' का ही सक्षिप्तरूप प्रतीत होता है।

असंस्तुत संस्तुतवत् प्रविष्ट दैवत कश्चित् ।

यत्र द्विदैवते मन्त्र एकवदेवतोच्यते ॥ ८१ ॥

यदि किसी देवता को किसी स्तुति में सम्बद्ध न किया गया हो तो भी यदि उसका कहीं उल्लेख हो तो उसे स्तुति से सम्बद्ध मानना चाहिये।

जहाँ दो देवताओं को सम्बोधित किसी मन्त्र में एक देवता का एकवचन में उल्लेख हो,

^१ अर्थात् यदि स्पष्ट रूप से स्तुत्य देवता के साथ दूसरे देवता का सम्बन्ध प्रसङ्ग से व्यक्त हो (तु० की० ऊपर ३ ४९ और १ ११९) तो इस देवता को भी स्तुति से सम्बद्ध जानना चाहिये। इसका उदाहरण ऋग्वेद १ १५४ की अग्निस ऋचा में देखा जा सकता है जहाँ विष्णु की तो स्तुति है किन्तु 'वाम' द्विवाचक की आता है। अतः यह निश्चय किया जा सकता है कि यहाँ विष्णु के साथ इन्द्र की सम्बद्ध है, क्योंकि इन दोनों देवों का ऋग्वेद १ १५५, १-३ में साथ-साथ आवाहन किया गया है।

विभक्तस्तुति तद्विधाद् बहुवचबहुवच यत् ।

आशीर्वादेषु संज्ञासु कर्मसंस्थासु देवताः ।

बहुयो ह बहुवचस्र द्विपदे यत्र संस्तुते ॥ ८२ ॥

यहाँ यह जानना चाहिये कि उसमें विभक्त स्तुति है, और यदि ऐसे मन्त्र में अनेक देवताओं का भी 'अ-बहुवच' उल्लेख हो तो उसे भी इसी प्रकार ग्रहण करना चाहिये ।

आशीर्वादों में, नामों की गणनाओं में, तथा समुच्च कर्म-काण्डों में, अनेक देवता बहुवचन में आते हैं, जिनमें स्तुति की दृष्टि से दो देवताओं को सम्बोधित मानना चाहिये ।

^१ 'विभक्त स्तुति' की परिभाषा के लिये देखिये, ऊपर ३ ४१ ।

^२ यहाँ 'बहुपु' को 'द्विदैवत' के, तथा 'अबहुवच' को 'एकवच' के समानान्तर माना गया है ।

^३ इन अन्तिम दो वाक्यों का सामान्य अर्थ यह प्रतीत होता है कि ऐसी दृष्टाओं में अनेक देवताओं को एकवचन नहीं माना जाता, और इसलिये वह 'विभक्त स्तुति' नहीं हो सकती ।

१७- ऋग्वेदों और त्वष्टा की कथा

सुधन्वन आद्विरसस्यासन्पुत्रास्त्रयः पुरा ।

ऋभुर्विभ्वा च वाजश्च शिष्यास्त्यदुध तेऽभवन् ॥ ८३ ॥

प्राचीन काल^१ में अद्विरसु पुत्र सुधन्वन् के ऋभु, विभ्वन् और वाज^२ नामक तीन पुत्र हुए, और यह सभी त्वष्टा के शिष्य बने ।

^१ त्वष्टा के चमस् से ऋभुओं द्वारा चार चमसों के निर्माण की नीचे वर्णित कथा का ऋग्वेद के ऋभु सूक्त (१ २०) में उल्लेख है ।

^२ तु ० की० ऋग्वेद १ ११०, ४ पर निरुक्त ११ १६ "अभुर विभ्वा वाज इति सुधन्वन आद्विरसस्य त्रय पुत्रा बभूवुः ।"

शिक्षयामास तांस्त्वष्टा त्वाष्टं यत्कर्म किंचन ।

परिनिष्ठितकर्माणो विश्वे देवा उपाह्वयन् ॥ ८४ ॥

त्वष्टा ने इन लोगों को उन समस्त कलाओं की शिक्षा दी जिनमें वह (त्वष्टा) पारंगत थे । विश्व-देवों ने, जो स्वयं भी समस्त कलाओं में प्रवीण थे, उन्हें बुझाती दी ।^१

^१ अर्थात् उन्हें त्वष्टा से अर्जित अपनी कला का प्रदर्शन करने की बुझाती दी ।

विश्वेषां ते सतश्चक्रं वाहनान्मायुधानि तु ।
 धेनुं सबर्हुषां चक्रं अमृतं सब्रह्मणे ॥ ८५ ॥
 बृहस्पतेरथाम्बिभ्यां स्थं दिव्यं त्रिवन्धुरम् ।
 इन्द्राय च हरी देवप्रहितेनाग्निनापि यत् ॥ ८६ ॥

इन लोगों ने विश्वदेवों के लिये वाहनों और आयुधों का निर्माण किया ।
 इन्होंने सबर्हुषा गाय का निर्माण किया—ब्रह्मन् को ही बृहस्पति का 'सबर्' कहते हैं, फिर इन्होंने अम्बियों के लिये तीन आसनों वाले दिव्य रथ, और इन्द्र के लिये दो अश्वों का निर्माण किया, देवों द्वारा इनके पास भेजे गये अग्नि के माध्यम से भी इन्होंने अपने कौशठ का प्रदर्शन किया ।^१

^१ अर्थात् अग्नि को अपना दूत बना कर भेजने वाले देवों के आदेश पर इन्होंने त्वष्टा के एक चमस् से चार चमसों का निर्माण किया (देखिये ऋग्वेद १ १६१ १-३)

एकं चमसमित्युक्ते उपेष्ट आहेत्यथो दिवि ।
 उत्त्वा ततश्चुश्चमसान् यथोक्तं तेन हर्षिताः ॥ ८३ ॥

जब उन्होंने (अग्नि न) कहा कि 'एक चमस को चार कर दो' (एक चमस चतुर, ऋग्वेद १ १६१, २), और जब इन छ गों ने 'उपेष्ट आह' (ऋग्वेद ४ ३३, ५)^१ ऋचा के अनुसार स्वर्गलोक में परस्पर परामर्श कर किया, तब उनके कथन से हर्षित होकर इन्होंने, जैसा कहा आ चुका है, चार चमसों (प्यालों) का निर्माण कर दिया ।

^१ जहाँ ऋभुओं में सबसे ज्येष्ठ ने एक चमस को दो करने की, बीच के ऋभु ने तीन करने की, और सब से कनिष्ठ ने चार करने की इच्छा प्रकट की है ।

^२ अर्थात् अग्नि के इस आवाहना से हर्षित होकर कि एक चमस को चार कर देने पर वह लोग (ऋभुगण) भी देयताओं के साथ यह भाग प्राप्त करेंगे । (देखिये ऋग्वेद १ १६१, २) ।

१८-ऋग्वेद १. २०-२१ के देवता

त्वष्टा च सविता चैव देवदेवः प्रजापतिः ।

सर्वान्देवान् समामन्य अमृतत्वं दधुष्य ते ॥ ८८ ॥

और त्वष्टा तथा सवितृ, और देवों के प्रजापति ने समस्त देवों को आमन्त्रित करके ऋभुओं को अमरत्व प्रदान किया (तु० की० ऋग्वेद ४ ३३, ३-४) ।

तेषां आयन्त्ययोनौ ज्ञा इहयते बहुवचस्तवः ।

तृतीयसवने तेषां तैस्तु भागः प्रकल्पितः ॥ ८९ ॥

इनकी प्रकल्पित और अल्पित के भाग के साथ (ऋग्वेद में) बहुवचन में स्तुति मिलती है ।

तृतीय सवन में विश्वदेवों के साथ इनके भाग का भी विधौरेय किया गया है ।

अर्थात् इन देवों का या तो 'ऋमव' अथवा 'द्वावा' के रूप में ही संबोधित है, 'विश्वन्' के बहुवचन रूप में नहीं । तु० की० निष्क ११ १६ २ 'तेषां प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवच् सिगमा अवसितः, न मध्यमैना' ।

तु० की० ऋग्वेद १ २०, ८ 'अमजन्त माग देवेभ्य विश्वन्, और इस पर सायण । तृतीय सवन में इनके भाग के लिये देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ३ ३०, भी,

अपिषत्सोममिन्द्रश्च तैस्तत्र सवने सह ।

तेषां स्तुतिरिदं सूक्तं त्वयमित्यष्टकं परम ॥ ९० ॥

और इन्द्र न उस सवन के समय इनके (ऋषियों के) साथ सोम प्राय किया । और वह सूक्त ('अथम्' ऋग्वेद १ २०) जिसमें आठ ऋचायें हैं, इनकी ही स्तुति है ।

इहेन्द्राग्नी स्तुतौ देवौ तृतीयस्वादिर्भिनौ ।

हिरण्यपाणि सावित्र्यश्चतस्रः अप्यथोत्तराः ॥ ९१ ॥

'इह' (ऋग्वेद १ २१) में दो देवताओं, इन्द्र-अग्नि, की स्तुति की गई है । तृतीय सूक्त के आरम्भ में आग्नि की स्तुति है तथा उसके बाद ही चार ऋचायें ('हिरण्यपाणिम्', १ २२, ५-८) सवित्र की सम्बोधित हैं ।

अर्थात् १ २१ ।

एकाग्नेर्द्वे तु देवीनां द्वावह्यां देवपत्नयः ।

इन्द्राणी वरुणानी च अग्नायी च पृथक् स्तुताः ॥ ९२ ॥

(इसके बाद) एक (नहीं ऋचा) अग्नि की, किन्तु अन्य दो (एक ही और ३-४ ऋचा) देवियों को सम्बोधित हैं । आरह्वी ऋचा में देव-पत्नियों, इन्द्राणी, और वरुणानी तथा अग्नायी, की पृथक् पृथक् स्तुति है ।

१९- ऋग्वेद १ २२ (क्रमशः), ऋग्वेद १ २३ ; पूषन् आशुषि

यावापृथिव्यौ द्वे च स्यात् स्पोनेत्यृक् पाथिवी स्तुता

देवानां वात इत्येषा सूक्तशेषस्तु वरुणवः ॥ ९३ ॥

इसके बाद इसे ऋचायें (१३, १४) 'आयुष्यविषी' की स्तुति करती हैं, 'स्योना' (से आरम्भ होने वाली १५ वीं ऋचा) को पृथिवी को सम्बोधित माना जा सकता है । 'अत' (१६ वीं ऋचा) वैकल्पिक रूप से 'देवी' को सम्बोधित है; शेष सूक्त (१७-२१ वीं ऋचायें) विष्णु को सम्बोधित है ।

वायोस्तीव्रेन्द्रवायुभ्यां तृचो द्वाभ्यां ततः परम् ।

तृचो मित्रावरुणयोस् तथेन्द्राय मरुत्वते ॥९४॥

तृचो विश्वेषां देवानां पूष्ण आघृणये तृचः ।

आसक्तो हि घृणिस्तस्य दध्नः पूर्णो इती रथे ॥९५॥

'तीव्रा' (१ २३, १) वायु को सम्बोधित है क्योंकि यहाँ (दूसरी और तीसरी ऋचा में) इन्द्र वायु के लिये दो ऋचायें हैं । इसके बाद यहाँ मित्र वरुण के लिये तीन ऋचायें (४-६) और मरुतों के साथ इन्द्र के लिये भी तीन ऋचायें (७-९) हैं । तदुपरान्त तीन ऋचायें (१०-१२) विश्वेदेवों के लिये और तीन ऋचायें (१३-१५) पूष्ण आघृणि को समर्पित हैं । इन्हें (पूष्ण) इसलिये ऐसा कहा गया है कि इनके रथ के सथ एक घृणि', अर्थात् दधि से पूण चर्म पात्र मयुक्त (आसक्त) रहता है ।

आघृणिस्तत्स्तुतः पूषा कीरिभी रिभ्यते ततः ।

यथा हि मधुनः पूर्णो इतिरर्थ्येति चाश्विनौ ॥ ९६ ॥

अतः इसकी आ-घृणि के रूप में स्तुति की गई है, इसलिये गायकों (कीरि) ने इनकी प्रशंसा की है । और यत अश्विनों की 'इति' (चर्म-पात्र) मधु से पूर्ण है अतः पाचक उनकी भी इसी प्रकार स्तुति करता है ।

^१ वैदिक शब्द होते हुये भी 'कीरि' शब्द केवल ऋग्वेद में ही मिलता है । जैष्ठिक ३ १६ में यह एक 'स्तोतृनामानि' है ।

आ वर्तनि मधुनेति इतिरेव च दृश्यते ।

अर्धाष्टमा अपां ज्ञेया अध्यर्धान्त्याग्निदेवता ॥ ९७ ॥

'आ वर्तनि मधुना' (ऋग्वेद ४ ४५, ३) में साथ 'इति' भी आता है ।

(इसके बाद) साढ़े सात (१६-२३, ऋचाओं) को अग्नी को समर्पित माना गया है, और आठवीं के शेषार्ध तथा उसके बाद की अन्तिम ऋचा के देवता अग्नि हैं ।

२०—ऋग्वेद १. २४-३५ के शेष भाग

कस्य नूनं तु काट्याया आग्नेय्युक् सवितुस्तृचः ।

भगभक्तस्य भागी वा परं यच्चिद्ध वारुणम् ॥१८॥

किन्तु 'कस्य नूनम्' (ऋग्वेद १ २४) की प्रथम ऋचा 'क' (१) को सम्बोधित है, इसके बाद की एक ऋचा अग्नि (२) को सम्बोधित है; इसके बाद की तीन ऋचायें (२-५) सवितृ को, जहाँ 'भग भक्तस्य' (५) वैकल्पिक रूप से भग को सम्बोधित है ।

इसके बाद आनेवाली (१-१५) ऋचायें तथा बाद का ऋच 'वच् चित्' (ऋग्वेद १ २५) वरुण को सम्बोधित किया गया है ।

वसिष्वा हीति चाग्नेये ऋगग्नेर्मध्यमस्य तु ।

जराबोधेति विज्ञेया वैश्वदेव्युत्तमा नमः ॥ १९॥

'वसिष्वा हि' (ऋग्वेद १ २६) और बाद का सूक्त (१ २७) अग्नि को सम्बोधित है, किन्तु 'जराबोध' (ऋग्वेद १ २७, १०) ऋचा को मध्यम अग्नि को समर्पित मानना चाहिये, अन्तिम नमः' (ऋग्वेद १ २७, १३) ऋचा विश्वदेवों को सम्बोधित है ।

पराश्रवत्सो यत्रेति इन्द्रोत्तुखल्यो स्तुतिः ।

मन्येते यास्ककात्थक्याब् इन्द्रस्येति तु भागुरिः ॥२०॥

यत्र' (ऋग्वेद १ २८, १-४) से आरम्भ होने वाली चार ऋचाओं में यास्क और काट्य के अनुसार इन्द्र और उत्तुखल की, किन्तु भागुरि के विचार से केवल इन्द्र की स्तुति है ।

यच्चिद्धूतुखलस्य द्वे द्वे परे सुसलस्य तु ।

चर्माधिषवणीयं वा सोमं वान्त्या प्रघांसति ॥ २१ ॥

'यच् चिद् धि' (ऋग्वेद १ २८, ५) से आरम्भ होने वाली दो ऋचायें (५, ६) उत्तुखल को, इसके बाद की दो (७, ८) सुसल को समर्पित हैं, तथा अन्तिम में सोम दवाने के किये प्रयुक्त चर्म की प्रशंसा है ।

'यास्क ने मिरक १. २१, में इस ऋचा का 'उत्तुखल' के सन्दर्भ में उदाहरण दिया है ।

ऐन्द्र यच्चिद्धि सत्येति उत्तरं चाभिनातृषात् ।

आभिनातृषाः कस्त उत्तमस्तृच उत्तमः ॥ २२ ॥

‘वयं विद् वि श्वम्’ (ऋग्वेद १ २९) तथा इसके बाद का सूक्त (१ ३०) इन्द्र को सम्बोधित है। ‘आश्विना’ से आरम्भ होने वाली तीन ऋचायें (ऋग्वेद १ ३०, १०-१९) अश्विनों को और इसके बाद ‘कसू से’ (२०-२२) से आरम्भ होने वाली तीन अन्तिम ऋचायें उपर्युक्त को सम्बोधित हैं।

२१- ऋग्वेद १ ३१-४० के देवता

स्तूयमानः शश्वदिति प्रीतस्तु मनसा ददौ ।

शुनःशेषस्य दिव्यं तु रथं सर्वं हिरण्यमयम् ॥ १०३ ॥

‘शश्वत’ (ऋग्वेद १ ३०, १६) से आरम्भ होने वाली ऋचा द्वारा स्तुति की जाने पर अब से प्रसन्न होकर इन्द्र ने शुन शेष को स्वर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया।

आग्नेयं यन्त्वमैन्द्रे च त्रिष्विदित्याश्विनं ततः ।

ऋतेऽर्यवादं कर्मैतद् इन्द्रस्येति तु शसति ॥ १०४ ॥

‘वयम्’ (ऋग्वेद १ ३१) से आरम्भ होने वाला सूक्त अग्नि को सम्बोधित है, और इसके बाद इन्द्र को सम्बोधित दो सूक्त (३२, ३३) आते हैं। इसके बाद ‘त्रिष्विद्’ (१ ३४) अश्विनों को सम्बोधित है। ‘इन्द्रस्य’ (१ ३२) बिना किसी अर्थवाद^१ के उल्लेख के ही इन्द्र के कर्मों की प्रशंसा करता है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १ ३२ में इन्द्र को सम्बोधित स्तुति के बिना ही वृत्र के साथ उनके सघर्ष की पुरातनता का उल्लेख है। ‘अर्यवाद’ शब्द ऊपर (१ ५३ में) भी आ चुका है।

पादोऽग्रये ह्यधामोति मैत्रावरुण उत्तरः ।

तृतीयो रात्रिसंस्तावः सूक्तं सावित्रमुच्यते ॥ १०५ ॥

‘ह्यधामी’ (ऋग्वेद १ ३५) सूक्त में एक पाद अग्नि को और उसके बाद का पाद मित्रावरुण को सम्बोधित है, तथा तृतीय पाद में ‘रात्रि’ की स्तुति है, जब कि यह सम्पूर्ण सूक्त सवित् को सम्बोधित कहा गया है।

पञ्चैतानि जगौ दृष्ट्वा सूक्तान्याङ्गिरसो मुनि ।

हिरण्यस्तूपतां अग्न्य सख्यं येन्द्रेण सामभनम् ॥ १०६ ॥

इन पाँच सूक्तों (३१-३५) का उनके वर्णन के पश्चात् अङ्गिरस के

पुनः ऋषि के हितचिन्तन का यह और दूसरे के साथ साक्षात् सम्पर्क मानकर
के उपलक्षण के आधार पर किया का ।

१०-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००

आग्नेयं वेति मरुतां कीलं त्रीणि पराण्यतः ।

उत्तिष्ठ ब्राह्मणस्पत्यं यं रक्षन्ति अयस्तुषाः ॥ १०७ ॥

'अ' (ऋग्वेद १. १९) अग्नि को सम्बोधित है । 'कीले' (ऋग्वेद १. १०) से आरम्भ होने वाले इसके बाद के तीस सूक्त (१०-१९) मरुतों को सम्बोधित हैं । 'उत्तिष्ठ' (ऋग्वेद १. ४०) ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित किया गया है । 'य रक्षन्ति' (ऋग्वेद १. ४३) सूक्त में ऋषियों के तीस त्रिक मिलते हैं ।

२२- ऋग्वेद १. ४२-४३ को देवता

वरुणार्यममित्राणां मध्य आदित्यदेवतः ।

पौष्णं सं पूषन्वद्भ्यस् तृतोया न तु केवला ॥ १०८ ॥

(उक्त सूक्त के ऋषियों के तीस त्रिकों में से प्रथम १-३, और तृतीय, ७-९, त्रिक) वरुण, अर्धमन् और मित्र को सम्बोधित हैं, जब कि आदित्य-मध्य त्रिक (४-६) के देवता हैं । स पूषन्' (ऋग्वेद १. ४२) पूषन् को सम्बोधित है । इसके बाद वरु को सम्बोधित व ऋषियों (ऋग्वेद १. ४३, १-६) आती हैं, जिनमें से तृतीय में, यद्यपि, अकेले वरु की स्तुति नहीं है ।

मित्रेण वरुणेनात्र विश्वेदेवैश्च संस्तवः ।

उक्तमश्रुर्विषा पूर्वम् आदेशादेवत विना ॥ १०९ ॥

ज्ञातु न शक्यते लिङ्गात् तथापि कश्चिदुच्यते ।

आदित्या वसवो रुद्रास् त्वमग्नि इति संस्तुताः ॥ ११० ॥

यहाँ (उक्त १. ४३, २ में) मित्र, वरुण तथा विश्वेदेवों के साथ-साथ ही वरु की स्तुति की गई है ।

ऋषि ने इस बात को पहले ही कह दिया है कि बिना किसी आदेश के केवल लिङ्ग अथवा विभिन्न लक्षण के आधार पर देवता को नहीं जाना जा सकता । फिर भी, कहीं-कहीं देवता का इस प्रकार भी उल्लेख है : जैसे 'वसव आश्वे' (ऋग्वेद १. ४५, १) में आदित्यों, वसुओं, रुद्रों की एक साथ (अग्नि के साथ) स्तुति की गई है ।

अथोद प्रस्तुत अग्नि के रक्षयिता शीनक ।

^२ ऊपर १ १९, 'आदेशाद् देवतं देवम्' न सम्यक् विधीयते ।

^३ यह सब नाम ऋग्वेद १ ४५, १ में आते हैं; किन्तु सर्वानुक्रमणी में इनके सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं है ।

तिस्रः सौम्योऽग्न आग्नेय प्रगाथेनाश्विनौ स्तुता ।

सहोषसा लिङ्गभाजा अयं सोमः सुदानवः ॥ १११ ॥

अथर्वो देवदत्तस्य एषो इत्याश्विने पदे ।

अदित्य मन्यते यास्को हविषेति सह स्तुतम् ॥ ११२ ॥

^१ इसके बाद सोम को सम्बोधित तीन अम्त्र (१ ४३, ७-९) आते हैं ।

'अग्ने' (१ ४४, १) से आरम्भ होनेवाले दो सूक्त (४४, और ४५) अग्नि को सम्बोधित किये गये हैं । वहाँ एक 'प्रगाथ' द्वारा उपस् के साथ उन अश्विनो की स्तुति की गई है जो उसके (उपस् क) लिङ्ग-भाजा हैं । 'अयं सोम सुदानव' (ऋग्वेद १ ४५, १०) एक ऐसी अर्थ ऋचा है जिसके देवता देवराण है ।^२ 'एषो' (१ ४६, १) से आरम्भ होनेवाले दो बाद के सूक्त (४६ और ४७) अश्विनो को सम्बोधित हैं । यास्को का विचार है कि यहाँ 'हविषा' (१ ४६, ४) में आदित्य की भी साथ साथ स्तुति की गई है ।

^१ अथर्व १ ४८ १-२ में । तु० की० सर्वानुक्रमणी 'आथो इचोऽथस्-उषसा च ।

^२ तु० की० ऋग्वेद १ ४५ पर सावर्ण 'अयं सोम इत्य् अथर्वो देवदेवस्य', सर्वानुक्रमणी 'अथर्वोऽन्त्यो देव' ।

^३ निरुक्त ५ २४ में ।

२३-ऋग्वेद १ ४८-६० । सव्य की कथा । शतचिन्-गण

सहोषसे ततः सौर्यम् उदु त्यमिति संस्तुतः ।

धुभक्तिर्येन वरुणो रोगघ्नस्तृच उत्तमः ॥ ११३ ॥

'सह' (ऋग्वेद १ ४८ १) से आरम्भ होनेवाले दो सूक्त (४८ और ४९) उपस् को सम्बोधित है, इसके बाद 'उदु त त्यम्' (१ ५०) सूर्य को सम्बोधित किगा गया है । इसमें 'येन' (४ ५०, ६) में आकाश के साथ सम्बद्ध वरुण की स्तुति की गई है, इसका अन्तिम श्रिक (१ ५०, ११-१३) 'रोगघ्न' है ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'अन्त्यस् तुचो रोगघ्न उपनिषत्' ।

रोगापनुत्तिराध्याभ्याम् उद्यमिष्युत्तमे तृचे ।

अथर्वे तु द्विषद्वेषः ऐन्द्रः सार्वः आत्सर्षिषु ॥ ११४ ॥

इस एक ही दिवस से आरम्भ होनेवाली अतिशय बुराई में से एक है (१-५०, १-५५, ११-१२) में रोग को भगाने का विधान है, जब कि अस्तिम को सर्वप्रकार में कठुली के प्रति दूर ध्यान दिया गया है ।

‘सिद्धिनि मं से पुन लख’ है की पुन केही पुन स्या है ॥४॥ ॥४॥

[illegible]

स्वयमिन्द्रसमं पुत्रम् इच्छतोऽङ्गिरसो मृगः ।

वङ्गयेव संख्यो भूत्वर्षर योगित्वात्पुत्रतगितः ॥ ११५ ॥

इन्हें के समान पुत्र की कृपा करने वाले भक्तिमय मुनि के, इस भक्ति के प्रयोग के परिणाम स्वरूप, स्वयं इन्हें ही स्वयं का रूप धारण करके पुनर्जन्म गये।

१ पु० की० सर्वात्मकमयी 'अक्षिरा' इन्द्रस्य पुत्रम् इन्द्रस्य अन्यभ्याम्पुत्रं तस्य इतिन्द्र यत्रास्य एतौऽभासतः ।

प्रथमे मण्डले ज्ञेया ऋषयस्तु शतर्चिनः ।

क्षुद्रसूक्तमहासूक्ता अन्त्ये मध्येषु मध्यमाः ॥११६॥

प्रथम मण्डल में ऋषियों को प्रसन्न करने जानना चाहिये, जबकि अन्तिम (मण्डल) में लघुसूक्तों और महासूक्तों के ऋषि, तथा मध्य (के मण्डलों) में मध्यम (ऋषि) जानना चाहिये।

१ तु० को सर्वाभिकमणी २ २ ('सर्वाभिक मण्य मण्ये' सुद्रसूक्तमहासूक्त मध्यमेव माध्यमा) । देखिये आर्वाभिकमणी १ २ २ १, १० १ ।

नवकं जातवेदस्यं नू चिद् यत्त वया इति ।

वैश्वानरीयं तत्सूक्तं बहिर्माग्नेयमुत्तरम् ॥ ११७ ॥

नौ ऋषियों वाला 'नू चित्' (ऋग्वेद १ ५८) सूक्त जातवेदस्य को समर्पित है; जब कि 'यथा.' के अन्तर्गत होमेसका सूक्त (ऋग्वेद १ ५९) सैत्तसर को, तथा इसके बाद का 'वह्निम्' (ऋग्वेद १ ६०) सूक्त अग्नि को समर्पित है ।

२४-अग्रेष्ठ १ ६१-७३। ग्यारह जिल। अग्रेष्ठ : १. ७४-८९

ऐन्द्राण्यस्मै तत्तस्त्रीणि वृषणे शर्वाय माशतम् ।

अग्नयानि तु यथेति नव शब्दो वायमिति ॥११८॥

१९८६

दशाभिजानीमानिनि इन्द्रावरुणयो स्तुतिः १ ११

सौपर्णस्यास्तु याः कामिन् निपातस्तुतिषु स्तुताः ॥ ११॥

इसके बाद 'अग्ने' (ऋग्वेद १ ६१) से आरम्भ होनेवाले इन्द्र को सम्बोधित तीस सूक्त (६१-६३) आते हैं; 'सुपर्ण सर्वाय' (ऋग्वेद १ ६४) मयूतों को सम्बोधित है; 'पथा' (ऋग्वेद १ ६५) उन नौ सूक्तों (६५-७१) में से प्रथम है जो अग्नि को सम्बोधित है; इसके बाद 'सप्तद वि वाह', आदि दस सूक्त अश्विनों को सम्बोधित हैं; 'इमामि' (ऋग्वेद ८ ५९)^१ द्वारा इन्द्र-वरुण की स्तुति की गई है। किन्तु जो भी अन्य देवता सौपर्ण-सूक्तों में आते हैं उनकी नैपातिक स्तुति ही की गई है।

^१ यहाँ ग्यारह छिन्न-सूक्तों का उल्लेख है, जिनमें से दस तो अश्विनों को, तथा एक इन्द्र-वरुण को सम्बोधित है।

^२ इसे ऐतरेय ब्राह्मण ३ २५, ७ में 'सौपर्ण कहा है।

^३ अर्थात् अश्विनों तथा इन्द्र-वरुण के अतिरिक्त इन ग्यारह सौपर्ण सूक्तों में जो देवता आते हैं उनकी केवल नैपातिक स्तुति की गई है।

उपप्रयन्तः सूक्तानि आग्नेयान्युत्तराणि षट्।

हिरण्यकेशो रजसस् तृचोऽग्नेर्मध्यमस्य तु ॥ १२० ॥

'उपप्रयन्तः' (ऋग्वेद १ ७४, १) से आरम्भ होनेवाले बाद के छ सूक्त (७१-७९) अग्नि को सम्बोधित हैं, किन्तु 'हिरण्यकेशो रजसः' से आरम्भ होनेवाला ऋचाओं का एक छिन्न (ऋग्वेद १ ७९, १-३) मध्यम अग्नि को सम्बोधित है।

इत्थेति पञ्च त्वैन्द्राणि यामित्यस्यां निपातिताः।

वध्यङ् मनुरथर्वा च यास्तानि प्र ये ततः ॥ १२१ ॥

अत्वार्या नो वैश्वदेवे द्वे देवानां स्तुतिमते।

आ नो भद्राश्च देवानां भद्रं यावच्छतं पुनः ॥ १२२ ॥

'इत्था' (ऋग्वेद १ ८०, १) से आरम्भ होनेवाले पाँच सूक्त (८०-८४) इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'याम' (ऋग्वेद १ ८०, १६) से आरम्भ होनेवाले मन्त्र में इष्यन्, मनु और अथर्वन् का नैपातिक रूप से उल्लेख है। इसके बाद 'प्र ये' (ऋग्वेद १ ८५, १) से आरम्भ होकर सूक्त (८५-८८) मयूतों को सम्बोधित हैं, 'आ क' (ऋग्वेद १ ८९, १) से आरम्भ होकर सूक्त (८८, ८९) विश्वदेवों को सम्बोधित हैं, यहाँ 'आ वो भद्रा' (ऋग्वेद १

(८०, ११) और 'अदिति' (ऋग्वेद १. ८०, १) से 'अदिति' की उत्पत्ति, तथा पुनः 'मधु' (ऋग्वेद १. ८०, १) से 'मधु' (ऋग्वेद १. ८०, १) तक की श्रृंखला की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया गया है ।

यहाँ ऋग्वेद १. ८०, १२ पर श्रुति १२, १३, १४ (अथर्व, 'मधु' मधु तेषां विधातो मयस्य ऐन्द्राय नमः) का अनुसारेण किया गया है ।

२१—ऋग्वेद १. ९०-९३ । प्रथम अष्टक के ७७-११४ सूक्तों के अन्तर्गत सूक्त समूह ।

यधु वातास्तुचे तस्मिन् परमं मध्यपीयते ।

अदितिर्गौरिति त्वस्या विभूतिः कथितादितिः ॥१२३॥

'मधु वाता' (ऋग्वेद १. ९०, ३) से आरम्भ श्रृंखला के श्रुति में परम मधु की भी इच्छा की गई है; किन्तु 'अदितिर्गौ' (ऋग्वेद १. ८०, १०) श्रृंखला में अदिति की विभूति का कथन है ।

त्वं सौम्यसौमसम् एता उ त्वास्तुचोऽभिव्रजोः ।

अभिव्रजोः ससोमस्य अग्नीषोमाविति स्तुतिः ॥१२४॥

'त्वं सौम' (ऋग्वेद १. ९१) सौम की, 'एता उ त्वा' (ऋग्वेद १. ९२) उचस् को, और 'अभिव्रजो' (ऋग्वेद १. ९२ १३-१८) से आरम्भ श्रृंखला का श्रुति अग्नीषोमी को सम्बोधित है । 'अग्नीषोमी' (ऋग्वेद १. ९३) में सोम के साथ सम्बद्ध अग्नि की स्तुति है ।

गोतमामौषिजः कुत्सः प्रकृषेमाहवोः परः ।

कुत्सार्दीर्घतमः वाभ्यत् से द्वे एवमभ्योपते ॥१२५॥

गोतम (सूक्त ७७-९३) के बाद उचिस् के पुत्र (कथितर 'सूक्त ११५-१२४) आते हैं; प्रकृषे (सूक्त-१२७-१३९) के बाद कुत्स (सूक्त १४०-१४५) आते हैं; कुत्स के बाद दीर्घतमस् (सूक्त १४६-१४७) : इन तीनों को क्रमशः अग्नी, अम से प्रकृषे, अग्नि से प्रकृषे, अग्नि से प्रकृषे ।

यहाँ वह श्रृंखला चाहिये कि वहाँ श्रृंखला का क्रम गोतम, कुत्स, कथितर, प्रकृषे, और दीर्घतमस् है; वहाँ श्रृंखला में गोतम, कथितर, प्रकृषे, कुत्स, और दीर्घतमस् का क्रम रखा गया है, जिसमें कुत्स श्रृंखला की श्रृंखला का क्रम रखा गया है, जो श्रृंखला का क्रम है ।

२६-ऋग्वेद : १. ९४-१११ । अथपूर्वो सो पुनः सूक्तो के ऋषिः ।

कश्यप के किल

इमं कुत्स आग्निरसो ददर्श

जातवेदस्य जगाद षोडशर्चम् ।

पूर्वो देवा इत्यृषो देवदेवास्

त्रयः पादा उत्तमायास्ततोऽर्चम् ॥ १२६ ॥

तस्यैव वा यस्य तत्पूर्वसु तं मित्रा-

दिभ्यो वात्र षड्भ्यः प्रकृताभ्यः ।

अन्त्योऽर्चस्तु वा षणा स्तुतानां

पूर्वो देवाः पादेस्तु त्रिभिः स्तुताः ॥ २७ ॥

अग्निरसु क पुन कुत्स ने 'इमम्' (ऋग्वेद १ ९४) का दर्शन किया :
 इन्होंने जातवेदसु को सम्बोधित सोलह ऋचाओं के इस सूक्त का उच्चारण
 किया । 'पूर्वो देवा (ऋग्वेद १ ९४, ८) ऋचा के तीन पादों के देवता देव
 गण हैं इसके बाद अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद १ ९४, १६) का अर्धांश इसके
 पूर्व आने वाली सम्पूर्ण सूक्त की ऋचाओं की भाँति या तो उसी देवता (वर्थात्
 अग्नि) को समर्पित है, अथवा यह यहाँ उल्लिखित मित्रादि ष देवताओं को
 सम्बोधित है ।

अन्तिम अर्ध ऋचा (१ ९४, १६ का उत्तरार्ध) वैकल्पिक रूप से
 स्तुत्य ष देवताओं को सम्बोधित है, जब कि 'पूर्व' (ऋग्वेद १ ९४, ८)
 में तीन पादों द्वारा देवताओं मात्र की स्तुति है ।

भरद्वाजे गृत्समदे वसिष्ठे नोधस्यगस्त्ये विमदे नमाके ।

कुत्से नोदका बहुदैवतेषु तथा द्विदेवेषु समानधर्मिणः ॥

^१ भरद्वाज, ^२ गृत्समद, ^३ वसिष्ठ, ^४ नोधसु ^५ अगस्त्य, ^६ विमद, ^७ नमाक, ^८
 कुत्स के अनेक देवताओं तथा दो देवताओं को सम्बोधित सूक्तों में समान
 धर्मी भुवपद नहीं हैं ।

^१ अथ संस्कार आठ ऐसे ऋषियों के नाम की गणना करा रहा है जिनके सूक्तों में
 भुवपद आते हैं ।

^२ मधन तीव (भरद्वाज, गृत्समद, वसिष्ठ) ऐसे सम्पूर्ण ऋचकों के ऋषियों के नाम
 हैं जिनमें एकतर ही भुवपद मिलते हैं ।

^३ ऋग्वेद १ ५८-६४ का ऋषि ५८ श्लोक ६०-६४ सूक्त सवाम भुवपद से
 समाप्त होते हैं ।

* अश्वेद १, १२५-१२८ का अर्थ ।

* अश्वेद १, १२ और १३ का अर्थ ।

* अश्वेद १, १२-१२ का अर्थ ।

* अश्वेद १, १२-१२ का अर्थ ।

इं विरूपे सूक्तमौचसायाग्रये स प्रजयेति ब्रविमोदसेऽग्रये ।

वैश्वानरस्येति वैश्वानरीयम् अस्मात्पूर्व शुचयेऽग्रये पुनः ॥

‘इं विरूपे’ (अश्वेद १, १५) अग्नि औचस का सूक्त है, और ‘स प्रजया’ (अश्वेद १, १६) अग्नि ब्रविमोदस् को, यथा ‘वैश्वानरस्य’ (अश्वेद १, १८) वैश्वानर को सम्बोधित सूक्त है, किन्तु इसके पूर्व का एक सूक्त (अश्वेद १, १७) अग्नि शुचि को सम्बोधित है ।

जातवेदस्य सूक्तसहस्रमेक

एन्द्रात्पूर्व कथ्यपार्ष वदन्ति ।

जातवेदसे सूक्तमायं तु तेषाम्

एकमूयस्त्वं मन्यते शाकपूणिः ॥ १३० ॥

कुत्र का कथन है कि इन्द्र को सम्बोधित सूक्त (अश्वेद १, १३०) के पूर्व आने वाले जातवेदस को सम्बोधित एक सहस्र सूक्तों के अग्नि-कथ्य हैं इनमें से प्रथम सूक्त ‘जातवेदसे’ (अश्वेद १, १९) है । शाकपूणि का विचार है कि इनमें एक की वृद्धि होती है ।

स यो वृषैन्द्राणि पञ्च वैश्वदेवानि चन्द्रमाः ।

ओण्यैन्द्राग्ने य इन्द्राग्नी ततमित्यार्भवे परे ॥ १३१ ॥

‘स यो वृषा’ (अश्वेद १, १३०) इन्द्र को सम्बोधित पाँच सूक्तों (१३०-१३४) में से प्रथम है । इसके बाद ‘चन्द्रमासु’ (अश्वेद १, १३५, १) से आरम्भ तीन सूक्त (१३५-१३७) विश्वदेवों को सम्बोधित है । ‘य इन्द्राग्नी’ (अश्वेद १, १३८) इन्द्र अग्नि को सम्बोधित दो (१३८-१३९) में से प्रथम है; ‘ततम्’ (अश्वेद १, १३०-१) से आरम्भ दो बाद के सूक्त (१३०-१३१) अश्वेदों को सम्बोधित हैं ।

२०-अश्वेद १, १३५; अग्नि की कथा

अग्निं जग्मस्तनुगच्छन्तं नम्राः सातमेवृषीसुताः ।

कूपे प्रक्षिप्य गाः सर्वासं तत एवापजहिरे ॥ १३२ ॥

गायों के पीछे चक रहे त्रित को कुर्वे^१ में चक कर आकाशकी^२ में चक कर
वहाँ से समस्त गायों को अपहृत करके ले गये ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १. १०५, १७ 'त्रितः कूपेऽवहितः' ।

^२ तु० की० ऋग्वेद १. १०५, १८ - 'अक्षो यः स्रजः स्रजः स्रजः स्रजः' ।

स तत्र सुषुवे सोमं मन्त्रविन्मन्त्रवित्तमः ।
देवांश्चावाहयत्सर्वास् तच्छ्रुत्वा च वृहस्पतिः ॥ १३३ ॥

उस मन्त्रविदों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्रविद् ने वहाँ सोम-सवन किया और समस्त
देवताओं का आवाहन किया । वृहस्पति ने उसके इस आवाहन को सुना ।

आगच्छतोऽथ तान्हृत्वा च वसत्यस्य तत्पत्नः ।
सर्वहृत्त्वं च वरुणस्यार्यम्णश्चेत्युपालमत् ॥ १३५ ॥
कूपेष्टकामित्रेणितान्य् सङ्गान्येवामयन्मम ।
हृत्वा सर्वानहं स्तौमि यद्यप्येको न पश्यति ॥ १३६ ॥

उन सब को आता हुआ देख कर उसने यह कहते हुये उपालम्भ किया -
'इस वरुण और अर्यमा की यह सर्वहर्त्ता शक्ति कहाँ है ? कूप की ईर्ष्या से मेरे
अङ्ग घायक हो गये हैं । सब देवताओं को देखता हुआ मैं उनकी स्तुति कर
रहा हूँ किन्तु उनमें से कोई भी मुझे नहीं देख रहा है ।'

वृहस्पतिप्रचोदिता विश्वेदेवगणास्त्रयः ।
जग्मुस्त्रितस्य तं यज्ञं भागांश्च जगृहुः सह ॥ १३९ ॥

वृहस्पति द्वारा प्रेरित विश्वेदेवों के तीनों वर्गों ने त्रित के यज्ञ में भाग कर
साथ साथ यज्ञ भाग ग्रहण किया ।

^१ अर्थात् दिव्य, अन्तरिक्ष, और पृथिवी, तीनों स्थानों के ।

२८-ऋग्वेद १. ११२-१२१ के देवता

वृहस्पतिस्त्रितस्यैतज्ज्ञानं विज्ञानमेव च ।
तृचेनान्त्येन सूक्तस्य जगादर्विरसाविति ॥ १३७ ॥

एक ऋषि के रूप में वृहस्पति ने त्रित के सम्बन्ध में जिस ज्ञान-विज्ञान
की घोषणा की उसको यहाँ 'यज्ञी' (ऋग्वेद १. १०५, १७-१८) के आवाहन करने
वाले इस सूक्त के अन्तिम श्लोक (१. १०५, १९-२०) में प्रशंसित किया
गया है ।

आश्विनः सूक्तोऽयं स्वयं हवः स्वयं सुखोऽस्तुतिः ॥ १३६ ॥

‘हवे’ (ऋग्वेद १, ११३, १) प्रायः आश्विन-पुत्रिणी को और इसके बाद का प्रायः अश्विन को सम्बोधित है; इस सूक्त का केवल (१, ११३, १-२५) आश्विनो को सम्बोधित अश्विना ‘आश्विनः’ (ऋग्वेद १, ११३) में ‘रश्मि’ और ‘अश्व’ की स्तुति है।

इमा रौद्रं परं सौर्यं चित्रं पञ्चाश्विनाज्यताः ।

नासत्याभ्यामिति ज्यन्तरे ज्यन्त्या दुःस्वप्ननाशिनो ॥ १३९ ॥

‘इमा’ (ऋग्वेद १, ११३) यह को सम्बोधित है, और इसके बाद का ‘चित्रम्’ (ऋग्वेद १, ११५) पूर्व को सम्बोधित है। इसके बाद ‘नासत्याभ्यास्’ (ऋग्वेद १, ११६, १) से आरम्भ पाँच यह सूक्त (११६-१२०) आते हैं जो अश्विनो को सम्बोधित हैं; इनमें अन्तिम सूक्त की अन्तिम श्रुति (ऋग्वेद २०, १२) दुःस्वप्नों का नाश करने वाली है।

ऐन्द्रं कद्रुश्चदेवं च औचसे वृधुहसरे ।

अविर्दानं च आश्विनस्य प्रातरित्यथ सांसति ॥ १४० ॥

‘कद्रु’ (ऋग्वेद १, १२१) इन्द्र को और ‘व’ (ऋग्वेद १, १२२) विश्वदेवों को सम्बोधित है। ‘वृधु’ (ऋग्वेद १, १२३, १) से आरम्भ बाद के दो सूक्त (१२३, १२४) उचस् को सम्बोधित हैं। ‘प्रातः’ (ऋग्वेद १, १२५) में अश्वि ने ‘आश्विन’ की प्रशंसा की है।

काशीवतं कवित्येति चद्रैश्चसुपविह्वले ।

परोक्षं वैश्वदेवं तत् प्रदिष्टं स्वरसामस्तु ॥ १४१ ॥

काशीवत् के एक सूक्त को, जिसे परम्परा के अनुसार इन्द्र को सम्बोधित माना गया है स्वरसामनों में परोक्ष रूप से विश्वदेवों को सम्बोधित बताया गया है।

‘कौशीवतं प्रमाण २४ ९ में इसे ‘परोक्षवैश्वदेवं’ कहा गया है; पु० को० अ० ५, ४४, ४५ को।

३९-काशीवत् और अश्विन की कथा

अश्विनस्य पुरोर्विद्यां प्रसन्नमनिष्ठयं किल ।

काशीवानाश्वनि आसतः सुखापारण्यमोक्षः ॥ १४२ ॥

ऐसा कि कहा गया है, अपने पुत्र से बिना माते करके के पत्रों पर जाते समय कचीबत्त मालों में बककर वन में ही लो लगे ।

तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन् ।

क्रीडार्थं सानुगोऽपहृत्य समायेः सपुरोहितः ॥ १४३ ॥

उस समय अपनी सभा, पुरोहित, और भार्या के साथ क्रीडार्थ कहीं जा रहे भावयव्य के पुत्र राजा स्वनय ने उसे देखा ।

अथैनं रूपसंपन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम् ।

कन्यादाने मति चक्रे वर्णगोत्राविरोधतः ॥ १४४ ॥

उसे रूप संपन्न तथा देवपुत्रों के समान देखकर उन्होंने (राजा ने) वर्ण और गोत्र आदि का विरोध न होने पर उसे अपनी पुत्री प्रदान करने का विचार किया ।

संबोध्यैनं स पप्रच्छ वर्णगोत्रादिकं ततः ।

राजन्नाङ्गिरसोऽस्मीति कुमारः प्रत्युवाच तम् ॥ १४५ ॥

पुत्रोऽहं दीर्घतमस औचध्यस्य ऋषेर्दपः ।

अथास्मै स ददी कन्या दशामरणभूषिताः ॥ १४६ ॥

तावतश्च रथाञ्छयावान् बौद्धवक्त्रान्वै चतुर्भुजः ।

वधूनां वाहनार्थाय धनकुप्यमजाधिकम् ॥ १४७ ॥

तब उसे (कचीबत्त को) उठाकर उन्होंने उससे उनका वर्ण और गोत्रादि पूछा । उस युवक (कचीबत्त) ने यह कहते हुये उत्तर दिया 'हे राजन्, मैं अङ्गिरस के वन का हूँ; हे सृप, मैं उच्य-पुत्र ऋषि दीर्घतमस का पुत्र हूँ ।' तब उन्होंने (स्वनय ने) उसे (कचीबत्त का) आभूषणों से अलङ्कृत दस कन्यायें प्रदान कीं, और इन कन्याओं को ले जाने के लिये इसी सवया में रथ तथा चार चार क दल में बलने वाले सुहृद् क्षीर के अन्न, और धन तथा हीन धातु के बर्तन, और बकरियाँ तथा भेड़ आदि भी दिये ।

निष्कार्णां वृषभाणां च शतं शतमदात्पुनः ।

एतदुत्तरसूक्तैर्न शतमित्यादिनोदितम् ॥ १४८ ॥

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं एक ही चिक (एक प्रकार का कण्टकारी) और एक ही चिक ही मिले। इसका 'प्रमाण' (आग्नेय-३. १२६, २) से आरम्भ करनेवाले चिक की संख्याओं में' वर्णन है।

आग्नेय १ १२६, २-३ का इस प्रकार उद्धरण देने के पश्चात् सीते के श्लोक में प्रत्यक्षर इन शब्दों के शब्दों का अनुसरण करते हुये दान में दी गई वस्तुओं को युवः गणना कराता है।

शतमन्वाच्छतं निष्कान् रथान्वशः कपूततः ।

चतुर्युजो गवां चैव सहस्रं चतुष्पाधिकम् ॥ १४९ ॥

स्वनयाद्वावयव्याथः कक्षीवात्प्रत्यपथः ।

प्रतिगृह्य च तुष्टाव प्रातः पित्रे शशांस च ॥ १५० ॥

एक सौ धन, एक सौ चिक, कन्धियों सहित इस रथ, चार के एक में बल्लेवाले रथवाहक अथ और एक हजार साठ गायें,^१ इन सब को स्वयम् भावयन्त्र से प्राप्त करनेवाले कक्षीवत् ने इन्हें प्राप्त करने के पश्चात् उनकी (स्वनय की) प्रकृति की तथा अपने पिता को 'प्रातः' (आग्नेय ३. १२५) सूक्त समर्पित किया।

(आग्नेय १ १२६, २-३) का मूल इस प्रकार है: 'निष्कान् छतम् गवान्' कपूततो दस रथान् षष्टि सहस्रम् गव्यम्।

३०-राजा के उपहार। नारादासी क्रमार्थे। १ १२६, ६-७ सम्बन्धी विचार

फलप्रदर्शनं तस्य क्रियते प्रायश्चित्त्विह ।

द्वितीयां तु पितापत्यवत् सुगुप्तित्यादिकाश्च ॥ १५१ ॥

अथ, यहाँ (आग्नेय ३. १२५ में) अधिकांशतः उल्लेख मिले गये दान का ही उल्लेख है। फिर भी उसका पिता ने 'सुगु' (आग्नेय ३. १२५, २) से आरम्भ केवल द्वितीय श्रद्धा का ही दर्शन किया।

काक्षीवतं सर्वमिति भगवानाह शौनकाः ।

एषा तु वैर्यतमसी सानुलिङ्गा कथं भवेत् ॥ १५२ ॥

अथ शौनक का कथन है कि यह सम्पूर्ण सूक्त कक्षीवत् का ही है। किन्तु इसमें उल्लिखित होने वाले चिक के अनुसार यह श्रद्धा वैर्यतमस् द्वारा कैसे पूरा हो सकती है?

उच्यते प्रातरित्युक्तोः सूक्तैर्विभिन्नैः इर्वितः ।

राज्ञश्चाश्विमाहाय सुगुप्तित्यादिना किल ॥ १५३ ॥

हृदयका उल्लेख है कि तब उसने (कर्त्तव्यम्) (अथर्ववेद १, १२५, १) का उच्चारण किया तब वह (दीर्घसम्पत्) अपने पुत्र को प्राण उपहारों से हर्षित हुये और तब उन्होंने (दीर्घसम्पत् ने) राजा की स्तुति में 'सुपु' (अथर्ववेद १ १२५, २) शब्दा का उच्चारण किया ।

कर्माणि याभिः कथितानि राज्ञां

दानानि शोचावचमभ्यमानि ।

नाराशंसीरिस्थुचस्ताः प्रतीयाद्

याभि स्तुतिर्दाशतयीषु राज्ञाम् ॥ १५४ ॥

उप शब्दाओं को, जिनमें राजाओं के कार्यों तथा उनके महान, कष्ट, तथा मध्यम शानों का उल्लेख है, 'नाराशंसी' के नाम से जानना चाहिये क्योंकि अथर्ववेद के दस मन्त्रों में ऐसी ही शब्दाओं द्वारा राजाओं की स्तुति की गई है ।

^१ जिन्हें अन्यथा 'दान-स्तुति' कहते हैं ।

पञ्चामन्दान्माषयव्यस्य गीता जायापत्योः संप्रवादो ध्रुवेन ।

संप्रवादं रोमशयेन्द्रराज्ञोर् एते ऋषौ मन्यते शाकपूणिः ॥

'अमन्दान्' (अथर्ववेद १ १२६, १-५) से आरम्भ बीच शब्दाओं में भाषयव्य का शासन है । दो शब्दाओं (१ १२६, ६-७) में एक पति-पत्नी का सवाद है । शाकपूणि का विचार है कि इन दो शब्दाओं में इन्द्र तथा रोमशा सहित राजा के बीच सवाद है ।

इन्ने अग्यापत्योश्चेतिहासं ध्रुवेऽस्मिन्मन्यते शाकटायनः ।

प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना बृहस्पतिर्भाषयव्याय राज्ञोः ॥

शाकटायन का विचार है कि इन दो शब्दाओं में इन्द्र के सम्बन्ध में एक पति तथा पत्नी की कथा है ।^१ बृहस्पति ने रोमशा नामक अपनी पुत्री^२ राजा भाषयव्य को प्रदान की ,

^१ सर्वाश्रुक्रमणी के अनुसार अथर्ववेद १ १२६, ६-७ में पति पत्नी के रूप में भाषयव्य और रोमशा का वार्तालाप है । पु० की० १ १२६ पर सावधान ।

^२ अथर्ववेद १ १२६, ७ पर भाष्य करते हुये सावधान का कथन है कि रोमशा बृहस्पति की पुत्री थी ।

॥ इति सुहृदेवस्यार्थं सुदीर्घोऽप्यथा ॥

॥

तत्तस्मै नमः हरिर्वाग्मिदित्वा

प्रियं सखायं स्वमयं विदधुः ।

अभ्याजगामाग्नौ शचीसहायः

प्रोत्थायैव स विधिनैव राजा ॥ २ ॥

१-रोमशा और इन्द्र । ऋग्वेद १. १२७-१३६ । युगल स्तुतियाँ

तब, इस घटना को जानकर और अपने प्रिय सखा स्वमय को देखने की इच्छा से शचीसहाय (इन्द्र) तत्काळ उनके (स्वमय के) पास गये । राजा ने उनका हर्षपूर्वक विधिवत् स्वागत किया ।

अभ्याजगामाग्निरसी च तत्र

हृष्टा तयोः सा चरणी बधन्दे ।

इन्द्रः सखित्वाद्य तामुवाच

रामाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि ॥ ३ ॥

और अग्निरस् की पुत्री भी वहाँ आई हर्षित होकर उसने उन दोनों की चरण-बन्धना की । तब इन्द्र ने उससे मित्र-भाव से कहा, 'ते रानी, तुम्हें रोम हैं अथवा नहीं ?

सा बालभावाद्य तं जगाद्य

उपोष मे शक्र परामृशेति ।

तां पूर्वया सान्त्वय वृषः प्रहृष्टो

अन्वव्रजत्सोऽथ पतिं पतिव्रतां ॥ ३ ॥

तब बाल-मुकुम भाव से उसने उन्हें सम्बोधित करते हुये 'उपोष मे' (ऋग्वेद १. १२६, ७) कहा । इसके पूर्व की कथा (ऋग्वेद १. १२६, ६) से उक्त सान्त्वना देते हुये राजा हर्षित हुये । तब उसने एक पतिव्रता की भाँति अपने पति का अनुसरण किया ।

अथाग्नेये अग्निमित्युत्तरे यं

पथेन्द्राणि प्र तद्वैन्दकमुनाम् ।

युषं तमिन्द्रापर्वतौ सह स्तुतौ

त्विन्द्रं मेन इह यास्कः प्रधानम् ॥ ४ ॥

इसके बाद 'अग्निम्' (ऋग्वेद १ १२०) से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्त (१२०, १२८) आते हैं। इनके बाद 'यम्' (ऋग्वेद १ १२९) से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित पाँच सूक्त (१२९-१३३) आते हैं। इसमें 'प्र तद्' (ऋग्वेद १ १२९, ६) ऋचा इन्द्र को सम्बोधित है, जब कि 'युषं' (ऋग्वेद १ १३२, ६) में एक साथ ही इन्द्र पर्वत की स्तुति की गई है। यहाँ यास्क ने इन्द्र को ही प्रधान माना है।

ऋधु स्तुतः पर्वतवद्धि वज्रो

द्विवत्स्तुतौ चेन्द्रमाहुः प्रधानम् ।

आ त्वा वायोनेच पञ्चेन्द्रवायवोर्

एका वायोरुत्तरं द्विप्रधानम् ॥ ५ ॥

क्योंकि कुछ ऋचाओं में वज्र की पर्वत के रूप में स्तुति की गई है, और इसलिये इन दोनों की द्विवत् स्तुति होने पर उन लोगों के कथनानुसार इन्द्र की ही प्रधानता होती है। 'आ त्वा' (ऋग्वेद १ १३४, १) से आरम्भ नौ ऋचायें (ऋग्वेद १ १३४, १-६, १३५, १-६) वायु को, इसके बाद पाँच (१ १३५, ४-८) इन्द्र वायु को, और फिर एक (१ १३५, ९) वायु को सम्बोधित है। बाद के सूक्त (ऋग्वेद १ १३६) में दो प्रधान देवता हैं।

२-विभक्त स्तुतिर्याँ। ऋग्वेद १ १३७-१३९। वैश्वदेव सूक्त

तत्र पञ्च वरुणमित्रदेवा

दिवादिभ्यः कथिताभ्यः परे द्वे ।

द्वे द्वे पदे संस्तुते रोदसी च

देवाश्चार्धेन विभक्तमन्यत् ॥ ६ ॥

यहाँ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद १ १३६, १-५) के देवता वरुण और मित्र हैं, बाद की दो ऋचायें (१ १३६, ६-७) सौस्तथा अन्य उल्लिखित देवताओं को सम्बोधित हैं। दोनों श्लोकों (रोदसी) सहित दो-दो देवताओं की एक ऋचा के विभिन्न पदों में स्तुति है, तथा एक अर्ध-ऋचा में दोनों की स्तुति है; ऋचा के शेषार्ध में विभक्त स्तुति है।

अर्थात् २. विद्युत्, इसकी सहायता से चुम्बक का ही विद्युत् की, चुम्बक में विद्युत्, चुम्बक की, विद्युत् के साथ, अर्थात् की, और विद्युत् के अभाव, चुम्बक की सहायता से ।
अर्थात् अर्थात्, विद्युत्, चुम्बक की विद्युत्-सहायता से ।

मैत्रावरुणं सुसुमेलि सुखं।

प्रप्र पौषं वै-वदेयं तुल्यम् ।

अस्तु औषध वैभवेयं तुतीयं

सैश्वर्येण स्याद्दुःखदेवतेषु ॥ ७ ॥

‘सुधुमा’ (ऋग्वेद : १३७) सूक्त-मित्र-वस्तु को सम्बोधित है । ‘म-म’ (ऋग्वेद : १३८) पृथक् को सम्बोधित है, और तृतीय (ऋग्वेद : १३९) विन्धेदेवों को सम्बोधित है । ‘अस्तु औचत्’ (१. १३९) विन्धेदेवों को सम्बोधित तृतीय सूक्त है ।

विश्वेद्यों के सूतों को इन सूतों के अत्यधिक दृढ़ता जा सकता है जिसमें
अनेक वेधों की स्तुति होती है ।'

¹ कपर (२ १३२, १३३) में यह बताया जा चुका है कि अनेक देवताओं को सम्बोधित करने की विधेदेवी की सम्बोधित सूक्त मानना चाहिये।

बहुशस्तु वैश्वदेवेषु सन्त्ययः पादार्घ्या द्विपदात्रैपदाश्च ।

द्विप्रधाना अपि त्रैकप्रधाना बहुप्रधाना अपि वैश्वदेवाः ॥

बिन्दुओं को सम्बोधित सूत्रों में विभिन्न रूप से अक्षरों, पाद, अर्ध-
अक्षरों,^१ दो पादों, अक्षरा तीन पादों की अक्षरों होती हैं। ऐसी वैश्वदेव
अक्षरों में दो, अक्षरा एक, अक्षरा अनेक प्रमाण देवता होते हैं।

‘पु० जी० विषयों को सम्बोधित करने के लक्ष्य में ऊपर (पृ १६३ : ‘पाद वा यदि वार्षिकम् शब्द वा।’

वैश्वदेवो मैत्रावरुणी द्वितीया

तिस्रोऽश्विभ्यां तत ऐन्द्री ततोऽग्नेः ।

मारुत्येका तत ऐन्द्राग्न्यनन्तरा

बाहस्पत्या चोत्तमा स्तौति देवान् ॥ ९ ॥

एक गुणा (अर्थात् १) विभिन्न को सम्बोधित है, और द्वितीय (१) अर्थात् २) विभिन्न गुण को; एक तीस (३-५) अर्थात् ३ को, उसके बाद एक (६) गुण को, फिर एक (७) अर्थात् ८ को, एक (८)

सर्वो को, और तब प्रकृ (१) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है; इसके बाद की कथा (१४) बृहस्पति को सम्बोधित है; अन्तिम कथा (१५) देवी की स्तुति करती है ।

ऋषीवृषिर्वा स्तौति दध्यङ्ह मेऽ-

स्याम् आत्मानं वा तेषु शंसन्स्वजन्म ।

तस्मादस्यां विप्रवदन्ति केचिद्

इन्द्राग्नी तस्यां तु निपातभाजौ ॥ १० ॥

‘दध्यङ्ह मे’ (ऋग्वेद १ १३९, ९) कथा में ऋषि या तो प्राचीन ऋषियों अथवा उनके बीच अपने जन्म का उल्लेख करते हुये अपनी ही स्तुति करता है । इसलिये इन कथा के सम्बन्ध में असहमत होते हुये कुछ लोगों का कथन है कि इसमें इन्द्र-अग्नि की नैपातिक स्तुति की गई है ।

३-दीर्घतमस के जन्म की कथा

द्रावुचध्यवृहस्पती ऋषिपुत्री बभूवतुः ।

आसीदुचध्यभार्या तु ममता नाम भार्गवी ॥ ११ ॥

उचध्य और बृहस्पति (नाम के) दो ऋषि पुत्र थे । उचध्य की सृष्टि-वंशी पत्नी का नाम ममता था ।

तां कनीयान्वृहस्पतिर् मैथुनायोपचक्रमे ।

शुक्रस्योत्सर्गकाले तु गर्भेऽस्मिं प्रत्यभाषत ॥ १२ ॥

इहास्मि पूर्वसंभूतो न कार्यः शुक्रसंकरः ।

तच्छुक्रप्रतिषेधं तु न ममर्षे बृहस्पतिः ॥ १३ ॥

इन दोनों में कविष्ठ बृहस्पति मैथुन के क्रिये उसके (ममता के) पास गये । उनके शुक्रोत्सर्ग के समय गर्भ में उनसे इस प्रकार कहा : ‘मैं’ पहले से ही यहाँ सम्भूत हूँ, अतः तुम शुक्र को संकर करने का कार्य न करो ।’ फिर भी, बृहस्पति शुक्र सम्बन्धी इस प्रतिषेध को सहन न कर सके ।

स व्याजहार तं गर्भे तमस्ते दीर्घमस्तिषति ।

स च दीर्घतमा नाम बभूवर्षिकचध्यजः ॥ १४ ॥

अतः उन्होंने गर्भ को सम्बोधित करते हुये कहा, ‘तुम दीर्घतमसकी होवे ।’ इसीलिये उचध्य के पुत्र ऋषि का ‘दीर्घतमस’ नाम के नाम जन्म हुआ ।

स आग्नेयस्यैव तस्यैव अकस्मादभ्युपगच्छति ॥ १४ ॥
तुष्टुमस्तु तस्यैव अकस्मादभ्युपगच्छति ॥ १५ ॥

अग्नि की अकस्मात् सत्ता को समझे, अग्नि अपने स्वयं को दुष्की कर दिया। फिर जो देवी ने उसे इससे वेद है, जिसे जिससे इसका अन्वयान दूर हो गया।

४- दीर्घतमस् को प्रकट सूक्त अग्नेव १. १४१-१५६

स वेदिवद इत्यस्तौ च तनुयिमातवेवसम् ।

समिद्ध आग्निषोऽन्येभ्यो तमित्यग्नेः पराणि यत् ॥ १६ ॥

इहाने (दीर्घतमस् ने) 'वेदिवद' (अग्नेव १ १४०) से आरम्भ बार सूक्तों द्वारा आतवेदस् (अग्नि) की स्तुति की। 'समिद्धः' (अग्नेव १ १४१) एक आग्नी-सूक्त है जिसकी अन्तिम पद्या (अग्नेव १. १४२, १३) इन्द्र को सम्बोधित है। 'तत्' (अग्नेव १. १४५, १) से आरम्भ बार के सूक्त (१ १४५-१५०) अग्नि की सम्बोधित है।

अर्थात् अग्नेव १ १४०, १४१, १४२, १४४। जब सूक्तों के किसी क्रम के बीच में कोई आग्नी सूक्त आ जाता है तो उसे अग्नेव १. ११ में वर्णित कारणों से छोड़ दिया जाता है।

स्तुतो तु मित्रावरुणौ सूक्तमिन्द्रमिति त्रिभिः ।

मित्रं मैत्रीं वदत्येताम् आ वेनवम् शंसति ॥ १७ ॥

अदिति बाधबाधस्य तथा रूपं हि इन्द्रस्ये ।

अग्नि मेनेऽदिति त्वेव कृत्से वेह च शौनका ॥ १८ ॥

किन्तु 'मित्रव' (अग्नेव १ १५१, १) से आरम्भ बार (१५१-१५६) सूक्तों द्वारा मित्र-वरुण की स्तुति की गई है। 'मित्रव' (अग्नेव १ १५१, १) से ऐसा व्यक्त होता है कि यह पद्या केवल मित्र को ही सम्बोधित है। 'आ वेनव' (अग्नेव १ १५२, ६) में वा तो अदिति की अथवा अग्नि की प्रशंसा है; क्योंकि इसका अर्थ यह अदिति होना है। फिर भी शौनका का विचार है कि 'कृत्से' में तथा कर्त्तृ की अदिति का अर्थ केवल अग्नि ही है।

अर्थात् अग्नेव १. १४, १५ में।

अग्नेव १. १४, १५ में शौनका ने अदिति को अग्नि बताया है। १० की निरुक्त ११. १२ में अदिति को अग्नि के अन्वय में बताया है।

अधिरत्र प्रसङ्गात् दर्शयितुं विष्णोर्
विष्णोर् अग्निं वैष्णवानि प्रसज्यतः ॥१९॥

प्र बभूव तिसृमिर्कग्निर् इन्द्राविष्णु सह स्तुतौ ।
गृहाणि वा वैष्णवानि ता वामित्यूचि काङ्क्षति ॥२०॥

अग्नि ने यहाँ अग्नि का या तो प्रसङ्गात् उल्लेख किया है अथवा इसलिये कि उसने (अग्नि को) इसी रूप में देखा है । 'विष्णोर्' (ऋग्वेद १ १५४, १) से आरम्भ इसके बाद के तीन सूक्त (१ १५४-१५६) विष्णु को सम्बोधित हैं; और 'प्र बः' (ऋग्वेद १. १५५, १-३ से आरम्भ तीन ऋचाओं में इन्द्र विष्णु की सह स्तुति है । 'ता वाग्' (ऋग्वेद १ १५४, ६) ऋचा में अग्नि द्वारा विष्णु के गृह की आकांक्षा व्यक्त कही जा सकती है ।

दीर्घतमस् की कथा (क्रमशः)

जीर्णं तु दीर्घतमसं त्विन्नास्तत्परिचारिणः ।
दासा बद्ध्वा नदोतोये दृष्टिहीनमवादधुः ॥ २१ ॥

दास परिचारकों ने शिव होकर उन बृद्ध और अन्धे दीर्घतमस् को बाँध कर नीचे नदी के ऊल में डँक दिया ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १ २५८, ५ 'दासा बद्धं हसमुन्मथ अवाधु' । तु० की० ४ ४६ 'वितं कृपेज्जहितम्' ।

तत्रैकस्त्रैतनो नाम शस्त्रेणैतमपाहनत् ।
शिरश्चांसाबुरध्वैव स्वयमेव न्यकृन्तत ॥ २२ ॥

त्रैतन नामक उनमें (परिचारकों में) से एक ने उन पर अपनी लकड़ा से प्रहार करना चाहा, और (देखा करते हुये) उसने स्वयं अपने ही शिर, स्कन्ध और बग के टुकड़े कर दिये ।^१

^१ तु० की० ऋग्वेद १ २५८, ५ 'करो बद्धस्य त्रैतनी वितकृत्स्वव दास उरो अंसावपिण्थ' ।

इत्वा दीर्घतमास्तं तु पापेन सहता वृत्तम् ।
आत्माङ्गान्यनुदधौव तत्रोदोन्मोहितो भृशम् ॥ २३ ॥

महान पाप में किन्ना उसका (दास का) बग करने के पश्चात् दीर्घतमस् ने जल में अस्वस्थ संज्ञाग्रन्थ हो गई कबने जलों को छिड़का ।

अथर्ववेदात्मनीतिस्तु न ब्रह्माः सप्तवर्षिणः ।

अथर्ववेदात्मनीतिस्तु न ब्रह्माः सप्तवर्षिणः ॥ २४ ॥

राजा न प्रहृतां दासीं भक्त्या सत्त्वा महात्तयाः ।

अथर्ववेदात्मनीतिस्तु न ब्रह्माः सप्तवर्षिणः ॥ २५ ॥

राजा की आरा ने उन्हें बड़ा कर अन्न देन के भिन्न दृष्टि दिया । अथर्ववेदात्मनीति के युद्ध में मित्र की । युद्ध प्राप्ति की दृष्टि से राजा ने इस दासी को उनके (दीर्घतमसु के) पास भेजा । उस महान तपस्वी (दीर्घतमसु) ने अन्न से बाहर जाने पर उसकी (दासी की) भक्ति की देन कर उससे अथर्ववेदात्मनीति तथा अन्न को उपलब्ध किया ।

१- ऋग्वेद १ १५७-१६३ के देवता

तुष्टाव चैव सूक्ताभ्याम् अथर्ववेदात्मनीतिस्तु न ब्रह्माः ।

प्रेति यावावृषिष्यो तु पराभ्यामेतदुत्तरम् ॥ २६ ॥

किमार्भवं परे मा नो मेध्यस्याभ्यस्य संस्तवः ।

ईर्मान्तास इति त्वस्यां नोयमानं प्रशंसति ॥ २७ ॥

और उस ऋषि ने 'अथर्व' (ऋग्वेद १ १५७, १) से आरम्भ दो सूक्तों (१५, १५८) द्वारा अथर्ववेदात्मनीति की, किन्तु 'प्र' (ऋग्वेद १ १५९, १) से आरम्भ बाद के दो सूक्तों (१५९, १६०) से यावावृषिष्य की स्तुति की । 'किम्' (ऋग्वेद १ १६१, १) से आरम्भ इसके बाद जो सूक्त आता है वह ऋग्वेदों को सम्बोधित है । 'मा न' (ऋग्वेद १ १६२, १) से आरम्भ दो अगले सूक्त (१६२, १६३) अथर्ववेदात्मनीति की स्तुति करते हैं । 'ईर्मान्तास' (ऋग्वेद १६३, १०) ऋग्वेद में वह अग्रणी किये जाने पर अथर्व की प्रशंसा करते हैं ।

स्वयूच्यास्तस्य चैवात्र बहवः संस्तुता इयाः ।

नियुक्ताभ्यानियुक्ताभ्य प्रसङ्गादनुकीर्तिताः ॥ २८ ॥

और वहा (ऋग्वेद १ १६३, १० में) की उसके युद्ध के अनेक अर्थों की स्तुति की गई है । अथर्ववेद और ऋग्वेद दोनों का ही प्रसङ्ग है ।

संस्तवयतांस्तस्य चैवात्र बहवः संस्तुता इयाः ।

तस्य तांस्तस्य सुस्तवः सप्तवर्षिणः इति यावत् ॥ २९ ॥

वासोऽविवास्तोऽस्य अग्निः कथं च कीर्तितम् ।

गन्धस्य श्रुतं वागीर्यं स्वधितोऽस्य अग्निर्निवाहः ॥ ६० ॥

यदि वे हुँ हैं तो वे भी वह उसके सम्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं सोनो उसकी कति हो गई है, और उसके अग्नि को कुछ अन्न खाओ वह यह हा गया है । उसके मांस, उसके घृह,^१ पात्रों,^२ तथा इविष्य^३ और बर्तों और ऊपरी परिधान,^४ उसके शरीर का जिसका इस प्रकार उल्लेख है सोनो उसे अभी काढा जायगा,^५ शूल^६ और स्थूण,^७ स्वधिति^८ (ऊपर) का, यही उल्लेख है ।

^१ ऋग्वेद १ १६२, ११, में 'घृहा' रूप आता है । तु० श्री० ऋग्वेद १ १६२, १० 'मांसं सुव्याधृतम् ।'

^२ ऋग्वेद १ १६२, ११, में 'पात्राणाम्' आता है ।

^३ ऋग्वेद १ १६२, ११ में 'इविष्य' रूप है ।

^४ 'वासस्' और 'अविवास्त' दोनों ही ऋग्वेद १ १६२, १६ में आते हैं ।

^५ तु० श्री० ऋग्वेद १ १६२, १८ 'मांसा' 'पशून्पशून्' 'वि शस्त', १९ में 'अवस्य विशस्ता', और २० में 'मांसे अवशिस्ता' नामाश्रय निबद्धः ।

^६ तु० श्री० ऋग्वेद १ १६२, ११, 'सि अग्निं शूलं निहतत्वं' ।

^७ 'स्थूणा' शब्द सूक्त में नहीं आता किन्तु ऋग्वेद १ १६२, ६ में प्रयुक्त 'अव-यूप' और ९ में प्रयुक्त 'स्वध' का समावासी है ।

^८ 'स्वधिति' शब्द ऋग्वेद १ १६२, ९ १८, २०, में आता है ।

७- ऋग्वेद १ १६४ के द्वेषता तीन अग्निः संवत्सर

छागस्य कीर्तनं चात्र इन्द्राण्योः सह स्तुतिः ।

सूक्तं यदस्यवागीर्यं वैश्वदेवं तदुच्यते ॥ ६१ ॥

यहाँ 'छाग'^१ का उल्लेख, और साथ ही इन्द्राण्य की स्तुति भी है ।

'अस्य वागस्य'^२ (ऋग्वेद १ १६४) से आरम्भ सूक्त को विश्वदेवों को सम्बोधित कहा गया है ।

^१ इस सूक्त में वक्त्रे का दो और (९, ४ ऋचाओं में) 'अव' और एक वक्त्र (१ ऋचा में) 'छाग' के रूप में उल्लेख है ।

^२ 'अस्यवागीर्य' (सूक्त) का अग्निधान १ २६, २ और मनु ११ २५१ में भी उल्लेख है ।

प्रवाधा विविधास्तत्र देवानां चात्रकीर्तनम् ।

सूक्तेऽस्यैषि परीक्षोक्तं वक्ष्यामि ज्ञातरक्षीयः ॥ ६२ ॥

इसमें विविध प्रकार के देवाद हैं और यहाँ देवों का भी उल्लेख है ।

इस सूक्त (१ १६४) की 'अस्य' शब्दा (१८ १६४, १) में तीन भ्राताओं की पराङ्ग रूप से चर्चा है, जिनकी मैं व्याख्या करूँगा ।

अग्निस्तु वामः पलितो वायुर्भ्राता तु मध्यमः ।

घृतपृष्ठस्तृतीयोऽत्र सप्त वै रश्मयस्तुताः ॥ ३३ ॥

(इनमें से) कृपाळु और पके बाळों वाले अग्नि है, जब कि मध्यम भ्राता वायु है । यहाँ तृतीय (भ्राता) 'घृत पृष्ठ' हैं । इनके सप्तरश्मियों की स्तुति की गई है,^१

^१ तु० की० ऋग्वेद १ १६४, १, 'तृतीयो भ्राता घृत पृष्ठ', जिसकी यास्क ने पाणिनि अग्नि ('अयम् अग्नि' निरुक्त ४ २६) के रूप में व्याख्या की है ।

^२ ऋग्वेद १ १६४, १ में 'सप्तपुत्रम्' शब्द की यास्क (वही) ने सूर्य की सात रश्मियों के रूप में व्याख्या की है ।

परास्तु कथयन्त्यग्नि यथा वर्षति पाति च ।

अहोरात्रान्दिनान्मासान् ऋतूंश्च परिवर्तिनः ॥ ३४ ॥

किन्तु बाद की शब्दा में इस बात का कि अग्नि किस प्रकार वर्षा और रक्षा करते हैं, तथा दिन और रात्रि (अहोरात्र), दिनों, मासों और ऋतु-चक्र का वर्णन है ।

^१ मुख्यतः ऋग्वेद १ १६४, ७ में ।

^२ तु० की० यास्क निरुक्त ४ २७ ।

— ऋग्वेद १ १६४ के विषय वस्तु का विवरण (क्रमशः)

पञ्चधा च त्रिधा चैव षोढा द्वादशधैव च ।

संवत्सरं चक्रवच्च पराभिः कीर्तयत्यृषिः ॥ ३५ ॥

क्षेत्रज्ञानं च धेनु च गौरीं वाचं सरस्वतीम् ।

धर्मं पूर्वयुगीयं च साध्यान्देवगणांस्तथा ॥ ३६ ॥

विविधानि च कर्माणि अग्निवायुविषस्वताम् ।

विभूतिमग्नेर्वायोश्च जगति स्थास्तुजङ्गमे ॥ ३७ ॥

हरणं रश्मिभिर्बारो विसर्गं पुनरेव च ।

कर्मानुकीर्तनं चात्र पर्जन्याग्निविषस्वताम् ॥ ३८ ॥

आगही ऋचाओं^१ में ऋषि ने पञ्चधा और त्रिधा, चतुर्धा और द्वादशधा चक्र के रूप में सवस्तर की,^२ और ज्ञेय ज्ञान और गाय^३, मैस^४, वाक्^५, सरस्वती^६, पूर्वयुगीन धर्म, साध्यों और देवों^७ के गणों की, और अग्नि, वायु तथा विवस्वत् (सूर्य)^८ के विविध कर्मों और स्थावर तथा जङ्गम लोको में अग्नि तथा वायु के विभूति की; और सूर्य की रश्मियों द्वारा जलों के हरण^९ तथा उनके पुन^{१०} वर्षा की, स्तुति की है। यहाँ पर्जन्य, अग्नि^{११}, तथा विवस्वत्^{१२} (सूर्य) के कर्मों का भी कीर्तन है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १ १६४, १-१६ में।

^२ अथर्ववेद १९ ५३, २ पर भाष्य करते हुये सायण ने 'तथा च शौनकाऽप्य आह' शब्दों के साथ इस श्लोक को उद्धृत किया है।

^३ धेनु नाम ऋग्वेद १ १६४, २६ में आता है।

^४ ऋग्वेद १ १६४, ४१। ^५ ऋग्वेद १ १६४, ४५।

^६ ऋग्वेद १ १६४ ४९।

^७ ऋग्वेद १ १ ४ ५० देवा धर्माणि प्रथमानि 'पूर्वे साध्या'।

^८ ऋग्वेद १ १६४, ४४ में 'वपत एक विश्वम् एको अग्निं विष्टे' 'प्राजिर् एक स्य ददृशे न रूपम्'।

^९ ऋग्वेद १ १६४, ११ 'ममानम् एतद् उदकम् उच्चैस्त्य अब चाहमि।'।

^{१०} तु की० ऊपर १ ६, और २ १९। ^{११} ऋग्वेद १ १६४, ५१ में।

^{१२} ऋग्वेद १ १६४, ५२ में।

मातापुत्रौ तु वाक्प्राणौ माता वागितरः सुतः।

सरस्वन्तमिति प्राणो वाचं प्राहुः सरस्वतीम् ॥ ३९ ॥

अब वाक् और प्राण माता पुत्र हैं वाक् माता है और दूसरा (प्राण) पुत्र। 'सरस्वत्' से प्राण का तात्पर्य है, जब कि वाक् को सरस्वती कहा गया है।

^१ यहाँ 'सरस्वन्तम् जो ऋग्वेद' १६४, ५२ ('सरस्वतम् अवसे जोइवीमि') से उद्धृत किया गया है।

शरीरमिन्द्रयैर्युक्तं क्षेत्रमित्यभिधीयते।

वेद तत्प्राण एवैकस् तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ४ ॥

इन्द्रियों से युक्त शरीर को 'क्षेत्र' कहा गया है। केवल प्राण ही इसे जानता है, अतः प्राण को 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है।

९-ऋग्वेद १ ११४ (क्रमशः)। ऋग्वेद १ १६५ इन्द्र तथा मरुद्गण मेधे शकस्तस्य धूमः सलिलं वास एव वा।

सोम उक्षा भवन्त्यस्य पावकाश्च त्रयोऽधिपाः ॥ ४१ ॥

‘शक’ मेघ है; इसका ‘धूम’ जल^१ अथवा बल^२ है। बेल^३ सोम है, और तीन अक्षिपति^४ परिष्कारक हैं।

^१ इससे ऋग्वेद १ १६४, ४६ के ‘शकमय धूमम्’ की व्याख्या का तात्पर्य है।

^२ तु० की० मेघदूत, ५ ‘धूम-ज्योति सलिल मरुता सनिपात- मेघ’।

^३ अर्थात् मेघ को आवेष्टित करने के रूप में।

^४ अर्थात् ऋग्वेद १ १६४, ४६ में।

^५ अर्थात् ऋग्वेद १ १६४, ४४ में ‘त्रय केसिन’।

गौरीरन्तं वैश्वदेवम् उपरि स्यात्पृथक्स्तुतिः।

इन्द्रं मित्रमिमे सौर्यौ सौरी वान्त्या सरस्वते ॥४२॥

जो अश ‘गौरी’ (ऋग्वेद १ १६४, ४१) से समाप्त होता है वह विश्वेदेवा का सम्बोधित है; इसके बाद के अशों में पृथक्-स्तुति कही जा सकती है। ‘इन्द्र मित्रम्’ (ऋग्वेद १ १६४, ४६) से आरम्भ हो ऋचावें (४६ और ४७) सूर्य का सम्बोधित हैं,^२ सरस्वत् को सम्बोधित अन्तिम (ऋचा ऋग्वेद १ १६४, ५२) को वैकल्पिक रूप से सूर्य को सम्बोधित किया जा सकता।^३

तु० की० सर्वानुकमणी ‘गौरीर् इति एतद् अत वैश्वदेवम्’।

^२ तु० की० सर्वानुकमणी ‘इन्द्र मित्र सौर्यौ’।

^३ तु० की० सर्वानुकमणी ‘अन्त्या सरस्वते सूर्याय वा’।

सूक्तमल्पस्तवं त्वेतज् ज्ञानमेव प्रशंसति।

प्रवादबहुलत्वाच्च ततः सलिलमुच्यते ॥४३॥

इस सूक्त में अल्प स्तुतियाँ हैं यह ज्ञान की प्रशंसा करता है। और यत इसमें प्रवाद-बहुलता है, अत इसमें जल (सलिल) का भी उल्लेख है।

^१ अर्थात् इसके विषयवस्तु की विविधता के कारण इसमें जलों का भी उल्लेख होना आश्चर्यजनक नहीं।

मारुतैन्द्रस्तु संवादः कथेति परमः स्मृतः।

मरुतामयुजस्वैन्द्रयो युग्माः सर्वाः सहान्त्यया ॥४४॥

एकादशी प्रथमा च मारुतस्तृच उत्तरः।

तृचस्यैव तु तत्रोक्तं कर्तृत्वमितरस्य तु ॥४५॥

‘कथा’ (ऋग्वेद १ १६५) को परम्परा से ही मरुतों और इन्द्र के बीच प्रमुख^१ संवाद कहा गया है। इसमें सब अयुग्म ऋचावें मरुतों^२ की, तथा

सब युग्म, अन्तिम^१ और ग्यारहवीं तथा प्रथम, ऋचायें इन्द्र की हैं। इसके बाद की तीन ऋचायें (१ १६५, १३-१५) मरुतों को सम्बोधित हैं। किन्तु इन तीन ऋचाओं के कर्तृत्व का 'यहाँ अन्य' को श्रेय^२ दिया गया है।

^१ इसका तात्पर्य यह है कि इस सूक्त का यह सवाद इन्द्र और मरुतों के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण सवाद है यद्यपि इस प्रकार के अ य सूक्त भी हैं (उदाहरण के लिये ऋग्वेद १ १७०)।

^२ तु० की० सर्वांशुकमणी 'तृतीयाशयुजो मरुता वाक्य।

^३ सवाद सम्बन्धी अन्तिम, अर्थात् बारहवीं ऋचा। इस सूक्त की अन्तिम तीन ऋचाओं (१ १६५, १३-१५) को सवाद का अङ्ग नहीं माना गया है, ऐसा ४५ वें श्लोक द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

^४ ऋग्वेद १ १६५ के अन्त में।

^५ अर्थात् १-१२ ऋचाओं से भिन्न को।

^६ यहाँ सम्भवत आर्वांशुकमणी १ २५, २६ से तात्पर्य है, जिसमें युग्म ऋचाओं का इन्द्र को ऋषि बताया गया है और अयुग्म का मरुतों को, जब कि इस सूक्त की अन्तिम तीन ऋचाओं के द्रष्टा अगस्त्य हैं। (सूक्तस्याप्त्ये तुचेऽगस्त्य ऋषिः)।

इतिहासः पुरावृत्त ऋषिभिः परिकीर्त्यते।

समागच्छन्मरुद्भिस्तु चरन्वयोमिन् शतक्रतुः ॥४६॥

ऋषियों द्वारा यहाँ प्राचीन वृत्तान्तों के इतिहास का कथन है। आकाश में भ्रमण करते हुये शतक्रतु मरुतों के साथ नीचे गिर पड़े।

दृष्ट्वा तुष्टाव तानिन्द्रस् ते चेन्द्रमृषयोऽब्रुवन्।

तेषामगस्त्यः सवादं तपसा वेद तत्त्वतः ॥४७॥

इन्हें देख कर इन्द्र ने इनकी तुष्टि की और इन लोगों ने भी ऋषियों के रूप में इन्द्र को सम्बोधित किया। तप की सहायता से अगस्त्य इनके सवाद से तत्त्वत अवगत हो गये।

स तानभिजगामाशु निरुप्येन्द्रं हविस्तदा।

मरुतश्चाभितुष्टाव सूक्तैस्तन्विषति च त्रिभिः ॥४८॥

तब इन्द्र के लिये एक हविष्य का निर्माण कर के वह (अगस्त्य) क्षीप्रता पूर्वक वहाँ गये, और उन्होंने 'तन जु' (ऋग्वेद १ १६६, १) से आरम्भ तीन सूक्तों (१६६-१६८) द्वारा मरुतों^१ की भी स्तुति की।

^१ अर्थात्, १५५ सूक्त की तीन^२ ऋचाओं तथा १६६-१६८ सूक्तों द्वारा।

१०-इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य ऋग्वेद १ १६९, १७०
महश्चिदिति चैवेन्द्रं सहस्रमिति चैतया ।
निरुप्तं तद्वचिश्चैन्द्रं मरुद्गणो दातुमिच्छति ॥४९॥

‘महश्चिदिति’ (ऋग्वेद १ १६९) से उन्होंने इन्द्र की स्तुति की, तथा ‘सहस्रम्’ (ऋग्वेद १ १६७, १) ऋचा द्वारा उन्होंने मरुतों को वह हवि देने की इच्छा की जिसे उन्होंने इन्द्र के लिये निर्मित किया था ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १ ५ ‘अगस्त्य इन्द्राय हविर् निरुप्य मरुद्गण संप्रदिस्ता चकार, स इन्द्र एव परिदेवयां यजे ।’

विज्ञायावेक्ष्य तद्भावम् इन्द्रो नेति तमब्रवीत् ।
न श्वो नाद्यतनं ह्यस्ति वेद कस्तद्यदद्भुतम् ॥५०॥

उनके आक्षेप को जान कर इन्द्र ने उनसे ‘न’ (ऋग्वेद १ १७०, १) से आरम्भ यह वचन कहे ‘वास्तव’ में न तो आगतकल के लिये कुछ है और न आज के लिये जो कभी रहा ही नहीं^२ उसे कौन जानता है ?’

^१ तु० की० नीचे ६ ३८ ‘विदित्वा तस्मै त भावम् ।

^२ श्लोक के शब्द ऋग्वेद १ १७०, १ (‘ना नूनम् अस्ति नो य कस्तत् वेद यदद्भुतम् १) । तु० की० निरुक्त १ ६,

^३ यास्क (निरुक्त १ ६) ने ‘अद्भुतम्’ की ‘अभूतम्’ के रूप में व्याख्या की है ।

कस्यचित्त्वर्थसंचारे चित्तमेव विनश्यति ।

किं न इत्यब्रवीदिन्द्रम् अगस्त्यो आतरस्तव ॥ ५१ ॥

‘अर्थ संचार की अनिश्चितता से मनुष्य का चिन्तन किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है ।’ तब अगस्त्य ने इन्द्र से ‘किं न’ (ऋग्वेद १ १७०, २), अर्थात् यन् कहा कि ‘मरुद्गण आप के आता हैं ।’

मरुद्भिः संप्रकल्पस्व वर्षीर्मा नः शतकतो ।

किनो आतरिति त्वस्याम् इन्द्रो मान्ययुपालभत् ॥५२॥

‘मरुतों से सहमत हो,’ शतकतु हमारा वष न करें ।^१ किन्तु ‘किं नो आत’ (ऋग्वेद १ १७०, ३) ऋचा में इन्द्र ने मान्य (अगस्त्य) का उपाकरण किया)

^१ तु० की० ऋग्वेद १ १७०, २ ‘तेभि कल्पस्व साधुया ।’

^२ तु० की० ऋग्वेद वही, मान समरणे वर्षी ।

^३ ऋषि अगस्त्य के नाम के रूप में ‘मान्य’, ऋग्वेद १ १६५, १४ १५ में आता है ।

अगस्त्यस्त्वरमित्यस्यां ध्रुवमिन्द्रं प्रशामयत् ।

प्रादात्सवननं कृत्वा तेभ्य एव च तद्धविः ॥५३॥

किन्तु 'अरम्' (ऋग्वेद १ १७०, ४) में अगस्त्य ने कुछ इन्द्र को शान्त किया है । उन्हें साम्यना देने के पश्चात् उन्होंने (अगस्त्य ने) मरुतों को हवि समर्पित की ।

११-ऋग्वेद १ १७१-१७८ । अगस्त्य और लोपामुद्रा ऋग्वेद १ १७२

सुते चकार सोमेऽथ तानिन्द्रः सोमपीथिनः ।

तस्माद्विद्यान्निपातेन ऐन्द्रेषु मरुतस्तुतान् ॥५४॥

जब सोम दबाया गया, तब इन्द्र ने उन्हें (मरुतों का) भी (अपने साथ) सोम पान करने बाँटा बनाया । अतः यह जानना चाहिये कि इन्द्र को सम्बोधित सूक्तों में मरुतों की नैपातिक स्तुति होती है ।

प्रीतात्मा पुनरेवर्षिस् तांस्तुष्टाव पृथक्पृथक् ।

मरुतः प्रति सूक्ताभ्याम् इन्द्रं षड्विभः परेस्तु सः ॥५५॥

हृदय से प्रसन्न होकर ऋषि ने 'प्रति' (ऋग्वेद १ १७१, १) से आरम्भ की सूक्तों (१७१, १७२) द्वारा पुनः पृथक् रूप से मरुतों की, किन्तु बाद के ४ सूक्तों (१ १७३-१७८) द्वारा इन्द्र की स्तुति की ।

स्तुतश्चतसृभिश्चेन्द्रस्तुतास इति तेः सह ।

मरुद्भिः सह यत्रेन्द्रो मरुत्वांस्तत्र साऽभवत् ॥५६॥

और 'स्तुतास' (से आरम्भ) चार ऋचाओं (ऋग्वेद १ १७ ३-६) में इन्द्र की उनके साथ स्तुति है । जहाँ कहीं भी इन्द्र मरुतों के साथ थे वहाँ वह मरुत्व थे ।

^१ तु० की सर्वानुकम्पणी 'मरुत्वांस्त्वं इन्द्रो देवता ।'

ऋतौ स्नातामृषिर्भार्या लोपमुद्रा यशस्विनीम् ।

उपजल्पितुमारेमे रहःसंयोगकाम्यया ॥५७॥

जब वह ऋतुस्नान से निवृत्त हो चुकी तब अपनी यशस्विनी पत्नी लोपामुद्रा से ऋषि ने समागम की इच्छा से वार्ता आरम्भ की ।

^१ अर्थात् अगस्त्य ।

१२-अगस्त्य और लोपामुद्रा । ऋग्वेद १ १८०-१९०

द्वाम्भ्यां सा त्वब्रवीद्गम्तां पूर्वीरिति चिकीर्षितम् ।

रिरंसुस्तामथागस्त्य उत्तराम्भ्यामतोषयत् ॥५८॥

‘पूर्वी’ (से आरम्भ) दो ऋचाओं (ऋग्वेद १ १७९, १-२) में उसने (लोपामुद्रा ने) अपना अभिप्राय व्यक्त किया । तब आनन्द प्राप्त करने की इच्छा से अगस्त्य ने उसे दो बाद की ऋचाओं (ऋग्वेद १ १७९, ३-४) से सन्तुष्ट किया ।

विदित्वा तपसा सर्वं तयोर्भावं रिरंसतोः ।

श्रुत्वैनः कृतवानस्मि ब्रह्मचायुत्तमे जगौ ॥५९॥

(ऋषि क) शिष्य ने अपने तप^१ के प्रभाव से इन दोनों (अगस्त्य और लोपामुद्रा) की परस्पर आनन्द प्राप्त करने की इच्छा की सम्पूर्ण स्थिति को जान लिया, किन्तु यह विचार करके कि उसने इस प्रकार बातों को सुन^२ कर एक पाप किया है, उसने अन्तिम दो ऋचाओं (५वीं और ६वीं) का गायन किया ।

^१ तु० की० ऊपर ४ × ७ ‘सवादं तपसा वेद, और ४ ५० ‘विज्ञाय तद्भावं’ ।

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी ‘सवादं श्रुत्वा तैवासी ब्रह्मचारीत्ये अपश्यत्’, और ऋग्वेद १ १७९, ५ पर सायण ‘समागत्यैव श्रुत्वा तत्प्रायश्चित्तं चिकीर्षु उत्तराम्भ्याम् आह ।

प्रशस्य तं परिष्वज्य गुरु मूर्धन्यवजघ्नतुः ।

स्मित्वैनमाह तुश्चोभात् अनागा असि पुत्रक ॥६०॥

गुरु और उनकी पत्नी दोनों ने उसकी प्रशंसा और आश्रित करने हुये उसके माथे का चुम्बन किया, और दोनों ने ही उससे कहा कि ‘हे पुत्र, तुम निष्पाप हो ।’

युवो रजांसीति ततः सूक्तैः पञ्चभिरश्विनौ ।

अगस्त्य एव तुष्टाव कतरेति परेण तु ॥६१॥

द्यावापृथिव्यौ सूक्तेन आ नो विश्वान्दिवौकसः ।

पितुमहं समिद्धाग्र्यो अग्निमग्ने नयेति च ॥६२॥

तब ‘युवो रजांसीति’ (ऋग्वेद १ १८०, १) से आरम्भ पांच सूक्तों (१८०-१८४) द्वारा अगस्त्य ने अश्विनों की, किन्तु ‘कतरा’ (ऋग्वेद १ १८५, १ से आरम्भ बाद के सूक्त द्वारा द्यावापृथिवी की, ‘आ नो’ सूक्त

(ऋग्वेद १ १८६) द्वारा समस्त आकाश-वासियों^१ की, 'पितुम्' (ऋग्वेद १ १८७) से अन्न की—'समिद्ध' (ऋग्वेद १ १८८) एक आग्नी सूक्त है—और 'अग्ने नय' (ऋग्वेद १ १८९) द्वारा अग्नि की स्तुति की ।

^१ अर्थात् विरवेदेवों की ।

वृहस्पतेरनर्वाणं कङ्कतोपनिषत्परम् ।

अपां तृणानां सूर्यस्य केचिदेतां स्तुति विदुः ॥६३॥

'अनर्वाणम्' (ऋग्वेद १ १९०) वृहस्पति को (समर्पित) है । 'कङ्कट' से आरम्भ बाद के सूक्त (ऋग्वेद १ १९१) का औपनिषदिक^२ महारथ है । कुङ्कुम लोग इसे अन्न, तृण, और सूर्य^३ की स्तुति मानते हैं ।

^१ यहाँ प्रयुक्त 'उपनिषत्' के अर्थ के लिये तु० की० ऋग्वेद १ ५० पर, षड्गुरुशिष्य

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'कङ्कट' उपनिषद् अप् तृण सौर्य विषयकावान् अगस्त्य प्राप्तवीत् ।'

ददर्श तदगस्त्यो वा विषन्नं विषशङ्कया ।

अदृष्टारूपो नष्टरूपः सूक्तस्यान्त्योऽग्नौ तु द्रवृचः ॥६४॥

अथवा विष की शङ्का से अगस्त्य ने इसका विषय के रूप में दर्शन किया फिर भी इस सूक्त की अन्तिम दो श्रुतियाँ 'अदृष्टारूप' (जिसमें कोई स्पष्ट नाम न हो) और 'नष्टरूप' (अस्पष्ट) हैं ।

द्वितीय मण्डल

१३ ऋग्वेद २ १-१२ के देवता । गृत्समद, इन्द्र, और दैत्यगण

अस्तौद्गृत्सगदोऽग्निं च जातवेदस्यमाप्रियः ।

यज्ञेनाथ समिद्धोऽग्निर् अतोऽग्निं सप्तभिर्हुवे ॥६२॥

गृत्समद ने 'त्वम्' (ऋग्वेद २ १) से अग्नि की । इसके बाद 'यज्ञेन' (ऋग्वेद २ २) और 'समिद्धो' (ऋग्वेद २, ३) जातवेदस् को सम्मोहित तथा आग्नी श्रुतियाँ हैं । इसके बाद 'हुवे' (ऋग्वेद २ ४) से आरम्भ सात सूक्तों (४-१०) में उन्होंने अग्नि की स्तुति की ।

संयुज्य तपसात्मानम् ऐन्द्र विभ्रन्महद्गु ।

अदृश्यत सुहृतेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥६६॥

तप के साथ अपना सायुज्य स्थापित करके इन्द्र के समान विभ्राट् शरीर

धारण किये हुये वह एक मुहूर्त्त में ही विष्व लोक, आकाश और यहाँ (पृथ्वी पर) प्रकट हुये ।

तमिन्द्रमिति मत्वा तु दैत्यौ भोमपराक्रमौ ।

धुनिश्च चुसुरिञ्चोभौ सायुषावभिपेततुः ॥ ६७ ॥

महान पराक्रमशील दो दैत्य, धुति और चुसुरि, उन्हें इन्द्र समस्त कर उन पर आयुषों सहित दूट पड़े ।

विदित्वा स तयोर्भावम् ऋषिः पापं चिकीर्षतोः ।

यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत् ॥ ६८ ॥

इन दोनों के पापपूर्ण भाव को जान कर ऋषि ने 'यो जात' (ऋग्वेद २ १२) सूक्त द्वारा इन्द्र के कृत्यों का कीर्तन किया ।

उक्तेषु कर्मस्वैन्द्रेषु भीस्तावाशु विवेश ह ।

इदमन्तरमित्युत्त्वा ताविन्द्रस्तु निबर्हयत् ॥ ६९ ॥

इन्द्र के कर्मों के इस प्रकार कथन द्वारा उनमें (दोनों दैत्यों में) क्षीय ही भय का संचार हो गया । अब यह कहते हुये कि 'यह मेरा अवसर है', इन्द्र ने उन्हें मार गिराया ।

१४-गृत्समद और इन्द्र

निहत्य तौ गृत्समदम् ऋषिं शक्रोऽभ्यभाषत ।

यथेष्ट मा सखे पश्य प्रियत्व आगतोऽसि मे ॥ ७० ॥

उनको मार गिराने के पश्चात् शक्र (इन्द्र) ने ऋषि गृत्समद से कहा 'हे मित्र, मुझे अपने एक प्रिय के रूप में देखो, क्योंकि तुम मुझे मित्र हो मये हो,

वर गृहाण मत्तस्त्वम् अक्षयं चास्तु ते तपः ।

प्रहस्त प्रत्युवाचर्षिर् अस्माकं वदतां वर ॥ ७१ ॥

तनूनामस्तु चारिष्ठिर् वाक् चास्तु हृदयगमा ।

सुवीरा रयिमन्तश्च वयं त्वामिन्द्र धीमहे ॥ ७२ ॥

इन्द्र त्वां च विजानीमो वयं जन्मनि जन्मनि ।

त्वद्गतश्चैष मे भावो पापागस्त्यं रथातरः ॥ ७३ ॥

मुझसे एक वर माँगो, और तुम्हारा तप अक्षय हो । नर हो कर ऋषि

ने उनसे (इन्द्र से) कहा हे ब्रह्माओं में प्रमुख ! इन लोगों को शरीर की, और हृदयगम हो जानेवाली बाणी की, सुरक्षा प्राप्त हो । हम सुवीरों और सम्पत्ति से सम्पन्न हों ।^१ हे इन्द्र ! हम अपने विचारों द्वारा तुम्हारा ध्यान करते हैं, और हे इन्द्र ! हम तुम्हें प्रत्येक जन्मों^२ में जान लेते हैं, हमसे दूर मत जाओ; तुम श्रेष्ठ रथी हो ।^३

^१ तु० की० ऋग्वेद २ १२, १५ 'सुवीरासो विदधम् आ वदेम', और २ २१, ६ 'पोष रयीणाम्, अष्टिं तननां स्वाधान वाच '

^२ अर्थात् इन्द्र द्वारा किसी भी रूप में जन्म धारण करने से तात्पर्य है ।

^३ तु० की० ऋग्वेद १ ८४, ६ के इन्द्र के किये प्रयुक्त यह शब्द 'नक्षिष्टवद् रथीतर

१५-इन्द्र और गृत्समद की कथा (क्रमशः)

निरुक्त तदिद वार्यम् इन्द्र श्रष्टान्युचान्त्यया ।

वव्रे वरमिद सर्वं तदाकण्य शचीपतिः ॥ ७४ ॥

तथेत्युक्त्वा तुराषाट् तु पाणौ जग्राह दक्षिणे ।

ऋषिश्चास्य सखित्वेन पाणिना पाणिमस्पृशत् ॥ ७२ ॥

(गृत्समद के) इस वरण का 'इन्द्र श्रष्टानि' (ऋग्वेद २ २१, ६) से आरम्भ भन्तिम ऋषा में (इस प्रकार) व्याख्या की गई है, उन्होंने (ऋषि ने) इन सब का वर के रूप में वरण किया । यह सुन कर शचीपती और शीघ्र विजेता ने सहमत होते हुये उनको (ऋषि को) अपने दाहिने हाथ से पकड़ा और ऋषि ने भी उनको (इन्द्र के) प्रति अपने मैत्राभाव के साथ अपने हाथ से उनके (इन्द्र के) हाथ का स्पर्श किया ।

सहितौ जग्मतुश्चैवं महेन्द्रसदनं प्रति ।

तत्रैनमार्हयत्प्रीत्या स्वयमेव पुरदरः ॥ ७६ ॥

कर्मणा विधिदृष्टेन तमृषि चाभ्यपूजयत् ।

सखित्वाच्च पुनश्चैनम् उवाच हरिवाहनः ॥ ७७ ॥

और इस प्रकार वह दोनों साथ साथ इन्द्र के आशान में गये । वहाँ पुरन्दर (इन्द्र) ने स्वयं उनका (ऋषि का) आदर तथा विधिवत् क्रमों द्वारा पूजन किया और अपनी मित्रता के कारण हरिवाहन (इन्द्र) ने उनको (ऋषि को) पुनः सम्बोधित किया

गृणन्मादयसे यस्मात् त्वमस्मानृषिसत्तम ।

तस्माद्गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि ॥ ७८ ॥

हे ऋषियों में ओह ! यत तुम अपनी स्तुति^१ द्वारा हम लोगों को प्रसन्न करते हो, अतः शुनहोत्र^२ के पुत्र होने के कारण तुम्हारा नाम शुत्समद^३ होगा ।

^१ तु० की० 'गृहन्' के सम्बन्ध में यास्क निरुक्त १५ 'गृत्स इति मेधाविनाम गृणाते स्तुतिकर्मण ।'

^२ तु० की० आर्षानुक्रमणी २२ । 'औत्स शुनहोत्रस्य' ।

^३ तु० की० दूसरे मण्डल की सर्वानुक्रमणी की भूमिका पर षडगुशिक्षिण्य 'पश्चाद इद्रेणोक्तगृत्समदनामा ।'

ततो द्वादशभिः सूक्तैस् तुष्टावेन्द्रं श्रुधीत्यृषिः ।

ददर्श संस्तुवन्नेव तत्र स ब्रह्मणस्पतिम् ॥७९॥

इसके बाद 'श्रुधि (ऋग्वेद २ ११, १) से आरम्भ बारह सूक्तों द्वारा ऋषि ने इन्द्र की स्तुति की । और जब वह स्तुति कर रहे थे तो उन्होंने वहीं ब्रह्मणस्पति को देखा ।

१६-ऋग्वेद २ २३-३० के देखता

बृहस्पति तु तुष्टाव दृष्टलिङ्गाभिरव च ।

स तमप्यभितुष्टाव चतुर्भिरित उत्तरैः ॥८०॥

गणाना विश्वमित्यस्या सहेन्द्राब्राह्मणस्पती ।

बृहस्पति प्रसङ्गाद्वा ब्रह्मणस्पतिमेव च ॥८१॥

उन्होंने उन ऋचाओं में बृहस्पति का स्तुति की, जिनमें उनका (बृहस्पति का) नाम दृष्टिगत होता है । उन्होंने इसके बाद 'गणानाम्' (ऋग्वेद २ २३, १) से आरम्भ बाद के चार सूक्तों (ऋग्वेद २ २३-२६) में भी इनकी तथा 'विश्वम्' (ऋग्वेद २ २४, १२) ऋचा में इन्द्र और ब्रह्मणस्पति की साथ साथ स्तुति की । अथवा^१ उन्होंने बृहस्पति की प्रसङ्गश और ब्रह्मणस्पति की स्पष्ट रूप से स्तुति की ।

^१ ८० वें सूक्त में जो कुछ कहा गया है उसी को एक वैकल्पिक उक्ति अर्थात् ब्रह्मणस्पति तो 'सूक्तभाज' है, जब कि बृहस्पति 'ऋग्भाज (८० ने) अथवा 'निपातभाज' (८१ में) हैं ।

तुष्टाव कर्मणैकेन प्रभावस्यान्तरं द्वयोः ।

मित्रावरुणदक्षांशतुविजातभगार्यम्णाम् ॥८२॥

आदित्यानामिमाः सूक्तम् इदं वारुणमुच्यते ।

वारुणी यो म इत्याद्या दुःस्वप्नायप्रणाशिनी ॥८३॥

उन्होंने एक ही कर्म द्वारा दोनों के भिन्न प्रमाण की स्तुति की ।

‘इमा’ (ऋग्वेद २ २७) सूर्य, मित्र, वरुण, इन्द्र, अश्व, तुषिजात, भग, अर्यमा, और आदित्यों को समर्पित है । ‘इदम्’ (ऋग्वेद २ २८) को वरुण को सम्बोधित कहा गया है । ‘यो मे’ (ऋग्वेद २ २८, १०) से आरम्भ वरुण को सम्बोधित ऋचा तु स्वप्नों आदि की विनाशक है ।

धृतवता वैश्वदेवम् शतमैन्द्रं परं तु यत् ।

प्र हि क्रतुमिति त्वस्याम् इन्द्रासोमौ सह स्तुता ॥८४॥

‘धृतवता’ (ऋग्वेद २ २९) विश्वदेवों को सम्बोधित है किन्तु इसके बाद ‘क्रतुम्’ (ऋग्वेद २ ३०) इन्द्र को सम्बोधित है । ‘प्र हि क्रतुम्’ (ऋग्वेद २ ३०, १) ऋचा में इन्द्र-सोम की साथ साथ स्तुति है ।

सरस्वती त्वमित्यस्मिन् अर्धर्चं मध्यमा तु वाक् ।

बृहस्पतिस्तुतिर्यो नस् तं व ऋङ् मरुतां स्तुतिः ॥८५॥

किं तु ‘सरस्वति त्वम्’ (ऋग्वेद २ ३०, ८) अधऋचा में मध्यम वाक् की स्तुति है । ‘यो न’ (ऋग्वेद २ ३०, ९) बृहस्पति की स्तुति है, और ‘स्व व’ (ऋग्वेद २ ३०, ११) मरुतों की स्तुति है ।

१७-ऋग्वेद २ ३१-३५ के देवता

अस्माकं वैश्वदेव स्याद् आदावस्येति चास्य ऋक् ।

द्यावापृथिव्योस्त्वाष्ट्र्यौ वा अथवैन्द्र्यौ परे ततः ॥८६॥

‘अस्माकम्’ (ऋग्वेद २ ३१) को विश्वदेवों को सम्बोधित मानना चाहिये; और आरम्भ की ‘अस्य’ (ऋग्वेद २ ३२, १) ऋचा आकाश और पृथिवी को समर्पित है; इसके बाद की दो ऋचायें (ऋग्वेद २ ३२, २ ३) या तो स्वष्टा को अथवा इन्द्र को समर्पित है ।

द्वे द्वे राकासिनोवाल्योः षड् गुड्गवाद्यास्तथान्त्यया ।

तत्पूर्व द्वे ऋचौ कुहाः कुहूमहमिति स्मृते ॥

(इसके बाद) पर्यन्त दो दो ऋचाओं में राका (ऋग्वेद २ ३२, ४ ५) और सिनीवाली (६, ७) की, जबकि अन्तिम (८) में गुड्गू सहित छ देवियों की स्तुति है इसके पूर्व ‘कुहूम अहम्’ से आरम्भ दो ऋचाओं को कुहू को सम्बोधित माना गया है ।

^१ तैत्तिरीय संहिता ३ ६ ११, ५ में राका को समर्पित दो ऋचाओं (= ऋग्वेद २ ३२, ४ ५) के बाद कुछ को सम्बोधित उपरोक्त ऋचायें आती हैं।

तदुत्तरे द्वेऽनुमतेर् अनु नोऽन्विदिति स्मृते ।

धातुभ्यस्तन्नस्तत्रादौ धाता ददातु नो रयिम् ॥ ८८ ॥

इनके बाद 'अनु न' और 'अम्बू' इत् से आरम्भ हो ऋचायें अनुमति की मानी गई हैं। इसी स्थान पर आरम्भ में 'धाता ददातु नो रयिम्' से आरम्भ चार ऋचायें धातु को सम्बोधित हैं।

^१ देखिये तैत्तिरीय संहिता ३ ३, ११, ३ ४।

^२ देखिये तैत्तिरीय संहिता ३ ३, ११, २ ३।

रौद्रं मारुतं तु परम् आ ते धारावरा इति ।

वामतस्तु मृग दृष्ट्वा विभ्यदेत्य ऋषिः स्वयम् ॥ ८९ ॥

स्तुहि श्रुतमिति त्वस्या तमेवास्नौत्प्रसादयन् ।

अपां नपादुपेत्यत्र स्तुतः सूक्ते ततः परे ॥ ९० ॥

'आ ते' (ऋग्वेद २ ३३) रुद्र को और इसके बाद का 'धारावरा' (ऋग्वेद १ ३४) मरुतों को सम्बोधित है।

अपने बायें ओर पशु को देखकर ऋषि ने भयभीत होकर 'स्तुहि श्रुतम्' (ऋग्वेद २ ३३, ११) ऋचा द्वारा उसकी ही स्तुति की। इसके बाद 'उप' (ऋग्वेद २ ३५) से आरम्भ सूक्त में 'अपां नपात्' की स्तुति है।

१८-ऋग्वेद २ ३६-४३ के देवता। कपिल्ल के रूप में इन्द्र

तुभ्यमित्यार्तवे सूक्ते सावित्रादाश्विनं परम् ।

सोमः पूषादिनिश्चैव सोमपौष्णेऽन्यथा स्तुताः ॥ ९१ ॥

'तुभ्यम्' (ऋग्वेद २ ३६, १) से आरम्भ हो सूक्त (ऋग्वेद २ ३६-३७) ऋचाओं को सम्बोधित हैं। फिर सवित्र को सम्बोधित एक (ऋग्वेद २ ३८) के बाद अश्विनों को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद २ ३९) आता है। सोम पूषन् को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद २ ४०) की अन्तिम ऋचा में सोम, पूषन्, और अदिति की भी स्तुति है।

वायव्ये चैन्द्रवायवी पश्चाथ प्राउगास्तृचाः ।

प्रेत्यृक्स्तौति हविर्धाने अग्निस्तत्र निपातभाक् ।

यावापृथिव्यौ यावेति हविर्धाने ततः परे ॥ ९२ ॥

दो ऋचायें (ऋग्वेद २ ४१, १, २) वायु का सम्बोधित हैं और एक ऋचा (ऋग्वेद २ ४१, ६) इन्द्र-वायु को, इसके बाद ऋचाओं के पौच त्रिक (ऋग्वेद २ ४१, १-१८) प्रउग^१ देवताओं की सम्बोधित हैं । 'प्र' (ऋग्वेद २ ४१, १९) ऋचा में हविर्धान की स्तुति है अग्नि यहाँ निपातभाज् हैं । 'द्यावा' (ऋग्वेद २ ४१, २०) आकाश और पृथिवी की स्तुति करता है, इसके बाद (ऋग्वेद २ ४१, २१ में) हविर्धान आते हैं ।

^१ इन देवताओं के लिये देखिये ऊपर २ २७-३५, ऋग्वेद १ १ और २ ४१ पर सर्वानुक्रमणी भी ।

स्तुति तु पुनरेवेच्छन् इन्द्रो भूत्वा कपिश्रुलः ।

ऋवेर्जिगमिषोराशा ववाशास्थाय दक्षिणाम् ॥ ०३ ॥

पुन स्तुति प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र तीतर पक्षी बन गये, और ऋषि जब बाहर^१ जाने को हुये तब उन्होंने (तीतर रूपी इन्द्र ने) ऋषि के दक्षिण स्थित होकर आवाज लगाई ।

^१ तु० की० निरुक्त ९ ४ 'गृत्समदम् अर्थम् अभ्युस्थित कपिश्रुलोऽभिववाशे, तु० की० ऋग्वेद २ ४३ पर सर्वानुक्रमणी ।

स तमार्षेण संप्रेक्ष्य चक्षुषा पक्षिरूपिणम् ।

पराभ्याममितुष्टाव सूक्ताभ्यां तु कनिक्रदत् ॥ ०४ ॥

उन्होंने (गृत्समद ने) आर्ष नेत्रों से पक्षी के रूप में इन्द्र को पहचानते हुये 'कनिक्रदत्' (ऋग्वेद २ ४२, १) से आरम्भ दो बाद के सूक्तों (ऋग्वेद २ ४२-४३) में उनकी स्तुति की ।

तृतीय मण्डल

१९- विश्वामित्र ऋषि (अग्वेद ३ १-६ के देवता

प्रशास्य गां यस्तपसाभ्यगच्छद्

ब्रह्मर्षितामेकशत च पुत्रान् ।

स गथिपुत्रस्तु जगाद सूक्तं

सोमस्य मेत्याग्नेयं यत्परे च ॥ ०५ ॥

वैश्वानरीये समित्समिदाप्र्यो

द्वे आग्नेये उत्तरे त्वन्न सूक्ते ।

यावापृथिव्या उषसो निपाता

आपोऽथ देवाः पितरश्च मित्रः ॥ १६ ॥

पृथिवी पर शासन करने के पश्चात् तप द्वारा ऋषि पद और १०० पुत्र^१ प्राप्त करके गाधि पुत्र^२ ने अग्नि को सम्बोधित 'सोमस्य मा' (ऋग्वेद ३ १) सूक्त का और उसके बाद वैश्वानर को सम्बोधित दो सूक्तों (ऋग्वेद ३ २-३) का उच्चारण किया। 'समिन् समित्' (ऋग्वेद ३ ४) एक आग्नी सूक्त है। इसके बाद यहाँ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ३ ५-६) आते हैं; आकाश और पृथिवी, उषस्, जल, देव गण पितृ गण और मित्र नैपातिक देवता है।

^१ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ७ १८, १।

^२ अर्थात् तृतीय मण्डल के ऋषि विश्वामित्र।

आग्नेयेषु दृश्यन्ते स्तुतास्तु

वैश्वानरो वरुणो जातवेदाः।

स्तूयेतैको यत्र यत्रास्तुतिर्वा

निपात्यर्था आपमार्थाश्च विद्यात् ॥ १७ ॥

अग्नि को सम्बोधित (सूक्तों) में वैश्वानर, वरुण और जातवेदस् की भी स्तुति दृष्टिगत होती है। जहाँ (इनमें से) एक को भी स्तुति हो अथवा कोई स्तुति न हो, वहाँ यह भी यह जानना चाहिये कि इनकी नैपातिक स्तुति अथवा उपमा का तात्पर्य होता है।

राजर्षयो गृत्समदा वसिष्ठा

भरद्वाजाः कुशिका गोतमाश्च।

विश्वेऽश्विनावङ्गिरसोऽन्नयोऽदितिर्

भोजाः कण्वा भृगवो रोदसी दिशः ॥ १८ ॥

सावित्रसौभ्याश्विनमारुतेषु

ऐन्द्राग्नेये रौद्रसौर्यौषसेषु।

आदावन्ते सूक्तमध्ये स्तुतास्तु

न व्याघ्नन्ति देवताः सूक्तभाजः ॥ १९ ॥

राजर्षिगण, गृत्समद आदि, वसिष्ठगण, भरद्वाजगण, कुशिकगण और गोतम-गण, विश्वे देव, अश्विन गण, अङ्गिरस् गण, अग्निगण, अदिति, भोजगण,

कण्वगण, सृगुराण, दोनों श्लोक, और दिशाओं की, जब सवित्र, सोम, अश्विनी, अथवा मरुद्गणों, इन्द्र अथवा अग्नि, रुद्र, सूर्य अथवा उषस् को सम्बोधित सूक्त के आरम्भ, अन्त^१ अथवा मध्य में स्तुति हो तो यह सूक्तभाज् देवता के साथ वधाघात उत्पन्न नहीं करते ।

^१ तु० की० ऊपर ३, ५२, और १ २२ तथा, नीचे ५ १७१, भी ।

२० ऋग्वेद ३ ७-२९ के देवता

अग्नेः सप्तदशोऽध्याय ऊर्ध्व ऊ घु ण ऊतये ।

एते काण्ड्यावृचौ यौप्याव् अञ्जन्ति पञ्च च ॥ १०० ॥

सप्तहवीं अध्याय (ऋग्वेद ३ ७-२९) अग्नि से सम्बद्ध है । 'ऊर्ध्व ऊ घु ण ऊतये' (ऋग्वेद १ ३६, १३-१४) से आरम्भ कण्व की दो ऋचायें तथा 'अञ्जन्ति त्वा' (ऋग्वेद ३ ८, १-५) से आरम्भ पाँच ऋचायें यज्ञ-यूप को सम्बोधित हैं ।

शेषा बहुभ्यो यूपेभ्यो वैश्वदेवी त्वगष्टमी ।

अस्यान्त्या व्रश्चना योक्ता षष्ठमेन्द्राग्रमुच्यते ॥ १०१ ॥

शेष अनेक यूपों को, जब कि आठवीं ऋचा विश्वदेवी को सम्बोधित है, इस सूक्त की अन्तिम ऋचा को (यूप को) काटने से सम्बद्ध कहा गया है । छठवाँ (सूक्त) को इन्द्र अग्नि को सम्बोधित कहा गया है ।

^२ अर्थात् इस अध्याय (तु० की० ऊपर १०० वीं श्लोक) का छठवाँ सूक्त ।

अग्निमुषसं वैश्वदेवा दधिक्रामिति चैतया ।

आग्नेन्द्री त्वम इन्द्रश्चक् परो वैश्वानरस्तृचः ॥ १०० ॥

'अग्निम् उषसम्' (ऋग्वेद ३ २०, १) विश्वदेवी को सम्बोधित है, 'दधिक्राम्' (ऋग्वेद ३ २०, ५) द्वारा भी इनका ही आवाहन किया गया है । किन्तु 'अग्न इन्द्रश्च' (ऋग्वेद ३ २५, ४) ऋचा अग्नि इन्द्र को सम्बोधित है । बाद की तीन ऋचायें (ऋग्वेद ३ २६, १-३) वैश्वानर को सम्बोधित हैं ।

प्र यन्तु मारुतश्चान्त्या शतधारं गुरुस्तवः ।

प्र वो वाजा ऋतून्स्तौति ऋत्विज स्तौति मन्यत ॥ १०३ ॥

और 'प्र यन्तु' (ऋग्वेद ३ २६, ४-६) से आरम्भ तीन ऋचायें मरुतों १ को सम्बोधित हैं । 'शतधारम्' (ऋग्वेद १ २६, ९) से आरम्भ अन्तिम

ऋचा में सुह की स्तुति है। प्र वो वाचाः^१ (ऋग्वेद ३, २७, १) में ऋतुओं की स्तुति है, 'मग्धत्' (ऋग्वेद ३, २९, ५) में ऋषिओं की स्तुति है।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'तुचो वैश्वानरीव मास्तौ' बिसके अन्तिम शब्द की बहुवचसि ने 'द्वितीयस्य (तुचस्य) मास्तोऽभि' द्वारा व्याख्या की है।

पुरोऽयास इति त्वस्यां विष्ण्यानग्नीन्प्रशंसति ।

ज्ञेयाश्चैव तु होतारस् ते दैव्याश्चैव तत्र तु ॥ १०४ ॥

किन्तु 'पुरोऽयास' (ऋग्वेद ३ २२ ४) ऋचा में उन्होंने (ऋषि ने) 'विष्णय' की प्रशंसा की है। यही इन्हें विष्य होता मानना चाहिये।

२१-ऋग्वेद ३ ३०-३३ के देवता विश्वामित्र सुदास् और नदियों

त्रयोविंशतिरेन्द्राणि इच्छन्तीति पराण्यतः ।

सूक्ते प्रेति तु नद्यश्च विश्वामित्रः समूदिरे ॥ १०५ ॥

'इच्छन्ति' (ऋग्वेद ३, ३०) से आरम्भ इसक बाद के 'तेईम्' सूक्त इन्द्र को सम्बोधित हैं किन्तु 'प्र' (ऋग्वेद ३ ३३) सूक्त में विश्वामित्र और नदियों के बीच वार्तालाप है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ३ ३०-५३, न कि ३०-५२, क्योंकि ३ ३३ को अपवाद बताया गया है। इसी प्रकार की उक्तियों के लिये तु० की० नीचे ५ १२ और १०५।

पुरोहितः सन्निज्यार्थं सुदासा सह यज्ञृषिः ।

विपाद्भुतुद्रयोः संभेदं शमित्येते उवाच ह ॥ १०६ ॥

यज्ञ पुरोहित होने के कारण सुदास के साथ विपाद् और शुतुद्रि के सङ्क्रम पर जाते समय ऋषि ने 'शम्' शब्द द्वारा इन दोनों नदियों को सम्बोधित किया।

प्रवादास्तत्र दृश्यन्ते द्विवद्बहुवदेकवत् ।

अछेत्यर्धर्चं पच्छो वा नदीष्वप्येकवलि ते ॥ १०७ ॥

आये द्वृचे द्विवत्सार्धं विश्वामित्रवचः श्रुतेः ।

एताभिर्ऋग्भिर्वा नद्य ऋषि बहुवदूचिरे ॥ १०८ ॥

षष्ठ्याष्टम्या चतुर्थ्या च दशम्या चेतरा ऋषेः ।

सप्तम्यामृषि षष्ठ्यां च यौ देवौ परिकीर्तितौ ॥ १०९ ॥

उस सूक्त में द्विवचन^१, बहुवचन^२, और एकवचन में प्रवाद आते हैं : 'अक्ष' (ऋग्वेद ३ ३३, ३) अर्धऋचा में अथवा 'निते' (ऋग्वेद ३ ३३, १० ११) से आरम्भ तीन क्रमिक पावों में नदियों के सम्बन्ध में एकवचन में, प्रथम दो ऋचाओं (ऋग्वेद ३ ३३, १ २) में तथा एक अर्धऋचा (तीसरी ऋचा की) में छुति के अनुसार विधामित्र का वचन है। अथवा नदियों ने बहुवचन में ऋषि को इन ऋचाओं, अर्थात् छठवीं, आठवीं, चौथी और दसवीं ऋचाओं द्वारा सम्बोधित किया, शेष (ऋचायें) ऋषि की हैं। जिन दो देवों की सातवीं और छठवीं^३ ऋचाओं में प्रशस्ति है।

^१ तु० की० निरुक्त २ २४।

^२ अर्थानुक्रमणी ३ ७ (जिसका सर्वानुक्रमणी ने भी अनुसरण किया है) × ६, ८, और १० ऋचाओं को नदीवाच कहा गया है। शेष नौ ऋचायें 'विधामित्र वचांसि' हैं।

^३ छठवीं ऋचा में इन्द्र और सवितृ का तथा सातवां में इन्द्र का उल्लेख है। सर्वानुक्रमणी का यह कथन है 'षष्ठीसप्तम्योसं स्व इन्द्रस्तु त'।

२२-ऋग्वेद ३ ३१ एक पुत्रिका पुत्री। विधामित्र और शक्ति।

निपातिनौ तु तौ ज्ञेयौ ऐन्द्रापार्वत्युत्तमे।

करोति पुत्रिका नाम यथा दुहितर तथा ॥ ११० ॥

तस्या सिञ्चति रेतो वा तच्छासदिति कीर्तितम्।

रिक्थस्य दुहितुर्दाने नेत्यृचि प्रतिषिध्यते ॥ १११ ॥

उन्हें नैपातिक माना गया है। अन्तिम सूक्त में इन्द्र-पर्वत की सम्बोधित एक ऋचा^१ है। पुत्रिका कही जानेवाली को किन प्रकार अपनी पुत्री बनाया जाता है, अथवा उसे इस आशय में गभित किया जाता है इसका शासक (ऋग्वेद ३ ३१)^२ सूक्त में उल्लेख है। 'न' (ऋग्वेद ३ ३१, २)^३ ऋचा में पुत्री को उत्तराधिकार देने का निषेध है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ३ ५१, १।

^२ ऋग्वेद ३ ३१, १, पर यास्क ने निरुक्त ३ ४ में टिप्पणी की है, तु० की० इस पर सायण भी।

^३ ऋग्वेद ३ ३१, २ पर यास्क ने निरुक्त ३ ६ में टिप्पणी की है।

तस्याश्चाह यवीयांसं भ्रातरं ज्येष्ठवत्सुतम्।

सुवासश्च महायज्ञे शक्तिना गाधिसूतवे ॥ ११२ ॥

निगृहीतं बलाचेतः सोऽवसीदद्विचेतनः ।
तस्मै ब्राह्मो तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम् ॥११३॥
सूर्यक्षयाविहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः ।
कुशिकानां ततः सा वाग् अमतिं तामपाहनत् ॥११४॥

और (ऋषि ने) यह कहा है कि उसका पुत्र, जो उससे छोटा है, ज्येष्ठ
आता के समान है ।^१ सुदास् के एक महायज्ञ में शक्ति ने गाथि पुत्र को
बलात् चेतनारहित कर दिया था । यह अचेतनता से दुखी हुआ किन्तु
जमदग्निर्बो^२ ने उसे सूर्य के आवाग से लाकर ब्रह्मा अथवा सूर्य की पुत्री,
ससर्परी नामक वाच् प्रदान की । तब उस वाच् ने कुशिकों के अमतिरब्^३
(अचेतनत्व) को दूर कर दिया ।

^१ अर्थात् पुत्रिका पुत्र अपने पितामह की सम्पत्ति को अपनी माता के द्वारा इस
प्रकार प्राप्त करता है मानो वह अपनी इस माता का ज्येष्ठ आता हो ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ३ ५३, १५-१६ ।

^३ ऋग्वेद ३ ५३, १५ में ससर्परी को 'सूर्यस्य दुहिता' कहा गया है ।

^४ ऋग्वेद ३ ५३, १५ में 'ससर्परीर् अमतिं वाचमाना', आता है ।

२३-विश्वामित्र और याच् ससर्परी । वसिष्ठों
के विरुद्ध अभिचार ।

उपेति चास्यां च कुशिकान् विश्वामित्रोऽनुबोधयत् ।
लब्ध्वा वाचं च हृष्टात्मा तानृषीन्प्रत्यपूजयत् ॥
ससर्परीरिति द्वाभ्याम् ऋग्भ्या वाचं स्तुवन्स्वयम् ।
स्थिराबिन्यनसोऽङ्गान्यनदुहश्च गृहान्वजन् ॥ ११६ ॥

और 'उप' (ऋग्वेद ३ ५३ ११) ऋचा द्वारा विश्वामित्र ने कुशिकों
को पुन चेतना युक्त कर दिया । वाच् को प्राप्त करके प्रसन्न हृदय उन्होंने
(विश्वामित्र ने) इन ऋषियों (जमदग्नियों) का पूजन किया और स्वयं
'ससर्परी' (ऋग्वेद ३ ५३ १५) से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा वाच् की
स्तुति की । 'स्थिरी' (ऋग्वेद ३, ५३, १७-२०) द्वारा उन्होंने घर जाते
समय गाथी के अङ्गों और बैलों की स्तुति की ।

ततश्च स्वशरीरेण गृहान्गच्छन्परीददे ।
पराभ्यतस्रो यास्त्वन्न वसिष्ठद्वेषिण्यः स्मृताः ॥ ११७ ॥

और तब घर जाकर उन्होंने स्वयं ही इन वस्तुओं को रक्ष दिया ।

किन्तु इसके बाध आनेवाली चार ऋचाओं (ऋग्वेद ३ ५३, २३-२४) को वसिष्ठ-द्वेषी माना गया है ।

^१ अर्थात् गाढी, उसके अङ्ग और बैल । तु० की० ऋग्वेद ३ ५३, २० 'अयमस्मा न्ननस्पतिर्मां च हा मा च रीरिषत् । स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा मा विमोचनात् ॥'

**विश्वामित्रेण ताः प्रोक्ता अभिशापा इति स्मृताः ।
द्विषद्द्वेषास्तु ता प्रोक्ता विद्याभैवाभिचारिकाः ॥ ११८ ॥**

इनका विश्वामित्र ने उच्चारण किया था और इन्हें अभिशाप माना गया है । इनका शत्रु-द्वेषी^१ के रूप में उच्चारण किया गया है और यह अभिचारिक विद्यायें हैं ।

^१ तु० की ऋग्विधान १ १९ ४ १ २० १ ।

२४-ऋग्वेद ३ ५३, २१-२४ । ऋग्वेद ३ ५४-६० के देवता ।

**वसिष्ठास्ता न शृण्वन्ति तदाचार्यकसंमतम् ।
कीर्तनाच्छ्रवणाद्वापि महादोषश्च जायते ॥ ११९ ॥
शतधा भिद्यते मूर्धा कीर्तितेन श्रुतेन वा ।
तेषां बालाः प्रमीयन्ते तस्मात्तास्तु न कीर्तयेत् ॥ १२० ॥**

वसिष्ठ गण इसका श्रवण नहीं करते । यह इनक आचार्यों का सर्वसंमत मत है श्रवण अथवा कीर्तन से महादोष भी उत्पन्न होता है, श्रवण अथवा कीर्तन से व्यक्ति का सर टूटकर सौ टुकड़ों में विभक्त हो जाता है । उनके बालक भी मर जाते हैं, अतः इनका कीर्तन नहीं करना चाहिये ।

**विश्वांश्च देवास्तुष्टाव चतुर्भिरिममित्यृषिः ।
अस्तौद्विश्वात्मना सर्वान् मन्यमानः परं पदम् ॥ १२१ ॥
देनानामसुरत्वं तद् एक महदितोरयन् ।
अश्विनौ मित्र ऋभवो धेनुर्मित्र इहेह वः ॥ १२२ ॥**

'इमम्' (ऋग्वेद ३ ५४, १) से आर-भ चार सूक्तों (ऋग्वेद ३ ५४-५७) में ऋषि ने विश्वदेवों की स्तुति की ।

उन्होंने उनके परमपद का विचार करके अपनी सम्पूर्ण आत्मा द्वारा स्तुति करते हुये 'देवानाम् असुरत्वं तद् एक महत्' का उच्चारण किया ।

अश्विन-गण, मित्र और ऋभुगण (क्रमशः) 'धेनु' (ऋग्वेद ३ ५८), 'मित्र' (ऋग्वेद ३ ५९) और 'इहेह वः' (ऋग्वेद ३ ६०) के देवता हैं ।

वैश्वदेवोति विज्ञेया मैत्री मित्राय पञ्च तु ।
ऐन्द्रार्भवस्तृचस्त्वत्र आर्भवे सूक्त उत्तमः ॥१२३॥

मित्र को सम्बोधित 'मित्राय पञ्च' (ऋग्वेद ३. ५९, ८) ऋचा को विरवेदेवों के लिये मानना चाहिये ।

किन्तु ऋभु के सूक्त में यहाँ अन्तिम तीन ऋचार्ये (ऋग्वेद ३ ६०, ५-७) इन्द्र और ऋभुओं को सम्बोधित हैं ।

९-५-ऋग्वेद ३ ६१-६१ के देवता ।

पूर्वं दृष्टे निपातीन्द्र उषो वाजेन पञ्चमात् ।
औषसादुत्तरास्त्वन्त्ये षट् पृथग्देवतास्तृचाः ।
ऐन्द्रावरुणः प्रथमो बार्हस्पत्यस्तथापरः ॥ १२४ ॥
पौष्णसावित्रसौम्याश्च मैत्रावरुण उत्तमः ।
तुष्टाव जमदग्निश्च तेन देवावृतावृधौ ॥ १२५ ॥

इनके पहले की दो ऋचाओं (ऋग्वेद ३ ३०, ३-४) में इन्द्र नैपातिक हैं । 'उषो वाजेन' (ऋग्वेद ३ ६१) से आरम्भ उषस् को सम्बोधित पाँचवें सूक्त के बाद अन्तिम सूक्त (ऋग्वेद ३ ६२) में पृथक्-पृथक् देवताओं को सम्बोधित ऋचाओं के छः त्रिक आते हैं प्रथम (ऋग्वेद ३ ६२, १-३) इन्द्र वरुण को, और उसके बाद का (त्रिक ऋग्वेद ३ ६२, ४-६) बृहस्पति को सम्बोधित है, इसके बाद क्रमशः पूषन् (ऋग्वेद ३ ६२, ७-९), सवितृ (ऋग्वेद ३ ६२, १०-१२) और सोम (ऋग्वेद ३ ६२, १३-१५) को सम्बोधित हैं, जब कि अन्तिम (ऋग्वेद ३ ६२, १६-१८) मित्र-वरुण को सम्बोधित है । और इस अन्तिम से जमदग्नि ने इन को ऋत वृध^१ देवताओं की स्तुति की ।

^१ मित्रावरुण के लिये यह उपाधि ऋग्वेद ३ ६२, १८ में 'ऋतावृधा' के रूप में आती है ।

चतुर्थ मण्डल

२६-ऋग्वेद ४ १-१५ के देवता

देवर्षिपितृपूजार्थं पापाचान्त्रचाणि यच्छुनः ।
यस्य वै श्येनरूपेण आहरद्वृत्रहा मधु ॥ १२६ ॥

सोऽग्नि तु पञ्चदशभिर् इन्द्रं षोडशभिः परैः ।
ऋषिस्त्यामिति तुष्टाव सूक्तैरेति तु गौतमः ॥ १२७॥

जब वामदेव ने देवी, ऋषियों और पितरों की पूजा के लिये कुत्ते की अतृषियों को पकाया था तब रथेन के रूप में वृत्रहन् (इन्द्र) उनके लिये मनु लाये थे, और गौतम के वशज उस ऋषि ने 'त्याम्' (ऋग्वेद ४ १-१५) से आरम्भ पन्द्रह सूक्तों द्वारा अग्नि की और 'आ' (ऋग्वेद ४ १६-३२) से आरम्भ बाद के सोलह सूक्तों द्वारा इन्द्र की स्तुति की ।

स आतरमिति त्वासु तिसृष्वग्निनिपातभाक् ।
वरुणेनाभिसंस्तौति आहुरन्ये निपातिनम् ॥ १२८॥

'स आतरम्' (ऋग्वेद ४ १, २) से आरम्भ तीन ऋचाओं (२-४) में अग्नि निपातभाज् हैं, अन्य लोगों का कथन है कि यहाँ (ऋषि ने) नैपातिक अग्नि की वरुण के साथ स्तुति की है ।

लिङ्गोक्तदैवते सूक्ते एके प्रत्यग्निरेव तु ।
ऋषिर्बोधदिति द्वाभ्यां स्तौति सोमकमेव तु ॥ १२९॥

कुछ लोगों का कहना है कि 'प्रत्यग्नि' (ऋग्वेद ४ १३) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ४ १३-१४) लिङ्गोक्तदैवत^१ हैं । किन्तु बोधत' (ऋग्वेद ४ १५, ५-८) से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा केवल सोमक की ही स्तुति की है ।

^१ तु० की० सर्वानुकमणी लिङ्गोक्तदैवत त्व एके ।

२७-ऋग्वेद ४ १८-३० । इन्द्र का जन्म और वामदेव के साथ युद्ध तस्यैव चायुषोऽर्थाय पराभ्यामश्विनौ स्तुतौ ।
अश्वसा न जनिष्येऽहं ब्रुवाण गर्भमेव तु ॥ १३० ॥
अन्वशाददितिः पुत्रम् इन्द्रमात्महितैषिणी ।
स जातमात्रो युद्धाय ऋषिमेवाजुहाव तु ॥ १३१ ॥

इसके आयुष्य के लिये बाद की दो ऋचाओं (४ १५, २-१०) में अश्विनों की स्तुति है । अपने गर्भस्थ-पुत्र, इन्द्र, के यह कहने पर कि मैं उचित रूप से जन्म नहीं लूँगा^१, अपने हित के लिये ही अदिति ने उसे शान्त^२ किया, जन्म लेते ही उसने (इन्द्र ने) ऋषि को युद्ध के लिये छलकारा ।

^१ तु० की० ऋग्वेद ४ १८, २ 'नाहमतो निरथा दुर्गहैतत्' ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ४ १८, १ 'मा मारतममुया पचवे क' ।

गोधयन्वामदेवस्तं कृत्वात्मनि बलं तथा ।

दिनानि दश रात्र्योश्च विजिग्ये चैन्मोजसा ॥ १३२ ॥

जब उसने (इन्द्र ने) उनके (ऋषि के) पति बल का प्रयोग किया तब वामदेव ने उससे (इन्द्र से) दस दिन और रात्रियों तक युद्ध करते हुए शक्ति द्वारा उसे पराजित किया ।

स तं क इममित्यस्यां विक्रीणवृषिसंसदि ।

स्वय तेनाभितुष्टाव नकिरिन्द्रेति गौतमः ॥ १३२ ॥

किमादुतासीति चास्यां मन्युमर्धे पराणुदत् ।

अथास्य रूपवीर्याणि धैर्यकार्याणि तान्यृषिः ॥ १३४ ॥

विविधानि च कर्माणि शशंसादितये तथा ।

अहमित्यात्मसंस्तावस् तृचे स्तुतिरिवास्य हि ॥ १३५ ॥

‘क इमम्’ (ऋग्वेद ४ २४, १०) ऋचा में गौतम ने उसका ऋषियों की सभा में विक्रय करते हुये इस उद्देश्य से ‘नकिर् इन्द्र’ (ऋग्वेद ४ ३०, १) द्वारा स्वयं उसकी स्तुति की; और ‘किम् आद उतासि’ (ऋग्वेद ४ ३०, ७) में उन्होंने बीच में ही उसके क्रोध को समाप्त कर दिया । तब ऋषि ने उसके (इन्द्र के) रूप वीरता तथा धीरतापूर्ण कार्यों और विविध कर्मों को जदिति से बताया । ‘अहम्’ (ऋग्वेद ४ २६) से प्रारम्भ तीन ऋचाओं में आत्मस्तुति है क्योंकि इनमें मानों उसकी (इन्द्र की) स्तुति है ।^१

^१ अर्थात् ऋषि ने इस प्रकार अपनी स्तुति की मानों वह स्वयं इन्द्र हैं, तु० की० सर्वानुक्रमणी ‘इन्द्रम् इवात्मानम् ऋषिम् तुष्टावेद्रो वात्मानम्’ ।

प्र सु ष विभ्यो नवभिर् ऋग्भिः श्येनस्य संस्तवः ।

पराभिस्त्वेति पञ्चर्धे सोमेनेन्द्र स्तुतः सह ॥ १३६ ॥

प्र सु ष विभ्य’ (ऋग्वेद ४ २४ ४) से आरम्भ बाद की नौ ऋचाओं (ऋग्वेद ४ २६, ४-७, २७, १-५) में श्येन की स्तुति है । ‘त्वा’ (ऋग्वेद ४ २८) से आरम्भ पाँच ऋचाओं के सूक्त में सोम के साथ इन्द्र की स्तुति है ।

सोमप्रधानामेतां तु क्रौष्टुकिर्मन्यते स्तुतिम् ।
 दिवश्चिदिति चैतेन तृचेनेन्द्रेण संस्तुताम् ॥१३७॥
 उषसं मध्यमां मेने आचार्यः शाकटायनः ।
 वाममृचि स्तुताश्चात्र भगः पूषेति चार्यमा ॥१३८॥
 करुळतीति पूषोक्तोऽदन्तकः स इति श्रुतेः ।
 अस्माकमुत्तमं सूर्यं स्तौतित्याहाम्बलायनः ॥१३९॥

क्रौष्टुकि इस स्तुति को प्रमुखतः सोम को सम्बोधित मानते हैं, जब कि आचार्य शाकटायन ने 'दिवश्चिद्' (ऋग्वेद ४ ३०, ६) से आरम्भ तीन ऋचाओं द्वारा इन्द्र के साथ उषस् की स्तुति माना है। और 'वामम्' (ऋग्वेद ४ ३०, २४) ऋचाओं में यहाँ भग, पूषन्, और अर्यमा की स्तुति है पूषन् को (यहाँ) 'करुळतिन्' कहा गया है एक श्रुति^१ के अनुसार यह 'दन्तविहीन' हैं। आम्बलायन का कथन है कि 'अस्माकम् 'उत्तमम्' (ऋग्वेद ४, ३१, १५) सूर्य की स्तुति करता है।

^१ यह शब्द ऋग्वेद ४ ३०, २४ में आता है, जिस पर बास्क ने निरुक्त ६ ३०, ३१ में टिप्पणी की है।

^२ अर्थात् बास्क निरुक्त ६ ३१ में उद्धृत शकपथ ब्राह्मण १ ७, ४, ७।

२९-विभिन्न देवताओं के वाहनाश्च ।

इन्द्रस्य हरयो ह्यश्वा अग्नेरश्वास्तु रोहितः ।
 सूर्यस्य हरितश्चैव वायोर्नियुत एव च ॥ १४० ॥

इन्द्र के अश्व 'हरि' (भूरे या वादामी, या पीले) हैं, अग्नि के अश्व 'रोहित' हैं, सूर्य के 'हरित' और वायु के 'नियुत' (बहुसंख्यक) हैं।^१

^१ यह तथा बाद के दो श्लोक नैषण्टुक १ १५ का निकट अनुसरण करते हैं।

रासभः सहितोऽश्विभ्याम् अजाः पूष्णाश्च वाजिनः ।
 पृषत्योऽश्वास्तु मरुतां गावोऽरुण्यस्तथोषसाम् ॥१४१॥

गर्दभ अश्विनों के साथ सम्बद्ध है और पूषन् के वाजिन् बकरे हैं किन्तु मरुतों के अश्व पृषती अश्विनों हैं, जब कि उषस की अरुण गायें।

सवितुर्वाजिनः श्यावा विश्वरूपा बृहस्पतेः ।
 सहैते देवताभिस्तु स्तूयन्तेऽप्यल्पशोऽन्यथा ॥ १४२ ॥

सर्विन् के अथ 'श्याव' (धुंधले) हैं; बृहस्पति का (अश्व) विभिन्न रूपों वाला है। इन सब की अपने देवताओं के साथ स्तुति होती है; अन्यथा अश्वान्त कम।

आयुषं वाहनं चापि स्तुतौ यस्येह दृश्यते।

तमेव तु स्तुतं विद्यात् तस्यात्मा बहुधा हि सः ॥१४३॥

जहाँ जिस (देवता) के आयुष जीर वाहन की स्तुति दृष्टिगत होती है वहाँ उसकी ही स्तुति माननी चाहिये; क्योंकि वही (देवता) अनेक रूप से उसकी आत्मा होता है।^१

^१ अर्थात् आयुषों या वाहनों में वही अपने को व्यक्त करता है। तु० की० ऊपर १ ७३ ७४।

कनीनका सूक्तशेषो ह्ययो स्तुतिरिहोच्यते।

चात्वार्यतश्च विज्ञेयान्य् अप्रगृह्याणि विद्रधे ॥१४४॥

एक सूक्त^१ क 'कनीनका' (ऋग्वेद ४ ३२, २३) से आरम्भ शेषांश (दो ऋचायें ऋग्वेद ४ ३२, २३-२४) की बह्वा (इन्द्र के)^२ दो 'हरि' (अश्वों) की स्तुति कहा गया है। और इसके बाद^३ के चार शब्दों, (अर्थात्) 'विद्रधे' आदि को, 'अप्रगृह्या'^४ मानना चाहिये।

^१ अर्थात्, वह सूक्त जिसे पहले ही (ऊपर १२७ वाँ श्लोक) एक इन्द्र सूक्त कहा जा चुका है, और जिसकी ही वह दोनों अंतिम ऋचायें हैं।

^२ तु० की० निरुक्त ४ १५ 'अश्वयो सस्तव', तथा सर्वानुक्रमणी 'अत्याम्बाम् इन्द्राश्वौ स्तुतौ'।

^३ अर्थात् 'कनीनका' (ऋग्वेद ४ ३२, २३) के बाद के शब्द।

^४ अर्थात् 'विद्रधे' नये द्रुपदे अश्वों को दिवाचक नहीं बरन् एकवचन सप्तमी मानना चाहिये, जैसा कि पदपाठ तथा यास्क (निरुक्त ४ १५) द्वारा उद्धृत शाकपूणि के इस मत से प्रकट होता है 'क ययोर् अग्निष्ठानप्रवचनानि सप्तम्या एकवचनानीति शाकपूणि'।

॥ इति बृहदेकताया अतुर्थोऽध्यायः ॥



१-ऋग्वेद ४ ३३-५२ के देवता ।

प्रेति पञ्चार्भवं त्रीणि दाधिक्राणि पराण्यतः ।

ऋग्यावापृथिव्यौ स्तौति दाधिक्राणां मुखे तु या ॥ १ ॥

‘प्र’ (ऋग्वेद ४ ३३, १) से ऋभुओं को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ४ ३३-३७) का आरम्भ होता है । इसके बाद तीन सूक्त (ऋग्वेद ४ ३८-४०) दधिका को सम्बोधित हैं, किन्तु दधिका को सम्बोधित सूक्तों की मुख्य-ऋत्ता (ऋग्वेद ४ ३८, १) में आकाश और पृथिवी की स्तुति है ।

परोक्षैरमुतो वाग्भिर् नामभिश्च स्तुतास्त्रयः ।

अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च हंसः शुचिषदित्यृचि ॥ २ ॥

फिर परोक्ष वचनों और नामों द्वारा अग्नि, वायु, सूर्य, इन तीनों की ‘हस शुचिषत’ (ऋग्वेद ४ ४०, ५) ऋचा द्वारा स्तुति की गई है ।

नियुक्ता सूर्यदेवत्या हंस इत्यैतरेयके ।

द्वै त्वैन्द्रावरुणे सूक्ते ततस्त्रीण्याश्विनानि कः ॥ ३ ॥

ऐतरेय (ब्राह्मण) में ‘हस’ (ऋग्वेद ४ ४०, ५) में सूर्य को देवता नियुक्त किया गया है ।^१ इसके बाद इन्द्र वरुण को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ४ ४१-४२) आते हैं, इसके बाद ‘क’ (ऋग्वेद ४ ४३, १) से आरम्भ तीन (ऋग्वेद ४ ४३ ४५) आश्विनों को सम्बोधित हैं ।

^१ऐतरेय ब्राह्मण ४ २०, ५ में इस ऋचा को सूर्य से सम्बद्ध किया गया है ।

अग्रं वायो विहीत्येषु वायव्याः सप्त कीर्तिताः ।

नव चैवेन्द्रवायव्या इन्द्रस्तिष्ठः शनेन षट् ॥ ४ ॥

‘अग्रम्’ (ऋग्वेद ४ ४६, १) ‘वायो’ (ऋग्वेद ४ ४७, १), और ‘विहि’ (ऋग्वेद ४ ४८, १-५) इन सात ऋचाओं को वायु को सम्बोधित कहा गया है, और नौ ऋचायें इन्द्र वायु को सम्बोधित हैं, जिनमें से ‘इन्द्र’ (ऋग्वेद ४ ४७, २-४) से आरम्भ तीन तथा शनेन’ (ऋग्वेद ४ ४६, २-७) से आरम्भ छ ऋचायें आती हैं ।

इदं कथितदेवत्यं यस्तस्तम्भोत्तमो दृचः ।

स्तुतिरिन्द्रावृहस्पत्योर् अष्टावेता ऋचः स्मृताः ॥ ५ ॥

‘इदम्’ (ऋग्वेद ४ ४९) और ‘यत् सस्तम्भ’ (ऋग्वेद ४ ५०) की अन्तिम दो ऋचायें, इनमें ही उल्लिखित देवताओं को सम्बोधित है^१—इन आठ^२ ऋचाओं में इन्द्र-वृहस्पति की स्तुति मानी गई है।

^१ अर्थात् इन्द्र और वृहस्पति।

^२ अर्थात् ऋग्वेद ४ ४९, १-६, और ५०, १० ११।

सूक्तं तु तद्वाहेस्पत्यम् इदमित्यौषसे परे।

पुरोधातुः कर्मशंसा स इन्द्राजोच्यते तृचे ॥ ६ ॥

फिर भी, यह^१ सूक्त वृहस्पति को सम्बोधित है; ‘इदम्’ (ऋग्वेद ४ ५१ १) से आरम्भ हो बाद के सूक्त (ऋग्वेद ४ ५१-५२) उषस् को सम्बोधित हैं। ‘स इद् राजा’ (ऋग्वेद ४ ५०, ७-९) से आरम्भ तीन ऋचाओं में पुरोधाता के कर्मों की प्रशंसा है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ४ ५०।

^२ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ८ २४-२६।

२-ऋग्वेद ४ ५३-५८ के देवता

तत्सावित्रे द्वे तु को वैश्वदेवं मही

द्यावापृथिवीयं परं तु यत् ।

क्षेत्रस्येति तिस्रस्तु क्षेत्रपत्याः

शुन बाहाः शुनदेवी त्वृगुत्तरा ॥ ७ ॥

‘तत्’ (ऋग्वेद ४ ५३, १) से आरम्भ हो सूक्त (ऋग्वेद ४ ५३-५४) सवितु को सम्बोधित हैं, ‘क’ (ऋग्वेद ४ ५५) विश्वदेवों को सम्बोधित है, जबकि इसके बाद आनेवाला ‘मही’ (ऋग्वेद ४ ५६) आकाश और पृथ्वी को सम्बोधित है। किन्तु ‘क्षेत्रस्य’ (ऋग्वेद ४ ५७) सूक्त में प्रथम तीन ऋचायें क्षेत्रपति को सम्बोधित हैं, जबकि ‘शुन बाहा’ (ऋग्वेद ४ ५७, ४) से आरम्भ बाद की ऋचा के देवता शुन हैं।

वायुः शुनः सूर्य एवात्र सीरः

शुनासीरौ वायुसूर्यौ वदन्ति ।

शुनासीरं यास्क इन्द्रं तु मेने

सूर्येन्द्रौ तौ मन्यते शाकपूणिः ॥ ८ ॥

शुन यहाँ वायु है, सीर सूर्य है क्योंकि उनका कहना है कि शुन और सिर, वायु और सूर्य हैं। फिर भी, यास्क ने शुनासीर को इन्द्र माना है^१।

और शाकपूणि का विचार है कि यह दोनों (शुन और सीर) खूब और
हृन्म हैं ।^१

^१ यास्क के मत के लिये देखिये निरुक्त १, ४० ।

^२ इस श्लोक को ऋग्वेद ४ ५७ पर षडगुरुशिष्य ने उद्धृत किया है ।

शुनासीरौ पञ्चम्यां तु स्तुतौ तौ

द्वे तु सीतायै षष्ठी सप्तमी च ।

शुन नः फालाः कृषि स्तौति पादः

शुनं कीनाशाः कृषिजोवान्मनुष्यान् ॥ ९ ॥

अब हम दोनों, शुन और सीर, की पाँचवीं ऋचा (ऋग्वेद ४ ५७, ५)
में स्तुति है, जब कि दो, छठवीं और सातवीं, ऋचाये (ऋग्वेद ४ ५७, ६-७)
सीता की हैं । 'शुन न फाला' (ऋग्वेद ४ ५७, ८) पाद कृषि की स्तुति
करता है, और शुन कीनाशा' (ऋग्वेद ४ ५७, ८) पाद कृषिजीवी
मनुष्यों की ।

स्तुतः पादेऽत्र पर्जन्यस्तृतीये

अन्त्यं त्वृषिर्धनकामो जगाद ।

कृषि वा स्तौति सर्वं हि

सूक्तं समुद्रादित्यग्नेर्मध्यमस्य ॥ १० ॥

पर्जन्य की यहाँ तृतीय पाद (ऋग्वेद ४ ५७, ८) में स्तुति है, जब कि
ऋषि ने अन्तिम पाद (ऋग्वेद ४ ५७, ८) को धन की कामना से कहा है ।
अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण सूक्त कृषि की स्तुति करता
है । 'समुद्रात्' (ऋग्वेद ४ ५८) मध्यम अग्नि का है ।

आदित्यं वा ब्राह्मणोक्तं प्रदिष्टम्

आग्नेयं चाप्याज्यसूक्तं हि दृष्टम् ।

अपां स्तुति वा यदि घृतस्तुति

गव्यमेके सौर्यमेतद्वदन्ति ॥ ११ ॥

जैसा कि एक ब्राह्मण में उल्लेख है, हमे या तो आदित्य अथवा अग्नि को
सम्बोधित कहा गया है, क्योंकि यह एक आज्य-सूक्त प्रतीत होता है,^१ अथवा

कुछ छोट इससे जलों की स्तुति करने वाला, अथवा वृत्त की स्तुति करने वाला, अथवा गायों, अथवा सूर्य को सम्बोधित कहते हैं ।^२

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ५. १६, ६ में ऋग्वेद ४ ५८ को सातवें दिन का आख्य श्रुति कहा गया है ।

^२ तु० की० सर्वानुकमणी ।

पञ्चम मण्डल

३-ऋग्वेद ५ २८ के देवता । अयक्य और वृषा आन की कथा

स्वर्भानुदृष्टं सूर्यस्य अपहत्य तमोऽत्रयः ।

सप्तविंशतिभिः सूक्तेर् अबोधोत्पन्निमस्तुवच्च ॥ १२ ॥

स्वर्भानु द्वारा अदृष्ट किये गये सूर्य के अन्धकार को दूर करके अत्रियों ने 'अबोधि' (ऋग्वेद ५ १, १) से आरम्भ सप्ताईस सूक्तों (ऋग्वेद ५ १-२८) से अग्नि की स्तुति की ।^१

^१ ऋग्वेद ५ ५ को आप्रीसूक्त होने के कारण छोड़ दिया गया है, अतः सप्ताईस की संख्या के अन्तर्गत अष्टाईसवीं सूक्त भी सम्मिलित है ।

त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च अश्वमेध ऋणंचयः ।

स्तूयमानाः परीक्ष्याः स्युर् अत्रिष्वेते कचित्कचित् ॥ १३ ॥

अत्रियों के सूक्तों के विभिन्न स्थलों पर त्रैवृष्ण (अयक्य), त्रसदस्यु, अश्वमेध, ऋणचय की भी स्तुति देखी जा सकती है ।

ऐक्ष्वाकुस्यरुणो राज्ञा त्रैवृष्णो रथमास्थितः ।

संजग्राहाश्वरश्मीश्च वृशो जानः पुरोहितः ॥ १४ ॥

ऐक्ष्वाकुवशी, त्रैवृष्ण के पुत्र, राजा अयक्य अपने रथ पर जा रहे थे, और जन के पुत्र वृश नामक पुरोहित ने अश्वों की रश्मियों (बरगाओं) को अपने हाथ में लिया ।

स ब्राह्मणकुमारस्य रथो गच्छञ्छिरोऽछिनत् ।

एनस्वीत्यब्रवीच्चैव स राजैनं पुरोहितम् ॥ १५ ॥

चलते समय रथ ने एक ब्राह्मण कुमार के शिर को काट दिया, और तब राजा ने अपने पुरोहित से कहा कि 'तुम हत्यारे हो' ।

सोऽथर्वाङ्गिरसान्मन्त्रान् हृष्ट्वा संजीव्य तं शिशुम् ।

क्रोधात्संस्त्यज्य राजानम् अन्यदेशं समाश्रितः ॥ १६ ॥

बह (वृक्ष) राजा को अथर्वन् मन्त्रों का दर्शन कराकर और बालक को पुनर्जन्मीकृत करके क्रोध में उनका परित्याग करके अन्य देश में चला गया ।

हरोऽव्यग्नेर्ननाशास्य तस्यापक्रमणाहवेः ।

अग्नौ प्रास्तानि हव्यानि न ह्यपच्यन्त कानिचित् ॥१७॥

ऋषि के चले जाने से उनके (राजा के) अग्नि का ताप नष्ट हो गया, क्योंकि उसमें डाली हुई कोई भी हवि पकती नहीं थी ।

४-इयदृण की कथा (क्रमशः)

ततः प्रव्यथितो राजा सोऽभिगम्य प्रसाद्य तम् ।

आमीत्वा स वृशं जानं पुनरेव पुरोदधे ॥१८॥

तब अत्यन्त व्यथित होकर राजा वृक्ष जान के पास गये और उन्हें प्रसन्न करके लौटा लाये तथा पुनः अपना पुरोहित बना लिया ।

स प्रसन्नो वृशोऽन्वैछद् धरमग्नेर्नृपक्षये ।

अविन्दत पिशाचीं तां जायां तस्य च भूपतेः ॥ १९ ॥

प्रसन्न होकर वृक्ष ने राजा के घर में अग्नि के ताप को बूँटा, और राजा की पत्नी को पिशाची के रूप में पाया ।

निषणः स तथा सार्धम् आसन्ध्या कशिपावपि ।

तामुपामन्त्रयां चक्रे कमेत त्वमिति त्वृचा ॥ २० ॥

उसके साथ बिस्तरे से युक्त आसन्दी पर बैठकर उसने (वृक्ष ने) उसे (पिशाची को) 'कम् एतं त्वम्' (ऋग्वेद ५ १, २) मन्त्र द्वारा सम्बोधित किया ।

हरः कुमाररूपेण ब्रुवंस्तामभ्यभाषत ।

विज्योतिषेति चोक्तायां सहसाग्निरुदज्वलत् ॥ २१ ॥

सहमानः समायान्तं प्रकाशं च प्रकाशयन् ।

पिशाचीमदहत्ता स यत्र चोपविवेश सा ॥ २२ ॥

अग्नि के ताप को एक कुमार के रूप में बताते हुये उन्होंने उसे (पिशाची को) सम्बोधित किया । और जब उन्होंने 'वि' उच्चोत्तिषा' (ऋग्वेद ५ २, ९) का उच्चारण किया, तब पास आते हुये को दूर भगाते हुये और प्रकाश को

प्रकाशित करते हुये अग्नि सहसा प्रगट हुये, और पिशाची को, जहाँ वह बैठी थी वहाँ, भस्म कर दिया ।

५-अन्य कृतियों में ऋग्वेद ५. २, २, ९ के सन्दर्भ ।

ऋग्वेद ५ २९, ४० के देवता

एव एव परामृष्टो भाल्लुविब्राह्मणे दृष्टः ।

निदानसंज्ञके ग्रन्थे छन्दोगानामिति श्रुतिः ॥ २३ ॥

इन दो ऋचाओं^१ का भाल्लुविनों के ब्राह्मण में उल्लेख है यह श्रुति-स्थल सामवेदियों के निदान नामक ग्रंथ में भी (उद्धृत) है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ५ २, २ ९ ।

भवेदेव परामर्शः सूक्तस्यास्य व्यपेक्षया ।

भवन्ति बाह्या मन्त्रा हि विविहृष्टेन बोदिताः ॥ २४ ॥

इसका उल्लेख सम्भवतः इस सूक्त के सन्दर्भ में ही हुआ है, क्योंकि एक विधि में बाह्य मन्त्रों को सशुक्त होते हुये देखा गया है ।

हृद्यन्ते ब्राह्मणे मन्त्रा एकदेशे प्रदर्शिताः ।

जामदग्न्यस्तथैवाप्र्य स्तोकीयाश्चैतरेयके ॥ २५ ॥

ब्राह्मणों के किसी स्थल पर मन्त्र प्रदर्शित दिखाई देते हैं इसी प्रकार जमदग्नि^१ के आप्री मन्त्र तथा स्तोत्र^२ से सम्बन्धित मन्त्र ऐतरेय में आते हैं ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १० ११० को तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ ६, ३, १, और वाजसनेयि संहिता २९ २५ में उद्धृत किया गया है ।

^२ ऋग्वेद १ ७५ और ३ २१ को तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ ६, ७, १ और ऐतरेय ब्राह्मण २ १२, ३, ६ में उद्धृत किया गया है ।

आप्रियः सुसमिद्धाय पञ्चमं सूक्तमत्र तु ।

एवमृग्वैश्वदेवी वा अन्त्या चैन्द्राग्न्युपोत्तमे ॥ २६ ॥

‘सुसमिद्धाय’ (ऋग्वेद ५ ५, १) से आरम्भ पाँचवाँ सूक्त आप्री मन्त्रों से बना है । ‘एवम्’ (ऋग्वेद ५ २६, ९) ऋचा वैकल्पिक रूप से विश्वेदेवों को सम्बोधित है; और अन्तिम से पहले के सूक्त की अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ५ २७, ६) इन्द्र अग्नि को सम्बोधित है ।

ऐन्द्राणि द्वादश त्रीति उशाना त्वत्र संस्तुतः ।

उशनेति तु पादेन सं ह यद्वामनेन च ॥ २७ ॥

‘त्री’ (ऋग्वेद ५ २९, १) से आरम्भ बारह सूक्त (ऋग्वेद ५ २९-४०) इन्द्र को सम्बोधित हैं, किन्तु यहाँ ‘उक्षना’ (ऋग्वेद ५ २९, ९) तथा ‘क्षं ह यद् वासु’ (ऋग्वेद ५ ३१, ८) से आरम्भ पादों में उक्षना की स्तुति है ।

६-अग्नि की दान स्तुति ।

इन्द्राकुत्सेति चैतस्यां कुत्सेनेन्द्र स्तुतः सह ।

यन्वा सूर्येति चात्र्योणां पञ्चर्ये कर्म कोन्यते ॥ २८ ॥

और ‘इन्द्राकुत्सा’ (ऋग्वेद ५ ३१, ९) ऋचा में इन्द्र की कुत्स के साथ स्तुति, और ‘यत्वा सूर्य’ (ऋग्वेद ५ ४० ५) से आरम्भ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ५ ४०, ५-९) में अत्रियों के कर्मों का कीर्तन है ।

अनस्वन्तेति सूक्तेऽस्मिन् आग्नेयेऽत्रिर्ऋषिः स्वयम् ।

दानतुष्टः शशंसैतान् राजर्षीनिति केचन ॥ २९ ॥

‘अनस्वन्ता’ (ऋग्वेद ५ २७) से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित सूक्त में, दान से तुष्ट होकर स्वयं अत्रि ऋषि ने इन राजर्षियों की प्रशंसा की है ऐसा कुछ लोग कहते हैं ।

आशीरध्येषणाच्चैभ्यो अग्निं प्रति च हृदयते ।

अयुतं च गवां त्रीणि शतान्यथ च विशतिम् ॥ ३० ॥

सौवर्णं शकटं गोभ्यां श्यरुणोऽदाम्नपोऽन्नये ।

अश्वमेधः शत चोक्षणा त्रसदस्युर्धनं बहु ॥ ३१ ॥

यहाँ उनकी प्रार्थना पर इनकी ओर से की गई अग्नि की एक स्तुति भी दिखाई देती है । दस हजार, तीन सौ और बीस गाँवों और दो बैलों सहित एक सुवर्ण रथ, राजा श्यरुण ने अत्रि को दिया । ‘अश्वमेध ने सौ बैल, और त्रसदस्यु ने प्रभुर धन दिया ।

७- ऋणंचय का बल्लु को दान । ऋग्वेद ५ ४१-५१ के देवता

राज्ञः प्रति च तत्सूक्तं बभाष इति केचन ।

आत्मा हि नात्मने दद्याद् अग्रहीन्नुपतेर्ऋषिः ॥ ३२ ॥

अन्य लोगों का कहना है कि उन्होंने (अत्रि ने) यह सूक्त राजाओं को सम्बोधित किया, क्योंकि कोई व्यक्ति स्वयं अपने को कुछ नहीं दे सकता, जब कि ऋषि ने राजा से दान ग्रहण किया ।

अग्नेः सुतसृषिं वज्रम् आर्त्विज्याय ऋगं च यः ।

सहस्रवक्षिणे सोमे वज्रे तं सोऽप्यवाजयत् ॥ ३३ ॥

ऋगंचय ने अग्नि के पुत्र वज्र को अपने उस सोमवज्र के ऋत्विज के रूप में चुना जिसमें एक सहस्र वक्षिणार्धें प्रदान की गईं । अतः उन्होंने (वज्र ने) उनके (ऋगंचय के) लिये वज्र किया ।

ददौ च रौशमो राजा सहस्राणि शतानि च ।

तस्मै चत्वारि चत्वारि महावीरं च काञ्चनम् ॥ ३४ ॥

और रुशमों^१ के राजा ने उन्हें चार सहस्र, चार सौ गायों^२ और एक सुवर्ण वक्षीय पात्र विशेष^३ दिया ।

^१ तु० की० ऋग्वेद ५ ३०, १४ 'ऋगंचये राजनि रुशमानाम्'

^२ तु० की० ऋग्वेद ५ ६०, १२ 'गवां चत्वारि ददत सहस्रा ऋगंचयस्य ।'

^३ तु० की० ऋग्वेद ५ ३०, १५ ।

प्रवर्ग्येषु महावीराः सौवर्णास्तस्य चाभवन् ।

प्रतिगृह्य ऋषिर्गच्छन् मध्यमेनाग्निना पथि ॥ ३५ ॥

पृष्ट इन्द्रेण चाचख्यौ भद्रं चतसृभिश्च तत् ।

को नु वा वैश्वदेवानि एकादश पराण्यतः ॥ ३६ ॥

और उन्होंने प्रवर्ग्य के लिये सुवर्ण यज्ञपात्रों को प्राप्त किया । इन्हें प्राप्त करके जाते हुये मार्ग में ऋषि से मन्त्रम अग्नि तथा इन्द्र ने प्रशन किया, और उन्होंने इन सबका 'भद्रम्' (ऋग्वेद ५ ३०, १२) से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ५ ३०, १२-१५) द्वारा वर्णन किया ।

इसके बाद 'को नु वाम' (ऋग्वेद ५ ४१, १) से आरम्भ ग्यारह सूक्त (ऋग्वेद ५ ४१-५१) विम्बोदेवों को सम्बोधित हैं ।

८- ऋग्वेद ५ ४१-४३ का विस्तृत वर्णन ।

मारुतानि दश प्रेति हृळाभीत्युचि तु स्तुता ।

उदित्युचि तृतीयायां सविता शौनकोऽब्रवीत् ॥ ३७ ॥

'प्र' (ऋग्वेद ५ ५२, १) से आरम्भ इस सूक्त ऋग्वेद ५ ५२-६१) मरुतों को समर्पित हैं । फिर भी, 'अग्नि' (ऋग्वेद ५ ४१, १९) से आरम्भ ऋचा में हृळा की स्तुति है । 'उत्' (ऋग्वेद ५ ४२, ३) में सवितु की स्तुति है, ऐसा शौनक ने कहा है ।

उपेति बार्हस्पत्यस्तु तृचो मास्त्यगुत्तरा ।
 तमु घृहीति रौद्री तु प्र सुष्टुतिरिति तृचि ॥ ३८ ॥
 शौनकादिभिराचार्यैर् देवता बहुधेरिता ।
 इळस्पति शाकपूणिः पर्जन्याग्नी तु गालवः ॥ ३९ ॥
 यास्कस्तु पूषण मेने स्तुतमिन्द्रं तु शौनकः ।
 वैश्वानरं भागुरिस्तु मास्त्येष समाश्विना ॥ ४० ॥

‘उप’ (ऋग्वेद ५ ४२, ७) से आरम्भ तीन ऋचायें (ऋग्वेद ५ ४२; ७-९) बृहस्पति को सम्बोधित हैं; बाद की ऋचा (ऋग्वेद ५ ४२, १०) मरुतों को सम्बोधित हैं; ‘तम् उ घृहि’ (ऋग्वेद ५ ४२, ११) रुद्र को सम्बोधित है। किन्तु ‘प्र सुष्टुति’ (ऋग्वेद ५ ४२ १४) ऋचा में शौनक तथा अन्य आचार्यों के द्वारा देवता को विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है। शाकपूणि ने इळस्पति, गालव ने पर्जन्य-अग्नि, यास्क ने पूषन् शौनक ने इन्द्र और भागुरी ने वैश्वानर की स्तुति माना है। ‘एष’ (ऋग्वेद ५ ४२, १५) मरुतों को सम्बोधित है, ‘सम्’ (ऋग्वेद ५ ४२, १८) अश्विनों को सम्बोधित है।

वायव्याध्वर्यवः सौमी दशेत्यैन्द्री परा तु या ।
 अग्नि घर्म पराञ्जन्ति अश्विनौ स्तौत्यगच्छ च ॥ ४१ ॥

‘अध्वर्युव’ (ऋग्वेद ५ ४३, ३) वायु को सम्बोधित है, ‘दश’ (ऋग्वेद ५ ४३, ४) सोम को सम्बोधित है, जब कि जो इसके बाद आता है (ऋग्वेद ५ ४३, ५) इन्द्र को सम्बोधित है।

इसके बाद (ऋग्वेद ५ ४३, ६) और ‘अञ्जित’ (ऋग्वेद ५ ४३, ७) क्रमशः अग्नि और घर्म की स्तुति करते हैं, और ‘अछ’ (ऋग्वेद ५ ४३, ८) ऋचा अश्विनों की स्तुति करती है।

२-ऋग्वेद ५ ४३ (क्रमशः) ४४-४५ के देवता ।
 प्रेति वायुं पूषणं च अर्घ्येऽग्निरिहोच्यते ।
 प्रथमेऽथ द्वितीये च स्तुता एति दिवौकसः ॥ ४२ ॥

‘प्र’ (ऋग्वेद ५ ४३, ९) वायु और पूषन् की स्तुति करता है ‘आ’ (ऋग्वेद ५ ४३, ४०) से आरम्भ अर्द्ध-ऋचा में यहाँ अग्नि की और ऋचा के द्वितीयार्ध में दिवौकसों की स्तुति है।

अ वाचं मध्यमां स्तोति ततोऽन्या तु बृहस्पतिम् ।

ज्यायांसमिति चादित्यं प्र वो वायुरिहोच्यते ॥ ४३ ॥

‘आ’ (ऋग्वेद ५ ४३, ११) मध्यम वाच् की स्तुति करता है और उसके बाद (ऋग्वेद ५ ४३, १२) में बृहस्पति की स्तुति है ।

‘ज्यायांसम्’ (ऋग्वेद ५ ४४, ८) आदित्य की स्तुति करता है । वायु की यहाँ ‘प्र वो’ (ऋग्वेद ५ ४४, ४) में स्तुति है ।

तं प्रजयेति सौमो वा दैव्यैन्द्री वा प्रजापतेः ।

परोक्षवैश्वदेव तद् आह कौषीतकिः स्वयम् ॥ ४४ ॥

‘तं प्रजया’ (ऋग्वेद ५, ४४, १) वा तो सोम अथवा देवों को, अथवा इन्द्र को सम्बोधित है, अथवा वह प्रजापति का है । स्वयं कौषीतकि^१ ने इस सूक्त को परोक्ष रूप से विश्वदेवों को सम्बोधित बताया है ।

^१ अर्थात् कौषीतकी ब्राह्मण २४ ९ ‘प्रजापत्त्वान्य् अनिरुक्तानि परोक्ष वैश्वदेवान्य् अवधीयन्ते ।’

तेषु तृतीयमित्युक्तं देवान्हुव इदं परम् ।

देवानां पत्नोरिति तु देवपत्न्यो ब्रूवे स्तुताः ॥ ४५ ॥

इनमें इसे तृतीय कहा गया है इसके बाद ‘देवान् हुवे’ (ऋग्वेद १० ६९) से आरम्भ सूक्त आता है ।

‘देवानां पत्नी’ (ऋग्वेद ५ ४७, ७-८) से आरम्भ दो ऋचाओं में देवपत्नियों की स्तुति है ।

१९-ऋग्वेद ४ ५१-६० के देवता ।

अयं चतुर्णामिति चेन्द्रवायू त्रिभि

स्तुतौ वायवा याहि वायुम् ।

रथं त्वृचा रोदसी स्तूयतेऽत्र

यस्या स्तुता मरुतो रुद्रपत्न्याः ॥ ४६ ॥

‘अयम्’ (ऋग्वेद ५ ५१, ४) से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ५ ५१, ४-७) में से तीन द्वारा इन्द्र-वायु की स्तुति की गई है, जब कि ‘वायवे वा याहि’ (ऋग्वेद ५ ५१, ५) केवल वायु की स्तुति करता है । ‘रथम्’ (ऋग्वेद ५ ५१, ८) ऋचा द्वारा उस रोदसी की स्तुति है जिसके पति मरुतो—यह वज्र की भी पत्नी है—की इस सम्पूर्ण सूक्त में स्तुति है ।

आ रुद्रास इति त्वस्यां रुद्राणां संस्तुतो गणः ।

मरुतां तु गणस्यैतन् नाम रुद्रा इति स्मृताः ॥४७॥

किन्तु 'आ रुद्रास' (ऋग्वेद ५ ५७, १) ऋचा में रुद्रों के गणों की स्तुति है । मरुतों के गणों का यही नाम है, जिन्हें रुद्र कहा गया है ।

असावग्निरयं चोभाष् अग्नी पार्थिवमध्यमौ ।

अग्ने मरुद्भिरित्यस्यां मरुद्भिः सह संस्तुतौ ॥४८॥

(अग्ने मरुद्भिः) (ऋग्वेद ५ ६०, ८) ऋचा में उस तथा इस, अर्थात् मध्यम और पार्थिव, दोनों अग्निवर्षों की मरुतों के साथ स्तुति है ।

मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः पुमान् सर्वश्च मध्यमः ।

गणाश्च सर्वे मरुतो गुणभेदात्पृथक् पृथक् ॥४९॥

अपने अपने पृथक् गुण-भेद के आधार पर, वाक् मध्यम हो सकती है, समस्त स्त्रियाँ मध्यम हो सकती हैं, और समस्त पुरुष मध्यम हो सकते हैं, तथा साथ ही साथ, समस्त गण भी जैसे मरुतादि ।

११-इयावाश्व की कथा ।

राजर्षिरभवद्वाभ्यो रथवीतिरिति श्रुतः ।

स यक्ष्यमाणो राजात्रिम् अभिगम्य प्रसाद्य च ॥ ५० ॥

रथविंति वाभ्यं नाम का एक प्रसिद्ध राजर्षि हुआ है, ऐसा सुनते हैं । यज्ञ की हल्की से यह वह राजा अत्रि के पास गया और उनको प्रसन्न किया ।

आत्मानं कार्यमर्थं च कृयापयन्प्राञ्जलिं स्थितः ।

अवृणोतर्षिमात्रेयम् आर्त्विज्यायार्चनानसम् ॥ ५१ ॥

अपना तथा अपने कार्य का प्रयोजन बताकर जब वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तब उसने अपने ऋत्विज् के रूप में अत्रि पुत्र^१ अर्चनानस् को बुला ।

^१ ऋग्वेद ५ ६१ पर सायण ने इसे 'अत्रि-कुलनन्दन' कहा है ।

स सपुत्रोऽभ्यगच्छत् राजानं यज्ञसिद्धये ।

इयावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः स्वत्वर्चनानसः ॥ ५२ ॥

साङ्गोपाङ्गान्सर्ववेदान् यः पित्राध्यापितो मुदा ।

अर्चनानाः सपुत्रोऽथ गत्वा नृपमयाजयत् ॥ ५३ ॥

अपने पुत्र को साथ लेकर वह मन्त्र की सिद्धि के लिये राजा के पास गये। अग्नि के पुत्र अर्चनानास् के पुत्र का नाम श्यावाश्व था, जिसे उसके पिता ने प्रसन्नतापूर्वक अग्नियों और उपाग्नियों सहित वेदों की शिक्षा दी थी। तब अपने पुत्र के साथ जाकर अर्चनानास् ने राजा का वज्र पूर्ण किया।

यज्ञे च विततेऽपश्यद् राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।

स्तुषामे राजपुत्री स्याद् इति तस्य मनोऽभवत् ॥ ५४ ॥

जब वज्र चल रहा था तब उसने राजा की यशस्विनी पुत्री को देखा। उसके मन में यह विचार आया कि वह राजपुत्री उसकी पुत्रवधू बन सकती है।

श्यावाश्वस्य च तस्यां वै सक्तमासीत्तदा मनः ।

संयुज्यस्व मया राजन् इति याज्यं च सोऽब्रवीत् ॥ ५५ ॥

तब श्यावाश्व का मन भी उस पर आसक्त हो गया और उसके पासक से कहा 'हे राजन् ! तुम मेरे साथ सम्बद्ध हो जाओ।'।

१२-श्यावाश्व की कथा (क्रमशः)

श्यावाश्वाय सुता दित्सुर् महिषीं स्वां नृपोऽब्रवीत् ।

कि ते मतमहं कन्या श्यावाश्वाय ददामि हि ॥ ५६ ॥

श्यावाश्व को अपनी पुत्री देने की इच्छा से राजा ने अपनी महारानी से कहा 'तुम्हारा क्या मत है ? मैं कन्या को श्यावाश्व को देना चाहता हूँ।

अग्निपुत्रोऽदुर्बला हि जामाता त्वावयोरिति ।

राजानमब्रवीत्सापि नृपर्विकुलजा ह्यहम् ॥ ५७ ॥

नानृषिर्नो तु जामाता नैव मन्त्रान् हि दृष्टवान् ।

ऋषये दीयता कन्या वेदस्याम्बा भवेत्तथा ।

ऋषिर्मन्त्रदृश वेदपितरं मन्यते यतः ॥ ५८ ॥

'क्योंकि अग्नि-पुत्र हमलोगों के लिये एक हीन जामाता नहीं होगा।' तब उसने (रानी ने) राजा से अपने लिये कहा कि 'मैं राजर्षियों के कुल में उत्पन्न हुई थी, जो ऋषि नहीं हैं उसे हमारा जामाता नहीं होना चाहिये; इस युवक ने मन्त्रों का दर्शन नहीं किया है। कन्या किसी ऋषि को ही दी जाय इस प्रकार वह वेद माता होगी, क्योंकि एक ऋषि ने मन्त्र द्रष्टा को वेद का पिता माना है।'।

प्रत्याचष्टे स तं राजा सह संमन्त्रय भार्यया ।

अनृषिर्नैव जामाता कश्चिद्भवितुमर्हति ॥५९॥

अपनी पत्नी के साथ परामर्श करने के बाद उसे (यह कहते हुये) अस्वीकृत कर दिया कि 'जो ऋषि नहीं है वह हमारा जामाता होने के योग्य नहीं है ।'

प्रत्याख्यात ऋषिस्तेन वृत्ते यज्ञे न्यवर्तत ।

इयावाश्वस्य तु कन्याया मनो नैव न्यवर्तत ॥६०॥

उसके (राजा के) द्वारा अस्वीकृत ऋषि यज्ञ समाप्त होने पर लौट आये, किन्तु इयावाश्व का हृदय कन्या के पास से नहीं लौटा ।

ततस्तौ तु निवर्तेताम् उभावेवाभिजग्मतुः ।

शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीळहं च पार्थिवम् ॥६१॥

'इस प्रकार दोनों लौटे, वह दोनों शशीयसी और तरन्त, और राजा पुरुमीळह से मिले ।

तरन्तपुरुमीळहौ तु राजानौ वैददश्व्यूषी ।

ताभ्यां तौ चक्रतुः पूजाम् ऋषिभ्या नृपती स्वयम् ॥६२॥

यह दोनों राजा, तरन्त तथा पुरुमीळह, ऋषि तथा विददश्व के पुत्र थे । इन दोनों राजाओं ने स्वयं भी उन दोनों ऋषियों का पूजन किया ।

ऋषिपुत्रं महिष्याश्च दर्शयामास तं नृपः ।

तरन्तानुमता चैव प्रादाद्दुविधं वसु ॥६३॥

अजाविकं गवाश्च च इयावाश्वाय शशीयसो ।

अग्निं याज्यार्चितौ गत्वा पितापुत्रौ स्वमाश्रमम् ॥६४॥

और राजा (तरन्त) ने ऋषि पुत्र का अपनी महारानी को दर्शन कराया, और तरन्त की अनुमति से उस (महारानी) शशीयसी ने प्रचुर धन, भेष-वस्त्रियाँ, गायें और अश्व इयावाश्व को प्रदान किया । इस प्रकार याजकों द्वारा सम्मानित होकर पिता और पुत्र अपने अग्नि आश्रम चले गये ।

१३-इयावाश्व की कथा (क्रमशः)

अभ्यवादयतामग्निं महर्षिं दीप्ततेजसम् ।

इयावाश्वस्य मनस्यासीन् मन्त्रस्यादर्शनादहम् ॥६५॥

न लब्धवानहं कन्यां हन्त सर्वाङ्गशोभनाम् ।

अप्यहं मन्त्रदर्शी स्यां भवेद्धर्षो महान्मम ॥ ६६ ॥

और उन्होंने प्रदीप्त तेजवाले महर्षि अग्नि का अभिवादन किया । किन्तु श्याबाश्व ने विचार किया कि 'यत हमने किसी मन्त्र का दर्शन नहीं किया है, यत मैं सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या को न प्राप्त कर सका । यदि मैं मन्त्र-वृद्धा हो सकूँ तो मुझे महान् हर्ष होगा ।'

इत्यरण्ये चिन्तयतः प्रादुरासीन्मरुद्गणः ।

ददश सस्थितान्पार्श्वे तुल्यरूपानिवात्मनः ॥ ६७ ॥

समानवयसश्चैव मरुतो रुक्मवक्षसः ।

तांस्तुल्यवयसो हृष्टा देवान्पुरुषविग्रहान् ॥ ६८ ॥

श्याबाश्वो विस्मितोऽपृच्छत के छेति मरुतस्तदा ।

ततस्तु मरुतो देवान् रुद्रसूनूनबुध्वत ॥ ६९ ॥

अब उससे बन में इस प्रकार चिन्तन किया तब उसके सम्मुख मरुद्गण प्रकट हुये ।

उसने अपने पार्श्व में अपने ही समान रूपवाले दशम दश मरुतों को देखा । पुरुषरूपी तथा वय में समान देवों को देख कर विस्मित श्याबाश्व ने मरुतों से पूछा 'क इ' (ऋग्वेद ५. ६१, १) फिर भी, तब तक वह यह जान गया कि यह रुद्र के पुत्र विषय मरुद्गण हैं ।

१४-श्याबाश्व की कथा (क्रमशः)

य ई बहन्त इत्याभिर् बुद्धा तुष्टाव तांस्तथा ।

अतिक्रम हि तं मेने ऋषिर्विपुलमात्मनः ॥ ७० ॥

यस्य हृष्टवैव तुष्टाव यच्च के छेति पृष्ठवान् ।

स्तुता स्तुत्या तथा प्रीता गच्छन्तः पृथिमातरः ॥ ७१ ॥

अबमुच्य स्ववभोभ्यो रुक्मं तस्मै तदा ददुः ।

मरुत्सु तु प्रयातेषु श्याबाश्वः सुमहायशाः ॥ ७२ ॥

इसे देख कर उसने 'य ई बहन्ते' (ऋग्वेद ५. ६१, १) ऋषा द्वारा उनकी स्तुति की । ऋषि ने वह विचार किया कि मरुतों को देखते ही उनकी स्तुति न करके वह पूछने से कि 'आप लोग कौन हैं, उसने सर्वादा का उत्कृष्ट

किया है। स्तुति की जाने पर और उन स्तुतियों से प्रसन्न हो कर पृथिवी के पुत्र (मरुद्गण) जब चलने लगे तब उन्होंने अपने वस्त्र से स्वर्ण उतार कर उसे (ऋषिकी) दे दिया। जब मरुद्गण वहाँ से चले गये तब महायज्ञस्वी रयाबाध,

रथवीतेर्दुहितरम् अगच्छन्मनसा तदा ।

स सद्य ऋषिरात्मानं प्रवक्ष्यन् रथवीतये ॥ ७३ ॥

एतं मे स्तोममित्याभ्या दौत्ये रात्री न्ययोजयत् ।

रथवीतिमपश्यन्तीं सपेक्ष्यार्घेण चक्षुषा ॥ ७४ ॥

रम्ये हिमवतः पृष्ठे एष क्षेतीति यात्रवीत् ।

ऋवेनियोगमाजाय देव्या राज्या प्रचोदितः ॥ ७५ ॥

आदाय कन्यां तां दाम्भ्ये उपेयायार्चनानसम् ।

पादौ तस्योपसंगृह्य स्थित्वा प्रहः कृताञ्जलिः ॥ ७६ ॥

रथवीतिरहं दाम्भ्यं इति नाम शशंस च ।

मया संगतिमिच्छन्तं त्वा प्रत्याचक्षि यत्पुरा ॥ ७७ ॥

तत्क्षमस्व नमस्तेऽस्तु मा च मे भगवन्क्रुधः ।

ऋवेः पुत्रः स्वयमृषिः पितासि भगवन्नृषेः ॥ ७८ ॥

विचारों में रथवीति की पुत्री के पास पहुँच गया। तत्काल ही ऋषि हुये उन्होंने रथवीति को अपने सम्बन्ध में बताने की इच्छा से 'एतं मे स्तोमम्' (ऋग्वेद ६ ६१, १७) में आरम्भ दो ऋषियों (ऋग्वेद ६ ६१, १७-१८) द्वारा रात्रि को दूत-कार्य के लिये नियुक्त किया, और रथवीति को न देखने वाली उसे (रात्रि को) आर्य नेत्रों से देखकर उन्होंने 'एष क्षेति' (ऋग्वेद ५ ६१, १९) द्वारा कहा कि वह हिमवत के रम्य पृष्ठ पर रहते हैं। ऋषि की आज्ञा को मानकर रात्रि द्वारा प्रेरित दर्भ के पुत्र कन्या को साथ लेकर अर्चनानस के पास गये और उनका चरण पकड़ने के बाद करबद्ध झुककर यह कहते हुये उन्होंने अपना नाम बताया, 'मैं दर्भ का पुत्र रथवीति हूँ मेरे साथ सम्बन्ध करने की आपकी इच्छा को जो मैंने अस्वीकृत किया था उसके लिये मुझ क्षमा करें। वे भगवान्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आप मुझसे क्रुद्ध न हों। आप ऋषि के पुत्र हैं, स्वयं भी ऋषि हैं, और हे भगवान्! आप ऋषि के पिता हैं।

१५-इयावाश्व की कथा (समाप्त)

हन्त प्रतिगृहाणेमां स्तुषामित्येवमब्रवीत् ।
 पायाड्यमधुपर्कैश्च पूजयित्वा स्वयं नृपः ॥ ७९ ॥
 शुक्लमश्वशतं दत्त्वा अनुजज्ञे गृहान्प्रति ।
 शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीळहं च पार्थिवम् ॥ ८० ॥
 षड्भिः सनदिति स्तुत्वा जगामर्षिरपि क्षयम् ।
 ऋतेन मैत्रावरुणान्य् एकादश पराणि तु ॥ ८१ ॥

आइये इसे (कन्या को) पुत्र-बधू के रूप में स्वीकार कीजिये ।' राजा ने ऐसा कहा और स्वयं ही पाषा, 'अर्ध', और मधुपर्क द्वारा उनका पूजन किया, साथ ही उन्हें एक सौ शुक्ल अश्व प्रदान करके घर जाने की आज्ञा दी । और ऋषि ने भी 'सनत्' (ऋग्वेद ५ ६१, ५) से आरम्भ छः ऋचाओं (ऋग्वेद ५ ६१, ५-१०) द्वारा शशीयसी, तरन्त तथा राजा पुरुमीळह की स्तुति की और अपने घर गये ।

अथ 'ऋतेन' (ऋग्वेद ५ ६२) से आरम्भ ग्यारह सूक्त (ऋग्वेद ५ ६२-७२) मित्र-वरुण को सम्बोधित है ।

१६-ऋग्वेद ५ ७३-७८ । सप्तवध्निकी कथा ।

षळाश्विनानि गर्भार्थं पञ्चर्चोपनिषत्स्तुतिः ।
 सप्त कृत्वापराधान्वै विफले दारसग्रहे ॥ ८२ ॥
 ऋषि कृतोऽश्वमेधेन भारतेनेति वै श्रुतिः ।
 तमष्टमेऽपराधे तु वृक्षद्रोण्यां स पार्थिवः ॥ ८३ ॥
 ऋबीसेह विनिक्षिप्य स्कन्नं रात्रौ न्यधारयत् ।
 सोऽश्विनाविति सूक्तेन तुष्टावधिः शुभस्पती ॥ ८४ ॥

छ सूक्त (ऋग्वेद ५ ७३-७८) अधिनों को सम्बोधित है । यहाँ पाँच गर्भार्थक ऋचाओं की एक उपनिषत् स्तुति है (ऋग्वेद ५ ७८ ५-९) ।

एक ऐसी श्रुति है कि सात बार विफल हो जाने के बाद भी भरतवशी राजा अश्वमेध ने ऋषि को पुनः नियुक्त किया, क्योंकि उनका वैवाहिक जीवन पुत्र-विहीन था । फिर भी, आठवीं बार विफल हो जाने पर राजा ने उसे वृक्षद्रोणी में रख एक गर्त में कैद कर वहीं पका रहने दिया जहाँ वह रात्रि

के समय पड़ा था। तब उस ऋषि ने 'अश्विनौ' (ऋग्वेद ५ ७८) सूक्त द्वारा शुभस्वप्ती (प्रकाश के अविपत्ति) की स्तुति की।

तौ तं तस्मात्समुद्भूत्य चक्रतुः सफलं पुनः।

तृचः स्वस्यैव गर्भार्थं स्वपतस्तस्य गर्भवत् ॥ ८५ ॥

यथा बात इति ज्ञेये त्वद्विवन्यामितरे ऋचौ।

अवतामपि गर्भाणां दृष्टं तदनुमन्त्रणम् ॥ ८६ ॥

उसे गर्त से ऊपर उठाते हुये उन्होंने (महतों ने) पुनः सफल कर दिया। 'यथा बात' (ऋग्वेद ५ ७८, ७) से आरम्भ तीन ऋचाओं (७-९) से उसके लिये गर्भ का प्रयोजन है जो गर्भवत् सो गया। किन्तु अन्य दो ऋचाओं (ऋग्वेद ५ ७८, ५-६) को अश्विनों के लिये जानना चाहिये।

इसे बाहर निकलते हुये गर्मों के लिये आमन्त्रण स्तुति भी कहा गया है।

२७-ऋग्वेद ५. ७९-८७ के देवता। किल

भाववृत्तं तु तद्वत्स्यात् तथारूपं हि दृश्यते।

जरायुगर्भशब्दाभ्याम् एतद्रूपं हि दृश्यते ॥ ८७ ॥

किन्तु इसे, इसी प्रकार, भोगवृत्त से सम्बद्ध कहा जा सकता है, क्योंकि इसका ऐसा रूप भी दृष्टिगत होता है 'जरायु' और गर्भ^२ शब्दों से इसका ऐसा ही रूप स्पष्ट होता है।

^१ यह ऋग्वेद ५ ७८, ८ में आता है।

^२ यह ऋग्वेद ५ ७८ ७ में आता है।

महे उषस्ये सावित्रे युञ्जतेऽछेति वै स्तुतः।

पर्जन्यो बलिति त्वस्मिन् पृथिवी मध्यमा स्तुता ॥ ८८ ॥

'महे' (ऋग्वेद ५ ७९, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ५ ७९-८०) उषस् को सम्बोधित है, और 'युञ्जते' (ऋग्वेद ५. ८१, १) आरम्भ दो (ऋग्वेद ५ ८१-८२) सवितृ को सम्बोधित है। 'अङ्ग' (ऋग्वेद ५ ८३) में पर्जन्य की स्तुति है; किन्तु 'बद्' (ऋग्वेद ५ ८४) में मध्यम पृथ्वी की स्तुति है।

^१ निरुक्त ११ ३७ (ऋग्वेद ५ ८४, १ पर) पृथिवी को एक मध्यम स्थानीय दैवी बताता है। देखिये नैषण्टुक ५ ५ भी।

अथा नो देव सवितर् इयं दुःस्वप्ननाशनी।

वारुण तु प्र सम्राजे इन्द्राग्न्यैन्द्राग्रमुत्तरम् ॥ ८९ ॥

‘अथा नो देव सविता’ (ऋग्वेद ५. ८२, ३) ऋषि का पुत्र स्वयं विमलित्वेन है।

‘प्र सज्जाज्ञे’ (ऋग्वेद ५. ८५) वक्त्र को सम्बोधित है। इसके बाद का ‘इन्द्राज्ञी’ (ऋग्वेद ५. ८६) सूक्त इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है।

विष्णुन्यङ्गं परं प्रेति मारुतं सूक्तमुत्तमम्।

एवयामरुदारुयातं द्यौर्नैन्द्रे प्रतिपूर्वकम् ॥९०॥

इसके बाद इस ऋषि का अन्तिम ‘प्र’ (ऋग्वेद ५. ८७) सूक्त मरुतों को सम्बोधित है, जब कि इसमें विष्णु का भी नैपातिक उल्लेख है। इसे ‘और न’ (ऋग्वेद ६. २०) से आरम्भ इन्द्र-सूक्त का प्रतिपूरक होने के कारण ‘एवयामरुत्’ कहा गया है।

श्रीसूक्तमाशीर्वादस्तु श्रोपुत्राणां पराणि षट्।

तत्स्याद्बालक्ष्म्यपनुदम् अग्निस्तत्र निपातभाक् ॥९१॥

किन्तु श्रीसूक्त एक आशीर्वाद है इसके बाद के छ, श्री और पुत्रों के साथ सम्बद्ध हैं। अथवा इस सूक्त का प्रयोजन दुर्भाग्य को दूर भगाना है। इसमें अग्नि निपातभाज है।

१८-प्रजावत् और जीवपुत्र के खिल। मन्त्रों का व्यवहार

प्रजावज्जीवपुत्रौ वा गर्भकर्मणि संस्तुतौ।

नानारूपा पयस्विन्यः सस्रवन्तोति सस्तुताः ॥९२॥

अथवा प्रजावत् और जीवपुत्र के दो सूक्तों का गर्भ कर्म में सम्मिलित स्तुति के रूप में व्यवहार किया जा सकता है। ‘स स्रवन्ति’ सूक्त में विभिन्न प्रकार की पयस्विनियों की स्तुति की गई है।

^१ इस खिल की पाँच ऋचायें अथर्ववेद २. २६, १—५ में आती हैं।

आशीर्वादेषु संज्ञाषु कर्मसंस्थासु देवता।

निपातभाग् लिङ्गवाक्यात् परीक्षेतेह मन्त्रवित् ॥९३॥

आशीर्वाद में, संज्ञाओं में, कर्मकाण्डों में, किसी देवता का नैपातिक उल्लेख होता है। मन्त्रवेत्ता को यहाँ लिङ्ग-वाक्य की परीक्षा कर लेनी चाहिये।

मन्त्रप्रयोगमन्त्रयोः प्रयोगो बलवत्तरः।

विधेस्तयोः परीक्षा स्यान् मन्त्राः स्युरभिवायकाः ॥९४॥

मन्त्रों और मन्त्रों के प्रयोग में प्रयोग अधिक बलवान होता है। इन दोनों की विधि की परीक्षा कर लेनी चाहिये। मन्त्रों को केवल अभिधायक ही मानना चाहिये।

^१ अर्थात् इनमें केवल देवताओं के सम्बन्ध में उक्तियाँ मात्र होती हैं। ब्राह्मणों तथा सूक्तों की भाँति यह अपने विनियोग के सम्बन्ध में किसी विधि का उल्लेख नहीं करते।

तस्मात्तेन विसंवादो मन्त्राणां तद्गतानि तु।

गुणाभिधायकानि स्युः सविज्ञानपदानि तु ॥ ९५ ॥

अतः मन्त्र और उसके प्रयोग में असहमति हो सकती है। किन्तु उनमें आनेवाले सामान्य रूप से अर्थ विशेष के बोधक पद किसी गुण के परिचायक हो सकते हैं।

^१ उदाहरण के लिए किसी मन्त्र में जातवेदस् को अग्नि के अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है, जब किसी संस्कार में इसका विशिष्ट आशय ही प्रमुख हो सकता है। तु० की० निरुक्त ७ १३ 'यत् तु सविज्ञान भूत स्यात् प्राधान्यं स्तुतिः।

मन्त्रेषु गुणभूतेषु प्रधानेषु च कर्मसु।

प्रधानगुणभूताः स्युर् देवता इति गम्यते ॥ ९६ ॥

मन्त्र के गौण और कम क प्रधान होने पर देवता भी गौण अथवा प्रधान हो सकते हैं, ऐसा जानना चाहिये।

१९-भृगु, अक्रिस् और अत्रि के जन्म की कथा

त्रिसावत्सरिक मन्त्रं प्रजाकामः प्रजापतिः।

आहरत्सहितः साध्यैर् विश्वैर्देवैः सहति च ॥ ९७ ॥

ऐसा कहा गया है कि प्रजाकाम की इच्छा से प्रजापति ने साध्यों और विश्वदेवों के साथ तीन वर्ष का यज्ञ सन्न किया है।

तत्र वाग्दीक्षणीयायाम् आजगाम शरोरिणी।

तां दृष्ट्वा युगपत्तत्र कस्याथ वरुणस्य च ॥ ९८ ॥

शुक्रं चस्कन्द तद्वायुर् अग्नौ प्रास्यद्यदृच्छया।

ततोऽर्चिभ्यो मृगुर्जज्ञे अङ्गारेष्वङ्गिरा ऋषिः ॥ ९९ ॥

उस समय दीक्षा के अवसर पर वायु सशरीर वहाँ आई। उसे वहाँ देवदेव एक साथ ही 'क' (प्रजापति) और वरुण का शुक्र स्मरित हो गया। उनकी

हृषीक से बाधु ने उसे (हृषीक का) अग्नि में छोड़ दिया । तब उवाकाओं से ऋगु उत्पन्न हुये और अङ्गारों^१ से ऋषि अङ्गिरस् ।

^१ तु० की० निरुक्त १ १७ और ऐतरेय ब्राह्मण १ १४, १ ।

प्रजापति सुतौ हृष्टा हृष्टा वागभ्यभाषत ।

आभ्यामृषिस्तृतीयोऽपि भवेदग्रेभ मे सुतः ॥ १०० ॥

दो पुत्रों को देखकर और स्वर्ण भी दृष्ट होकर बाधु ने प्रजापति से कहा 'इन दो के अतिरिक्त मुझे ऋषि के रूप में वहीं एक तृतीय पुत्र भी उत्पन्न हो ।'

प्रजापतिस्तथेत्युक्तः प्रत्यभाषत भारतीम् ।

ऋषिरत्रिस्ततो जज्ञे सूर्यानलसमद्युतिः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार सम्बोधित होने पर प्रजापति ने भारती से कहा 'ऐसा ही होगा' । तब सूर्य और अग्नि के समान द्युतिवाले अत्रि ऋषि उत्पन्न हुये ।

षष्ठ मण्डल

२०-भरद्वाज की उत्पत्ति । ऋग्वेद ६ १-४६ के देवता

योऽङ्गारेभ्य ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः ।

बृहस्पतेर्भरद्वाजो विदधीति य उच्यते ॥ १०२ ॥

मरुत्स्वासीद्गुरुर्यश्च स एवाङ्गिरसो नपात् ।

सपुत्रस्य तु तस्यैतन् मण्डल षष्ठमुच्यते ॥ १०३ ॥

बृहस्पति उस ऋषि के पुत्र थे जो अङ्गारों से उत्पन्न हुए थे । बृहस्पति-पुत्र भरद्वाज, जिन्हें विदधिन् भी कहते हैं और जो मरुतों में गुरु थे, अङ्गिरस् के पौत्र हुये । अब षष्ठ मण्डल को इनका तथा इनके पुत्रों का बताया गया है ।

त्वं ह्यग्र इति तत्रादाव् आग्नेयानि त्रयोदश ।

सूक्तानि त्रीणि मूर्धानत् अग्नेवैश्वानरस्य तु ॥ १०४ ॥

इसमें 'एव ह्यग्ने' (ऋग्वेद ६ १, १) से आरम्भ तेरह सूक्त (ऋग्वेद ६ १-६ और १०-१६) अग्नि को सम्बोधित है जब कि 'मूर्धानम्' (ऋग्वेद ६ ७, १) से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ६ ७-९) अग्नि वैश्वानर को ।

एकाक्षत्रिशदेवात्र पिबेत्स्यैन्द्राण्यतः परम् ।

अग्ने स क्षेषदित्यस्यां देवौ यौ तुनिपातितौ ॥ १०५ ॥

इसके बाद (अथात् ऋग्वेद ६ १६ के बाद) यहाँ 'पिब' (ऋग्वेद ६ १७, १) से आरम्भ पूरे उमसीस सूक्त इन्द्र को सम्बोधित हैं । 'अग्ने स वेधत्' (ऋग्वेद ६ ३, १) में आनेवाले दो देवताओं का नैपातिक उल्लेख है ।

प्रोतये नू म इत्येते वैश्व देव्याष्ट्वौ स्मृते ।

ऋग्वितीया पद चान्यम् ऐन्द्रमेति गवां स्तुतिः ॥ १०६ ॥

किन्तु 'प्रोतये' (ऋग्वेद ६ २१, ९ (और नू म' (ऋग्वेद ६ २१, ११) इन दो ऋचाओं को विश्वेदेवों को सम्बोधित माना गया है । 'आ' (ऋग्वेद ६ २८) सूक्त में गायों की स्तुति है इसकी द्वितीय ऋचा और अन्तिम पाद इन्द्र को सम्बोधित है ।^१

^१ तु० की० सर्वानुकमणी 'द्वितीवैन्द्री वाजस्यश्च पाद ।

२१-ऋग्वेद ६ ३७, ४४, ४५, ४७ के देवता ।

आमस्त्राणास इत्यस्यां वायुरिन्द्रश्च संस्तुतौ ।

इन्द्रः प्राधान्यतो वात्र स्तुतो वायुर्निपातभाक् ॥ १०७ ॥

'आमस्त्राणास' (ऋग्वेद ६ ३७, ३) में वायु और इन्द्र की साथ साथ स्तुति है ।

अथवा यहाँ इन्द्र की प्रधान स्तुति है और वायु निपातभाज् है ।

अयं देवस्तृचं सौम्यम् ऐन्द्रमेके प्रचक्षते ।

य आनयदिति त्वस्य तृचोऽधीति बृबुस्तुतिः ॥ १०८ ॥

'अयं देव' (ऋग्वेद ६ ४४, २२) से आरम्भ जो तीन ऋचायें सोम को सम्बोधित हैं उन्हें कोई इन्द्र को सम्बोधित कहते हैं ।

किन्तु 'य सानयत्' (ऋग्वेद ६ ४५) सूक्त की 'अधि' (ऋग्वेद ६ ४५ ३१) से आरम्भ तीन ऋचाओं में बृबु' की स्तुति है ।

^१ तु० की० सर्वानुकमणी 'एवेज्ये बृहत् तक्षा देवतम् ।'

पितरं स्तौति शंयुश्च तृचस्यान्त्ये पदे स्वकम् ।

स्वादुष्किलायमिति तु सौम्यः पञ्चर्च उत्तरः ॥ १०९ ॥

और बृबु' ने इन तीन ऋचाओं के अन्तिम पाद में अपने पिता की स्तुति की है । 'स्वादुष्किलायम्' (ऋग्वेद ६ ४७, १) से आरम्भ पाँच वाद की ऋचायें (ऋग्वेद ६ ४८, १-५) सोम को सम्बोधित हैं ।

^१ ऋग्वेद ६ ४४-४६ और ४७ के ऋचि ।

इन्द्रः प्रधानतो वायु स्तुतः सोमो निपातमाकृ ।

इन्द्रस्यैन्द्रयोऽनुपानीयाः अयन्ते क्षीतरेयके ॥११०॥

अथवा यहाँ इन्द्र की प्रधान स्तुति है, जबकि सोम निपातमाकृ है, क्योंकि ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ में इन्हें इन्द्र को सम्बोधित अनुपानीया ऋचायें कहा गया है ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ३ ३८, १ में यह कथन है कि ऋग्वेद ६ ४७ की प्रथम चार ऋचाओं को इन्द्र को अनुपानीया ऋचाओं के रूप में पुहराना चाहिये ।

अगव्यूति स्तौति देवान् पादो भूमिमथोत्तरः ।

बृहस्पतिं तृतीयस्तु इन्द्रमेवोत्तमं पदम् ॥ १११ ॥

‘अगव्यूति’ (ऋग्वेद ६ ४७, २०) में एक वाद्य देवों की, दूसरा पृथिवी की, तीसरा बृहस्पति की, और अन्तिम इन्द्र की स्तुति करता है ।

२२- ऋग्वेद ६ ५७ (क्रमशः), और ६ ४८ के देखता ।

वनस्पते बीड्वक्त्रः परं यत्

तवाचार्या भाववृत्त वदन्ति ।

ऋचस्तु तिष्ठस्तु रथामिमर्शना

उपेति तिष्ठो दुन्दुभेः संस्तवोऽत्र ॥ ११२ ॥

वनस्पते बीड्वक्त्र (ऋग्वेद ६ ४७, २६) से आरम्भ बाद में आने वाले पाद को आचार्यों ने भाववृत्त कहा है । किन्तु तीन सम्पूर्ण ऋचायें (ऋग्वेद ६ ४७, २६-२८) रथामिमर्शना^२ से सम्बद्ध है, जब कि ‘उप’ (ऋग्वेद ६ ७, २९) से आरम्भ यहाँ तीन ऋचायें दुन्दुभि की स्तुति करती हैं

^२ देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ७. ९, २ आश्वलायन गृह्यसूत्र २ ६, ५ ऋग्वेद ६ ४७ पर बह्गुलक्षिण्य ।

समश्वपर्णा इति चार्यमैन्द्रं दक्षादितोऽग्नेस्तृणपाणिकस्य ।

तृचः परो मारुतः पृश्निस्तूक्ते वृचः परो वैश्वदेवः पुनश्च ॥

और ‘सम श्वपर्णाः’ (ऋग्वेद ६ ४७, ३१) से आरम्भ अर्धऋचा इन्द्र को सम्बोधित है । तृणपाणिस्तूक्ते (ऋग्वेद ६ ४८) के आरम्भ की उस ऋचायें (ऋग्वेद ६ ४८, १-१०) अग्नि को सम्बोधित हैं; इसी पृश्नि के सूक्त की तीन वाद को ऋचायें (६. ४८, ११-१३) मरुतों को सम्बोधित

हैं, और पुनः बाद की दो ऋचायें (ऋग्वेद ६ ४८, १४-१५) विरवेदेवों की सम्बोधित हैं।

^१ तु० की० सर्वानुकमणी । तृणपाणिकं पृथिनसूक्तम् । देखिये ऋग्वेद ५. ४९ और ६ ४८ बह्वृणसूक्तम् ।

आदित्यो वा मारुत एव वा स्याद्

आ मा पूषन्निति पौष्णोऽभ्यतस्त्र ।

वृचं पर मारुतं तत्र विद्याद्

अन्त्या शुभ्वोः कीर्तना पृथनये वा ॥११४॥

अथवा इसे आदित्यों अथवा महर्तों को सम्बोधित किया जा सकता है। 'आ मा पूषन्' (ऋग्वेद ६ ४८, १६) से आरम्भ हुए ऋचाओं (ऋग्वेद ६ ४८, १६-१९) को पूषन् को, और बाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद ६ ४८, २०-२१) की महर्तों को सम्बोधित जानना चाहिये, अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ६ ४८, २२) में आकाश और पृथिवी का कीर्तन है अथवा यह पृथिन के लिए उद्दिष्ट है।

२६-ऋग्वेद ६ ४९-६२ के देवता ।

स्तुषे सूक्तानि वैचत्वारि वैश्वदेवान्यतः परम् ।

द्वितीयाम्नि चतुर्थी च वायुं पञ्चम्यथाश्विनौ ॥ ११५ ॥

स्तौत्यृक् तु सप्तमी वाचम् अत्र पूषणमष्टमी ।

त्वष्टारं नवमो रुद्रं भुवनस्येत्यथोत्तरे ॥ ११६ ॥

मारुत्यौ यो रजांसीति विष्णुमेव जगावृषिः ।

अभ्यैन्द्रयेति च सावित्री रौदस्याग्नेव्युताश्विनी ॥११७॥

इसके बाद 'स्तुषे' (ऋग्वेद ६ ४९, १) से आरम्भ चार सूक्त (ऋग्वेद ६ ४९-५२) विरवेदेवों को सम्बोधित हैं : यहीं द्वितीय ऋचा (ऋग्वेद ६ ४९, २) अग्नि की, और चौथी (ऋग्वेद ६ ४९, ४) वायु की, फिर पाँचवीं (ऋग्वेद ६ ४९, ५) अश्विनों की, किन्तु सातवीं (ऋग्वेद ६ ४९, ७) वाच की, आठवीं (ऋग्वेद ६ ४९, ८) पूषन् की, नववीं (ऋग्वेद ६ ४९, ९) त्वष्टा की, 'भुवनस्य' (ऋग्वेद ४ ४९, १०) रुद्र की, और बाद की दो (ऋग्वेद ६ ४९, ११-१२) महर्तों की स्तुति करती हैं। 'यो रजांसि' (ऋग्वेद ६ ४९, ३) में ऋषि ने विष्णु का ही गायन किया।

'अग्नि' (ऋग्वेद १. ५०, २) इन्द्र को सम्बोधित है, और 'अ' (ऋग्वेद १. ५०, ८) अग्नि को सम्बोधित है । और एक रोदसी को (ऋग्वेद १. ५०, ५), तथा 'उद' (ऋग्वेद १. ५०, ५, १०) से आरम्भ हो अश्विनी में से एक (१ वीं अश्व) अग्नि को और एक (१० वीं अश्व) अश्विनी को सम्बोधित है ।

अग्नीपर्जन्यावनयो सौयौ चोदु त्पदिस्थौ ।

वयं चत्वारि वीज्यानि त्वेन्द्रायौजस्य चोत्तरम् ॥११८॥

'अग्नीपर्जन्यौ' (ऋग्वेद १. ५२, १६) इन्हीं दो देवताओं की है, और 'उद उ त्पदि' (ऋग्वेद १. ५१, १ २) से आरम्भ हो अश्विनी अश्वों की सम्बोधित हैं । 'वयम्' (ऋग्वेद १. ५२, १) से आरम्भ हो एक एक (ऋग्वेद १. ५२-५३), तथा एक को इन्द्र-दूत को सम्बोधित हुए (ऋग्वेद १. ५० के बाद आता है (अर्थात्, ऋग्वेद १. ५८) पूज्य को सम्बोधित है ।

२४-ऋग्वेद ६. ६३-७४ के देवता । ज्ञात एक

रथीतमं कपर्दिनं रौद्रमेके प्रवक्षते ।

ऐन्द्रामे प्र नु वोचेति इयं सारस्वतं स्तुवे ॥ ११९ ॥

आश्विने वोचसे चैव मरुतां तु वपुर्निबति ।

उपेति च हृष्येऽश्विभ्याम् आराधनं च शंसति ॥१२०॥

इन्द्र 'रथीतमं कपर्दिनम्' (ऋग्वेद १. ५५, २) अश्व को एक को सम्बोधित बताते हैं ।

'प्र नु वोचा' (ऋग्वेद १. ५५, १) से आरम्भ हो एक (ऋग्वेद १. ५५-६०) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित हैं । 'इयम्' (ऋग्वेद १. ६१) सारस्वती को सम्बोधित है; 'स्तुवे' (ऋग्वेद १. ६२) से आरम्भ हो एक (१. ६२-६३) अश्विनी को सम्बोधित हैं; और तब इसके बाद दो (ऋग्वेद १. ६४-६५) उषस् को सम्बोधित हैं, किन्तु 'वपुर् नु' (ऋग्वेद १. ६६) मरुतों को सम्बोधित है ।

और 'उप' से आरम्भ हो अश्विनी में अश्वि ने अश्विनी का आराधन किया है ।

^१ ऋग्वेद १. १६ अथवा इसके निकट के किसी भी सूक्त में 'वयं' से आरम्भ हो अश्विनी की है ।

मैत्रावरुणमेवैकं विद्वेषां वः सतामिति ।

श्रुष्टीति चैन्द्रावरुणं समैन्द्रावैरुणवं परम ॥ १२१ ॥

एक (अर्थात्) 'विद्वेषां व सताम्' (ऋग्वेद ६ ६७) मित्र वरुण को सम्बोधित है । 'श्रुष्टी' (ऋग्वेद ६ ६८) इन्द्र वरुण को सम्बोधित है, बाद का 'सम्' (ऋग्वेद ६ ६९) इन्द्र विष्णु को सम्बोधित है ।

द्यावापृथिव्यौ सविता इन्द्रासोमौ बृहस्पतिः ।

पृथक्पृथक् परैः सूक्तैः सोमारुद्रेति तौ स्तुतौ ॥ १२२ ॥

बाद के सूक्तों में क्रमशः आकाश पृथिवी (७० वें में) सवितृ (७१ वें में) इन्द्र-सोम (७२ वें में) और बृहस्पति (७३ वें में) की स्तुति है, 'सोमारुद्रा' (ऋग्वेद ६ ७३) में इन्हीं दो देवताओं की स्तुति है ।

चक्रं रथो मणिर्भार्या भूमिरश्वो गजस्तथा ।

एतानि सप्त रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥ १२३ ॥

चक्र, रथ, मणि, भार्या भूमि, अश्व और गज—यह सब चक्रवर्ती, राजाओं के सत्वरत्न हैं ।

२५-ऋग्वेद ६ ७५ . अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक सार्क्ष्य की कथा

अभ्यावर्ती चायमानः प्रस्तोकश्चैव सार्क्ष्यः ।

आजग्मतुर्भरद्वाजं जितौ वारशिखैर्युधि ॥ १२४ ॥

युद्ध में वारशिखों^१ द्वारा पराजित हो जाने पर अभ्यावर्तिन् चायमान^२ और सृजय^३ के पुत्र प्रस्तोक, भरद्वाज के पास आये ।

^१ ऋग्वेद ६ २७, ४५ में इस नाम का यही रूप है ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ६ २७, ५ ८ ।

^३ तु० की० ऋग्वेद ६ २७, ७ ६ ४७, २२ २५ ।

अभिगम्योचतुस्तौ तं प्रसाध्याख्याय नामनी ।

युधि वारशिखैर्ब्रह्मन् आवा विद्धि विनिर्जितौ ॥ १२५ ॥

पास आकर स्तुति कर लेने तथा अपना नाम बताने के बाद इन दोनों ने उनसे (भरद्वाज से) कहा 'हे ब्रह्मन्, आप यह जाने कि हम लोग युद्ध में वारशिखों द्वारा पराजित हो गये हैं ।

अस्तपुरोहितावासां क्षत्रवन्मृत्युयेवहि ॥ १२२ ॥
क्षत्रं तद्यपि विज्ञेयं ब्रह्म यत्पाति क्षान्धतम् ॥ १२३ ॥

आप को अपना पुरोहित बनाकर इस कोश योद्धाओं को विजित कर सकते हैं ।' उसे ही क्षत्र (योद्धा) जानना चाहिये जो साक्षत ब्रह्म की रक्षा करता है ।

ऋषिस्तौ तु तथेत्युक्त्वा पायुं पुत्रमभाषत ।
अधर्वर्णायौ सात्रूणां कुरुष्वैतौ वृषाविति ॥ १२४ ॥

उस लोगों से 'हौं' कह कर ऋषि ने अपने पुत्र, पायु, को सम्बोधित किया । इन दो राजाओं का अपने सत्रुओं द्वारा पराभूत न होनेकाका वधा दो ।

पितरं स तथेत्युक्त्वा युद्धोपकरणं तयोः ।
जीमूतस्येति सूक्तो न पृथक्स्वेनान्वमन्त्रयत् ॥ १२५ ॥

अपने पिता से 'हौं' कह कर उसने (पायु ने) उनके धातुओं को पृथक् पृथक् 'जीमूतस्य' (ऋग्वेद ६ ७५) द्वारा अभिषिक्त कर दिया ।

२६-ऋग्वेद ६ ७५ के देवताओं का विस्तृत उल्लेख

प्रथमा त्वस्य सूक्तस्य योद्धारं स्तौति वर्मिणम् ।
चनुषश्च द्वितीया तु तृतीया ज्यामिमन्त्रिणी ॥ १२६ ॥

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में कवच सहित योद्धा की स्तुति है, दूसरी में चनुष की स्तुति है तथा तीसरी में प्रत्यज्ञा की अभिषिक्त किया गया है ।

स्तौत्यृगाभीं तु इषुधिं स्तौति पञ्चमी ।
अर्धेन सारधिः षष्ठ्या रश्मयोऽर्धेन संस्तुतः ॥ १२७ ॥

चतुर्थ ऋचा चनुष के किनारों की स्तुति करती है और पाचवीं तरकस की । षष्ठवीं ऋचा का एक अर्ध-भाग सारधि की तथा दूसरा अर्ध-भाग षष्ठ्याओं की स्तुति करता है ।

अध्वांस्तु सप्तमी स्तौति आयुधाधारमष्टमी ।
नवमी रथगोपांस्तु दशमी रणवेद्यताः ॥ १२८ ॥

सातवीं ऋचा धर्मों की, आठवीं आयुधाधार की, नवीं रथ-रथकों की और दशवीं रण-वेद्यताओं की स्तुति करती है ।

इषुं चैकादशी स्तौति द्वादशी कवचस्तुतिः ।

त्रयोदशी कक्षां स्तौति हस्तप्राणं चतुर्वशी ॥ १३५ ॥

चतुर्वशी कवच-स्तुति है; तेरहवीं में कक्षा की तथा चौदहवीं में हस्त-प्राण की स्तुति है ।

प्रथमे पञ्चदश्यास्तु पादे दिग्ध इषु स्तुतः ।

अयोमुखी द्वितीये तु अर्धेऽस्त्रं वारुणं परे ॥ १३६ ॥

पञ्चदशी (ऋचा) के प्रथम पाद में वरुण (विष्णु से) बाण की स्तुति है, दूसरे पाद में अयोमुखी बाण की; किन्तु ऋचा के शेषार्ध में अश्वत्थ की स्तुति है ।

२७-आश्वेद १. ७५ (कमशः)

षोडश्यां त्वस्य सूक्तस्य धनुर्मुक्त इषु स्तुतः ।

सप्तदश्यां तु युद्धादेः कवचस्य तु बध्यतः ॥ १३७ ॥

स्तुतिरष्टादशी ज्ञेया युयुत्सो स्तुतिरुत्तमा ।

आशास्ते चोत्तमे पादे ऋषिरात्मन अशिषः ॥ १३८ ॥

इस सूक्त की सोलहवीं ऋचा में धनुष से छुटे हुये बाण की स्तुति है और सप्तदशी में युद्ध के आरम्भ की, जब कि अष्टादशी की उस व्यक्ति के कवच की स्तुति करनेवाला जानना चाहिये जो उसे बाँधता है । अन्तिम ऋचा में उसकी स्तुति है जो युद्ध करने ही वाला हो, और इसके अन्तिम पाद में ऋषि ने अपनी ओर से आशिस दिया है ।

सूक्तेनानेन तु स्तुत्वा संग्रामाङ्गान्युपिस्तयोः ।

ततः प्रस्थापयामास पुनर्बारिशित्वान्प्रति ॥ १३९ ॥

इस सूक्त द्वारा इन दो राजाओं के युद्ध के आयुषों की स्तुति करने के बाद ऋषि ने इन्हें पुन बारिशियों के पास भेज दिया ।

एतत्पक्षे चतसृशी राज्ञो साहाय्यकाम्यया ।

अरुद्राजोऽभितुष्टाव प्रीतस्तेन पुरंदरः ॥ १४० ॥

अभ्यावर्तिनमभ्येत्य हर्युपीयानदीतटे ।

सहितभ्यायमानेन जघानैगाच्छपीपतिः ॥ १४१ ॥

‘इत्युत्तरं’ (अष्टावक्र १. २७, ३३) आरम्भ पार ऋषयों (अष्टावक्र १. २७, ३३) में, अष्टावक्र ने राजा (अष्टावक्र) की अष्टावक्र की इच्छा से (इच्छा की) स्तुति की । इससे प्रसन्न होकर अश्विपति, सुरम्बर, हर्षवीर्य नदी के तट पर अश्विनवर्तिन के पास आये, और ‘आश्विन’ को साथ लेकर उनका वध किया ।

१८-आश्विन और प्रस्तोक की कथा (कथा)

तौ तु वारशिस्वाङ्गित्वा ततोऽभ्यावर्तिसार्जयौ ।

अरद्वाजाय गुरवे पवतुर्विविधं वसु ॥ १३९ ॥

इस दोनों, अभ्यावर्तिन और साजंय ने, वारशियों की विजित करके अपने गुरु अरद्वाज को प्रचुर वन दिया ।

अरद्वाजश्च गर्गाश्च हृष्टाभिन्द्रेण वै पथि ।

द्वयान् प्रस्तोक इत्याभिर् दानं तद्वै शशांसतुः ॥ १४० ॥

पथ पर हृष्ट द्वारा देखे जाने पर अरद्वाज और गर्गा ने ‘हृष्टम्’ (अष्टावक्र १. २७, ८) और ‘प्रस्तोक’ (अष्टावक्र १. ३७, १२) से आरम्भ ऋषयों द्वारा उस वन की स्तुति की ।

‘सर्वाङ्गकर्मणी’ में अरद्वाज पुनः गर्ग की अष्टावक्र १. ४७, और अरद्वाज-पुनः वासु की अष्टावक्र १. ७५ का ऋषि बताया गया है । पुनः की० आर्षाङ्गकर्मणी १. १, ६ ।

अश्विरप्यभितुष्टाव दानं तत्र च तस्य तु ।

अथैकया द्वयौ अग्ने दत्तं संकीर्तयन् स्वयम् ॥ १४१ ॥

‘हृष्टम् अग्ने’ (अष्टावक्र १. २७, ८) ऋषि द्वारा अग्नि ने अपनी ओर से उनके दान की स्तुति की, और स्वयं ही प्रदान की गई वस्तुओं का उल्लेख किया ।

प्रसङ्गाभिह याः सूक्ते देवताः परिकीर्तिताः ।

ता एव सूक्तभाजस्तु मेने रथीतर स्तुतौ ॥ १४२ ॥

जिन देवताओं का इस सूक्त में प्रसङ्गाभिह वर्णन है उनके ही रथीतर ने स्तुति में सूक्तभाज भाषा है ।

‘सर्वाङ्ग’ अष्टावक्र १. ७५ ।

‘अश्वि’ अष्टावक्र और अश्वि, हृष्ट, लोम, अश्वि, अश्वि, अश्वि, अश्वि, अश्वि ।

सप्तम मण्डल

२९- वसिष्ठ की वशावली । कश्यप की पत्नियाँ
 प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः ।
 तस्य देव्योऽभवज्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश ॥ १४३ ॥
 अदितिर्वितिर्वनुः काला दनायुः सिंहिका मुनिः ।
 क्रोधा बिम्बा वरिष्ठा च सुरभिर्विनता तथा ॥ १४४ ॥
 कद्रुश्चैवेति द्रुहितः कश्यपाय ददौ स च ।
 तासु देवासुराश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ १४५ ॥
 वयांसि व पिशाचाश्च जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ।
 तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशजनयत्सुतान् ॥ १४६ ॥

प्रजापति के पुत्र मरीचि थे, मरीचि के पुत्र कश्यप मुनि । दक्ष की पुत्रियाँ उनकी (कश्यप की) तेरह दिव्य परिनबी थीं अदिति, विति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, बिम्बा और वरिष्ठा, सुरभि और विनता कद्रु, इनके नाम थे इन पुत्रियों को उन्होंने (दक्ष ने) कश्यप को दिया था । इनसे ही देव, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी, पिशाच तथा अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई । इन पुत्रियों में से एक, देवी अदिति ने बारह पुत्रों को जन्म दिया ।

भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च ।

धाता चैव विधाता च विवस्वाश्च महाद्युतिः ॥ १४७ ॥

त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।

द्वन्द्वं तस्यास्तु तज्जज्ञे मित्रश्च वरुणश्च ह ॥ १४८ ॥

इनके नाम यह हैं भाग, अर्यमन्, और अश, मित्र और वरुण, धातु और विधातु, और महातेजस्वी विवस्वान्, त्वष्टा पूषन् तथा इन्द्र, और बारहवें का नाम विष्णु है । इस प्रकार वरुण और मित्र का युग्म उनसे (अदिति से) उत्पन्न हुआ ।

३०-मित्र-वरुण और उर्वशी की कथा

तयोरादित्ययोः मन्त्रे हृद्वाप्सरसमुर्वशीम् ।

रेतश्चैकान्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीधरे ॥ १४९ ॥

इसमें से दो भागियों ने जब अपना कबीरों को एक-दूसरे से दूना तब उनका हीरा स्फुरित हो गया और उस बल से गेरे कुम्भ में गिर गया जो रात भर वहीं पड़ा रहा ।

‘पु० बी० मिश्र ५. १३ तस्यां दशमान् मित्रावर्णयो रेतश् चत्कन्व ।’ देखिये सर्वात्मकमयी १ १६१ मित्रावर्णयो रेतश्चित्तयो रेतश्चित्तम् अप्सरसं इत्या वासुकीवरे कुम्भे रेतोऽपतत् ।’

तेनैव तु मुहुर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ ।

अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संवसूतुः ॥ १५० ॥

उसी क्षण वहाँ दो वीर्यवान् तपस्वी, ऋषि अगस्त्य और वसिष्ठ, उत्पन्न हो गये ।

बहुधा पतीते शुक्रे कलशेऽप्य जले स्थले ।

स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः ॥ १५१ ॥

कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ।

उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महावशाः ॥ १५२ ॥

यन वह बीर्य विविध रूपों से कुम्भ, जल, और स्थल पर गिरा था, अतः ऋषिब्रह्म मुनि वसिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुये, जब कि अगस्त्य कुम्भ में और महाद्युतिमान् मत्स्य जल में उत्पन्न हुए ।

तब महावशास्त्री अगस्त्य खड़े के आकाश के बराबर उड़ित हुये ।

३१- अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म

मानेन संमितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते ।

यद्वा कुम्भादधिर्जातः कुम्भेनापि हि भीयते ॥ १५३ ॥

कुम्भ इत्यभिधानं तु परिमाणस्य लक्ष्यते ।

ततोऽप्यु शुद्धमाणास्तु वसिष्ठः पुरन्दरे स्थितः ॥ १५४ ॥

यत उसको एक मान से सीमित किये जाने के कारण उनका वहाँ मान्य नाम पड़ा, अथवा इसलिये कि इस ऋषि का कुम्भ से जन्म हुआ था, और कुम्भ द्वारा भी मापा जाता है । कुम्भ, नाम है भी एक परिमाण लक्षित होता है ।

जब वहाँ को ग्रहण किया जा रहा था, तब वसिष्ठ एक पुंकर (पुण्य) पर कड़े पाये गये ।

सर्वत्र पुष्करं तत्र विश्वे देवा अधारयन् ।

उत्थाय सलिलात्समाद् अथ तेपे महत्तपः ॥ १५५ ॥

वहाँ विश्वदेव चारों ओर से उस पुष्कर^१ को धारण किये हुये थे। जल से निकलने के बाद उन्होंने (बसिष्ठ ने) महान तप किया।

^१ पु० की० ऋग्वेद ७ ३१, ११ 'विश्वेदेवा पुष्करे त्वावहन्त' जिसकी शांति ने निरुक्त ५ १४ में 'सर्वे देवा पुष्करे त्वाधारयन्त' छन्दों द्वारा व्याख्या की है।

नामास्य गुणतो जज्ञे वसतेः श्रेष्ठयकर्मणः ।

अहृद्यमृषिभिर्हीन्द्रं सोऽपश्यत्तपसा पुरा ॥ १५६ ॥

इनका नाम इनके गुणों के आधार पर श्रेष्ठ कर्मों को उत्पन्न करनेवाली 'वसु' धातु से उत्पन्न हुआ है क्योंकि एक समय इन्होंने तप के द्वारा इन्द्र को देखा था जो अन्य ऋषियों के लिये अहरय थे।

सोमभागानधो तस्मै प्रोवाच हरिवाहनः ।

ऋषयो वा इन्द्रमिति ब्राह्मणास्तद्धि दृश्यते ॥ १५७ ॥

तब हरिवाहन (इन्द्र) ने इन्हें सोम-भागों को प्राप्त करने के लिये कहा; क्योंकि 'ऋषयो वा इन्द्रम्' ब्राह्मण वाक्य से ऐसा स्पष्ट होता है।

^१ तैत्तिरीय संहिता ३ ५, २, १ 'ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं वापश्यत्, त बसिष्ठं प्रत्यक्षम् अपश्यत् तस्मै प्तान् स्तोमभागान् अमवीत् ।'

३२-बसिष्ठ और उनके वंशज। ऋग्वेद ७ १-३२ को देखता

वसिष्ठश्च वसिष्ठाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मकर्मणि ।

सर्वकर्मसु यज्ञेषु दक्षिणीयतमास्तथा ॥ १५८ ॥

इस प्रकार बसिष्ठ और बसिष्ठगण हर प्रकार के कर्मों से सम्बन्ध रखते हैं दक्षिणा प्राप्त करने के लिये सर्वोपयुक्त ब्रह्मकर्म^१ ब्राह्मण वन यज्ञे ।

^१ ऋग्वेद ७ ३१, ११ 'उतानि मैत्रावरुणो बसिष्ठो वैशवा अङ्गमन्त्रसोऽपि ब्रह्मः' ।

पु० की० तैत्तिरीय संहिता ३ ५, २, १ 'तस्माद् बसिष्ठो ब्रह्मा कार्य' ।

तस्माद्येऽद्यापि बसिष्ठाः सदस्याः स्युस्तु कर्हिचित् ।

अर्ह्येदक्षिणाभिस्तान् भ्रातृभ्येयी मुनिस्त्वियम् ॥ १५९ ॥

अतः प्रत्येक व्यक्तिों को बसिष्ठ के उन सभी वंशजों को दक्षिणा के सम्मानित करना चाहिये जो आज भी किसी ब्रह्म-संघ पर उपस्थित हों—वेदा ऋषिर्गणों की एक श्रुति का कथन है।

नमस्तु मैत्रावरुणिः सुतोः शोकाग्रिः परैः ।

तुष्टावाग्निसिद्धिं त्वमिह आभूषस्तत्र सुवस्य नः ॥ १३० ॥

मित्र-वरुण के पुत्र अग्नि (वसिष्ठ) ने 'अग्निम्' (ऋग्वेद ७. १. १) से आरम्भ होकर उसके सुतो में अग्नि की स्तुति की; यहाँ 'सुवस्य नः' (ऋग्वेद ७. १) आग्नी मन्त्रों से युक्त है ।

प्राप्तयेऽथ प्र सम्राजो द्वितीयं प्राप्तये तुभम् ।

वैश्वानरीयाण्येतानि त्वे ह्यन्द्राणि पराप्यतः ॥ १३१ ॥

वशा पञ्च च सूक्तानि निपातो मरुतां स्तुतिः ।

नकिः सुदास इत्यस्यां दानं वैजयन्तस्य तु ॥ १३२ ॥

वसिष्ठेन चतुर्भिस्तु द्वे नमुरिति कीर्तितम् ।

संवादं सूक्तमैन्द्रं वा द्विदस्यञ्चस्तु प्रचक्षते ॥ १३३ ॥

तब 'प्राप्तये' (ऋग्वेद ७. ५) 'प्र सम्राज' (ऋग्वेद ७. ६) और एक दूसरा 'प्राप्तये' (ऋग्वेद ७. १३) भी जिसमें तीन अर्थात् हैं—इनको वैश्वानर को समर्पित किया गया है । इसके बाद 'ये ह' (ऋग्वेद ७. १८) से आरम्भ जन्म इन्द्र को समर्पित हैं जिसके अन्तर्गत पञ्चदश सूक्त (ऋग्वेद ७. १८-३३) आते हैं; यहाँ मरुतों की वैपश्चिक स्तुति है । 'नकिः सुदासः' (ऋग्वेद ७. ३२, १०) अर्थात् में तथा 'द्वे चतु' (ऋग्वेद ७. १८, २३-२५) से आरम्भ चार अर्थात् में वसिष्ठ द्वारा वैजयन्त (सुदास) के दान का उल्लेख है । 'द्विदस्य' (ऋग्वेद ७. ३३) को उक्त लोगों में इन्द्र को समर्पित सूक्त अथवा एक संवाद कहा है ।

३३-ऋग्वेद ७. ३३-३८ के हेतवः

वसिष्ठागस्त्ययोरञ्च कीर्त्यते तनयैः सह ।

इन्द्रेण चैव संवादो महिमा जन्म कर्म च ॥ १३४ ॥

यहाँ वसिष्ठ और असत्य का अपने पुत्रों तथा इन्द्र के साथ संवाद का उल्लेख और महिमा, जन्म और कर्म की प्रशंसा है ।

पराणि मेति आचारि वैश्वदेवानि तत्र तु ।

सतीत्युगञ्जामहिं तत्र वा सोऽहिं पुण्यमेव च ॥ १३५ ॥

'अ' (ऋग्वेद ७. ३४, १) से आरम्भ चार वाद के सूक्त (ऋग्वेद ७. ३४-३७) विश्वदेवों को समर्पित हैं । फिर भी, यहाँ 'अज्यम्' (ऋग्वेद

७ ३४, १६) ऋचा में अहि की, और 'मान' (ऋग्वेद ७, ३४, १०) में अहि बुध्न्य की स्तुति है।

अहिराहन्ति मेघान्स एति वा तेषु मध्यमः ।

योऽहिः स बुध्न्यो बुध्ने हि णोऽन्तरिक्षोऽभिजायते ॥ १६६

अहि मेघों पर प्रहार करता है अथवा उनके मध्य में चला जाता है।^१ यह अहि ही बुध्न्य है, क्योंकि यह बुध्न अथवा अन्तरिक्ष^२ में उत्पन्न हुआ है।

^१ निरुक्त २ २७ में 'अहि' को 'अयम्' अथवा 'अहन्ति' से व्युत्पन्न बताया गया है।

^२ तु० की० निरुक्त १० ४४ 'योऽहि स बुध्न्यो बुध्नम् अन्तरिक्षं, तन्निवासात्'।

उदु व्य सवितुः सूक्तं शं नो वाजिनदैवतः ।

दृषोऽर्धर्चश्च भगोऽन्न भगमुग्र इति श्रुतिः ॥ १६७ ॥

'उदु उ व्य' (ऋग्वेद ७ ३८) सवितु का सूक्त है। यहाँ 'श न' (ऋग्वेद ७ ८) से आरम्भ दो ऋचाओं के देवता वाजिन हैं, और 'भगम् उग्र' (ऋग्वेद ७ ३८, ६) से आरम्भ अर्ध-ऋचा भग को सम्बोधित है, ऐसा एक श्रुति का कथन है।

३४ ऋग्वेद ७ ७ ३८-४३ के देवता

पादश्चैव तृतीयोऽन्न पञ्चम्यामहिदैवतः ।

यथार्धर्चो भगमुग्रस् तथा नूनं भगोऽपि च ॥ १६८ ॥

स हि रत्नानि सविता सुवातीति भगः स वा ।

वैश्वदेवानि पञ्चोर्ध्वः पञ्चर्चो भगदैवतः ॥ १६९ ॥

प्रातर्जितमुषस्यान्त्या द्रष्टृभ्योऽन्नाशिरेव वा ।

एके तु द्रातरित्यस्यां भगमेव प्रचक्षते ॥ १७० ॥

यहाँ पाँचवीं ऋचा के तृतीय पाद (ऋग्वेद ७ ३८, ५) का देवता अहि है। जिस प्रकार 'भगम् उग्र' (ऋग्वेद ७ ३८, ६) अर्ध ऋचा है उसी प्रकार 'नून भग' (ऋग्वेद ७ ३८, १) भी है, 'स हि रत्नानि सविता' (ऋग्वेद ५ ८२, ३) ऋचा के अनुसार उसे ही (सवितु को) भग माना जा सकता है।

'उर्ध्व' (ऋग्वेद ७ ३९, १) से आरम्भ सूक्त विश्वदेवों को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ७ ३९-४३) में से प्रथम हैं। 'प्रातर्जितम्' (ऋग्वेद ७, ४१, २-६) से आरम्भ पाँच ऋचाओं के देवता भग हैं। इसकी अभिप्राय

ऋषि (ऋग्वेद १. ४१, ७) इषस् को सम्बोधित है, सम्बन्ध इसमें ऋषियों की स्तुति है । फिर भी किसी का मत है कि 'मातः' (ऋग्वेद १. ४१, ३) का केवल भग्न ही देवता है ।

आवाचन्ते तु ऋषयः कीर्तयन्ति प्रसङ्गतः ।

सूक्तेऽस्मिन् देवतास्त्वन्या अन्यास्तत्र भवन्ति च ॥

अपिगण किसी सूक्त के आदि और अन्त में किसी देवता का प्रसङ्ग वर्णन करते हैं । अतः इस सूक्त में इन स्थानों पर कुछ देवता यहाँ और कुछ वहाँ हैं ।

सालोक्यात्साहचर्याद्वा संस्तवादथवा पुनः ।

गणस्थानाद्भक्तितो वा कीर्त्यन्तेऽन्यास्तु देवताः ॥

अथ देवताओं का इसलिये उल्लेख है कि वे एक ही लोक के अथवा सहचर हैं, अथवा पुनः, इसलिये कि अपने स्थान, गण, अथवा समान भक्ति (गुण) के कारण उनकी सम्मिलित स्तुति होती है ।

३५-ऋग्वेद ७ ४४-४९ के देवता

दाधिक्रमथ सावित्रं रौद्रमित्यनुपूर्वशः ।

दाधिके प्रथमायास्तु देवताः परिकीर्तिताः ॥ १७३ ॥

ता ज्ञेया आप आप्यं स्याद् आर्भवः प्रथमस्तृचः ।

उत्तमा वैश्वदेवी वा आर्भवी वा निगद्यते ॥ १७४ ॥

इसके बाद क्रम से एक सूक्त (ऋग्वेद ७ ४४) दधिका को, एक (ऋग्वेद ७ ४५) सवित्र को, और एक (ऋग्वेद ७ ४६) रौद्र को सम्बोधित है । किन्तु दधिका की सम्बोधित सूक्त (७. ४४) की प्रथम ऋचा में सम्बोधित देवताओं को जाना जा सकता है । 'आप' (ऋग्वेद ७ ४७) को जलों को सम्बोधित जानना चाहिये । बाद के सूक्त की प्रथम तीन ऋचायें (ऋग्वेद ७ ४८, १-३) ऋसुओं की सम्बोधित हैं । अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ७ ४८, ४) को या तो विश्वदेवों को अथवा ऋसुओं को सम्बोधित कहा गया है ।

वैश्वदेवे तथा शास्त्रे आर्भवं शस्यते हि तत् ।

यद्यामेऽहि समस्तं ससुग्रज्येष्टा अपां स्तुतिः ॥ १७५ ॥

इसी कारण ऋग्वेदों को सम्बोधित हुए सम्पूर्ण सूक्त का विश्वेदेवों के स्तवन के लिये स्तवन किया जाता है। 'समुद्रउवेष्टा (ऋग्वेद ७ ४५)' में अर्कों की स्तुति है।

^१ देखिये ऋग्वेद ७. ४८, ४ पर सावण द्वारा उद्धृत आश्वलायन श्रौतसूत्र दशमेऽधि वेदवेदस्तक आर्चनविधानं, सूच्यते हि ऋग्वक्ष्ण इत्यार्चनम् इति ।'

॥ इति बृहदेयतायां अष्टमोऽध्यायः ॥



१- ऋग्वेद ७. ५०-६६ के देवता

आ मामिति तु सूक्तेन प्रत्यृचं देवता स्तुताः ।

मित्रवरुणावग्निश्च देवा नयस्तथैव च ॥ १ ॥

‘आ माम’ (ऋग्वेद ७. ५०) सूक्त की अनेक कक्षा में इन देवों की स्तुति की गई है । मित्र-वरुण (१), और अग्नि (२), देव-नाम (३), तथा साथ ही साथ नवियों (४) ।

तृचावादित्यदेवत्यौ रोवस्योः प्रेति यस्तृचः ।

वास्तोष्पत्यश्नतस्वस्तु सप्त प्रस्वापिन्धः स्तुताः ॥ २ ॥

ऋचाओं के दो त्रिकों (ऋग्वेद ७. ५१-५२) के देवता आदित्य हैं । ‘प्र’ (ऋग्वेद ७-५३, १) से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ७. ५३, १-३) रोवसी को सम्बोधित हैं । इसके बाद चार ऋचाओं (ऋग्वेद ७. ५३, १-३; ५५, १) वास्तोष्पति को सम्बोधित हैं, और बाद की सात ऋचाओं (ऋग्वेद ७. ५५, २-८) को प्रशस्त करनेवाली कहा गया है ।

१ तु० की० ऋग्वेद ७. ५५ पर सर्वांशकमणी ।

परं चत्वारि सूक्तानि मास्तानि क ईमिति ।

तेषां तु पितरं देवं त्र्यम्बकं स्तौत्यृष्टमा ॥ ३ ॥

इसके बाद ‘क ईम’ (ऋग्वेद ७. ५६-५९) से आरम्भ चार सूक्त मन्त्रों को सम्बोधित हैं; इनकी अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ७. ५९, १२) में विष्णु पितर त्र्यम्बक की स्तुति है ।

स्तुतौ तु मित्रावरुणौ सूर्योर्वदिति सप्तभिः ।

अश्विनौ तु परैर्वेवाश् अष्टभिः प्रति वामिति ॥ ४ ॥

‘वद’ (ऋग्वेद ७. ६२, १) से आरम्भ सात सूक्तों (ऋग्वेद ७. ६०-६६) में मित्र-वरुण की स्तुति है । किन्तु इसके बाद ‘प्रति वाम’ (ऋग्वेद ७. ६०, १) आरम्भ आठ (ऋग्वेद ७. ६०-७७) में विष्णु अश्विनों की स्तुति है ।

यद्यौकोत्सूर्यस्तिका

उद्वितीत्यर्चयन्महाः ।

सूर्यस्तबधुरिति तु

गीयते चासुर्वेवता ॥ ५ ॥

‘यद् अद्य’ (ऋग्वेद ७ ६०) में एक (प्रथम ऋचा), ‘उद् सूर्यः’ (ऋग्वेद ७ ६२) में तीन (१-३) और ‘उद् वृष्टि’ (ऋग्वेद ७ ६३) में साढ़े चार (१-५) सूर्य को सम्बोधित हैं, जब कि ‘तच्छ चक्षु’ (ऋग्वेद ७ ६६, १६) में चक्षु देवता का वाचन है।

२-ऋग्वेद ७ ६६-८५ के देवता

आदिभ्यानां तद्वो अद्य द्वे ऋचौ शौनकोऽब्रवीत् ।

अन्याः सर्वा ऋचः सौर्यो यदद्याद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

शौनक ने कहा है कि ‘तद् वो अद्य’ (ऋग्वेद ७ ६६, १२) से आरम्भ दो ऋचायें (१२-१३) आदित्यों की हैं, जब कि अन्य सब ऋचाओं, (‘यद् अद्य’ (ऋग्वेद ७ ६६, ४-११) तथा शेष को सूर्य को सम्बोधित कहा गया है।

इमे चेतार इत्याद्याः सत्रे मित्रो मितः स्तुतः ।

अर्यम्णो वरुणस्यापि मित्रस्यैता नव स्मृताः ॥ ७ ॥

‘इमे चेतार’ (ऋग्वेद ७ ६०, ५), तथा अन्य नौ में अर्यमन्, वरुण और मित्र की स्तुतियाँ हैं।

यदद्य सूर इत्याद्या वशादित्या ऋचः स्मृताः ।

सविता वादितिर्मित्रो वरुणश्चार्यमा भगः ॥ ८ ॥

स्तुता उद् त्यदित्येतास् तिष्ठः सौर्यस्ततः पराः ।

आशीस्तच्चक्षुरित्येताम् आचार्यः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

‘यद् अद्य सूर’ से आरम्भ दस ऋचाओं (ऋग्वेद ७ ६६, ४-१३) को आदित्यों को सम्बोधित माना गया है; अथवा इनमें सवितृ, अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमन्, और भग की स्तुति है। ‘उद् उ त्यत्’ से आरम्भ बाढ़ की तीन ऋचायें (ऋग्वेद ७ ६६, १४-१६) सूर्य को सम्बोधित हैं। आचार्य शौनक ने ‘तच्छ चक्षु’ (ऋग्वेद ७ ६६, १६) को आशीस बताया है।

उषास्तु सप्तभिर्व्युषाः सूक्तान्येभ्यः पराणि तु ।

चत्वारिन्द्रावरुणेति इन्द्रावरुणयो स्तुतिः ॥ १० ॥

इसके बाद ‘यद् उषा’ से आरम्भ सात सूक्तों (ऋग्वेद ७ ७५-८१) में

उपलब्ध की, किन्तु इसके बाद 'इन्द्रावकण' से आरम्भ कर सूक्तों (ऋग्वेद ७ ८२-८५) में इन्द्रावकण की स्तुति है ।

३-वसिष्ठ और वरुण का कृता : ऋग्वेद ७ ८६-८९

उदु ज्योतिरिति स्वस्मिन् अर्धर्धे मध्यम स्तुतः ।

वरुणस्य गृहाभात्रौ वसिष्ठः स्वन्न आचरत् ॥ ११ ॥

'उदु उ ज्योति' से आरम्भ अर्ध ऋचा (ऋग्वेद ७ ७७, १) में मध्यम अग्नि की स्तुति है ।

रात्रि के समय स्वप्न में वसिष्ठ, वरुण^१ के घर पर आये ।

^१ तु० ऋग्वेद ७ ८८, ५ ।

प्रायिवेशाय तं तत्र श्वा नदक्षभ्यधावत ।

क्रन्दन्तं सारमेयं स धावन्तं वष्टुसुधाम् ॥ १२ ॥

यदजुनेति च द्वाभ्यां सान्त्वयित्वा व्यसुध्वपत् ।

स तं प्रस्थापयामास जनमन्यं च वरुणम् ॥ १३ ॥

तब उन्होंने अन्ध्र प्रवेश किया । वहाँ एक कुत्ता भौकता हुआ उन पर दौड़ा । काटने के लिये दौड़ते और भौकते हुये उन कुत्ते को शान्त करके उन्होंने 'यद अजुन' (ऋग्वेद ७ ५५, २-३) से आरम्भ हो ऋचाओं द्वारा सुका दिया ।

उन्होंने उसे तथा वरुण के अन्य सेवकों को भी सुका दिया ।

ततस्तु वरुणो राजा स्वैः पाशैः प्रत्यबधयत् ।

स बद्धः पितरं सूक्तैश्च चतुर्भिरित उत्तरैः ॥ १४ ॥

अभितुष्टाव धीरेति मुमोचैर्न ततः पिता ।

भृक्वासु त्वेति चोक्तायां पाशा अस्मात्प्रमोचिरे ॥ १५ ॥

तब राजा वरुण ने उन्हें अपने पाश से आबद्ध कर दिया । इस प्रकार आबद्ध हो जाने पर उन्होंने (वसिष्ठ ने) अपने पिता (वरुण) की 'धीर' से आरम्भ बाद के चार सूक्तों (ऋग्वेद ७ ८६-८९) में स्तुति की । तब उनके पिता ने उन्हें मुक्त कर दिया ।

'भृक्वासु त्वा' (ऋग्वेद ७ ८७, ७) ऋचा का यही ही उच्चारण किया गया, यही ही उसके पाश और धीरे ।

४-ऋग्वेद ७ १०-१६ के देखना ।

पराणि त्रीणि सूक्तानि वायव्यानि प्र वीरया ।

अत्र तास्त्वैन्द्रवायव्या स्तुतौ यासु द्विवत्स्तुतिः ॥ १६ ॥

‘न वीरया’ से आरम्भ वाद के तीन सूक्त (ऋग्वेद ७ १०-१२) वायु की सम्बोधित हैं । इस स्तुति में त्रिन ऋचाओं में द्विवत् स्तुति है वे इन्द्र-वायु की सम्बोधित हैं ।

^१ देखिये ऋग्वेद ७. १० पर सर्वातुकमणी, तु० की महगुरुशिष्य श्री ।

प्र वीरयोक्ता वायव्या प्राङ्गीत्यैतरेयके ।

पदस्य व्यत्ययं कृत्वा वायोः प्राधान्यमुच्यते ॥ १७ ॥

‘प्र वीरया’ (ऋग्वेद ७ १०, १) को ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ में वायु को सम्बोधित एक ‘प्राङ्गी’ ऋचा कहा गया है यहाँ वायु की प्रधानता को इसके एक पाद के व्यक्तिप्रस द्वारा व्यक्त किया गया है ।

^१ अर्थात् ऐतरेय ब्राह्मण ५ २०, ९ ।

ते सत्येन तृषो यावत् तरश्चतुर्कचः पुनः ।

उशन्तैका प्र सोता चर्ग द्वयोरेता नव स्मृताः ॥ १८ ॥

‘ते सत्येन’ (ऋग्वेद ७ १०, ५-७) से आरम्भ ऋचाओं का एक त्रिक है, ‘यावत् तर’ (ऋग्वेद ७ ११, ४-७) पुन चार ऋचाओं का समूह है, ‘उशन्ता’ (ऋग्वेद ७ ११, २) और ‘प्र सोता’ (ऋग्वेद ७ १२, १) एक-एक ऋचाएँ हैं इक नौ ऋचाओं को दो (इन्द्र वायु) को सम्बोधित माना गया है ।

एन्द्राग्ने शुचिमित्येते प्रेति सारस्वते परे ।

ऋचा सरस्वान् स इति जनीयन्तश्च तिसृभिः ॥ १९ ॥

‘शुचिम्’ (ऋग्वेद ७ ५३, १) से आरम्भ दो सूक्त (१३, ५४) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित हैं, इसके बाद ‘प्र’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ७ १५-१६) सरस्वती को सम्बोधित है । सरस्वती की ‘सः’ (ऋग्वेद ७ १५, ३) ऋचा द्वारा और ‘जनीयन्त’ (ऋग्वेद ७ १६, ४-६) से आरम्भ तीन ऋचाओं में स्तुति की गई है ।

५-नाहुच और सरस्वती की कथा : ऋग्वेद ७ १५-१६

राजा वर्षसहजाय वीक्षिष्यन्नाहुचः पुरा ।

अचारैकारथेनेर्माः ब्रुवन् सर्वाः समुद्रगाः ॥ २० ॥

यक्ष्ये बहूत भागान्मे द्वन्द्वशो वाथ वैकशः ।
 प्रत्यूचुस्तं नृपं नयः स्वल्पवीर्याः कथं वयम् ॥ २१ ॥
 बहेम भागात्सर्वास्ते सत्रे वार्यसहस्रिके ।
 सरस्वती प्रपद्यस्व सा ते वक्ष्यति नाहुष ॥ २२ ॥

प्राचीन काल में अपने को एक सहस्र वर्ष तक के लिये दीक्षित कराने की इच्छा से राजा नाहुष इस पृथ्वी पर सभी नदियों से इस प्रकार कहते हुये यहाँ (पृथ्वी पर) एक रथ पर बैठकर भ्रमण करने लगे 'मैं यज्ञ करने वाला हूँ, इसके लिये या तो पृथक् पृथक् अथवा द्वन्द्व रूप से अपना भाग दो । नदियों ने राजा को उत्तर दिया 'अत्यन्त अल्प शक्ति वाले हमलोग किस प्रकार आपको एक सहस्र वर्ष के यज्ञ सत्र के लिये सभी भाग ला सकते हैं ? हे नाहुष ! तुम सरस्वती के पास जाओ वही तुम्हारे लिये उसे लाने में समर्थ हो सकती है ।'

तथेत्युक्त्वा जगामाशु आपगां स सरस्वतीम् ।
 सा चैनं प्रतिजग्राह दुदुहे च पयो घृतम् ॥ २३ ॥

'ऐसा हा होगा', कहकर वह शीघ्रतापूर्वक सरस्वती नदी के पास गये, यहाँ उसने (सरस्वती नदी में) उनका स्वागत किया और उन्हें दुग्ध और घृत दिया ।

एतदत्यद्भुत कर्म सरस्वत्या नृपं प्रति ।
 वारुणिः कीर्तयामास प्रथमस्य द्वितीयया ॥ २४ ॥

राजा के प्रति सरस्वती के इस अद्भुत कार्य की वरुण के पुत्र (वसिष्ठ) ने (उक्त दो सूक्तों अर्थात् ऋग्वेद ७ ९५-९६) में से प्रथम की द्वितीय ऋचा में स्तुति की है ।

६-ऋग्वेद ७ ९७-१०४ के देवता ।

यज्ञे वार्हस्पत्यमैन्द्रं वैष्णवे तु परे ततः ।
 उरुमैन्द्रयश्च तिस्रः व्युः पार्जन्ये तिस्र उत्तरे ॥ २५ ॥

‘यज्ञे’ (ऋग्वेद ७ ९७) बृहस्पति को सम्बोधित है, इसके बाद इन्द्र को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद ७ ९८) आता है; किन्तु इसके बाद दो सूक्त (ऋग्वेद ७ ९९-१००) विष्णु को सम्बोधित है, ‘उरुम्’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ७ ९९, ४-६) को इन्द्र को भी सम्बोधित मानना चाहिये। ‘तिस्र’ से आरम्भ बाद के दो सूक्त (ऋग्वेद ७ १०१-१०२) पञ्चम को सम्बोधित हैं।

स्तौतीन्द्रं प्रथमा त्वत्र द्वितीयाद्या बृहस्पतिम् ।

यज्ञ आयेन्द्रमेवास्तौद् अन्त्या त्विन्द्राबृहस्पती ॥२६॥

यहाँ प्रथम ऋचा (ऋग्वेद ७ ९७, १) इन्द्र की तथा द्वितीय और शेष ऋचाये (ऋग्वेद ७ ९७, २ ४-८) बृहस्पति की स्तुति करती है।

‘यज्ञे’ (ऋग्वेद ७ ९७) की प्रथम ऋचा में केवल इन्द्र की किन्तु अन्तिम में इन्द्र और बृहस्पति दोनों की स्तुति है।

तृतीया नवमी चैव स्तौतीन्द्राब्रह्मणस्पति ।

सवत्सरं तु मण्डूकान् गेन्द्रासोम परं तु यत् ॥ २७ ॥

तीसरी और नवीं ऋचायें (ऋग्वेद ७ ९७, ३ ९) इन्द्र और ब्रह्मणस्पति की स्तुति करती हैं। ‘सवत्सरम्’ (ऋग्वेद ७ १०३) में मण्डूकों की स्तुति है, किन्तु जो इसके बाद (ऋग्वेद ७ १०४) आता है वह इन्द्र-सोम को सम्बोधित है।

ऋषिर्ददर्श राक्षोघ्न पुत्रशोकपरिप्लुतः ।

हते पुत्रशते तस्मिन् सौदासैर्दुःखितस्तदा ॥ २८ ॥

जब सुदास द्वारा उसके सौ पुत्रों का वध कर दिया गया, तब अपने पुत्रों के शोक से पूज और सन्तप्त होकर ऋषि ने राक्षसों का विनाश करने के लिये इस सूक्त का दर्शन किया।

७-ऋग्वेद ७ १०४ का विस्तृत विवरण ।

ये पाकशंसमृक्सौम्या आग्नेयी तत् उत्तरा ।

एकादशी वैश्वदेवी सौम्यस्तस्याः परो दृचः ॥ २९ ॥

‘ये पाकशंसम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, १) ऋचा सोम को सम्बोधित है, उसके बाद की (१० वीं ऋचा) अग्नि को सम्बोधित है, ग्यारहवीं विश्वदेवी को सम्बोधित है; इसके बाद जो दो ऋचायें (१२-१३ वीं) आती हैं वह सोम को सम्बोधित हैं।

यदि बाह्वृणाग्नेयो ऐन्द्री यो मेति तु स्मृता ।

प्राव्णी प्र या जिगातीति वि तिष्ठध्वं तु मरुतो ॥३०॥

‘यदि बाह्वृ’ (ऋग्वेद ७ १०४, १४) अग्नि को सम्बोधित है, जब कि ‘यो मा’ (ऋग्वेद ७ १०४, १६) को इन्द्र को सम्बोधित माना गया है, ‘प्र या जिगाति’ (ऋग्वेद १०४, १७) पशुओं को सम्बोधित है, जब कि ‘वि तिष्ठध्वम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, १८) मरुतों को सम्बोधित है ।

प्र वर्तयेति पञ्चन्द्रय ऐन्द्रासोमी त्वृगुत्तमा ।

ऋषिस्त्वाशिषमाशास्ते मा नो रक्ष इति त्वृचि ॥३१॥

विवि चैव पृथिव्या च तथा पालनमात्मनः ।

उत्कृयातुं जह्येतान् नानारूपाग्निशाचरान् ॥३२॥

‘प्र वर्तय’ से आरम्भ पाच ऋचायें (ऋग्वेद ७ १०४, १९-२२, २४) इन्द्र को सम्बोधित हैं जब कि अन्तिम ऋचा इन्द्र-सोम को सम्बोधित है । ‘मा नो रक्षस्’ (ऋग्वेद ७ १०४, २३) ऋचा में ऋषि ने अपनी ओर से आकाश और पृथिवी पर रक्षित रहने का आशिस् दिया है । ‘उत्कृयातुम्’ (ऋग्वेद ७ १०४ ८) ‘नानारूपी निशाचरों का वध करो’ ऐसी स्तुति है ।

पञ्चदश्या तु सूक्तस्य अष्टम्या चैव वारुणिः ।

दुःखशोकपरीतात्मा शपते विलपन्निव ॥ ३३ ॥

इस सूक्त की पन्द्रहवीं और आठवीं ऋचा म वरुण के पुत्र (वसिष्ठ) ने उस समय शोक और दुःख से पूर्ण होकर विलाप करते हुए शप का उच्चारण किया है ।

हते पुत्रशते तस्मिन् वसिष्ठो दुःखितस्तदा ।

रक्षोभूतेन शापात्तु सुदामेनेति वै श्रुतिः ॥ ३४॥

उस समय वसिष्ठ अपने उन सौ पुत्रों के सुदास द्वारा वध कर दिये जाने पर दुःखित थे जो एक शप के कारण राक्षस बन गये थे—ऐसी श्रुति है ।

अष्टम मण्डल

८-कण्व और प्रगाथ की कथा

कण्वश्चैव प्रगाथश्च घोरपुत्रौ बभूवतुः ।

गुरुणा तावनुज्ञाताव् ऊषतुः सहितौ वने ॥ ३५ ॥

कण्व और प्रगाथ, घोर के दो पुत्र थे। जब इनके गुरु ने आज्ञा दे दी तब वे एक साथ वन में रहने लगे।

वसतोस्तु तयोस्तत्र कण्वपत्न्या शिरः स्वपत् ।

कृत्वा कनीयान्कण्वस्य उत्सङ्गे नान्वबुध्यत ॥ ३६ ॥

जब वह दोनों वहाँ रह रहे थे तब कण्व के कनिष्ठ भ्राता (प्रगाथ) कण्व की पत्नी की गोद में सर रखकर सो रहे थे और उठे नहीं।

शप्तुकामस्तु तं कण्वः क्रुद्धः पापमिशङ्कया ।

बोधयामास पादेन दिग्धन्निव तेजसा ॥ ३७ ॥

पाप की शङ्का से क्रुद्ध हो कर और शाप देने की इच्छा से कण्व न उठें अपने पैर से इस प्रकार जगाया माँगे वह उसे अपने तज से भस्म कर देंगे।

विदित्वा तस्य तं भावं प्रगाथः प्राञ्जलि स्थितः ।

मातृत्वे च पितृत्वे च वरयामास तावुभौ ॥ ३८ ॥

उनके भाव^१ को जानकर प्रगाथ ने करबद्ध खड़े होकर उन दोनों का अपनी माता और पिता के रूप में वरण किया।

^१ तु० की० ऊपर ४ ५०, ५९

स घौरो बाध काण्वा वा वंशजैर्बहुभिः सह ।

ददर्शान्यैश्च सहित ऋषिर्मण्डलमष्टमम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार घोर अथवा कण्व^१ के पुत्र के रूप में ऋषि ने अपने परिवार के अनेक सदस्यों तथा अन्य के साथ अष्टम मण्डल का दर्शन किया।

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ १ पर सर्वातुकमणी 'त घोर सन् भ्रातु कण्वस्य पुत्रताम् अगात्' आर्षानुकमणी ८ १ 'प्रगाथो वोरुजो मुनि म हि घोरस्य कण्वस्य भ्राता सन् पुत्रता गत ।'

९-ऋग्वेद ८. १-२१ के देवता

माचिदैन्द्राणि चत्वारि अन्वस्य स्थूरमित्यृचि ।

तुष्टावाङ्गिरसी नारी वसन्ती शश्वती पतिम् ॥ ४० ॥

'मा चित्' से आरम्भ चार सूक्त (ऋग्वेद ८ १-४) इन्द्र को सम्बोधित हैं 'अन्वस्य स्थूरम्' (ऋग्वेद ८ १, ३४) ऋषा में अङ्गिरस की पुत्री शश्वती ने स्त्री के रूप में रहते हुए अपने पति की स्तुति की है।^१

^१ पु० की० सर्बानुकमणी 'पक्षी चास्याङ्गिरसी श्रद्धवती पुस्त्वम् उपलब्धेन प्रीता अन्त्या पुष्टा ।'

स्त्रियं सन्तं पुमांसं तम् आसङ्गं कृतवानृषिः ।

स्वस्य दानंस्तुहीत्यृग्भिश् चतुभिः परिकीर्तितम् ॥४१॥

ऋषि ने उम आसङ्ग को पुन पुरुष बना दिया^१ जो स्त्री हो गया था । 'स्तुहि' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १, ३०-३३) में आसङ्ग ने स्वयं अपने ही दान का कीर्तन किया है ।

पु० की० ऋग्वेद ८ १ पर सर्बानुकमणी 'आसङ्गो य स्त्रीभूत्वा पुमान् अभूत् स मेधातिथये दानं दत्त्वा स्तुहि स्तुहीति चतसृभिर आत्मानं पुष्टाव ।' सायण ने ऋग्वेद ७ १ १ और १४ पर भाष्य करते हुए आसङ्ग की कथा का वर्णन किया है ।

शिक्षेत्यृग्भ्या तु काश्यस्य विभिन्दोः परिकीर्तितम् ।

पाकस्थाम्नस्तु भोजस्य चतुर्भिर्यमिति स्तुतम् ॥

किन्तु 'शिक्ष' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ७ २, ४१-४२) में काशि^१ क राजा विभिन्दु का कीर्तन है, जब कि 'यम्' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३ २१-२४) में उदार पाकस्थामन् (के दान) की स्तुति है ।

^१ पु० की० ऋग्वेद ८ २ पर सर्बानुकमणी 'अन्त्यान्वा मेधातिथिर विभिन्दोर् दानं तुष्टाव ।

पौष्णौ प्रेति प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः ।

गन्द्रमेवाथ पूर्व तु गालवः पौष्णमुत्तरम् ॥ ४३ ॥

'प्र' से आरम्भ चार प्रगाथ ऋचायें (ऋग्वेद ८ ४, १५-१८) शाकटायन क विचार से पूषन् को सम्बोधित हैं, फिर भी गालव के विचार से प्रथम दो (१५-१६) केवल इन्द्र को और बाद की दो (१७-१८) पूषन् को सम्बोधित हैं ।

ऐन्द्राणामिह सूक्तानाम् उत्तमस्योत्तमे तृचे ।

दानं राज्ञः कुरुङ्गस्य स्थूरं राय इति स्तुतम् ॥ ४४ ॥

यहाँ इन्द्र-सूक्तों में से अन्तिम की 'स्थूर राय' (ऋग्वेद ८ ४, १९) से आरम्भ अन्त की तीन ऋचाओं (१९-२१) में राज कुरुङ्ग के दान की स्तुति है ।

१०-ऋग्वेद ८ ५-१८ के देवता

दूरादित्याश्विने सूक्ते सप्तत्रिंशत्तमी यथा ।

इत्यर्घर्चो बृषश्चान्त्यः कशोर्दानस्तुतिः स्मृता ॥ ४५ ॥

दूरात् (ऋग्वेद ८ ५) से आरम्भ अश्विनों को सम्बोधित सूक्त में सैतीसवीं ऋचा में 'यथा' से आरम्भ अथ ऋचा और अन्तिम दो ऋचाओं (८ ५, ५८-३९) को कशु' की दानस्तुति माना गया है ।

^१ तु० को ऋग्वेद ८ ५ पर सर्बानुकमणी अत्या पञ्चार्धर्चाश्चैषस्य कशोर् दानस्तुति ।

महानैन्द्रं प्रब्रवत्याम् अग्नि वैश्वानर स्तुतम् ।

मन्यते शाकपूणिस्तु भार्ग्यश्चैव मुद्गलः ॥ ४६ ॥

'महान्' (ऋग्वेद ८ ६) इन्द्र को सम्बोधित है जिस ऋचा में 'प्रन' (ऋग्वेद ८ ६ २०) आता है उसमें शाकपूणि तथा भार्ग्यश्च के पुत्र मुद्गल के विचार से वैश्वानर की स्तुति है ।

तृचे तु शतमित्यस्मिन् दानं तैरिन्दिरं स्मृतम् ।

परं नु माहूतं प्रेति आ नस्त्रीण्याश्विनानि च ॥ ४७ ॥

किन्तु 'शतम्' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ६, ४६-४८) में तैरिन्दिर के दान की स्मृति है । 'प्र' (ऋग्वेद ८, ७) से आरम्भ बाद का सूक्त मरुतों को सम्बोधित है और 'आ न' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८ ८-१०) अश्विनों को सम्बोधित हैं ।

त्वमाग्नेयं य इन्द्रेति षळैन्द्राण्युत्तमस्य तु ।

उपोत्तमायामर्धर्चं देवो वास्तोष्पति स्तुतः ॥ ४८ ॥

'त्वम्' (ऋग्वेद ८ ११) अग्नि को सम्बोधित है । 'ये इन्द्र' (ऋग्वेद ८ १२ १) से आरम्भ छ सूक्त (ऋग्वेद ८ १२-१७) इन्द्र को सम्बोधित है, किन्तु इस अन्तिम की अन्तिम से पहले की एक अर्ध ऋचा (ऋग्वेद ८ १७, १४) में वास्तोष्पति देवता की स्तुति है ।

इवमादिन्यदेवत्यं तिसृभिस्त्वदिति स्तुता ।

षष्ठ्या चतुर्थ्या सप्तम्या उतेत्याचिन्यगष्टमा ॥ ४९ ॥

‘इयम्’ (ऋग्वेद १८) के देवता आदिभ्य हैं इसकी छठवीं, नौवीं, और सातवीं, इन तीन ऋचाओं में अदिति की स्तुति है, ‘उत’ से आरम्भ आठवीं ऋचा आश्विनों को सम्बोधित है ।

११-ऋग्वेद ८.१९ असदस्यु के दानों की स्तुति
स्तुताः शमिति पच्छस्तु अग्निसूर्यानिनास्त्रयः ।
वरुणार्यममित्राणां प्रगाथो यमिति स्तुतिः ॥ ५० ॥
आग्नेये स्तुती राजर्षेस् असदस्योरवादिति ।
पञ्चाशतं वधूना च गवा तिस्रश्च सप्ततीः ॥ ५१ ॥
अश्वोष्ट्राणा तथैवासौ वासासि विविधानि च ।
रत्नानि वृषभं श्यावं तासामग्नेसर पतिम् ॥ ५२ ॥

‘शम्’ (ऋग्वेद ८ १८, ९) में प्रत्येक पाद में क्रमशः अग्नि, सूर्य और अनिल, इन तीन की स्तुति है । ‘यम्’ से आरम्भ दो प्रगाथ ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १९, ३४-३५) में वरुण, अर्यमन् और मित्र की, अग्नि को सम्बोधित सूक्त में स्तुति है । ‘अदात्’ से आरम्भ दो ऋचाये (ऋग्वेद ८ १९, ३६-३७) राजषि अ दस्यु की स्तुति करती हैं ।

इ ह्येन पचास वधुर्यै, और सत्तर गायो, अश्वों, तथा ऊँटों के तीन यूथ, और विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न, भूरे बैल और इन यूथों को अग्रसर करने वाला एक अधिपति भी दिया ।^२

तु० को० ऋग्वेद ८ १९, ३६ ‘अदात् पञ्चाशत वसवस्युर वधूनाम् ।’

^२ देखिये ऋग्वेद ८ १९ ३७ ‘तिसृणां सप्ततीनां श्यावं प्रगेता दिवानां पति’
तु० को० ऋग्वेद ८ ४६ २२-२३ में दानों की गणना ।

कृत्वा दारानृषिर्गच्छन् इन्द्रायैतच्छशस च ।
वयं सूक्तेन शक्र च प्रीतस्तेन शचीपतिः ॥ ५३ ॥
ऋषे वरं वृणीष्वेति प्रहस्तमृषिरब्रवीत् ।
काकुत्स्थकन्याः पञ्चाशद् युगपद्रमये प्रभो ॥ ५४ ॥
कामतो बहुरूपत्वं यौवन चाक्षया रतिम् ।
शङ्खनिधि पद्मनिधि मद्गृहेष्वनपायिनम् ॥ ५५ ॥

विवाह करने के पश्चात् जाते हुये माग में ऋषि ने इसका इन्द्र से वर्णन, और ‘वयम्’ (ऋग्वेद ८ २१) में शक्र की स्तुति की ।

इसमें प्रसन्न होकर शशीपति ने कहा 'हे ऋषि ! वर माँगो ।' तब विनम्रतापूर्वक ऋषि ने उन्हें उत्तर दिया प्रभो ! मैं ककुत्स्थ जातीय पञ्चास कन्याओं का एक साथ ही रमण करूँ और इच्छापूर्वक अनेक रूप धारण कर सकूँ, और यौवन, अक्षय रति, शङ्खनिधि तथा पद्मनिधि, मेरे गृह में सदैव वर्तमान रहें ।

१२-ऋषि द्वारा मांगे गये वर । सोभरि और चित्र की कथा ।

प्रासादान् विश्वकर्मासौ सौवर्णास्वत्प्रसादतः ।

कुर्वीत पुष्पवाटी च पृथक्तासा सुरद्रुमैः ॥ ५६ ॥

मा भूत्सपत्नीस्पर्धासां सर्वमस्त्विति चाब्रवीत् ।

आ गन्त मारुत सूक्तं वयमित्यैन्द्रमुत्तरम् ॥ ५७ ॥

आपकी कृपा से प्रसिद्ध विश्वकर्मा मेरे लिये सुवर्ण के प्रासादों का और उनमें से प्रत्येक में पृथक् पृथक् द्रव वृक्षों की पुष्प वाटिकाओं का निर्माण करें, और इन सहपत्नियों के बीच परस्पर कोई स्पर्धा न रहे ।' और उन्होंने (इन्द्र ने) कहा 'यह सब पूर्ण होगा ।'

'आ गन्त' (ऋग्वेद ८ २०) मरुतों को सम्बोधित एक सूक्त है । दूसरा 'वयम्' (ऋग्वेद ८ २१) इन्द्र को सम्बोधित है ।

कण्वस्य सोभरेऽथैव यजतो वशजैः सह ।

कुरुक्षेत्रे यवाञ्जक्षुर् हवींषि विविधानि च ॥ ५८ ॥

आखवः सोऽभिमुष्टाव इन्द्र चित्रं सरस्वतीम् ।

इन्द्रो वेत्यनयर्चा स दानशक्ति प्रकाशयन् ॥ ५९ ॥

जब कण्व पुत्र सोभरि अपने वश के लोगों के साथ कुरुक्षेत्र में यज्ञ कर रहे थे तब चूहों ने उनके अन्न और विविध हविष्यों का भक्षण कर लिया ।

तब 'इन्द्रो वा' (ऋग्वेद ८ २१, १५) ऋचा स सोभरि ने दान शक्ति का प्रकाशन करते हुये इन्द्र चित्र और सरस्वती की स्तुति की ।

१३-सोभरि और चित्र की कथा (क्रमशः) । ऋग्वेद ८ २२-२५

आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम् ।

संस्तुतो देवबच्चित्र ऋषये तु गवां दवौ ॥ ६० ॥

अयुतानां सहस्रं वै निजग्राह स्तुवन्नृषिः ।
 ऋषि चोवाच हृष्टात्मा नाहमर्हाम्यृषे स्तुतिम् ॥ ६१ ॥
 नियोग्योनौ समुत्पन्नो देवता स्तोतुमर्हसि ।
 तमन्त्यया पुनश्चारस्तौद् ओ त्यं सूक्तेन चाम्बिनौ ॥ ६२ ॥

और तब चूहों के राजा (चित्र) ने आरम्भतुष्टि से प्रसन्न होकर स्वयं—
 चित्र की यही देववत् स्तुति की गई है—ऋषि को अनेक प्रकार की सहस्रों
 गाये दीं । उनकी स्तुति करके ऋषि ने दान को ग्रहण किया । हृदय से प्रसन्न
 होकर उसने (चित्र ने) ऋषि को सम्बोधित किया 'मैं पशु योनि में उत्पन्न
 होने के कारण ऋषि द्वारा स्तुति के योग्य नहीं हूँ । अतः आप देवताओं की
 स्तुति करें ' किन्तु फिर भी ऋषि ने अन्तिम ऋषा (ऋग्वेद ८ २१, १८)
 से पुनः उसकी स्तुति की । और 'ओ स्वम्' (ऋग्वेद ८ २२) से उन्होंने
 अश्विनो की स्तुति की ।

ईळिष्वेत्येतदाग्नेय सखायश्चन्द्रमुत्तरम् ।
 यथा वरो सुषाम्या इत्य् उत्तमस्त्वौषसस्तृचः ॥ ६३ ॥

'ईळिष्व' (ऋग्वेद ८ २३) अग्नि को सम्बोधित है, और 'सखाय'
 (ऋग्वेद ८ २४) से आरम्भ दूसरा इन्द्र को, किन्तु 'यथा वरो सुषाम्ये' से
 आरम्भ तीन ऋचायें (ऋग्वेद ८ २४, २८-३०) उपस को सम्बोधित है ।

अष्टौ तु सहितास्त्वेता देवता बिभिदुर्बलम् ।
 उषाश्चेन्द्रश्च सोमश्च अग्निः सूर्यो बृहस्पतिः ॥ ६४ ॥
 अङ्गिराः सरमा चैव ता वामित्युत्तरस्य तु ।
 आदौ मैत्रावरुण्यस्तु नव द्वादश तूत्तराः ॥ ६५ ॥
 वैश्वदेव्यो वरु राजा यक्षादाहवये वसु ।
 कीर्तित तत्तृचे त्वस्मिन् ऋजमुक्षण्यायने ॥ ६६ ॥

जिन्होंने एक साथ मिलकर वरु को विदीर्ण किया था वह आठ देवता
 यह हैं उषस् और इन्द्र और सोम अग्नि, सूर्य, बृहस्पति, अङ्गिरस् और
 सरमा । 'ता वाम्' (ऋग्वेद ८ २५) से आरम्भ बाद ६ सूक्त के आरम्भ की
 नौ ऋचायें मित्र वरुण को सम्बोधित हैं, किन्तु इसके बाद बारह विश्वदेवों को
 सम्बोधित हैं, और राजा वरु द्वारा ऋषि को दी गई सग्वत्सि का 'ऋजम्

उत्पण्यायने' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ २५, २२-२४) में कीर्तन है ।

१४-ऋग्वेद ८ २६-३१ के देवता । ८ २९ पृथक् कर्मस्तुति है ।

अश्विनौ ददतुः प्रीतौ तदिहोक्तं सुषामणि ।

आश्विनं तु युषोर्युक्ष्व बायव्या उत्तरास्तु याः ॥ ६७ ॥

प्रसन्न होकर अश्विनों ने सुषामन् को जो कुछ दिया उसका यहाँ वजन है 'युषो' (ऋग्वेद ८ २६) अश्विनों को सम्बोधित है । 'युषव' (ऋग्वेद ८ २६ २ - २५) तथा इसके बाद की ऋचायें वायु को सम्बोधित हैं ।

यं सवर्णा मनुर्नाम लेभे पुत्र विवस्वतः ।

वैश्वदेवानि पञ्चैतान्प अग्निरुक्थे जगाद सः ॥ ६८ ॥

उस मनु ने जिसे सवर्णा ने पुत्र के रूप में विवस्वत से प्राप्त किया था, अपने नामकरण के समय 'अग्निरुक्थे' (ऋग्वेद ८ २७) से आरम्भ विश्वदेवों को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ८ २७-३१) का उच्चारण किया ।

बभ्रुरेक इति त्वेता लिङ्गतो द्विपदा दश ।

स्तूयन्ते देवता ह्यासु कर्मभिः स्वैः पृथक्पृथक् ॥ ६९ ॥

'बभ्रुरेक' (ऋग्वेद ८ २९) दस लिङ्ग युक्त द्विपद हैं, क्योंकि इनमें देवताओं की पृथक् पृथक् उनक अपने अपने कर्मों के आधार पर स्तुति की गई है ।^१

^१ तु० का० ऊपर १ ४०-४३ ।

स्तुताः कर्मगुणैः स्वैः स्वैर् देवता यत्र तत्र तु ।

पृथक्कर्मस्तुतिर्नाम वैश्वदेवं तदेव तु ॥ ७० ॥

जहाँ देवताओं की अपने अपने कर्मों और गुणों के आधार पर स्तुति होती है, उसे 'पृथक्कर्म स्तुति' कहते हैं । ऐसा सूक्त विश्वदेवों को सम्बोधित होता है ।

१५-ऋग्वेद ८ २९ और ३१ का विस्तृत विवरण ।

ऋग्वेद ८ ३२-३४ के देवता

तासा बभ्रुरिति त्वाद्या सौम्याग्नेयी त्वृगुत्तरा ।

त्वाष्ट्री चैन्द्री च रौद्रो च पौष्णी वैष्णव्यृगाश्विनी ॥ ७१ ॥

नवमी मैत्रावरुणी ऋग्दशम्यत्रिसंस्तवः ।

यजमानप्रसङ्गाच्च य इज्यात्र प्रकीर्तिता ॥७२॥

इन द्विपदों में से 'बभ्रु' (ऋग्वेद ८ २९, १) से आरम्भ प्रथम सोम को सम्बोधित है, किन्तु इसके बाद की ऋचा (२) अग्नि को सम्बोधित है, इसके बाद एक खट्वा को (३) और इन्द्र को (४), और रुद्र को (५), पूषन् को (६), विष्णु को (७) और एक (८) अश्विनों को सम्बोधित है, नहीं ऋचा मित्रवरुण को (९) सम्बोधित है, और दसवीं में अश्वियों की स्तुति है । और 'य' (ऋग्वेद ८ ३१,) द्वारा यहाँ यजमान क सम्बन्ध में यज्ञ की स्तुति है ।

यो जयति द्रुष्टुचे शक्रो यजतां पतिरीकृतः ।

तस्य धुमान् द्रुष्टुचे यज्वा चतसृष्वपि मध्विति ॥७३॥

'यो यजाति' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३१, १ २) में यज्ञ के अधिपति शक्र की स्तुति है । 'तस्य धुमान्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३१ ३ ४), तथा मधु से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३१, १५-१८) में भी यज्ञ-कर्त्ता की स्तुति है ।

यज्वनोरेव दपत्योः पञ्च या दंपता ऋचः ।

आ शर्माशीरैतु पौष्णयौ परे मित्रोऽर्यमा यथा ॥७४॥

वरुणश्च स्तुतास्त्वत्र आदित्या अग्निमग्नये ।

सूक्तानि प्र कृतानीति त्रोण्यैन्द्राणि पराण्यतः ॥७५॥

'या दपती' से आरम्भ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३१ ५-९) में यज्ञ कर्त्ता के रूप में पति और पत्नी की स्तुति है । 'आ शर्म' (ऋग्वेद ८ ३१, १०) आशीस है । 'ऐतु' से आरम्भ बाद की दो ऋचार्ये (ऋग्वेद ८ ३, ११-१२) पूषन् को सम्बोधित हैं, जब कि 'यथा' (ऋग्वेद ८ ३१, १३) में मित्र, अयमन्, और वरुण तथा आदित्यों की स्तुति है । 'अग्निम्' (ऋग्वेद ८ ३१, १४) अग्नि को सम्बोधित है ।

इसके बाद 'प्र कृतानि' से आरम्भ बाद के तीन सूक्त (ऋग्वेद ८ ३२-३४) इन्द्र को सम्बोधित हैं ।

१६-इन्द्र और व्यस की बहन । ऋग्वेद ८ ३५-४६ के देवता
 अब इत्यत्र कन्या तं स्त्रीलिङ्गेनेन्द्रमब्रवीत् ।
 स हि तां कामयामास दानवीं पाकशासनः ॥७६॥
 ज्येष्ठां स्वसार व्यंसस्य तस्यैव युवकाम्यया ।
 अग्निनेत्याश्विन सूक्तम् ऐन्द्रसूक्ते परे ततः ॥७७॥

‘अधा’ (ऋग्वेद ८ ३३, १९) में एक क या ने स्त्रीलिङ्ग से युक्त इन्द्र को सम्बोधित किया है, क्योंकि पाकशासन (इन्द्र) ने अपने युवा काम के कारण व्यस की ज्येष्ठ बहन उस दानव कन्या के साथ प्रेम किया था । ‘अग्निना’ (ऋग्वेद ८ ३५) अश्विनों को सम्बोधित सूक्त है । इसके बाद इन्द्र को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ८ ३६-३७) आते हैं ।

ऐन्द्राग्न परमाग्नेयम् ऐन्द्राग्नं वारुणे परे ।

उत्तरे वारुणे त्वन्त्य आ वामित्वाश्विनस्तृचः ॥७८॥

इसके बाद का सूक्त (ऋग्वेद ८ ३८) इन्द्र अग्नि को, फिर एक (ऋग्वेद ८ ३९) अग्नि को, एक (ऋग्वेद ८ ४०) इन्द्र अग्नि का सम्बोधित है, बाद के दो (ऋग्वेद ८ ४१-४२) वरुण को सम्बोधित हैं किन्तु बाद के वरुण सूक्त (ऋग्वेद ८ ४२) की ‘आ वाम्’ से आरम्भ अन्तिम तीन ऋचायें अश्विनों को सम्बोधित हैं ।

सूक्ते इमे समाग्नेये ताभ्यामेन्द्रे ततः परे ।

वशायाश्वायत यत्प्रादात् कानीतस्तु पृथुश्रवाः ॥७९॥

तदत्र संस्तुतं दानम् आ स इत्येवमादिभिः ।

आ नः प्रगाधौ वायव्यौ सूक्तस्योपोत्तमा च या ॥८०॥

‘इमे’ (ऋग्वेद ८ ४३) और ‘सम्-’ (ऋग्वेद ८ ४४), यह दो सूक्त अग्नि को सम्बोधित हैं, इनके बाद जो दो सूक्त (ऋग्वेद ८ ४ - ४६) आते हैं वह इन्द्र का सम्बोधित हैं ।

अब कानीत पृथुश्रवस ने वश अश्व्य को जो कुछ दान में दिया था उसकी ‘आ स’ (ऋग्वेद ८ ४६, २१-२४) से आरम्भ ऋचाओं में स्तुति की गई है । ‘आ ना’ से आरम्भ प्रगाध ऋचाय (ऋग्वेद ८ ४६, २५-२८), तथा इन सूक्त की अन्तिम के पूर्व की एक ऋचा (ऋग्वेद ८ ४६ ३२) भी वायु को सम्बोधित है ।

२७-ऋग्वेद ८ ४७-५६ के देवता

मित्रार्यमाणौ मरुतः सुनीथो य दृष्ट्वे स्तुताः ।
द्विचत्वारिशकात्प्रीतस् त्रिशोकाय पुरंदरः ॥ ८१ ॥
गिरि निकृत्य वज्रेण गा दशवसुरैर्हृताः ।
यः कृन्तदिति चैतस्याम् ऋषिस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

‘सुनीथो य’ से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ४६, ४-५) में मित्र अर्यमन् और मरुतों की स्तुति है ।

बयालीस ऋचाओं से युक्त सूक्त (ऋग्वेद ८ ४५) से प्रसन्न होकर पुरंदर (इन्द्र) ने अपने वज्र से पवत को तोड़ते हुये असुरों द्वारा अपहृत गाये त्रिशोक को दे दीं । स्वय इम ऋषि ने ही इसका ‘य कृन्तत्’ (ऋग्वेद ८ ४५, ३०) ऋचा में वर्णन किया है ।

स्तुता नवम्या त्वदितिर् महीत्यादित्यदैवते ।
अन्त्या मञ्चोषसेऽपि स्युः सौम्यं स्वादोरिति स्मृतम् ॥

‘महि’ सूक्त (ऋग्वेद ८ ४७) क, जिसके देवता आदित्य हैं, नवीं ऋचा में अदिति की स्तुति है । अन्तिम पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ४७, १४-१८) को उषस् की भी सम्बाधित मानना चाहिये । स्वादो’ (ऋग्वेद ८ ४८) का सीम को सम्बाधित माना गया है ।

पराण्यष्टौ तु सूक्तानि ऋषीणा तिग्मतेजसाम् ।
ऐन्द्राण्यत्र तु षड्विंशः प्रगाथो बहुदैवतः ॥ ८४ ॥

अब बाद के अति तेजस्वी ऋषियों के आठ सूक्त (ऋग्वेद ८ ४९-५६) इन्द्र को सम्बाधित हैं, किन्तु यहाँ छःवीसवीं प्रगाथ द्विऋचायें (ऋग्वेद ८ ५४, ३-४) अनेक देवताओं को सम्बाधित हैं ।

२८-ऋग्वेद ८ ६०-६७ के देवता ।

ऋगन्त्याग्नेरचेत्यग्निः सूर्यमन्त्यं पद जगौ ।
प्रस्कण्वश्च पृषधस्य प्रादाद्यद्वस्तु किचन ॥ ८५ ॥
तद्भूरीदिति सूक्ताभ्याम् अखिलं त्विह संस्तुतम् ।
ऐन्द्राण्युभयमित्यत्र षळाग्नेयात्पराणि तु ॥

निपातमाह देवानां दाता म इति भागुरिः ॥ ८६ ॥

ऋच यास्कस्तृचं त्वेतं मन्यते वैश्वदेवतम् ।

आदित्यदैवतं सूक्त त्यान्वित्यत्र परं तु यत् ॥ ८७ ॥

अन्तिम 'अचेत्' अग्नि (ऋग्वेद ८ ५६, ५) ऋग् अग्नि का सम्बोधित है, जिसके अन्तिम पाद में सूय का गायन है । प्रस्कण्व ने जो कुछ भी धन पूषण को दिया उस सब का 'भूरीत्' से आरम्भ दो सूक्ता (ऋग्वेद ८ ५५-५६) में स्तुति है ।

अब अग्नि को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद ८ ५०) के बाद यहाँ 'उभयम्' से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित छ सूक्त (ऋग्वेद ८ ६१-६६) आते हैं ।

भागुरि का कथन है कि दाता में (ऋग्वेद ८ ६५, १७) में देवताओं का नैपतिक उल्लेख है, फिर भी, यास्क ने इन तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ६५ १०-१२) को विश्वदेवों को सम्बोधित माना है । किन्तु यहाँ अब जो 'थ्यान् तु' (ऋग्वेद ८ ६७) से आरम्भ सूक्त आता है उसके देवता आदित्य-गण है ।

धीवराः सहसा मीनान् हृष्ट्वा सारस्वते जले ।

जालप्रक्षिप्य तान्बद्धोद् अक्षिपन्सलिलात्स्थलम् ॥ ८८ ॥

धीवरों ने सरस्वती के जल में मछलियों देखकर उसमें जाल डाला और मछलियों को पकड़कर उन्हें जल के बाहर सूखी भूमि पर फेंक दिया ।

शरीरपातभीतास्ते तुष्टुबुश्चादितेः सुतान् ।

मुमुचुस्तास्ततस्ते च प्रसन्नास्तान् समुदिरे ॥ ८९ ॥

धीवराः क्षुद्रयं मा वो भूत् स्वर्गं प्राप्स्यथेति च ।

उतेति माता तत्रैषा तृचेनाभिष्टुतादितिः ॥ ९० ॥

और उन्होंने (मछलियों ने) शरीर के गिरने से भयभीत होकर अदिति के पुत्रों का स्तुति की । तब आदित्यों ने उन्हें मुक्त कर दिया और धीवरों से प्रसन्नतापूर्वक यह कहने लगे वार्तालाप किया कि हे धीवरों ! तुम से भयभीत मत होओ, तुम लोग स्वर्ग प्राप्त करोगे ।

'तत्र' से आरम्भ सूक्त (ऋग्वेद ८ ६७) में 'उत्' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ६७, १०-१२) में इन आदित्यों की माता अदिति की स्तुति है ।

१५-ऋग्वेद ८ ६८-७५ के देवता

मातृत्वादभिसंबन्धात् स्तूयेतैषां स्तुतौ स्तुतौ ।

ऐन्द्राण्या त्वा रथं त्रीणि स्तौत्यृतुनुप मेति षट् ॥ ९१ ॥

यत यह उसकी माना है अतः इस सम्बन्ध के कारण उनमें (आदित्यों से) सम्बद्ध प्रत्येक स्तुति में इनकी (अदिति को) भी स्तुति हो सकती है । 'आ त्वा रथम्' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८ ६८-७०) इन्द्र को सम्बोधित हैं, 'उप मा षट्' ऋचा (ऋग्वेद ८ ६८, ६४) में ऋतुओं की स्तुति है ।

ऋक्षांश्चमेधयोरत्र पञ्च दानस्तुतिः पराः ।

अपादिन्द्रस्य चाग्नेश्च विश्वेषा चैव संस्तवः ॥ ९२ ॥

दृचस्य प्रथमोऽर्घ्यः शेषो वरुणदैवतः ।

त्वमाग्नेयेऽथवा सूक्तम् उत्तरं हविषां स्तुतिः ॥ ९३ ॥

पयः पश्वोषधाना च तथारूप हि हृद्यते ।

उदित्याश्विनमाग्नेये परे सूक्ते विशोविशः ॥ ९४ ॥

एक सूक्त का पौत्र बाद का ऋचायें (ऋग्वेद ८ ६८, १ - १९) ऋक्ष और अश्वमेध की दान-स्तुतियाँ हैं । 'अपात्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ६९ ११-१२) का प्रथम अर्घ्य ऋचा में इन्द्र, अग्नि, और विश्व देवों की स्तुति है, इन ऋचाओं के शेषांश के देवता वरुण है । 'त्वम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ८ ७१-७२) अग्नि को सम्बोधित हैं, अथवा यह बाद का सूक्त (७२ वीं) हवि, दूध, पशु और ओषधि की स्तुति करता है, क्योंकि इसकी ऐसी ही प्रकृति दृष्टिगत होती है । 'उत्' (ऋग्वेद ८ ७३) अश्विनों को सम्बोधित है । 'विशो विश' से आरम्भ दो बाद के सूक्त (ऋग्वेद ८ ७४-७५) अग्नि को सम्बोधित हैं ।

ऋग्भ्यामहमिति द्वाभ्यां स्तौत्यात्मानमृषिः स्वयम् ।

आत्मानमात्मना स्तुत्वा स्तौति दानं श्रुतवर्णः ॥ ९५ ॥

आत्मादानाभिसंबन्धात् परुष्णीं च महानदीम् ।

परया परुष्णीमिन्द्रं त्रिभिः सूक्तैरिमं न्विति ॥ ९६ ॥

'अहम्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ७४, १३-१४) में ऋषि ने अपनी स्तुति की है ।

अपनी स्तुति करके वह श्रुतबन् के दान की, और उसने जो कुछ पाया है उसके सम्दर्भ में महान नदी परुष्णी की स्तुति करता है ।

बाद की ऋचा (ऋग्वेद ८ ७४, १५) से परुष्णी की स्तुति करता है और 'हम तु' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद ८ ७९-७८) में इन्द्र की स्तुति है ।

अयं कृत्स्नुरिवं सोम्य त्रीण्यैन्द्राणि पराण्यतः ।

नहीति तेषां प्रथम वैश्वदेव्युगवीवृधत् ॥ ९७ ॥

'अयं कृत्स्नु' (ऋग्वेद ८ ७९) सोम को सम्बोधित है । हमने बाद 'नहि' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८ ८०-८२) इन्द्र को सम्बोधित हैं । इनमें से प्रथम की 'अवीवृधत्' से आरम्भ ऋचा (१० वीं) विश्वेद्वों को सम्बोधित है ।

देवानामिति देवाना प्रेष्टमाग्नेयमुत्तरम् ।

त्रीण्यादिवनात्याम इति ऐन्द्राणि तमितीति च ॥ ९८ ॥

'देवानाम्' (ऋग्वेद ८ ८३) देवों को समर्पित है, हमने बाद 'प्रेष्ठम्' (ऋग्वेद ८ ८४) अग्नि को सम्बोधित है । 'आ मे से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८ ८५-८७) अश्विनों का सम्बोधित हैं, और इसी प्रकार तम् से आरम्भ तीन (ऋग्वेद ८ ८८-९०) इन्द्र का सम्बोधित हैं ।

२१-अपाला की कथा

अपालात्रिमुता त्वासीत् कन्या त्वग्दोषिणी पुरा ।

तामिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा विजने पितुराश्रमे ॥ ९९ ॥

एक समय अत्रि की पुत्री अपाला नामक कन्या हुई जो चर्मरोग से ग्रस्त थी । उसके पिता के निर्जन आश्रम में उसे देखकर इन्द्र उस पर आसक्त हो गये ।

तपसा बुबुधे सा तु सर्वमिन्द्रकीर्षितम् ।

उदकुम्भं समादाय अपामर्धे जगाम सा ॥ १०० ॥

वह तप के द्वारा इन्द्र की समस्त इच्छाओं को जान गई । जलकुम्भ लेकर वह पानी लाने के लिये गई ।

दृष्ट्वा सोममपामन्ते तुष्टावर्चा वने तु तम् ।

कन्या वारिति चैतस्याम् एषोऽर्थः कथितस्ततः ॥ १०१ ॥

अल के किनारे सोम को देखकर उसने वन में एक ऋचा से उनकी स्तुति की। 'कन्या वा' (ऋग्वेद ८ ९१, १) में इस विषय का वर्णन है।

सा सुषाव मुखे सोमं सुत्वेन्द्रं चाजुहाव तम् ।
असौ य एषीत्यनया पपाधिन्द्रश्च तन्मुखात् ॥ १०२ ॥
अपूपांश्चैव सक्तूश्च भक्षयित्वा स तद्गृहात् ।
ऋग्भिस्तुष्टाव सा चैनं जगादैर्न तृचेन तु ॥ १०३ ॥
सुलोमामनवयाङ्गीं कुरु मां शक्र सुत्वचम् ।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतस्तेन पुरन्दरः ॥ १०४ ॥

उसने सोम को अपने मुख में दबाया, और उसे दबाकर असौ य एषि' (ऋग्वेद ८ ९१, २) ऋचा से इन्द्र का आवाहन किया, और इन्द्र ने उसके गृह पर अपूप और सक्तु खाने के बाद उसके मुख से उसका (सोम का) पान कर लिया। और उसने (अपाला ने) उनकी एक ऋचा से स्तुति की, किन्तु तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ९१, ५-६) द्वारा उन्हें सम्बोधित करते हुये इस प्रकार कहा 'हे शक्र ! मुझे सुलोम और दोषरहित अङ्गी तथा श्रेष्ठ त्वचा वाला बनाओ।' उसक इस वचन को सुनकर पुरन्दर उससे प्रसन्न हुये।

२२-अपाला की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद ८ ९२-९३ के देवता
रथछिद्रेण तामिन्द्रः शकटस्य युगस्य च ।
प्रक्षिप्य निश्चर्षं त्रिः सुत्वक् सातु ततोऽभवत् ॥ १०५ ॥

गाड़ी और जूये के बीच के छिद्र से उसे प्रक्षिप्त करते हुये इन्द्र ने उसे तीन बार बाहर खींचा जिससे वह सुन्दर त्वचावाली हो गई।

तस्यास्त्वगपहता या पूर्वा सा शल्यकोऽभवत् ।
उत्तरा त्वमवद्गोधा कृकलासस्त्वगुत्तमा ॥ १०६ ॥

उसकी प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक बन गई, किन्तु दूसरी गोधा (बक-वाल) और अग्निम कृकलास (नेवला)।

इतिहासमिदं सूक्तम् आहुर्यास्कभागुरी ।
कन्येति शौनकस्त्वेन्द्रं पान्तमित्युत्तरे च ये ॥ १०७ ॥

पास्क और भागुरी इस सूक्त को एक इतिहास कहते हैं, जब कि शौनक

‘कन्या (ऋग्वेद ८ ९१) सूक्त को तथा ‘पाम्तम्’ से आरम्भ बाद में आने वाले दो सूक्तों (ऋग्वेद १ ९२-१३) को इन्द्र को सम्बोधित मानते हैं।

उत्तमा त्वार्भवी प्रीक्ता उत्तरस्यैतरेयके।

छान्दोमिके तृतीये तद् आर्भवं शस्यते यतः ॥१०८॥

किन्तु बाद वाले सूक्त की अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ८ ९३, ३४) को ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ में ऋभुओं को सम्बोधित कहा गया है, क्योंकि छन्दोम के तृतीय दिन इस ऋचा का ऋभुओं को सम्बोधित होने का रूप में गायन किया जाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण ५ २१, २२ तु० की सर्वानुक्रमणी ‘अन्त्येन्द्राभवी।

२३ देवों के पास से सोम के पलायन की कथा।

मारुतं गौः परं सूक्तम् आत्वैन्द्राणि पराणि षट्।

सूक्ते द्वितीय एतेषाम् इतिहास प्रचक्षते।

अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयादितः ॥१०९॥

नदीमंशुमतीं नाम्ना अभ्यतिष्ठत्कुरुन्प्रति।

त बृहस्पतिनैकेन अभ्यवाद्वृत्रहा सह ॥११०॥

योत्स्यमानः सुसंहृष्टैर् मरुद्भिर्विविधायुधैः।

दृष्ट्वा तानायतः सोमः स्वबलेन व्यवस्थितः ॥१११॥

मन्वानो वृत्रमायान्तं जिघांसुमरिसेनया।

व्यवस्थितं धनुष्मन्तं तमुवाच बृहस्पतिः ॥११२॥

मरुत्पतिरयं सोम एहि देवान्पुनर्विभो।

श्रुत्वा देवगुरोर्वाक्यम् अनर्थं वृत्रशङ्कया ॥११३॥

सोऽब्रवीन्नेति तं शक्रः स्वर्ग एव बलाद्वली।

इयाय देवानादाय तं पपुविधिवत्सुराः ॥११४॥

(‘गौ’ से आरम्भ बाद का सूक्त (ऋग्वेद ८ ९४) मरुतों को सम्बोधित है, इसके बाद ‘आ एवा’ से आरम्भ छ (ऋग्वेद ८ ९५-१००) इन्द्र को सम्बोधित हैं। इनमें से द्वितीय सूक्त (ऋग्वेद ८ ९६) में इन लोगों के कथनानुसार एक इतिहास (कथा) है।

वृत्र के अंग से प्रस्त होकर सोम देवों के पास से भाग गये और कुहओं के प्राग्त में स्थित अशुमती नामक नदी में निवास करने लगे। केवल बृहस्पति को लेकर वृत्रहन् (इन्द्र) उस समय उनके (सोम के) पास आये जब वह (इन्द्र) विविध आयुधों से युक्त होकर और अत्यन्त हर्षित मरुतों के सहित युद्ध के लिये उद्यत थे। इन लोगों को आते देखकर सोम ने वह विचार करते हुये कि उनका बध करने के लिये अपनी आक्रामक सेना सहित वृत्र ही आ रहा है, वह (सोम) अपनी सेना के साथ व्यवस्थित हो गये। धनुष से युक्त और व्यवस्थित देखकर उसको बृहस्पति ने कहा। 'हे सोम ! यह मरुतों के स्वामी हैं, हे प्रभो ! तुम पुन देवताओं के पास चले जाओ।'।

देवताओं के गुरु का वचन सुनकर, जो कि उन्हें वृत्र की शङ्का होने के कारण अनर्थ प्रतीत हुई, उन्होंने कहा कि 'नहीं'। तब बलवान शक्र उनको बलपूर्वक साथ लेकर देवों के पास स्वर्ग चले गये। तब देवों ने उनका विधि वत् पान किया।

२४-सोम के पलायन की कथा (क्रमशः)।

जघनुः पीत्वा च दैत्यानां समरे नवतीर्नव ।

तदेतदप्यवेत्यस्मिन् तृचे सर्वं निगद्यते ॥ ११५ ॥

और उनका (साम का) पान करने के बाद उन लोगों ने युद्ध में नौ बार नवों दैत्यों का बध किया। इन सबका 'अव' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ९६, १३-१५) में उल्लेख है।

^१ गु० की० ऊपर ६ ५१, नीचे ७ ५१।

इन्द्रं च मरुतश्चैव तथैव च बृहस्पतिम् ।

तृचस्य देवता ह्येता इन्द्रमेवाह शौनकः ॥ ११६ ॥

ऋषि ने इन्द्र और मरुतों, और बृहस्पति की भी स्तुति की है। क्योंकि इस तीन ऋचाओं के देवता यही लोग हैं, शौनक का कथन है कि यहाँ केवल इन्द्र ही देवता हैं।

ऐन्द्रावार्हस्पत्य उक्तो ब्राह्मणे त्वैतरेयके ।

तृचेनेन्द्रमपश्यंस्तं नेमोऽयमिति भार्गवः ॥ ११७ ॥

किन्तु ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ से इन्हें (उक्त तीन ऋचाओं को) इन्द्र-बृहस्पति को सम्बोधित कहा गया है।

‘अयम्’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, १-३) में ऋगु ने पृथ नेम ने बिना देखे ही इन्द्र की स्तुति की है ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ६ ३६, १२ ।

तुष्टावेन्द्रो बृचेनायम् अहं पश्य च मामृषे ।

स हि स्तुबन्नेम एकोनेन्द्री अस्तोति चाब्रवीत् ॥११८॥

और इन्द्र ने तब ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, ४-५) में कहा ‘मैं यहाँ हूँ, हे ऋषि’, मुझे देखो ।’

क्योंकि (इन्द्र की) स्तुति करते समय अकंठे होने के कारण नेम ने यह भी कहा था कि ‘इन्द्र नहीं है ।’

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ १००, ४ ‘अयम् अस्मि जरित पश्य माह ।

२५-ऋग्वेद ८ १०० सबन्धी विवरण । विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता

तदाकण्येन्द्र आत्मानम् ऋग्भ्यां तुष्टाव दर्शयन् ।

ऋषिस्त दृष्ट्वा सुप्रीतो विश्वेत्ता त इति ब्रुचे ॥११९॥

विविधानि च कर्माणि दानमैन्द्र च शंसति ।

मनोजवास्तु सौपर्णी समुद्रं वज्रसस्तवः ॥१२०॥

उसे सुनकर इन्द्र ने अपने का प्रकट करते हुए दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, ४-५) द्वारा स्वयं अपनी स्तुति की ।

उनको देखकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और ‘विश्वेत्ता ते’ से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, ६-७) में इन्द्र के दान और उनके विविध कर्मों की प्रशंसा की । किन्तु ‘मनोजवा’ (ऋग्वेद ८ १००, ८) सुपर्ण को सम्बोधित है, जब कि ‘समुद्र’ (ऋग्वेद ८ १००, ९) में वज्र की स्तुति है ।

वाचं सर्वगतां देवीं स्तौति यद्वागिति ब्रुचे ।

त्रील्लोकानभितप्येमान् वृत्रस्तस्थौ स्वया त्विषा ॥१२१॥

‘यद् वाक्से’ आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, १०-११) में उन्होंने विष्य और सर्वव्यापी वाच की स्तुति की है ।

इन तीनों को व्रत करते हुए अपने क्रोध के कारण वृत्र अभिजित रहा ।

तं नाशकद्वन्तुमिन्द्रो विष्णुमभ्येत्य सोऽब्रवीत् ।

वृत्रं हनिष्ये तिष्ठस्व विक्रम्याथ ममान्तिके ॥१२२॥

इन्द्र उसका बंध करने में समर्थ नहीं हो सके। शिशु के पाप जाकर उन्होंने कहा, 'मैं बृह का बंध करना चाहता हूँ, पराक्रम से युक्त होकर आप समीप खड़े हों।

उद्यतस्यैव वज्रस्य द्यौर्ददातु ममान्तरम्।

तथेति विष्णुस्तच्चक्रे द्यौश्चास्य विवरं ददौ ॥ १२३ ॥

'द्यौस् (आकाश) मेरे उद्यत हुये वज्र को स्थान दें।' तब 'हौं' कहते हुए विष्णु ने वैसा ही किया और द्यौस् ने उन्हें स्थान दिया।

२६-ऋग्वेद ७ १०१ के देवताओं से सबन्धित विवरण

तदेतदग्निलं प्रोक्त सखे विष्णविति त्वृचि।

मैत्रावरुण्यः सूक्ताद्याश् चतस्रस्तृधगित्यृचः ॥१२४॥

प्रेति मित्राय पादाश्च अर्यम्णो वरुणस्य च।

त्रयश्चतुर्थः सर्वेषाम् आदित्यानामिति स्तुतिः ॥१२५॥

इन सबका 'सखे विष्णो' (ऋग्वेद ८ १००, १२) ऋचा में वर्णन है। किन्तु 'ऋचक्' से आरम्भ सूक्त की प्रथम चार ऋचायें (ऋग्वेद ८ १०१, १-४) मित्र वरुण को सम्बोधित हैं, और 'प्र' से आरम्भ ऋचा (ऋग्वेद ८ १०१, ५) के तीन पाद मित्र, अयमन्, और वरुण' को, तथा चतुर्थ पाद समस्त आदित्या को सम्बोधित है यहाँ ऐसी स्तुति है।

^१ सर्वांशुकमणी के अनुसार केवल मित्र और वरुण को सम्बोधित।

परा त्वादित्यदेवत्या आ म इत्यश्विनो द्वचः।

वायव्ये सौर्ये उपस्था प्रभां वा चन्द्रसूर्ययोः ॥१२६॥

किन्तु बाद की ऋचा (ऋग्वेद ८ १०१, ६) के देवता आदित्य गण हैं। 'आ से' से आरम्भ दो ऋचायें (ऋग्वेद ८ १०१, ७-८) अश्विनों को सम्बोधित हैं, इसक बाद दो (९-१०) वायु की, दो (११-१२) सूर्य को, एक (१३) उपस् को सम्बोधित है, अथवा ऋचि यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश की स्तुति करता है।

पावमानी प्रजा हेति मातेत्यृग्भ्यां तु गौ स्तुता।

त्वमग्ने बृहदाग्नेये परेऽग्निस्तृचि संस्तुता ॥ १२७ ॥

मरुद्भिः सह रुद्रैश्च आग्ने याहीति मध्यमः ।
 प्रजा हेत्यपि वार्षर्चे प्रथमेऽग्निरिहोच्यते ॥ १२८ ॥
 पादे तृतीय आदित्यस् तुरीये मध्यम स्तुतः ।
 रुहस्ये ब्राह्मणेऽप्येवं व्याख्यतं ह्यौतरेयके ॥ १२९ ॥

‘प्रजा ह’ (ऋग्वेद ८ १०१, १४) पवमान को सम्बोधित है, जब कि ‘माता’ से आरम्भ दो ऋचाओं (११-१६) में गाय की स्तुति है । ‘त्वम् अग्ने बृहत्’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ८ १०२-१०३) अग्नि को सम्बोधित हैं । किन्तु इस वाद के सूक्त की एक ऋचा, अग्ने याहि’ (ऋग्वेद ८ १०३, १४) में मरुतों और रुद्रों के साथ मध्यम अग्नि की स्तुति है ।

अथवा ‘प्रजा ह’ (ऋग्वेद ८ १०१, १४) को प्रथम अर्ध-ऋचा में यहाँ अग्नि का नाम है, तथा तृतीय पाद में सूर्य और चतुर्थ में मध्यम अग्नि की स्तुति है क्योंकि ऐतरेय^१ में इसकी ऐसी ही व्याख्या है ।

^१ अर्थात् ऐतरेय आरण्यक २ १ ।

नवम मण्डल

२३-ऋग्वेद ९ १-८६ के देवता

पवमान स्तुतः सोमो नवमे त्विह मण्डले ।

पवमानवदाम्यस्तु समिद्ध इति संस्तुताः ॥ १३० ॥

अब यहाँ नवम मण्डल से सोम पवमान की स्तुति है । ‘समिद्ध’ (ऋग्वेद ९ ५) में पवमान की ही भाँति आग्नी देवों की स्तुति है ।

^१ तु० कौ० सर्वानुक्रमणी ‘नवम मण्डलं पवमान सौम्यम् ।’

अन्न आयूषीति चासु तिसृष्वग्निर्निपातभाक् ।

अविता न इति त्वस्मिस्तृचे पूषणा सह स्तुतः ॥ १३१ ॥

और ‘अन्न आयूषि’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ९ ६६, १९-२१) में अग्नि निपातभाक् है, जब कि ‘अविता’ न’ य आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ९ ६७, १०-१२) में उनकी (पवमान की) पूषन् के साथ स्तुति है ।

आग्नय्यौ द्वे ऋचावन्न यत्त इत्युत्तरे ततः ।

उभाभ्यामिति सावित्री आग्निसाविध्युगुत्तरा ॥ १३२ ॥

फिर इस सूक्त में ‘यत्त ते’ से आरम्भ दो वाङ् की ऋचायें (ऋग्वेद ९

६७, २३-२४) अग्नि को सम्बोधित हैं, 'उभाश्याम्' (ऋग्वेद ९ ६७, २५) सवितु को सम्बोधित है और इसके बाद की ऋचा (२६) अग्नि तथा सवितु को ।^१

^१ सर्वानुक्रमणी के अनुसार २५ वीं ऋचा के देवता अग्नि अथवा सवितु, और २६ वीं के अग्नि और सवितु हैं ।

पुनन्तु मा वैश्वदेवी आग्नेयी त्वृगुप प्रियम् ।

उत्तरे च व इत्येते स्वाध्यायाध्येतृसंस्तवः ॥ १३३ ॥

'पुनन्तु मा' (ऋग्वेद ९ ६७, २७) विश्वदेवी को सम्बोधित है, जब कि 'उप प्रियम्' (ऋग्वेद ९ ६७, २९) अग्नि को सम्बोधित है, और 'व' से आरम्भ दो बाद की ऋचाओं (ऋग्वेद ९ ६७, ३१-३२) में स्वाध्यायाध्येतृ की स्तुति है ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'ते पावमान्य अध्येतु स्तुती ।

सूक्ते निरुक्ते स्रक्केऽग्नी रक्षोहा धर्मसस्तवः ।

सूर्यवच्चात्मवच्चापि पवित्रमिति चोच्यते ॥ १३४ ॥

'स्रक्' (ऋग्वेद ९ ७३) सूक्त को निरुक्त में रक्षोहन् अग्नि को सम्बोधित बताया गया है, और 'पवित्रम्' (ऋग्वेद ९ ८३) को सूर्य तथा आत्मा को व्यक्त करनेवाले के रूप में धर्म की स्तुति करनेवाला कहा गया है ।

^१ ऋग्वेद ९ ७३, ५ पर भाष्य करते हुए सायण ने 'अप बमन्ति' 'रवचन् असिक्नीम्' की 'राक्षसम् अपमन्ति' के रूप में व्याख्या की है ।

२८-ऋग्वेद ९ ८७ ९६ ११२ के देवता

आर्भवस्तु भवेत्पाद ऋभुर्धीर् इति स्मृतः ।

निपातैस्तु त्रिभिः पादैस् त्रयो देवा इहोदिताः ॥ १३५ ॥

ब्रह्मा देवानां तिस्रोक्तास् त्रिभिस्त्वेतैर्दूर्ध्वचैर्दूर्ध्वचैः ।

सूर्यवच्चात्मवच्चापि स्तूयते सोम एव वा ॥ १३६ ॥

'ऋभुर् धीर्' (ऋग्वेद ९ ८७, ३) पाद को ऋभुओं को सम्बोधित मानना चाहिए । यहाँ तीन पादों में तीन देवताओं का नैपातिक उल्लेख है । 'ब्रह्मा देवानाम्' (ऋग्वेद ९ ९६, ६) से आरम्भ दो दो (शब्दों)^२ के तीन पादों में तीन देवताओं का उल्लेख है, अथवा यहाँ सूर्य और आत्मा को व्यक्त करनेवाले के रूप में सोम की स्तुति है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ९ ९३, ६ ।

^१ ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ प्रत्येक पाद में दो दो शब्दों से तात्पर्य है, जैसे 'मक्षा देवानाम्', 'पद्मी कवीनाम्' 'ऋषिर् विमानाम्', 'महिषो मृगाणाम्', 'श्वेनो गृध्राणाम्', 'श्वधितिर् वनानाम्' ।

अनावृष्ट्यां तु वर्तन्त्यां पप्रच्छर्षीच्छचीपतिः ।

काले दुर्गे महत्यस्मिन् कर्मणा केन जीवथ ॥ १३७ ॥

अनावृष्टि के समय शचीपति ने ऋषियों से पूछा, 'इस महान रुकट के समय तुम किस कर्म से जीवित हो ?'

^१ तु० की० निरुक्त ६ ५ 'इदं ऋषीन् पप्रच्छ, दुर्भिक्षे केन जीवतीति, तेषां एक प्रत्युवाच'

शकट शाकिनी गावः कृषिरस्यन्दन वनम् ।

समुद्रः पर्वतो राजा एवं जीवामहे वयम् ॥ १३८ ॥

'गाड़ी, खेत, पशु, कुपि, न बहनेवाले जल, वन, समुद्र, पर्वत, राजा,— इन साधनों से हम जीवित हैं ।'

स्तुवन्नेव शशांसास्य ऋषिराङ्गिरसः शिशुः ।

नानानीयेन सूक्तेन ऋषीणामेव संनिधौ ॥ १३९ ॥

इन्द्र की स्तुति करते हुए अङ्गिरस के पुत्र शिशु ने अन्य ऋषियों की उपस्थिति में 'नानानाम्' (ऋग्वेद ९ ११२) सूक्त द्वारा उनसे यह बताया ।

२९-इन्द्र और ऋषि-गण । तप का माहात्म्य ।

तानिन्द्रस्त्वाह सर्वास्तु तपध्वं सुमहत्तपः ।

न ह्यते तपसः शक्यम् इदं कृच्छं व्यपोहितम् ॥ १४० ॥

उन सबसे इन्द्र ने कहा 'आप सब महान तप करें क्योंकि बिना तप के इस कष्ट का निवारण नहीं किया जा सकता ।'

अथ ते वै तपस्तेषुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः ।

ततस्ते तपसोऽग्रेण पावमानीर्ऋचोऽब्रुवन् ॥ १४१ ॥

स्वर्ग की आकांक्षा रखनेवाले उन सब ने तप किया । तब उग्र तप के परिणाम स्वरूप उन लो १ ने (सोम) पवमान से सम्बन्धित ऋचाओं का उच्चारण किया ।

अनसूयुरधीयानः शुश्रूषुस्तपसान्वितः ।

दश पूर्वापरान् वंदयान् पुनात्यात्मानमेव च ॥ १४२ ॥

जो ईर्ष्यालु नहीं है, जो अध्यवसायी, सेवी और तप करनेवाला है वह अपने दस पूर्वजों और वंशजों को तथा अपने को भी पवित्र कर देता है ।

पापं यच्चाकरोत्किञ्चन मनोवाग्देहभोजनैः ।

पूतः स तस्मात्सर्वस्मात् स्वाध्यायफलमश्नुते ॥ १४३ ॥

और मन वाणी, शरीर, और भोजन से उसने जो भी किया होता है—उस सबमे पवित्र हाकर वह स्वाध्याय का फल प्राप्त करता है ।

पावमान्यः परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् ।

गायत्र्योऽन्तेऽत्र यश्चासा प्राणानायम्य तन्मनाः ॥ १४४ ॥

पावमानं पितृन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् ।

पितृस्तस्योपवर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूवकम् ॥ १४५ ॥

पावमानी गायत्रियों^१ ही उज्ज्वल और सनातन उद्योतिरूप^२ परमब्रह्म हैं । जो अपने अन्त समय में प्राणायाम^३ करते हुए इनका ध्यान करता है और जो पावमान, पितरों, देवताओं और सरस्वती^४ का ध्यान करता है—उसके पितरों के समीप दूध, घृत, मधु और जल की धारा बहती है ।

^१ तु० की० ऋग्विधान १ १, १ 'स्वादिष्टयति गायत्री पावमानीर् जपेद् द्विज', तु० की० निरुक्त ५ २, ३ ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ९ ११३, ६ ७ 'यत्र ब्रह्मा यत्र ज्योतिर अजस्रम्' ।

^३ तु० की० ऋग्विधान १ ३, ५ प्राणान् आयम्य न ध्यायेद् अन्ते देवान् पितॄन् ऋषिन्' । तु० की० १ ४, २-३ भी ।

तु० की० ऋग्विधान् १ ३, ६ 'सरस्वतीं चाचंबोद् पयोऽम्बुमधुसपिषा', और १ २ ३ 'अथय च भवेद् दश पितृभ्य परम मधु ।'

एतत्सूक्तशतं सौम्य मण्डल सचतुर्दशम् ।

पावमानमिति ख्यातम् अनुवाकास्तु सप्त वै ॥ १४६ ॥

सोम को सम्बोधित एक सौ चौदह सूक्तों वाले इस मण्डल को पावमान कहा गया है, और इसमें सात अनुवाक हैं ।

दशम मण्डल

३०-ऋग्वेद १० १-८ के देवता । त्रिशिरस् और इन्द्र ।

सप्ताग्नेयानि सूक्तानि ददर्शाय इति त्रितः ।

प्र केतुनेति त्वाष्ट्रस्तु त्रिशिराः सूक्तमुत्तरम् ॥ १४७ ॥

त्रित ने 'अग्ने' से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित सात सूक्तों (ऋग्वेद १० १-७) का दशन किया, किन्तु त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरस् ने 'प्र केतुना' (ऋग्वेद १०, ८) से आरम्भ बाद के सूक्त का ।

ऋचस्त्वस्य षळाग्नेय्यस् तृचस्त्वस्येति यः परः ।

तेनेन्द्रमभितुष्टाय स्वप्रान्त इति नः श्रुतिः ॥ १४८ ॥

इस सूक्त की छ ऋचायें (ऋग्वेद १० ८, १-६) अग्नि को सम्बोधित हैं, जब कि 'अस्य' से आरम्भ बाद की तीन ऋचाओं (७-९) से इन्होंने एक स्वप्न के अन्त में इन्द्र की स्तुति की है—ऐसी हमारी श्रुति है ।

अभवन्स हि देवानां पुरोधाः प्रियकाम्यया ।

असुराणां स्वमुः पुत्रस् त्रिशिरा विश्वरूपधृक् ॥ १४९ ॥

असुरों की एक बहन के पुत्र होने के कारण विश्वरूप धारण कर सकने वाले त्रिशिरस् असुरों का लाभ चाहने की इच्छा से देवों के पुरोहित बन गये ।

तमृषि प्रहितं त्विन्द्रो देवेषु बुबुधेऽसुरैः ।

सोऽस्य वज्रेण तान्याशु शिरांसि त्रीण्यथाछिदत् ॥ १५० ॥

इन्द्र यह जान गये कि ऋषि (त्रिशिरस्) को असुरों ने ही देवों के बीच भेजा है । तब उन्होंने शीघ्रतापूर्वक उसके तीन शिरों को अपने वज्र से काट कर गिरा दिया ।

तस्य यत्सोमपानं तु मुख सोऽभूत्कपिञ्जलः ।

कलविक्कः सुरापाणम् अन्नादं तित्तिरिस्त्वभूत् ॥ १५१ ॥

जिस मुख से उसने सोमपान किया था वह कपिञ्जल बन गया, जिससे सुरापाण किया था वह कलविक्क बन गया, जब कि वह जिससे उसने भोजन किया था तित्तिरि बन गया ।

३१-ऋग्वेद १० ९-१४ के देवता

तं वागभ्यवदद्ब्राह्मी ब्रह्महासि शतक्रतो ।

प्रपन्नं हतवान्यस्माद् विश्वरूपं पराङ्मुखम् ॥ १५२ ॥

उन्हें (इन्द्र को) ब्राह्मी वाक् ने सम्बोधित किया 'तुम ब्रह्म हथियारे हो, हे शतक्रतु ! क्योंकि तुमने उस विश्वरूप का वध किया है जो पराङ्मुख होकर शरणागत था ।

तमभ्यसिञ्चत्सूक्तेन ऋषिराप इति स्वयम् ।

सिन्धुद्वीपोऽपनुत्त्यर्थं तस्याश्लीलस्य पाप्मनः ॥ १५३ ॥

उन्हें (इन्द्र को) स्वयं ऋषि सिन्धुद्वीप^१ ने 'आप' (ऋग्वेद १० ९) के साथ, उनके अश्लील पाप का निवारण करने के लिए, जल से अभिसिञ्चित किया ।

^१ ऋग्वेद १० ९ के दूसरे ऋषि का नाम देखिये आर्यानुक्रमणी १० ३, ऋग्वेद १० ९ पर सार्यानुक्रमणी ।

मैथुनार्थमभीप्सन्तीं प्रत्याचष्टे यमीं यमः ।

तदो चिदिति संवादो विवस्वत्सुतयोस्तयोः ॥ १५४ ॥

मैथुनार्थं निवेदन करनेवाली यमी को यम ने अस्वीकृत कर दिया 'ओ भित' (ऋग्वेद १० १०) में निहित विवस्वत् के उन दो पुत्रों के बीच संवाद इसका वर्णन करता है ।

वृषाग्नेये हविर्धाने युजे वामत्र संस्तुते ।

परेयिवांसमित्यत्र स्तूयते मध्यमो यमः ॥ १५५ ॥

'वृषा' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ११-१२) अग्नि को सम्बोधित हैं । 'युजे वाम' (ऋग्वेद १० १३) सूक्त में दो हविर्धानों की साथ साथ स्तुति है । 'परेयिवांसम्' (ऋग्वेद १० १४) में मध्यम यम^२ की स्तुति है ।

^१ जु० की० निरुक्त ११ १८ जहाँ ऋग्वेद १९ १५, १ के 'मध्यमा पितर' शब्दों पर टिप्पणी करते हुए दास्क इस प्रकार मत व्यक्त करते हैं 'माध्यमिको यम इत्य् आहुस्, तस्मान् माध्यमिकान् पितॄन् मन्यते ।'

अथर्वाणोऽथ भृगवोऽङ्गिरसः पितरः सह ।

षष्ठ्यां देवगणास्तत्र संस्तूयन्ते शुभक्तयः ॥ १५६ ॥

इसके बाद वहाँ (ऋग्वेद १० १४, ६) छठवीं ऋचा में अथर्वनों, ऋगुओं, अङ्गिरसों और पितरों की स्वर्गलोक से सम्बद्ध देवों के रूप में स्तुति है।

३२-ऋग्वेद १० १४ के देवता (क्रमशः) और १५ और १६ तीन अङ्गि

पितृभिश्चाङ्गिरोभिश्च संस्तुतो हृद्यते यमः ।

मन्त्रेषु बहुशः पादे विवस्वन्त पिता हि सः ॥१५७॥

मन्त्रों में यम की अक्सर पितरों और अङ्गिरसों के साथ स्तुति दिखाई देती है, क्योंकि 'विवस्वन्तम्' (ऋग्वेद १० १४, ५) से आरम्भ पाद में यह स्वयं एक पिता हैं।

संस्कार्यप्रेतसंयुक्तैः पितृभि स्तूयते यमः ।

प्रेहि प्रेहिति तिसृषु प्रेताशिष उदाहृताः ॥ १५८ ॥

यम की संस्कार्य प्रेतात्मा के साथ संयुक्त पितरों के साथ स्तुति होती है। 'प्रेहि प्रेहि' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १४, ७-९) में प्रेतों की स्तुतियाँ उद्धृत हैं।

पितृणां हि पतिर्देवो यमस्तस्मात्स सूक्तभाक् ।

अति द्रव तृचे श्वानौ परं पित्र्यमुदीरताम् ॥१५९॥

यह देवता पितरों के अधिपति हैं, अतः यह सूक्तभाज हैं।

'अति द्रव' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १४ १०-१२) में दो कुत्तों की स्तुति है। 'उद् ईरताम्' (ऋग्वेद १० १५) सूक्त पितरों को सम्बोधित है।

उत्तरेण तु सूक्तेन श्मशाने कर्म शंसति ।

पितृदेवासुराणां च अभवन्नश्रयस्त्रयः ।

हव्यकव्यवह्नौ चोभौ सहरक्षश्च नाम यः ॥ १६० ॥

किन्तु बाद के सूक्त में ऋषि ने श्मशान कर्म की प्रशंसा की है।

पितरों, देवों और असुरों से सम्बद्ध तीन अग्नि थे दो वह जो हव्य और कव्य के वाहक हैं, और एक वह जिसे सहरक्षस् कहते हैं।

तत्र मैनमिति त्वेतत् कव्यवाहनसस्तुतिः ।

इतराणि तु दैवस्य स्तुतिर्नास्यासुरस्य च ॥ १६१ ॥

इसके सम्बन्ध में 'मैनम्' (ऋग्वेद १० १६) सूक्त कश्यपाहक की स्तुति करता है । फिर भी, अन्य सूक्त इस (पितरों से सम्बद्ध) अथवा आसुर अग्नि की नहीं बरन् दिव्य अग्नि की स्तुति करते हैं ।

३३-सरण्यू की कथा : ऋग्वेद १० १७

अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्यून्निशिराः सह ।

स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ॥ १६२ ॥

स्वष्टा के दो यमज, सरण्यू तथा निशिरस, नामक सम्माने थीं । स्वय उन्होंने (स्वष्टा ने) ही सरण्यू का विवाह में विवस्वत् को दे दिया था ।

ततः सरण्यूवा जज्ञाते यमस्ययौ विवस्वतः ।

तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायास्ताभ्यातु वै यमः ॥ १६३ ॥

तब सरण्यू से विवस्वत् द्वारा यम और यमी का जन्म हुआ । यह दोनों भी यमज थे, कि तु इन दोनों में यम उगेष्ट थे ।

॥ इति बृहद्देवतायां षष्ठोऽध्यायः ॥



१-सरण्यू की कथा (क्रमशः)

सुष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियम् ।

निक्षिप्य मिथुनं तस्याम् अश्वः भूत्वापचक्रमे ॥ १ ॥

अब अपने पति की अनुपस्थिति में सरण्यू ने अपने समान ही एक स्त्री की सृष्टि करके तथा उसे ही यमजों को दे कर अपने को अश्व बना लिया और चली गई ।

अविज्ञानाद्विवस्वास्तु तस्यामजनयन्मनुम् ।

राजर्षिरभवत्सोऽपि विवस्वानिव तेजसा ॥ २ ॥

किन्तु अनभिज्ञतावश विवस्वन् ने इसी (स्थानापन्न) से मनु को उत्पन्न किया । (मनु) भी विवस्वत् के समान तेजवाले एक राजर्षि बने ।

स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्यूमश्वरूपिणीम् ।

त्वष्ट्री प्रति जगामाशु वाजी भूत्वा सलक्षणः ॥ ३ ॥

फिर भी, जब वह (विवस्वत्) यह जान गये कि सरण्यू एक अश्वी के रूप में चली गई है, तब वह भी अपने को सलक्षण अश्व के रूप में परिणत करके शीघ्रतापूर्वक त्वष्टा की पुत्री के पीछे चले ।

सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा ह्यरूपिणम् ।

मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारोह सः ॥ ४ ॥

और अश्व के रूप में विवस्वत् को पहचान कर सरण्यू ने उनसे मैथुन का आग्रह किया, और उन्होंने (विवस्वत् ने) उस पर वहीं आरोहण किया ।

ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि ।

उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वः तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ॥ ५ ॥

तब उन लोगों के उद्दीपन के कारण शुक्र भूमि पर गिर पड़ा, और सन्तान की इच्छा के कारण उस अश्वी ने शुक्र को सूँघा ।

२-सरण्यू की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० १७ के देवता

आघातमात्राच्छुक्रात्तु कुमारौ संवभूवतुः ।

नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावश्विनाविति ॥ ६ ॥

तब उस शुक से, जिसे उसी समय सूँघा गया था, दो कुमार, नासत्य और वज्र, प्रकट हुये जिन ही 'अग्नि'ों के रूप में स्तुति की जाती है।

इतिहासमिमं यास्कः सरण्यूदेवते ब्रूचे।

विवस्वतश्च त्वष्टुश्च त्वष्टेति सह मन्यते ॥ ७ ॥

यास्क ने 'स्वष्टा' से आरम्भ उन दो ऋचाओं (ऋग्वेद १० १७, १-२) में हुये विवस्वत् और त्वष्टृ की कथा' माना है जिनकी देवता सरण्यू है।

^१ तु० की यास्क निरुक्त १२ १० 'तवेतिहासम् आचक्षते'।

पूर्वेति पादौ पौष्णौ द्वाब् आग्नेयावुत्तरौ तु यौ।

स्यात्तृतीयोऽपि वा पौष्णस् तिस्रश्चान्याः परास्तु याः ॥ ८ ॥

'पूषा' (ऋग्वेद १० १७, ३) से आरम्भ दो पाद पूषन् को सम्बोधित हैं, किन्तु इसके बाद के दो अग्नि को, तृतीय पाद को भी वैकल्पिक रूप से पूषन् को सम्बोधित किया जा सकता है; और जो तीन ऋचायें (ऋग्वेद १० १७, ४-६) बाद में आती हैं वह भी इन्हें ही सम्बोधित हैं।

अपां स्तुतिस्त्वृगत्रैका तृचात्सारस्वतात्परा।

स्तुतः परोक्षः सोमस्तु द्रप्स इत्युत्तरे तृचे ॥ ९ ॥

किन्तु सरस्वती को सम्बोधित तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १७, ७-९) के बाद इस सूक्त में जो ऋचा जाती है उसमें जलों की स्तुति है, जब कि 'द्रप्स' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १७, ११-१३) में सोम की परोक्ष स्तुति है।

अग्देवताशीर्वादो वा पयस्वत्युत्तरा तु या।

चतस्रस्तास्तुतिर्मृत्योर् अन्त्ये क्लृप्ताश्च कर्मणि ॥ १० ॥

किन्तु 'पयस्वती' से आरम्भ बाद की ऋचा (ऋग्वेद १० १७, १४) के देवता जल हैं, अथवा यह आशीर्वाद है। बाद की चार^१ ऋचाओं (ऋग्वेद १० १८, १-४) में मृत्यु की स्तुति है, और ये अन्त्येष्टि कर्म में व्यवहृत हो सकती हैं।

^१ तु० की० सर्वाङ्कनणी चतस्रो मृत्युदेवता^१, आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ६, १०।

३-ऋग्वेद के १० १८, अन्त्येष्टि सूक्त का विस्तृत विवरण

मृतशिष्टेभ्य आशास्ते इमे ज्योग्जीवनं पुनः।

इमं जीवेभ्य आशास्ते तेभ्यः परिधिकर्मणि ॥ ११ ॥

‘इमे’ (ऋग्वेद १० १८, ३) ऋचा ऐसों के लिये दीर्घावुष्य का आशीस है जो मृत्यु से बच गये हों, ‘इमे जीवेभ्य’ (ऋग्वेद १० १८, ४) पुन इन्हीं लोगों को परिधि कर्म में आशीस देता है ।

१ ऋग्वेद १० १८, ४ ‘इम जीवेभ्य परिधि दधामि, तु० की० सायण, आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ६, ९ ।

यथा धान्युत्तरा त्वाष्ट्री ततो यान्या इमास्त्विति ।

स्त्रीणामाशिषमाशास्ते तयैवाञ्जनकर्मणि ॥ १२ ॥

‘यथा’ (ऋग्वेद १० १८, ५) धातु को सम्बोधित है इसके बाद की ऋचा (६ वीं) स्वष्टा को, इसके बाद ‘इमा’ (ऋग्वेद १० १८, ७) द्वारा ऋषि अञ्जनकर्म^१ ने स्त्रियों को आशीस देता है ।

१ तु० की० ऋग्वेद १० १८, ७ ‘इमा नारीर् आञ्जनेन सर्पिषा स विशः ३५ आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ६, ११ १२ ।

उदीर्ष्व नारीत्यनया मृतं पत्न्यनुरोहति ।

भ्राता कनीयान्प्रेतस्य निगद्य प्रतिषेधति ॥ १३ ॥

‘उद् ईर्ष्व नारि’ (ऋग्वेद १० १८, ८) ऋचा के साथ अपने पति की मृत्यु के बाद पत्नी (चिता पर) आरोहण करती है । मृत व्यक्ति का कनिष्ठ भ्राता (ऋचा को) दुहराते हुये उसको (स्त्री को) राकता है ।^१

१ तु० की० ऋग्विधान १ ८ ४ ‘देवरोऽन्वाहश्चन्तीम् उद् ईर्ष्वेति निवर्तयेत् आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ २, २८ । देखिए नीचे ७ १३० भी ।

कुर्यादेतत्कर्म होता देवरो न भवेद्यदि ।

प्रेतानुगमनं न स्याद् इति ब्राह्मणशासनात् ॥ १४ ॥

यदि देवर न हो तो इस कर्म को होता को करना चाहिये, क्योंकि एक ब्राह्मण का कहना है कि (विधवा द्वारा) प्रेतानुगमन नहीं होना चाहिये ।

वर्णानामितरेषा च स्त्रीधर्मोऽयं भवेन्न वा ।

शान्त्यर्थं धनुरादाने प्रेतस्यर्चं धनुर्जपेत् ।

यस्मादेताः प्रयुज्यन्ते श्मशाने शान्त्यकर्मणि ॥ १५ ॥

तस्माद्भवेत्तृचस्वास्य देवतां मृत्युमेद तु ।

मन्त्रेषु ह्यनिरुक्तेषु देवतां कर्मतो वदेत् ॥ १६ ॥

स्त्रियों से सम्बन्ध यह विषय अन्य जगों के लिये व्यवहृत हो भी सकता है और वहीं भी ।

मृत व्यक्ति से धनुष लेते समय शान्ति के लिये 'धनु' (ऋग्वेद १० १८, ९) ऋचा द्वारा अर्चना करनी चाहिये । और वत इन ऋचाओं का समक्षान पर अभ्येष्टिकर्म में प्रयोग होता है, अतः इन तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १८, ४-९) का मृत्यु को ही देवता मानना चाहिये, क्योंकि जिन मन्त्रों में स्पष्ट न कहा गया हो वहीं कर्म के आधार पर ही देवता को बताना चाहिये ।

^१ तु० की० आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ २, २० ।

४-ऐसे मन्त्र जिनमें किसी देवता का उल्लेख नहीं होता

मन्त्रतः कर्मतश्चैव प्रजापतिरसंभवे ।

पराश्वतस्त्रो यास्त्वत्र उप सर्पेति पार्थिवी ॥ १७ ॥

मन्त्र और कर्म दोनों के आधार पर देवता के न होने पर उसका देवता प्रजापति होता है ।^१

अब यही 'उप सर्प' (ऋग्वेद १० १८, १०) से आरम्भ बाद की चार ऋचायें (१०-१३) पृथिवी को सम्बोधित हैं ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० १८ की अन्तिम ऋचा पर सर्वांगुक्रमणी 'अन्त्या प्राजा पश्या वा साऽनिहृक्ता, जिस पर षडगुरुशिष्य यह टिप्पणी करते हैं 'स च अनिहृक्ता अप्रकाशदेवतामिधाना' ।

तासां प्रयोगः प्रेतस्य अस्थिसंख्यकर्मणि ।

प्रतीचीने यथाहानि अपहृत्येतराणि तु ॥ १८ ॥

अहःसु पितरो दधुर् इत्याशास्तेऽन्त्ययाशिषः ।

अहः स्वागामिषु च मां प्रयन्तं समजीवयन् ॥ १९ ॥

इसका व्यवहार प्रेत की अस्थियों के सङ्ग्रह में होता है । 'प्रतीचीने' (ऋग्वेद १० १८ १४) से आरम्भ अन्तिम ऋचा में ऋषि यह आशिस व्यक्त करता है 'जिस प्रकार मेरे अन्य दिनों को अपहृत करके पितरों ने (हमें अतीत) दिन प्रदान किये हैं, उसी प्रकार, मरने के निकट हमें जीवन के आगामी दिन भी प्रदान किये हैं ।'

^१ तु० की० आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ५, ४ ।

नि वर्तध्वमितीदं तु गवां केचिदपा विदुः ।

अर्धर्चः प्रथमायास्तु अग्नीषोमीय उत्तरः ॥ २० ॥

अब 'नि वर्तध्वम्' (ऋग्वेद १० १९) में गायों की स्तुति है, कुछ लोग इसमें जलों की स्तुति मानते हैं फिर भी, प्रथम ऋचा की बाद की अर्ध ऋचा अग्नि सोम को सम्बोधित है ।

तु० की० सर्वानुक्रमणी 'अपा ग वा अग्नीषोमीयो द्वितीयोऽर्धर्चः ।'

५-ऋग्वेद १० १९-२७ के देवता

ऐन्द्री षष्ठी द्वितीयायाम् उभौ देवौ निपातितौ ।

दशाक्षरं तु शान्त्यर्थं मानसं सूक्तमुच्यते ॥ २१ ॥

छठवीं ऋचा (ऋग्वेद १० १९, ०) इन्द्र का सम्बोधित है, जब कि दूसरे में उभय देवताओं का निपातिक उल्लेख है । अब जिस सूक्त में दस अक्षर हैं (ऋग्वेद १० २०, १) उसे मानसिक शान्ति से सम्बन्धित सूक्त कहते हैं ।

त्रीण्यैन्द्राणि कुहेत्यत्र आग्नेयाभ्या पराणि तु ।

तृचोऽत्रास्त्याश्विनस्त्वेक ऐन्द्राणामुत्तमे युवम् ॥ २२ ॥

अब वहाँ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्ता (ऋग्वेद १० २०-२१) के बाद 'कुह' से आरम्भ तीन इन्द्र को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद १० २२-२३) आते हैं । इन सूक्तों में से अन्तिम में 'युवम्' से आरम्भ तीन ऋचायें (ऋग्वेद १० २४, ४-६) अश्विना को सम्बोधित हैं ।

भद्र सौम्यं प्र हि पौषां त्रीण्यैन्द्राणि पराण्यस्त ।

तेषामाग्नेन मत्तः सन् स्वानि कर्माणि शंसति ॥ २३ ॥

यथा चरति भूतेषु यथा वर्षति पाति च ।

सूक्ते तदस्मिन्नष्टाभिर् अग्निभिरुक्तममूर्विमि ॥ २४ ॥

'भद्रम्' (ऋग्वेद १० २४) सोम को सम्बोधित है, 'प्र हि' (ऋग्वेद १० २६) पूषन् को सम्बोधित है । 'अस्त' से आरम्भ तीन बाद के सूक्त (ऋग्वेद १० २७-२९) इन्द्र को सम्बोधित हैं, इनमें से प्रथम (२७ वें) में आह्लादित होकर इन्द्र ने अपने कर्मों की प्रशंसा की है, वह भूतों के बीच

में कैसे चकते हैं, कैसे वर्षा और रक्षा करते हैं, इसका 'अग्नि' से आग्नि इसी सूक्त की आठ ऋचाओं (ऋग्वेद १०, २७, ७-१५) में वर्णन है।

६-ऋग्वेद १० २७ (क्रमशः) । ऋग्वेद १० २८ : इन्द्र और वसुक्त का संवाद

ससेति मरुत स्तौति स्तौति वज्रसृगुत्तरा ।

अग्निमिन्द्र च सोमं च पीवानं मेषमर्चति ॥ २५ ॥

पूर्वोर्ध्वर्धोऽपरस्तस्याः पर्जन्यं वायुना सह ।

वि क्रोशनास इत्यग्निम् उत्तरा सूर्यमेव तु ॥ २६ ॥

‘सस’ (ऋग्वेद १० २७, १५) मरुतों की स्तुति करता है, बाद की ऋचा (१६) वज्र की स्तुति करती है; ‘पीवानं मेषम्’ (ऋग्वेद १० २७, १७) ऋचा, अग्नि, इन्द्र और सोम की अर्चना करती है अर्थात् प्रथम अर्ध ऋचा (१७ वीं ऋचा की) में ऐसा ही है, जब कि इसकी द्वितीय अर्ध ऋचा में पर्जन्य और वायु की स्तुति है। ‘वि क्रोशनास’ (ऋग्वेद १० २७, १८) अग्नि का, किन्तु बाद की ऋचा (१९ वीं) सूर्य की स्तुति करती है।

एतौ मेऽय य इत्येने स्तुतिश्चैवेन्द्रवज्रयोः ।

वृक्षेवृक्षे धनुश्चैन्द्र देवानामिति तु त्रयः ॥ २७ ॥

शीतोष्णवर्षदातारः पर्जन्यानिलभास्कराः ।

अन्त्ये सूर्यानिलौ चोभौ स्तूयेते च पदे सह ॥ २८ ॥

‘एतौ मे’ (ऋग्वेद १० २७, २०) और ‘अय य’ (ऋग्वेद १० २७, २१) में इन्द्र और वज्र की, और ‘वृक्षे-वृक्षे’ (ऋग्वेद १० २७ २२) में इन्द्र के धनुष की स्तुति है। किन्तु ‘देवानाम्’ (ऋग्वेद १० २७, १३) में शीत, उष्णता, और वर्षा के दाता, पर्जन्य, वायु, और सूर्य की स्तुति है, और इसके अन्तिम पाद में सूर्य और वायु की साथ साथ स्तुति है।

सा ते जीवातुरित्यस्याम् इन्द्रो वा सूर्य एव वा ।

विश्वो अन्यस्तु संवाद ऋषेः शकस्य चैव हि ॥ २९ ॥

‘सा ते जीवातु’ (ऋग्वेद १० २७, २३) ऋचा में इन्द्र अथवा सूर्य की स्तुति है। किन्तु ‘विश्वो अन्य’ (ऋग्वेद १० २८) शक और ऋषि का संवाद है।

युग्माः सक्तस्य विज्ञेया वसुक्तस्येतरा ऋचः ।
 स्तुषेन्द्रस्यागतान्देवान् दृष्ट्वा शक्रमनागतम् ॥ ३० ॥
 यज्ञं परोक्षवत्प्राह इवशुरो नागतो मम ।
 यथागच्छेद् भक्षयेत्स घानाः सोमं पिबेदपि ॥ ३१ ॥

युग्म ऋचाओं को शक्र की जानना चाहिये और अन्य को वसुक्त की ।
 इन्द्र की पुत्र-बधू ने देवताओं को आया हुआ देखकर, किन्तु यह देखकर कि
 यज्ञ के लिये शक्र नहीं आये, उन्हें (शक्र को) परोक्ष रूप से सम्बोधित
 किया 'मेरे ससुर नहीं आये हैं, यदि आये तो अन्न का भक्षण और सोम का
 पान भी करे ।'^२

तु० की० सर्वानुक्रमणी इन्द्रस्य स्तुषा परोक्षवद् इ दम् आह ।'

^२ तु० की० ऋग्वेद १० २८ १ 'मम असुरा मा जगाम जप्तीयाह घाना उत
 सोम पपीयात् ।'

७- ऋग्वेद १० ३०-३३ के देवता

इति तस्या वचः श्रुत्वा तत्क्षणादेत्य वज्रधृक् ।
 तिष्ठन्वेद्यामुत्तरस्याम् उच्चैराह स रोरुवत् ॥ ३२ ॥

उसके इस वचन को सुनकर वज्रधर उसी क्षण आये और उत्तरा वदि पर
 खड़े होकर उच्च स्वर से 'स रोरुवत्' (ऋग्वेद १० २८ २) कहा ।

तृतीयया चतुर्थ्या च प्र देवत्रेत्यपा स्तुतौ ।
 अपानपादित्यनेन नाम्नाग्निर्मध्यम स्तुतः ॥ ३३ ॥

'प्र देवप्र' (ऋग्वेद १० ३०) से आरम्भ जलों की स्तुति में, तृतीय
 ऋचा म मध्यम अग्नि की अपा नपात् के रूप में स्तुति है ।

एति यद्वैश्वदेवं तु तस्य प्रेत्यैन्द्रमुत्तरम् ।
 वैश्वदेवी प्र मेत्येका सं मेत्यैन्द्रो वृचः परः ॥ ३४ ॥

अब जो सूक्त 'आ' (ऋग्वेद १० ३१) से आरम्भ होता है वह विश्वेदेवों
 को सम्बोधित है, इसके बाद 'प्र' (ऋग्वेद १० ३२) इन्द्र को सम्बोधित है ।
 एक 'प्र मा' (ऋग्वेद १० ३३, १) ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है; 'स
 मा' (ऋग्वेद १० ३३, २, ३) से आरम्भ हो बाद की ऋचायें इन्द्र को
 सम्बोधित हैं ।

८-मक्ष सूक्त १० ३४। ऋग्वेद १० ३५-४४ के देवता
 कुरुश्रवणमर्चतः परे द्वे त्रासदस्यवम् ।
 मृते मित्रातिथौ राज्ञि तन्नपातमृषिः परैः ॥ ३५ ॥
 उपमश्रवस् यस्य चतुर्भिः स व्यशोकयत् ।
 प्रावेपा इति सूक्तं यत् तदक्षस्तुतिरुच्यते ॥ ३६ ॥

बाद की दा ऋचायें (ऋग्वेद १० ३३, ४-५) कुरुश्रवण त्रासदस्यव की
 अर्चना करती हैं । राजा मित्रातिथि की मृत्यु पर ऋषि ने 'यस्य' से आरम्भ
 चार ऋचाओं (ऋग्वेद १० ३३, ६-९) द्वारा (मित्रातिथि के) पौत्र
 उपमश्रवस् को सान्त्वना दी है । 'प्रावेपा' (ऋग्वेद १० ३४) से आरम्भ
 सूक्त को अक्षस्तुति कहा गया है ।

अत्राक्षान्द्वादशी स्तौति नवम्याथा च सप्तमी ।
 त्रयोदशी कृषि स्तौति कितवं चानुशासति ।
 अक्षास्तु शेषा निन्दन्ति अबुध्रं वैश्वदेवते ॥ ३७ ॥

यहाँ बारहवीं, नवीं, प्रथम और सातवीं ऋचायें अक्ष की स्तुति करती
 हैं (ऋग्वेद १० ३४, १, ७ ९ १२) । तेरहवीं ऋचा में कृषि की स्तुति
 और अक्ष की हक का अनुसासन है ।

किन्तु शेष ऋचायें अक्ष की निन्दा करती हैं । 'अबुध्रम्' से आरम्भ दो
 सूक्त (ऋग्वेद १० ३५-३६) विरवेदेवों को सम्बोधित हैं ।

सावित्रमेके मन्यन्ते महो अग्ने स्तवं परम् ।
 आचार्याः शौनको यास्को गालवश्चोत्तमामृचम् ॥ ३८ ॥

कोई यह मानता है कि अन्न की 'महो अग्ने' (ऋग्वेद १० ३६, १२-
 १४) से आरम्भ स्तुति सवितु को सम्बोधित है । शौनक, यास्क और गालव
 आदि आचार्य केवल अन्तिम (१४ वीं) का १ ऐसा मानते हैं ।

नमः सौर्यमैन्द्रमस्मिन् सौर्यं षष्ठ्या तु या स्तुताः ।
 निपातिन्यस्ताः सूक्तान्ते वैश्वदेवोऽत्र तु वृचः ॥ ३९ ॥

'नमः' (ऋग्वेद १० ३७) सूर्य की और 'अस्मिन्' (ऋग्वेद १० ३८)
 इन्द्र को सम्बोधित है । किन्तु सूर्य को सम्बोधित सूक्त की छठवीं ऋचा
 (ऋग्वेद १० ३७, ६) में जिन देवताओं की स्तुति है वह नैपातिक हैं,

इस सूक्त के अन्त में दो ऋचायें (ऋग्वेद १० ३७, ११-१२) विश्वदेवों के सम्बोधित हैं ।

आश्विनानि तु यस्त्रीणि ऐन्द्राण्यस्तेव सु प्र च ।

ऐन्द्राणामुत्तमायास्तु स्तुतोऽर्धं बृहस्पतिः ॥ ४० ।

अब, 'य' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद १० ३९- १) अश्विनों के सम्बोधित हैं, और 'आस्तेव सु प्र' से आरम्भ तीन (ऋग्वेद १० ४२-४४) इन्द्र की, किन्तु इन्द्र-सूक्तों (४२-४४) की अंतिम ऋचा की एक अर्ध ऋच (११ वीं ऋचा की) से बृहस्पति की स्तुति है ।

९-ऋग्वेद १० ४५-४६ के देवता । घाषा की कथा ।

परे दिवस्पर्याग्नये प्रथमस्योत्तमन तु ।

द्यावापृथिव्यौ विश्वे च पच्छोऽर्धर्षेन संस्तुताः ॥ ४१ ।

'दिवस्परि' (ऋग्वेद १० ४५, ४६) से आरम्भ बाद के सूक्त अर्ध को सम्बोधित हैं । किन्तु प्रथम की अन्तिम अर्ध-ऋचा (ऋग्वेद १० ४५ १२) में दो पादों में पृथिवी और आकाश और विश्वदेवों की स्तुति है ।

आसीत्काक्षोवती घोषा पापरोगेण दुर्मगा ।

उवास षष्टि वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा ॥ ४२ ॥

कक्षीवत् की पुत्री घोषा एक पाप रोग से अपङ्ग हो गई । प्राचीनकाल वह साठ वर्षों तक अपने पिता के गृह में रही ।

आतस्थे महतीं चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम ।

जरां प्राप्ता मुधातस्मात् प्रपद्येऽह शुभस्पती ॥ ४३ ॥

उसे असह्य चिन्ता हुई कि 'बिना पुत्र अथवा पति के मैं वृद्धा ही अ अवस्था को प्राप्त हो गई, अतः मैं शुभस्पति की शरण में जाऊँगी ।

यथैतौ मामकस्तात आराध्यावाप यौवनम् ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं सर्वभूतहमे विषम् ॥ ४४ ॥

रूपवता च सौभाग्यम् अहं तस्य सुता यदि ।

समापि मन्त्राः प्रादुःस्युर्यै स्तोष्येते मयाश्विनौ ॥ ४५ ॥

यत मेरे पिता ने उनकी आराधना करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य

और सर्वमृतहन् विश्व प्राप्त किया था, जन में, उनकी पुत्री' भी, रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ यदि मुझे अश्विनों को सन्तुष्ट करनेवाले अन्न प्राप्त हो जाय ।'

घोषा की कथा (शेषांश)

चिन्तयन्तोति सूक्तं द्वे यो वां परि ददर्श सा ।

स्तुतौ तावश्विनौ देवौ प्रीतौ तस्या भगान्तरम् ॥४६॥

प्रविश्य विजरारोगां सुभगां चक्रतुश्च तौ ।

भर्तारं ददतुस्तस्यै सुहस्त्य च सुतं मुनिम् ॥४७॥

जब वह हम प्रकार चिन्तन कर रही थी, तब उसने यो वां परि' से आरम्भ दो सूक्तों (ऋग्वेद १० ३९-४०) का दर्शन किया । स्तुति की जाने के कारण दिव्य अश्विनद्वय प्रसन्न हुए । उसके अङ्गों में प्रवेश करके उन्होंने उसे जरा विहीन, रोगरहित, और सुन्दर बना दिया । उन लोगों ने उसे एक पति, और पुत्र के रूप में ऋषिसुहस्त्य, प्रदान किया ।

ददतुस्तत्सुपर्णाभ्यां यन्नासत्येति कीर्त्यते ।

काक्षीवत्यै च घोषायै न तस्यामाजुरोऽनया ॥ ४८ ॥

'नाक्षर्यो' ने अपने सुवर्ण अश्वों के माध्यम से काक्षीव्य की पुत्री घोषा को जो कुछ दिया उसका 'न तस्य' (ऋग्वेद १० ४० ४०, ११) और 'अमाजुर' (ऋग्वेद १० ३९, ३) ऋचाओं द्वारा वर्णन किया गया है ।

प्रजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः ।

सेछन्तीन्द्रसप्तं पुत्रं तेपेऽथ सुमहत्तपः ॥ ४९ ॥

प्रजापति की विकुण्ठा नामक एक असुरी पुत्री थी । इन्द्र के समान पुत्र की इच्छा से उसने महान् तप किया ।'

'तुं को० सर्वांशुकमणी 'विकुण्ठा नागासुरीइन्द्रतुस्य पुत्रम् इच्छन्ती महत् तपस तेपे ।

११-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा ।

सा प्रजापतिः कामाल्लेभेऽथ विविधान् वरान् ।

तस्यां चेन्द्रः स्वयं जज्ञे जियांसुदैत्यदानवान् ॥ ५० ॥

तब उसने विभिन्न वरदानों के रूप में प्रजापति से सभी इच्छाओं को प्राप्त

किया, और दैत्यों तथा दानवों का बध करने की इच्छा से स्वयं इन्द्र ने उससे जन्म लिया ।^१

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'तस्या स्वय एवेन्द्र पुत्रो बभूव ।'

एकदा दानवैः सार्धं समरे समसज्यत ।

जघान तेषां नवतीर् नव सप्त च सप्तकान् ॥ ५१ ॥

एक बार वह दानवों के साथ समर भूमि में युद्ध कर रहे थे । उनमें से उन्होंने भी नब्बे और सात सात के सात का बध किया ।^१

^१ 'जघान तेषां नवतीर् नव', के साथ ऋग्वेद १ ८४, १३ के 'जघान नवतीर् नव' की तुलना कीजिये देखिये महाभारत १ २४ १४ भी, और तु० की० ऊपर ६ ५१, ११५ ।

मित्रा स्वबाहुवीर्येण हैमरौप्यायसीः पुरीः ।

हृत्वा सर्वान् यथास्थान पृथिव्यादिव्यवस्थितान् ॥ ५२ ॥

अपने बाहुबल से उनके स्वर्ण, रजत, और लौह दुर्गों को ध्वस्त करके, और पृथिवी तथा अन्य दो लोकों में व्यवस्थित उन सबका यथास्थान बध करके,

पृथिव्या कालकेयाश्च पौलोमांश्चैव धन्विनः ।

ताश्च व्युत्सादयामास प्रह्लादतनयान्दिवि ॥ ५३ ॥

पृथिवी पर उन्होंने कालकेश और पुलोम जाति के लोगों, धनुर्धरों, और स्वर्ग में प्रह्लाद की दुष्ट सन्तानों का उन्मूलन कर दिया ।

१२-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (क्रमशः)

राज्यं प्राप्य स दैत्येषु स्वेन वीर्येण दर्पितः ।

देवान्वाधितुमारेभे मोहितोऽसुरमायया ॥ ५४ ॥

दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त करके और अपनी वीरता के दर्प में उन्होंने असुरों की माया से मोहित होकर देवों को व्रत करना आरम्भ किया ।

बाध्यमानास्तु तेनापि असुरेणामितौजसा ।

उपाधावन्नृषिश्रेष्ठं तत्प्रबोधाय सप्तगुम् ॥ ५५ ॥

जब उस असीम शक्तिवाले असुर ने वह लोग व्रत हो रहे थे तब उससे मुक्ति के लिये वह लोग ऋषि श्रेष्ठ सप्तगु के पास इसलिये भागकर गये कि वह (सप्तगु) उसे (इन्द्र को) रोके ।

ऋषिस्तु सप्तगुर्नाम तस्यासीत्सुप्रियः सखा ।

स चैनमभितुष्टाव जगृभ्मेति करे स्पृशन् ॥ ५३ ॥

अब वह ऋषि सप्तगु उनके प्रिय सखा थे, और हसलिये उनके हाथ का स्पर्श करते हुये उन्होंने 'जगृभ्म' (ऋग्वेद १० ४०) सूक्त से उनके सम्बोध किया ।

तु० की० सर्वांशकमणी 'जगृभ्म सप्तगु' वैकुण्ठम् इन्द्रं तुष्टाव ।

१३-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (शेषांश) । अभिन तथा उनके

भ्राताओं की कथा (ऋग्वेद १० ५१-५३) ।

ततः स बुद्ध्वा चात्मानं सप्तगुस्तुतिहर्षितः ।

आत्मानमेव तुष्टाव अहं भुवमिति त्रिभिः ॥ ५७ ॥

कीर्तयन्स्वानि कर्माणि यानि स्म कृतवान्पुरा ।

यथाकरोव वैदेह व्यंसं सोमपति नृपम् ॥ ५८ ॥

वमिष्ठशापादभवद् वैदेहो नृपतिः पुरा ।

इन्द्रप्रसादादीजे च सत्त्रैः सारस्वतादिभिः ॥ ५९ ॥

प्रभृता शक्तिमत्तां च शत्रूणामप्यपाक्रियाम् ।

नृषु सर्वेषु चैश्वर्यं प्रभुत्वं भुवनेषु च ।

प्र वो मह इति त्वस्याम् आत्मनो वीर्यमक्षयम् ॥ ६० ॥

तब आत्मबोध करके सप्तगु की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होंने 'अहं भुवम्' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १० ४८ ५०) में अपनी स्तुति की, अपने उन कर्मों का वर्णन करते हुए जो उन्होंने प्राचीन काल में किये थे, उन्होंने किस प्रकार विदेह के राजा व्यस को सोमपति बनाया था—प्राचीन काल में वसिष्ठ के शाप से यह (व्यस) विदेह के राजा बन गये थे और इन्द्र की कृपा से उन्होंने सरस्वती तथा अन्य नदियों के तट पर यज्ञ सत्र आयोजित किये थे—और अपना महान शक्ति तथा शत्रुओं को पट्टेचाई गई शक्ति, और सम्पूर्ण मनुष्यों के बीच अपने ऐश्वर्य तथा भुवनों पर अपने प्रभुत्व का वर्णन किया, किन्तु 'प्र वो मह' (ऋग्वेद १० ५० १) से अपनी अक्षय शक्ति की स्तुति की ।

वैश्वानरे गृहपतौ यविष्ठेऽग्नौ च पावके ।

वषट्कारेण वृक्केषु आतृष्वग्नौ सहःसुते ॥ ६१ ॥

अपचक्राम देवेभ्यः सौचीकोऽग्निरिति श्रुतिः ।

स प्रविशदपक्रम्य ऋतूनपो वनस्पतीन् ॥ ६२ ॥

बैश्वानर अग्नि गृहपति और बविष्ट, पावक, और अग्नि सह सुत आँ आताओं के वषट्कार द्वारा छिन्न भिन्न होने पर अग्नि सौची-२ देवों के पास चले गये, । सी एक श्रुति है । इस प्रकार चले जाने के बाद वह ऋतुओं, जलों और वनस्पतियों में प्रवेश कर गये ।

ततोऽसुराः प्रादुरासन् नष्टेऽग्नौ हव्यवाहने ।

तेऽग्निमेवान्वेक्षन्त देवा हत्वासुरान्गुधि ॥ ६३ ॥

जब हव्यवाहन अग्नि नष्ट हो गये असुर गण प्रगट हुये । असुरों ने युद्ध में वध करके देव गण अग्नि की खोज में इधर उधर देखने लगे ।

१४-अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)

त तु दूराद्यमश्चैव वरुणश्चान्वपश्यताम् ।

उभावेनं समादाय देवानेवाभिजग्मतुः ॥ ६४ ॥

तब यम और वरुण ने उन्हें दूर से देख लिया । वह दोनों उन्हें अप साथ लेकर देवों के पास गए ।

दृष्ट्वा देवास्त्वेनमूचुर् अग्ने हव्यानि नो वह ।

वरान् गृहाण चास्मत्तश् चित्रभानो भजस्व नः ।

देवयानान् सुगान् पथः कुरुष्व सुमनाः स्वयम् ॥ ६५ ॥

उन्हें देखकर देवों ने कहा 'हे अग्नि हमारी हवियों को वहन करो, हमसे वह ग्रहण करो; हे चित्रमानु ! हमारी सेवा करो, जिस पथ से देव-गण गए हैं उस पथ को तुम श्रेष्ठ भाव से स्वयं सुगम करो ।

प्रत्युवाचाथ तानग्निर् विश्वे देवा यदूच माम् ।

तत्करिष्ये जुषन्तां तु होत्रं पञ्च जना मम ॥ ६६ ॥

शालामुख्यः प्रणीतश्च पुत्रो गृहपतेश्च यः ।

उत्तरो दक्षिणाश्चाग्निर् एते पञ्च जनाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

तब अग्नि ने उत्तर दिया 'आप सब देवों ने मुझसे जा कुछ कहा है

उसे मैं कहूँगा, किन्तु कुछे पञ्चजनो का होता बनावें—जब शालामुख्य, प्रणीत, गृहपति के पुत्र, उत्तर और दक्षिणदिन, इनको पञ्चजन माना गया है।

१५-‘पञ्च जना’ का अर्थ

मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः ।

गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः ॥ ६८ ॥

यास्कौपमन्यवाधेतान् आहतुः पञ्च वै जनाम् ।

निषादपञ्चमान् वर्णान् मन्यते शाकटायनः ॥ ६९ ॥

मनुष्य गण, पितृगण दैवगण गन्धर्वगण सर्पगण, राक्षसगण, अथवा गन्धर्वगण, पितृगण, देवगण असुरगण यक्ष और राक्षसगण यास्क और ओपमन्यव ने इन्हें ही पञ्चजन माना है। शाकटायन के विचार से यह चार वर्ण और पाँचवें निषादगण हैं।

ऋत्विजो यजमान च शाकपूणिस्तु मन्यते ।

होताध्वर्युस्तथोद्गाता ब्रह्मा चेति वदन्ति तान् ॥ ७० ॥

किर भी शाकपूणि का विचार है कि यह (चार) ऋत्विज यजमान हैं। इन्हें (ऋत्विजों को) होता, अध्वर्यु उद्गात और ब्रह्म कहते हैं।

चक्षुः श्रोत्र मनो वाक् च प्राणश्चेत्यात्मवादिनः ।

गन्धर्वाप्सरसो देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥ ७१ ॥

सर्पाश्च ब्राह्मणे चैव श्रूयन्ते ह्येतरेयके ।

ये चान्ये पृथिवीजाता देवाश्चाग्रेऽथ यज्ञियाः ॥ ७२ ॥

आश्व-आदनों के कथनानुसार यह चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक् और प्राण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें गन्धर्व और अप्सरायें, देवता, मनुष्य और पितर, और सर्प, कहा गया है, और ऐसे अन्य पार्थिव जीवों तथा अन्य देवों को, भी (इन्के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है) जो यज्ञ भाग प्राप्त करते हैं।

अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)

आयुरस्तु च मे दोषं हवीषि विविधानि च ।

अरिष्टिः पूर्वजानां च भ्रातृणामध्वरेऽध्वरे ॥ ७३ ॥

प्रयाजाभ्यानुयाजाश्च घृतं सोमे च यः पशुः ।

मदैवत्यानि वै सन्तु यज्ञो मदेवतोऽस्तु च ॥ ७४ ॥

और मुझे दीर्घायु और विविध हवियाँ प्राप्त हों, तथा मेरे उज्ज्वल आतागण प्रत्येक यज्ञ में सुरक्षित रहें, और प्रयाज तथा अनुयाज, घृत और सोम यज्ञ के बलि पशु के देवता हम ही हों, और यज्ञ के देवता हम ही हों ।

तवाग्ने यज्ञ इत्येतत् प्रत्याधि स्विष्टकृच्च सः ।

यस्य त्रीणि सहस्राणि नव त्रीणि शतानि च ॥ ७५ ॥

त्रिशचैव तु देवाना सर्वानेव वरान्ददुः ।

ततोऽग्निः सुमनाः प्रीतो विश्वैर्देवैः पुरस्कृतः ॥ ७६ ॥

विधूयाङ्गानि यज्ञेषु चक्रे होत्रमतन्द्रितः ।

आतृभिः सहितः प्रीतो दिव्यात्मा हव्यवाहनः ॥ ७७ ॥

‘तवाग्ने यज्ञ’ (ऋग्वेद १० ५१, १) शब्दों द्वारा इसकी स्वीकृति दी गई, और वह स्विष्टकृत् बन गए, जिनको तीन सहस्र, तीन सौ उनतालीस देवों ने यह सब वर दिये । कब प्रकृतस्थ, प्रसन्न, और विरवेदेवों द्वारा पुरस्कृत, विष्णोत्मा हव्यवाहन अग्नि अपने अङ्गों को हिलाते हुए आताओं सहित प्रसन्न हुए और अतन्द्रित होकर यज्ञों में होव का कार्य सम्पन्न करने लगे ।

१७-अग्नि के पलायन की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० ५४-५७

तस्यास्थि देवदार्वसीन् मेदो मांसं च गुग्गुलुः ।

सुगन्धितेजनं स्नायु शुक्रं रजतकाञ्चने ॥ ७८ ॥

रोमाणि काशाः केशास्तु कृशाः कूर्मा नखानि च ।

अन्त्राणि चैवाप्यवका मज्जा सिफतशर्कराः ॥ ७९ ॥

असूक् पित्तं च विविधा धातवो गैरिकादयः ।

एवमग्निश्च देवाश्च सूक्तैर्महदिति त्रिभिः ॥ ८० ॥

समूदिरे परे त्वस्माद् ऐन्द्रे सूक्ते तु तां सु ते ।

विधु दद्राणमित्यस्या सूर्याचन्द्रमसौ स्तुतौ ॥ ८१ ॥

उनकी अस्थियाँ देवदारु वृक्ष बन गईं, उनका मेदा और मांस गुग्गुलु, उनके स्नायु सुगन्धित तेजन और उनका शुक्र रजत और काञ्चन । इनके शरीर के रोग काश, उनके केश कुश; उनके नख कूर्म, उनकी अतर्धियाँ अवका;

उनकी मन्त्रा बालू और शकरा तथा उनके रक्त और पित्त गेरू बाढ़ि जैसी विविध धातुयें बन गये। इस प्रकार 'महत्' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १० ५१-५३) में अग्नि और देवताओं ने वार्तालाप किया। अब इसके बाद 'तां सू ते' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ५४-५५) इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'विधु बन्धुणम्' (ऋग्वेद १० ५५, ५) ऋचा में सूर्य और चन्द्रमा की स्तुति है।

प्राणवच्चात्मवच्चापि स्तुतिरप्यत्र दृश्यते।

इदं द्वे वैश्वदेवे च द्वितीये मनसस्तृचः ॥ ८२ ॥

यहाँ प्राण और आत्मा की भी स्तुति दृष्टिगत होती है।

'इदम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ५६-५७) विश्वदेवों को सम्बोधित हैं। द्वितीय सूक्त (५७) में तान ऋचायें मनसू को सम्बोधित हैं।

१८ सुबन्धु की कथा ऋग्वेद १० ५७-५९

प्रथमैन्द्री द्वितोयाग्नेय्यं अन्त्या तत्सोमदेवता।

अपि स्तौति पितृनेतद् आर्त्विजं यत्तदुत्तरम् ॥ ८३ ॥

सूक्तमाख्यानसयुक्तं वक्तुकामस्य मे शृणु।

संमोहान्नष्टसंज्ञस्य शत्रुणाभिहतस्य तु ॥ ८४ ॥

जीवावृत्तिः सुबन्धोर्वा यदि वा मनसस्तवः।

राजासमातिरैक्ष्वाकू रथप्रोष्ठः पुरोहितान् ॥ ८५ ॥

व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् द्वैपदा येऽन्निमण्डले।

द्वौ किराताकुली नाम ततो मायाविनौ द्विजौ ॥ ८६ ॥

असमातिः पुरोऽधत्त वरिष्ठौ तौ हि मन्यते।

तौ कपोतौ द्विजौ भूत्वा गत्वा गोपायनानभि ॥ ८७ ॥

मायाबलाच्च योगाच्च सुबन्धुमभिप्रेततुः।

स दुःत्वादभिघाताच्च सुमोहश्च पपात च ॥ ८८ ॥

प्रथम ऋचा (ऋग्वेद १० ५७, ५) इन्द्र को, और द्वितीय (२) अग्नि को सम्बोधित है, अन्तिम (६) में उसके देवता के कर्ण में, सोम का उल्लेख है। यह सूक्त पितरों की स्तुति करता है अतः ऋत्विजों द्वारा इसका इस आशय में भी स्तवन करना चाहिए। इसके बाद आगेवाला 'यत्' (ऋग्वेद १०, ५८) से आरम्भ सूक्त एक इतिहास से सम्बन्धित है वर्णन

करने की इच्छावाले मुझसे उसे सुनो यहाँ शत्रु द्वारा अभिहित होने के कारण जब समोहन के परिणामस्वरूप उसका संज्ञा नष्ट हो गई तब उस समय के सुबन्धु के जीवन के आवृत्ति की, अथवा मनस् की स्तुति है ।

इषवाकुबन्धो, रथप्रोष्ठ, राजा असमाप्ति ने बन्धु तथा अन्य उन पुरोहितों को निकाल^१ दिया जा अत्रियों (ऋग्वेद ५ २४) के मण्डल में द्विपदों^२ के ऋषि हैं । असमाप्ति ने किरात और शाकुलि^३ नामक दो मायाविधों को अपना पुरहित बना लिया, क्योंकि इसने इन्हें ही सर्वश्रेष्ठ^४ समझा । कपात बनकर और गोपायनों के विरुद्ध गानेवाले यह दोनों पुरोहित अपने माथा और योग बल से सुबन्धु पर गिर पड़े । उनके आघात के वृष्ट से वह (सुबन्धु) माहित होकर गिर पड़े ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'पुरोहितास त्यक्त्वा ।

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'उक्ता ऋषयो द्वैपदे स्थ अत्रिमण्डले' ।

^३ इन दो नामों के लिये तु० की० शतपथ ब्राह्मण १ १, ४, १४ ।

^४ ० की० सर्वानुक्रमणी 'मायाविनौ श्रेष्ठतमौ मत्वा पुरोदधे', तु० की० षट्पुरशिष्य

१९ सुबन्धु की कथा (क्रमशः) ।

तौ ततोऽस्यासुमालुच्य राजानमभिजग्मतुः ।

ततः सुबन्धौ पतिते गतासौ भ्रातरस्त्रयः ॥ ८० ॥

जेपुः स्वस्त्ययन सर्वे मेति गोपायनाः सह ।

मनआवर्तनं तस्य सूक्तं यदिति तेऽभ्ययुः ॥ ९० ॥

जब उन्होंने उसके प्राण को नोच लिया तब वे राजा के पास गए । जब प्राण विहीन होकर सुबन्धु भूमि पर गिर पड़े, तब तीन, भ्राताओं, गोपायनों ने एक साथ कब्रबाण के लिए 'मा' (ऋग्वेद १० ५७) का जप किया; उनकी आत्मा को पुनः छोड़ा लाने के लिए इन लोगों ने 'यत्' (ऋग्वेद १० ५८) से आरम्भ सूक्त का आश्रय लिया ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'सुबन्धौ प्राणान् आचिच्छिपतु' ।

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'मा स्वस्त्ययनं जप्त्वा यत् मन आवर्तनं जेपु ।'

जेपुश्च भेषजार्थं यं प्र तारोति परं ततः ।

सूक्तस्यायस्तृचस्तत्र निर्ऋतेरपमोदनः ॥ ९१ ॥

और 'प्र तारि' (ऋग्वेद १० ५९) से आरम्भ जिन तीन ऋचाओं का हम लोगों ने उनके उपचार के लिए जप किया, वही इस सूक्त की प्रथम तीन ऋचाएँ (१-३) हैं : वहाँ इनसे निर्ऋति^१ को दूर भगाने से तात्पर्य है ।

^१ तु० की० सर्वाङ्गकमणी 'प्र कारि विष्कृतेर् अपमोदनार्थं जेषु' ॥

त्रयः पादा मो विवति तु सौम्या नैर्ऋत उत्तमः ।

ऋक् सौम्या नैर्ऋती षैषा असुनीते स्तुतिः परे ॥९॥

अत्र 'मो वु' (ऋग्वेद १० ५९, ४) से आरम्भ तीन पाद सोम की, और अन्तिम निष्कर्षि को सम्बोधित है : यह सम्पूर्ण ऋचा सोम और निष्कर्षि को सम्बोधित है । पाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद १० ५९ ५-६) में असुनीति की स्तुति है ।

दृचे त्वानुमत पादम् अन्त्य यास्कस्तु मन्यते ।

भूयैः सोमश्च पृषा च खं पथ्या स्वस्तिरेव च ॥ ९३ ॥

अब यास्क का विचार है कि इन दो ऋचाओं में से अन्तिम पाद (ऋग्वेद १० ५९, ६) अनुमति को सम्बोधित है ।

पृथिवी आकाश, सोम और पूषन, वायु, पथ्या और स्वस्ति—

२०-ऋग्वेद १७ ५९, ६० विस्तृत विवरण

सुबन्धोरेव शान्त्यर्थं पुनर्न ऋचि तु स्मृताः ।

तृचः शमिति रोदस्योर् ऐन्द्रोऽर्घर्षः समित्यृचि ॥९४॥

इन सबको 'पुनर् न' (ऋग्वेद १० ५९, ७) ऋचा में सुबन्धु की शान्ति करनेवाला माना गया है । 'शम्' से आरम्भ तीन ऋचार्य (ऋग्वेद १० ५८, ८-१०) दो लोकों को सम्बोधित हैं; जब कि 'सम्' (ऋग्वेद १० ५९, १०) ऋचा की प्रथम अर्ध ऋचा इन्द्र को सम्बोधित है ।

रपसो नाशनार्थं वै तुष्टुबुस्त्यथ रोदसी ।

रप इत्यभिधानं तु गदितं पापकृच्छयोः ॥ ९५ ॥

उन लोकों ने दुर्बलता के नाश के लिए रोदसी की स्तुति की : 'दुर्बलता' को शारीरिक कष्ट अथवा पाप की अभिधा माना गया है ।

^१ तु० की० निरुक्त ४ २१ 'रपो रिप्रम् इति पापनामानि भवत' ।

ऋग्भिरेति चतसृभिस् तत ऐक्ष्वाकुमस्तुषन् ।

इन्द्र क्षत्रेतृचा चास्य स्तुत्वाशंसिपुराशिषः ॥ ९६ ॥

तब 'भा' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद १० ६०, १-४) की उन्होंने

इक्ष्वाकु के वंशज की स्तुति की, और उसकी स्तुति करने के बाद उन्होंने 'इन्द्र वज्रा' से आरम्भ ऋचा (ऋग्वेद १० ६०, ५ में उसके लिए आशीस कहा ।

अगस्त्यस्येति माता च तेषां तुष्टाय तं नृपम् ।

स्तुतः स राजा सव्रीळस् तस्थौ गोपायनानभि ॥१७॥

और उनकी माता^१ ने अगस्त्यस्य^२ (ऋग्वेद १० ६०, ६) से राजा की स्तुति की । इस प्रकार स्तुति की जाने पर वह राजा लज्जापूर्वक गोपायनों के पास गए ।

^१ तु० की आर्षानुक्रमणी १० २४ 'स्वसाऽगस्त्यस्य माता एषाम्' ।

२१-सुबन्धु की कथा (शेषांश) ऋग्वेद १० ६१-६६ के देवता

सूक्तेनाप्यस्तुवन्नग्निं द्वैपदेन यथात्रिषु ।

अग्निरप्यत्रब्रवीदेतान् अयमन्तः परिध्यसुः ॥ ०८ ॥

सुबन्धोरस्य चैक्ष्वाकोर् मया गुप्तो हितथिना ।

सुबन्धवे प्रदायामुं जीवेत्युक्त्वा च पावकः ॥ ०९ ॥

स्तुतो गौपायनैः प्रातो जगाम त्रिदिव प्रति ।

अयं मातेति हृष्टास्ते सुबन्धोरसुमाह्वयन् ॥१०॥

यत अत्रियों ने द्विपद सूक्त से अग्नि का स्तुति की है, अतः अग्नि ने अपनी ओर से उन लोगों से कहा 'सबन्धु की आत्मा इस अन्तःपरिधि में है, अर्थात् हित की इच्छा रखनेवाले मेरे द्वारा इक्ष्वाकु का यह वंशज रक्षित है ।' सुबन्धु को उसका प्राण लौटा देने और 'जीवित रहो ' कहने के बाद गोपायनों द्वारा स्तुति की जाने पर पावक प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले गए । प्रसन्न होकर इन लोगों ने 'अयं माता' (ऋग्वेद १० ६०, ७) ऋचा द्वारा सुबन्धु के प्राण का आह्वान किया ।

शरीरमभिनिर्विश्य सुबन्धोः पतितं भुवि ।

सूक्तशेष जगुश्चास्य चेतसो धारणाय ते ॥ १०१ ॥

भूमि पर पड़े सुबन्धु के शरीर को निर्विष्ट करते हुए उन लोगों ने उनकी चेतना के धारणार्थ सूक्त के शेषांश का गायन किया ।

लब्ध्वासुं चायमित्यस्यां पृथक् पाणिभिरुपृशन् ।

बळिदं वैश्वदेवानि द्वितोयेऽङ्गिरसां स्तुतिः ॥१०२॥

और 'अथर्व' (ऋग्वेद १०. ६०, १२) ऋचा में उन लोनों के बलकी वेशवा प्राप्त कर क्षेत्रोंपर अपने हाथों से उसका पृथक्-पृथक् स्पर्श किया ।

'इदम्' से आरम्भ छः सूक्त (ऋग्वेद १० ६१-६६) विभेदों को सम्बोधित हैं । इनमें से द्वितीय सूक्त (६२) में अग्निरस की स्तुति है ।

जन्म कर्म च सख्यं च इन्द्रेण सह कीर्तयन् ।

स्तौति प्र नूनमित्याद्याः सावर्ण्यस्य मनोस्तुतिः ॥१०३॥

जन्म, कर्म, और इन्द्र के साथ उनके सखत्व को बताते हुए (ऋषियों ने) स्तुति की । 'प्र नूनम्' (ऋग्वेद १० ६२, ८-११) तथा शेष सवर्ण के पुत्र मन की स्तुति करते हैं ।

२२-ऋग्वेद १० ६३-६६ का विवरण । ऋग्वेद

१० ६७-७२ के देवता

तस्यैव चायुषोऽर्थाय देवान्स्तौत्यभ्ययाहविः ।

सुत्रामाणं महीम् ऊ षु दक्षस्येत्यदिते स्तुतिः ॥१०४॥

और उनके आयुष्य के लिये ऋषि देवों की स्तुति करता है 'सुत्रामाणम्' (ऋग्वेद १० ६३, १०) और महीम् ऊ षु 'द्वारा । 'दक्षस्य' (ऋग्वेद १० ६४, ५) में अदिति की स्तुति है ।

^१ अथर्ववेद ७ ६, २ वाजसनेयि संहिता २१ ५ तैत्तिरीय संहिता १०५, ११, ५, ऐतरेय ब्राह्मण १ ९, ८ आश्वलायन श्रौतसूत्र ४ ३ में उद्धृत ।

पथ्यास्वस्तेः स्वस्तिरिद्धि स्वस्ति नो मरुतां स्तुतिः ।

मारुतीमृचमन्वाहेत्य् उक्तमाध्वर्यवेषु हि ॥ १०५ ॥

'स्वस्तिम् इद् धि' (ऋग्वेद १० ६३, १६) पथ्या स्वस्ति की स्तुति है; 'स्वस्ति न' (ऋग्वेद १० ६३, १५) मरुतों की स्तुति है । क्योंकि अध्वर्युओं के ग्रन्थों में यह उक्ति है कि 'यह मरुतों को सम्बोधित ऋचा का आवाहन करता है' ।

या गौरिति तथैवास्यां स्तूयते मध्यमा तु वाक् ।

मित्राय मैत्रावरुणी भुज्युमंहस आश्विनी ॥ १०६ ॥

इसी प्रकार 'या गौ' (ऋग्वेद १० ६५, ६) ऋचा में मध्यम वाक् की स्तुति है; 'मित्राय' (ऋग्वेद १० ६५, ५) मित्र वरुण को सम्बोधित है; 'भुज्युम् अहस' (ऋग्वेद १० ६५, १२) अश्विनों को सम्बोधित है ।

स्तौत्यपि च मनुस्वस्ति द्रुचे वाचं च मध्यमाम् ।

अयेमां द्वे बाहस्पत्ये भद्रा आग्नेयमाग्निः ॥ १०७ ॥

यह 'स्वस्ति' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद १० ६६, १४-१५) में मनु और मध्यम वाच् की भी स्तुति करते हैं ।

इसके बाद 'इमांश्च' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ६७-६८) बृहस्पति को सम्बोधित हैं, 'भद्रा' (ऋग्वेद १० ६९) अग्नि को सम्बोधित है, इसके बाद एक आभी सूक्त (ऋग्वेद १० ७०) आता है ।

प्रथमे बार्हस्पत्ये तु अर्धर्चं ब्रह्मणस्पतिः ।

वैश्वदेवेऽपि सूक्तेऽत्र स्तुतोऽर्धर्चं बृहस्पतिः ।

ब्रह्मणस्पतिरित्यस्मिन् लिङ्गवाक्यविकारतः ॥ १०८ ॥

बृहस्पति को सम्बोधित प्रथम सूक्त (६७) में एक अर्ध-ऋचा में (७ वीं ऋचा की) ब्रह्मणस्पति आते हैं । यहीं विश्वेदेवों को सम्बोधित सूक्त (७२) में एक अर्ध ऋचा (१ री ऋचा की) में बृहस्पति की भी स्तुति है, अर्थात् 'ब्रह्मणस्पति' (ऋग्वेद १० ७२, २) से आरम्भ अर्ध ऋचा में लिङ्ग वाक्य के विकार द्वारा ।

२३-ऋग्वेद १० ७१ का विस्तृत विवरण

यज्ज्योतिरमृतं ब्रह्म यथोगात्समुपाद्नुते ।

तज्ज्ञानमभितुष्टाव सूक्तेनाथ बृहस्पतिः ॥ १०९ ॥

जो ज्ञान अमर उद्योति है और जिसके सयोग से व्यक्ति ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, उसकी बृहस्पति ने एक सूक्त द्वारा बाद में स्तुति की है ।

जीवनार्थं प्रयोगस्तु मन्त्राणा प्रतिविध्यते ।

वेदतत्त्वार्थविज्ञानं प्रायेणात्र हि दृश्यते ॥ ११० ॥

अब जीवनार्थ मन्त्रों के प्रयोग का प्रतिवेध है । यहाँ अधिकांशतः वेदतत्त्व का यथार्थ ज्ञान ही दृष्टिगत होता है ।

आचार्या केचिदित्याहुर् अत्र वाग्विदुषा स्तवः ।

यथाभिर्निन्यतेऽत्रर्गिभः भूक्तेऽन्याभिरनर्थवित् ॥ १११ ॥

कुछ आचार्यों का कथन है कि यहाँ कुछ ऋचाओं द्वारा वाग् वेत्ताओं की

स्तुति की है। किन्तु इस सूक्त की अन्य ऋचाओं द्वारा उन व्यक्तियों की निन्दा की गई है जो वेदों का अर्थ नहीं जानते।

यथैतामन्वविन्दन्त विद्वांसर्विगतां सतीम् ।

यथा च व्यभजन् यज्ञे तदत्रोक्तं तृतीयया ॥ ११२ ॥

और विद्वानों ने उसे (वाच् को) किस प्रकार पाया जब कि वह ऋषियों के बीच स्थित थी, और उन लोगों ने उसे यज्ञ के समर्थ कैसे विभक्त किया— इसका यहाँ तृतीय ऋचा (ऋग्वेद १५, ७१, ३) में वर्णन है।

^१ तु० की ऋग्वेद १० ७१, ३ 'यान् अन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टां, तां आधृत्वाभ्युदधु पुरा'।

प्रशस्यते दशम्या तु विद्वानुत्तमया ऋचा ।

यज्ञे महर्त्विजामाह विनियोगं च कर्मणाम् ॥ ११३ ॥

किन्तु दसवीं ऋचा (ऋग्वेद १० ७१, १०) में विद्वानों की प्रशंसा है, जब कि अन्तिम ऋचा में उसने (ऋषि ने) चार ऋषिजों तथा यज्ञ के समय के उनके कर्मों का विनियोग बताया है।

२४-ऋग्वेद १० ७२-८४ के देवता । कित

परे तु स्तूयते दक्षो अष्टौ चैवादितेः सुताः ।

धातेन्द्रो वरुणो मित्रो अंशः सूर्योऽर्यमा भगः ॥ ११४ ॥

अब बाद के सूक्त में (ऋग्वेद १० ७२) में दक्ष की तथा अदिति के आठ पुत्रों, धातु, इन्द्र, वरुण, मित्र, अश, सूर्य, अर्यमन्, भग की भी स्तुति है।

ऐन्द्रे जनिष्ठाः सूक्ते द्वे प्र स्वित्यत्र परं तु यत् ।

तत्र प्राच्यः प्रतोच्यश्च स्रवन्त्यो दक्षिणाश्च यः ॥ ११५ ॥

ताः सप्त सप्तकैर्वर्गैः संस्तूयन्ते प्रधानतः ।

प्राणामा वो मारुते द्वे अन्नपुष इति स्मृते ॥ ११६ ॥

'जनिष्ठा' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ७३-७४) इन्द्र को सम्बोधित हैं, किन्तु 'प्र सु' से आरम्भ अब जो सूक्त आता है (ऋग्वेद १० ७५) उसमें पूर्व, पश्चिम, और दक्षिण में बहनेवाली जलधाराओं की प्रधानता के आधार पर सात सात के सात समूहों में एक साथ स्तुति है।^१ 'आ च' (ऋग्वेद १० ७६) पाषाणों को, और 'अन्नपुष' से आरम्भ दो सूक्तों (ऋग्वेद १० ७७-७८) को मरुतों को सम्बोधित माना गया है।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० ७५, १ 'प्र सप्त-सप्त त्रेधा हि षक्रतु' ।

अपश्यमिति आग्नेये य इमा वैश्वकर्मणे ।

मान्यवे यस्त इत्येते परं यत्तु मम व्रते ॥ ११७ ॥

तद्वाशीर्वादबहुलं स्तौति विश्वान्दिवौकसः ।

पराकदास आग्नेयं यदुदित्यष्टकं परम् ॥ ११८ ॥

‘अपश्यम्’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ७२-१०) अग्नि को सम्बोधित हैं, ‘वा इमा’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ८१-८२) विश्व कर्मन् को सम्बोधित हैं, ‘यस् ते’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ८३-८४) मन्थु को सम्बोधित हैं । किन्तु ‘मम व्रते’^१ से आरम्भ बाद में आनेवाला सूक्त विरवेदेवों के आशीर्वाद और स्तुति को बहुलता से युक्त है । ‘उत्’^२ से आरम्भ आठ ऋचाओं का सूक्त अग्नि को सम्बोधित एक पराकदास^३ है ।

^१ वह ऋग्वेद १० ८८ और ८५ के बाद आनेवाले दो खिलों में से प्रथम है । इसमें प्रथमतः अनुष्टुभ छन्द में बत्तीस ऋचायें हैं जा ‘मम व्रते हृदय ते दधामि से प्रारम्भ होती है । तु० की० अथर्ववेद ६ १४ २ पारस्कर गृह्यसूत्र १ ८, ८ २ २, ६ शाङ्ख्यन श्रौत सूत्र २ ४, १’

^२ इस खिल में अग्नि को सम्बोधित आठ अनुष्टुभ ऋचाये हे और यह ‘उत् तुदैन गृहपते’ से आरम्भ होता है ।

^३ तु० की० ऋग्विधान ३ २१, ४ । ‘पराकदासस्य विभिन्’, और ३ २२, २ ‘पराकदामो ऐवम्याधम्’ ।

२५-सूर्या सूक्त, ऋग्वेद १० ८५ । उषस् के तीन रूप

मैत्रावरुण्युक् तत्रास्ति चतुर्थ्येन्द्राग्न्युपोत्तमा ।

सावित्री चैव सूर्या च सैव पत्नी विवस्वतः ॥ ११९ ॥

स्तुता वृषाकपायीति उषा इति च योच्यते ।

उषा एषा त्रिधात्मानं विभज्य प्रैति गोपतिम् ॥ १२० ॥

वहो चौथी ऋचा मित्र वरुण^१ को सम्बोधित है, जब कि अन्तिम के पूर्व की एक ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, ७) इन्द्र और अग्नि^२ को सम्बोधित है । सावित्री और सूर्या विवस्वत की एक ही और वही पत्नी है जिसकी वृषाकपायी के रूप में स्तुति है और जिसे ही उषस् कहा गया है । यह उषस् अपने को तीन रूपों में विभाजित करके गोपति (= सूर्य) के पास जाती है ।

^१ वह 'हवा' ने मित्रावरुणों' बाढ़ से आरम्भ होता है।

^२ वह 'मनेन वक्षणाग्ने त्वम्, अथ चेन्द्रो न ईक्षित पाद से आरम्भ होता है।

उषाः पुरोदयाद् भूत्वा सूर्या मध्यंदिने स्थिते।

भूत्वा वृषाकपायी च दिनान्तेऽवबगच्छति ॥१२१॥

सूर्योदय के पूर्व उषस् बन कर, मध्याह्न के समय सूर्या, और दिनान्त के समय वृषाकपायी हो कर वह नीचे चली जाती है।

सत्यसूर्यर्तसोमाना सौर्याद्यात्र क्षुण्ण्यते।

परामिस्तिमृभिस्त्वृग्भिर्उच्यते सोम औषधिः ॥१२२॥

यहाँ सूर्या को सम्बोधित प्रथम ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, १) को सत्य, सूर्य, ऋत, और सोम से सम्बद्ध बताया गया है; किन्तु बाद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५ २-४) में सोम को औषधि के रूप में व्यक्त किया गया है।

विस्पष्टमुत्तरा त्वासाम् ऋक् चन्द्रमसमर्चति।

सूर्यायै भाववृत्तं तु रेभोत्यष्टाभिरुच्यते ॥१२३॥

किन्तु जो ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, ५) इनके बाद आती है वह स्पष्ट चन्द्रमा की अर्चना करती है, जब कि 'रेभी' से आरम्भ आठ ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५, ६-१३) में सूर्या के 'भाववृत्त' को व्यक्त किया गया है।

२६-सूर्या सूक्त का विवरण (क्रमशः)।

यदश्विनौ दृष्ट्व च स्तौति सूर्यमेवोत्तरार्चति।

सप्तदशी वैश्वदेवी सौर्याचान्द्रमसौ परा ॥१२४॥

'यत्' से आरम्भ दो ऋचायें (१० ८५, १४-१५) अश्विनों की स्तुति करती हैं। बाद की ऋचा (१६) सूर्य की अर्चना करती है, सप्तदशी (१७) विश्वदेवी को सम्बोधित है, इसके बाद की ऋचा (१८) सूर्य और चन्द्रमा को सम्बोधित है।

परस्याः प्रथमौ पादौ सौर्यौ चान्द्रमसौ परौ।

और्णवाभो दृष्ट्वे त्वस्मिन् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ ॥१२५॥

बाद की ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, १९) के प्रथम दो पाद सूर्य को सम्बोधित हैं, जब कि इसके बाद के दो पाद चन्द्रमा को। फिर भी और्णवाभ का विचार है कि इन दो ऋचाओं में अश्विनों की स्तुति है।

सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ ।

अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी ॥१२६॥

क्योंकि इन दोनों (अश्विनी को) को सूर्य और चन्द्रमा, और प्राण तथा अपान माना गया है, और यह दोनों दिन और रात्रि भी हो सकते हैं, अथवा दोनों ही दोनों लोक (रोदसी) ।^१

^१ इनमें से प्रथम, दूसरी और चतुर्थ व्याख्यायें निरुक्त १२ १ में ही हुई हैं ।

अनुवाते हि तौ लोकाञ् ज्योतिषा च रमेन च ।

पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥१२७॥

क्योंकि यह दोनों प्रकाश तथा आर्द्रता से लोकों को व्याप्त करते हैं और यह दोनों ही पृथक् पृथक् दक्षिण और उत्तर की ओर विचरण करते हैं ।^१

^१ यह प्रत्यक्षत ऋग्वेद १० ८५, १८ ('पूर्वापर चरतो मायया एतौ') को ही व्यक्त करता है ।

सूर्यः सरति भूतेषु सु वीरयति तानि वा ।

सु ईर्यत्वाय यात्येषु सर्वकार्याणि सदधत् ॥१२८॥

सूर्य भूतों के बीच चकते हैं, अथवा यह उन्हें भली प्रकार प्रोत्साहित करते हैं उनक सभी कार्यों को भली प्रकार धारण करते हुये वह उन्हें भली प्रकार प्रोत्साहित करते हुये उनके बीच आते हैं ।

२७—चन्द्रमस् की व्युत्पत्ति । ऋग्वेद १० ८५,

२०-३० का विषय वस्तु

चारु द्रमति वा चायंश् चायनीयो द्रमत्युत ।

चमेः पूर्वं समेतानि निर्मिमीतेऽथ चन्द्रमाः ॥१२९॥

चन्द्रमा सुन्दरतापूर्वक (चारु) अथवा देखते हुये (चायन्) दीवते (द्रमति) हैं, अथवा देखने योग्य होने के रूप में (चायनीय) दीवते हैं, अथवा (यौगिक शब्द का) पूर्व पद 'चम्' वास्तु से व्युत्पन्न है, अथवा वह (चन्द्र) समस्त जीवों का निर्माण (निर्मा) करता है ।^१

^१ चन्द्रमस् की उपरोक्त पाँची व्युत्पत्तियाँ निरुक्त १२ ५ पर आधारित हैं, जहाँ छ व्युत्पत्तियाँ दी हैं (१) चायन् द्रमति, (२) चाव द्रमति, (३) चिरं द्रमति (४) चम् द्रमति, (५) च द्रो माता, (६) चाद्र मानम् अस्थ ।

सुकिशुकमिति त्वस्या सूर्यामारोहतीं पतिम् ।

स्तौति विश्वावसुं चैव दृष्ट्वे गन्धर्वमुत्तरे ॥१३०॥

अब 'सुकिशुब्ध' (ऋग्वेद १० ८५, २०) ऋचा द्वारा (ऋषि ने) सूर्या के अपने पति पर आरोहण की, और बाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५, २१-२२) में गन्धर्व विभावसु की स्तुति की है ।

अनृक्षरा इत्यनया यातौ स्तौतीह दंपतो ।

गृहान्प्रपद्यमानां तु पराभिः पञ्चभिर्बधूम् ॥ १३१ ॥

'अनृक्षरा' (ऋग्वेद १० ८५, २३) में (ऋषि ने) यहाँ उस दंपति की स्तुति की है जो प्रस्थान कर चुके हैं, किन्तु बाद की पाँच (ऋग्वेद १० ८५, २४-२८) से (पति के) घर पर पहुँची बधू की ।

२८-ऋग्वेद १० ८५, ३१-४३

वाससश्च बधूना च वरदान प्रचक्षते ।

तत् स्त्रिया विरागस्य विभवे सति वाससः ॥ १३२ ॥

अन्यत्र मैथुनाद्भर्तुर् हरणं प्रतिषिध्यते ।

ये यक्ष्मनाशिनो स्तौति वृचे मा परिपन्थिनः ॥ १३३ ॥

और उनका कथन है कि (बाद की ऋचा ऋग्वेद १० ८५, २९ में) बधुओं को वस्त्र और वरदान देने को शक्त किया गया है ।^१ इसके बाद भोग शिलास की समाप्ति पर विरामावस्था में स्त्री के वस्त्र का—अर्थात् मैथुन के समय के अतिरिक्त—पति द्वारा हरण निषेध है । 'ये' (ऋग्वेद १० ८५, ३१) ऋचा यक्ष्मनाशक है 'मा' से आरम्भ हो ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५, ३२-३३) में (ऋषि ने) मार्गावरोधकों की स्तुति की है ।

^१ पृ० की० ऋग्वेद १० ८५, २९ के यह शब्द 'परा देहि शत्रुमुख्य नक्षत्रम् ।' इस पर देखिये आश्वलायन गृह्यसूत्र १ ८, १२ ।

तृष्टमेतदिति त्वाह यादृग्वाधूयमर्हति ।

आशास्ते चैव विविध ज्ञातिभ्यश्चानुशासनम् ॥ १३४ ॥

बद्धा स्त्री भाववृत्तिश्च परया त्वन्न कथ्यते ।

गृभ्णामि त ऋचा हस्तं गुह्यतथ वनाशिषः ॥ १३५ ॥

आशास्ते परया तस्याः संयोगार्थास्तथाशिषः ।

पराभिराशीश्चाशास्ते पृथक् ताभ्यां सहैव च ॥ १३६ ॥

अबोरेति तृचे तस्याः समिहेति द्वयोर्द्वयोः ।

आ नः प्रजापतेर् ऐन्द्री चान्त्या बृहस्पतेः ॥ १३७ ॥

किन्तु 'तृचम् एतत्' (ऋग्वेद १० ८५, ३४) ऋचा यह बताती है कि किस प्रकार का मनुष्य वैवाहिक बन्ध के योग्य होता है ।^१ और बहू स्त्री द्वारा अपने सम्बन्धियों को विविध प्रकार के अनुशासनात्मक^२ निर्देश दिये गये हैं । बाद की ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, ३५) में यहाँ भाववृत्ति का कथन है ।

'गृणामि ते' ऋचा द्वारा उस समय (पति के द्वारा) धन का आशिस दिया गया है जब वह उसका (बहू का) हाथ पकड़ता है । बाद की ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, ३७) में सयोगार्थक आशिस है ।

बाद की ऋचा से (ऋषि ने) दोनों को साथ साथ और पृथक् पृथक् आशिस कहा है, 'अबोर' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५, ४४-४६) में केवल उसके (बहू के लिये) और 'सम्' (ऋग्वेद १० ८५, ४७) तथा 'हृह' (ऋग्वेद १० ८५, ४२) क्रमशः दोनों के लिये हैं । 'आ न' (ऋग्वेद १० ८५, ४३) प्रजापति को, और 'इमाम्' (ऋग्वेद १० ८५ ४५) इन्द्र को सम्बोधित है, अन्तिम (ऋग्वेद १० ८५, ४७) बृहस्पति को सम्बोधित है ।

^१ तु० की ऋग्वेद १० ८५, ३४ 'सूर्या यो ब्रह्मा विषात्, स इदं वाधूयम् बर्हति ।'

^२ तु० की० ऋग्वेद १० ८५, ३५ 'आशसन विशसन अथो अभिविकतनम्' ।

२९-सूर्या सूक्त पर टिप्पणी (शेषांश)

मन्त्रा वैवाहिका ह्येते निगद्यन्ते नृणामपि ।

आर्त्विजा याजमानाश्च यथारूपं विशेषतः ॥ १३८ ॥

अब यह वैवाहिक मन्त्र मनुष्यों के लिये भी उच्चारित होते हैं, क्योंकि यह अपने विशिष्ट रूप और विशेषताओं के अनुसार ऋत्विजों और याजमानों से भी सम्बद्ध हैं ।

प्रत्यूचं प्रतिकीर्त्यन्ते देवताश्चेह यासु याः ।

वदेत्ता देवता तासु नाराशसीर्बदेत वा ॥ १३९ ॥

और यहाँ उन ऋचाओं में, जिनमें से प्रत्येक में देवताओं का उल्लेख है, हमें उसी को देवता कहना चाहिये जिसका उल्लेख है, अथवा यह कहना चाहिये कि यह (ऋचायें) नाराशसी^१ हैं ।

^१ नाराज्ञंसी ऋचाओं के किसे तु० की ऊपर १ १५४, तु० की ऋग्वेद १० ८५, ६- 'देव्यासीदनुदेयी नाराज्ञंसी न्योचनी' ।

औषसी सर्वथा चैता भाववृत्तं प्रचक्षते ।

सूर्यया सह सूक्तेऽस्मिन् पादश्चैवात्र लक्ष्यते ॥ १४० ॥

और उनका कहना है कि उसको सम्बोधित वह ऋचाओं भाववृत्त से सम्बन्धित एक सम्पूर्ण सूक्त का निर्माण करती है, और इस सूक्त में एक पाद सूर्या से सम्बन्धित भी लक्षित होता है ।

वि हि वार्षाकपं सूक्तम् असौ हि कपिलो वृषा ।

इन्द्रः प्रजापतिश्चैव विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४१ ॥

वि हि' (ऋग्वेद १० ८६) वृषाकवि को सम्बोधित एक सूक्त है, क्योंकि वह कपिल वृषभ इन्द्र^१ और प्रजापति हैं 'इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है' ।

^१ तु० की० ऊपर २ ६५, जहाँ वृषाकपि को भी 'वृषा कपिल' के रूप में व्याख्या है और उसे सूर्य के सात नामों में से एक, अथवा दिव्य अग्नि का एक रूप बताया गया है ।

रक्षोहणादि चाग्नेयं त्रीन् स्तौत्यग्नीन् पर हविः ।

इमं च मध्यम चैव असौ वैश्वानर च यः ॥ १४२ ॥

रक्षोहणम्' (ऋग्वेद १० ८०) से आरम्भ सूक्त अग्नि को सम्बोधित है । बाद का 'हवि' (ऋग्वेद १० ८८) तीन अग्नियों इस (पार्थिव), मध्यम और जो वह वैश्वानर^१ है, की स्तुति करता है ।

^१ तु० की० ऊपर १ ६७ जहाँ वैश्वानर को अग्नि का दिव्य रूप बताया गया है ।

३०-ऋग्वेद १० ८९-९३ के देवता पुरुवस् और उर्वशी की कथा ।

ऐन्द्रात्पुरुषसूक्तं च अन्त्यया पौरुषस्य तु ।

यथैनमभजन्साध्या यज्ञार्थं सोऽर्थ उच्यते ॥ १४३ ॥

और इन्द्र को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद १० ८९) के बाद पुरुष-सूक्त (ऋग्वेद १० ९०) आता है । पुरुष को सम्बोधित सूक्त की अन्तिम ऋचा (१६ वीं) में उन स्थितियों का वर्णन है जिनमें साध्यों ने उसका यज्ञार्थ विभाजन किया था ।

आपान्तमन्युरित्यैन्द्रयां स्तुतः सोमोऽत्र हृदयते ।

सालोक्यात्साहचर्याद्वा स्तूयते सोम एव वा ॥ १४४ ॥

‘आवांन्तमनु’ (ऋग्वेद १० ८९ ५) से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित ऋचा में स्पष्टतः सोम की स्तुति है। सोम की या तो एक ही लोक के होने अथवा इन्द्र के सहचर होने के कारण ही स्तुति है।

निपातभाजं सोमं च अस्यां रथीतरोऽब्रवीत् ।

गेन्द्रेषु हि निपातोऽत्र स्तुतोऽग्निररुणेन सम् ॥ १४५ ॥

रथीतर ने कहा है कि इस (ऋचा) में सोम निपातभाज हैं क्योंकि इन्द्र को सम्बोधित सूक्तों में यहीं ऐसा ही नेपातिक उल्लेख है। ‘सम्’ (ऋग्वेद १० ९१) में अरुण द्वारा अग्नि की स्तुति है।

यज्ञस्य यो वैश्वदेवे प्रैत इत्युत्तर तु यत् ।

तत्राबुदस्तु ग्रावाण मूर्तिमन्तमिवार्चति ॥ १४६ ॥

प्र तद्दुःसीम इत्युग्भ्यां राज्ञा दान च शसति ।

पुकरवसि राजर्षाव् अप्सरास्तूवंशो पुरा ।

न्यवसत्संविदं कृत्वा तस्मिन्धर्मं चचार च ॥११७॥

‘यज्ञस्य यः’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ९२-९३) विश्वदेवों को सम्बोधित हैं, किन्तु ‘प्रैते’ (ऋग्वेद १० ९४) से आरम्भ जो बाद में आता है उसमें अबुद ने मूर्तिमान् पाषाणों की अर्चना की है, और ‘प्र तद् दुःसीम’ (ऋग्वेद १० ९३, १४-१५) से आरम्भ दो ऋचाओं में उसने (ऋषि ने) राजाओं के दान की प्रशस्ति की है।

अब प्राचीन काल में अप्सरा उर्वशी राजर्षि पुकरवस् के साथ रही थी, और सज्जीता करके उनके साथ (पत्नी) धर्म का आचरण करने लगी।

३१-पुकरवस् और उर्वशी की कथा (शेषांश)

तथा तस्य च संवासम् असूयन् पाकशासनः ।

पेतामहं चानुरागम् इन्द्रवच्चापि तस्य तु ॥११८॥

स तथोस्तु वियोगार्थं पार्श्वस्थं वज्रमब्रवीत् ।

प्रीतिं मिन्द्रि तयोर्वज्रं मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥११९॥

और उसके (उर्वशी के) साथ उनके सहवास पर ईर्ष्या करते हुये और उसके (उर्वशी के) लिये ब्रह्मा तथा उसके (पुकरवस् के) ऐसे अनुराग को देखकर कि मानों वह इन्द्र है, पाकशासन (इन्द्र) ने उन्हें वृषक्

करने के लिये अपने पार्श्वस्थ वज्र से कहा 'हे वज्र यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो तो इन दोनों के प्रेम सम्बन्ध को भङ्ग कर दो ।'

तथेत्युक्त्वा तयोः प्रीतिं वज्रोऽभिनत्स्वमायया ।
ततस्तया विहीनस्तु चचारौन्मत्तवन्नुपः ॥ १५० ॥

'बहुत अच्छा।' कहकर वज्र ने अपनी माया से उनके प्रेम को भङ्ग कर दिया । तब उससे विहीन राजा उन्मत्त होकर फिरने लगे ।

अरन्सरसि सोऽपश्यद् अभिरूपामिवोर्वशीम् ।
सखीमिरभिरूपाभिः पञ्चभिः पार्श्वतो वृताम् ॥ १५१ ॥

जब वह इस प्रकार घूम रहे थे तब उन्होंने एक तालाब में पाँच सुन्दर सखियों से घिरी हुई मानीं सुन्दरी उर्वशी को देखा ।

तामाह पुनरेहीति दुःखात्सा त्यज्रवीन्दुपम् ।
आप्राप्याहं त्वयाद्येह स्वर्गे प्राप्स्यसि मा पुनः ॥ १५२ ॥

उससे उन्होंने कहा, 'लौट आओ' । किन्तु उसने राजा को दुःखपूर्वक उत्तर दिया, 'अब तुम मुझे यहाँ नहीं प्राप्त कर सकते, स्वर्ग में तुम मुझे पुन प्राप्त करोगे ।'

३२-ऋग्वेद १० ९६, ९७ के देवता । देवापि की कथा १० ९८

आह्वानं प्रति आख्यानम् इतरेतरयोरिवम् ।
संवादं मन्यते यास्क हतिहासं तु शौनकः ॥ १५३ ॥

इय इति परमैन्द्रं प्र ते या ओषधीस्तवः ।
प्रयोगे भिषजस्तवेतद् यक्ष्मनाशाय फल्पते ॥ १५४ ॥

आह्वान के सम्बन्ध में उस आख्यान को यास्क ने संवाद माना है; किन्तु शौनक ने एक कथा (अर्थात्) 'इये' (ऋग्वेद १० ९५) से आरम्भ सूक्त को । इसका वाद प्र ते' (ऋग्वेद १० ९६) इन्द्र को सम्बोधित है । 'या' (ऋग्वेद १० ९७) में ओषधियों की स्तुति है ।

भिषज् का यह सूक्त प्रयोग में यक्ष्मा के नाश के लिये व्यवहृत हो सकता है ।

^१ निरुक्त ५, १३, १० ४६, ११ ३६, से यह मत व्यक्त नहीं होता ।

^२ १० की० अर्षानुक्रमणी १० ४५ 'या ओषधीस्तु सूक्तस्य ऋषिर् जायवर्णो भिषक', देखिये सर्षानुक्रमणी मी ।

आर्षिषेणस्तु देवापिः कौरव्यश्चैव शान्तनुः ।

भ्रातरौ कुरुषु त्वेतौ राजपुत्रौ बभूवतुः ॥ १५५ ॥

अब, ऋषिषेण के पुत्र देवापि, और कुरु वशीय शान्तनु, कुरुओं में राजा तथा दो भ्राता थे ।

ज्येष्ठस्तयोस्तु देवापिः कनीयाश्चैव शान्तनुः ।

त्वग्दोषी राजपुत्रस्तु ऋषिषेणस्तुतोऽभवत् ॥ १५६ ॥

इन दोनों में से देवापि ज्येष्ठ और शान्तनु कनिष्ठ थे, किन्तु वह (देवापि) ऋषिषेण के राजपुत्र स्वचा दोष से पादित थे ।

राज्येन छन्दयामासुः प्रजाः स्वर्गं गते गुरौ ।

स मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा प्रजास्ताः प्रत्यभाषत ॥ १५७ ॥

जब उनके पिता स्वर्ग चले गये तब उनकी प्रजा ने उन्हें राउय दिया । किन्तु एक क्षण विचार करके उन्होंने अपनी प्रजा को उत्तर दिया ।

॥ इति बृहद्देवतायां सप्तमोऽध्यायः ॥



१-देवापि की कथा (क्रमशः)

न राज्यमहमर्हामि नृपतिर्वाऽस्तु शंतनुः ।
तथेत्युक्त्वाभ्यसिञ्चनाः प्रजाः राज्याय शतनुम् ॥ १ ॥

‘मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ शतनु ही तुम्हारे शासक (नृप) हों ।
इससे सहमत होकर उनकी प्रजा ने राजा के रूप में शंतनु का अभिषेक किया ।

ततोऽभिषिक्ते कौरव्ये वर्न देवापिराबिशत् ।
न ववर्षाय पर्जन्यो राज्ये द्वादश वै समाः ॥ २ ॥

जब कुरु के वंशज का अभिषेक हो गया तब देवापि वन को चले गये ।
इसके बाद उस राज्य में पर्जन्य ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की ।

ततोऽभ्यगच्छद्देवार्पि प्रजाभिः सह शंतनुः ।
प्रसादयामास चैनं तस्मिन्धर्मव्यतिक्रमे ॥ ३ ॥

परिणाम-स्वरूप अपनी प्रजा के साथ शतनु देवापि के पास आये और
उस धर्म व्यतिक्रम^१ के लिये उनका प्रसादन किया ।

^१ अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता देवापि के रहते हुए छोटे भ्राता का अभिषेक ।

शिशिक्ष चैनं राज्येन प्रजाभिः सहितस्तदा ।
तमुवाचाय देवापिः प्रहं तु प्राञ्जलिस्थितम् ॥ ४ ॥

न राज्यमहमर्हामि स्वर्गदोषोपहृतेन्द्रियः ।
याजयिष्यामि ते राजन् वृष्टिकामेज्यया स्वयम् ॥ ५ ॥

तब अपनी प्रजा के सहित उन्होंने उन्हें (देवापि) को राज्य देना चाहा ।
जब वह (शतनु) विनम्रतापूर्वक करबद्ध खड़े थे, तब देवापि ने उत्तर दिया
‘मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ क्योंकि स्वर्ग दोष से मेरी शक्ति क्षीण हो गई है;
हे राजा मैं स्वयं वर्षा के लिये तुम्हारे यज्ञ-पुरोहित का कार्य करूँगा ।’

२-देवापि की कथा (शेषांश) ऋग्वेद १० ९९-१०१ के देवता
ततस्तं तु पुरोऽधत्त आर्त्विज्याय स शंतनुः ।
स चास्य चक्रे कर्माणि वार्षिकाणि यथाविधि ॥ ६ ॥

तब सननु ने उन्हें (देवापि को) अपना पुरोहित नियुक्त करते हुए उनमें ऋत्विज् के रूप में कार्य करने के लिए कहा । तब उन्होंने (देवापि ने) यथाविधि वर्षा करनेवाले कर्म सम्पन्न किए ।

बृहस्पते प्रतीत्यृग्भिर् ईजै चैव बृहस्पतिम् ।

द्वितीययास्य सूक्तस्य बोधिते जातवेदसा ॥ ७ ॥

आस्ये ते शुमर्तीं वाचं दधामि स्तुहि देवताः ।

तत मोऽस्मै ददौ प्रीतो वाचं देवीं तथा च सः ॥ ८ ॥

ऋग्भिश्चतसृभिर्देवाभ्य जगौ वृष्ट्यर्थमेव तु ।

अग्नि च सूक्तशेषेण कमैन्द्रं सूक्तमुत्तरम् ॥ ९ ॥

और उन्होंने 'बृहस्पते प्रति' (ऋग्वेद १० ९८, १-३) ऋचाओं से बृहस्पति का पञ्च किया ।

जब जातवेदस ने इस सूक्त की 'दधामि ते शुमर्तीं वाचम् आसन्' (ऋग्वेद १० ९८, २) ऋचा का उन्हें बोध कराया तब प्रसन्न होकर बृहस्पति ने उन्हें (देवापि को) द्विष्य वाचं प्रदान किया इससे उन्होंने वर्षा कराने के लिए चार ऋचाओं (ऋग्वेद १० ९८, ४-७) से देवों का, और सूक्त की शेष ऋचाओं (ऋग्वेद १० ९८, ७-१२ से अग्नि की स्तुति की । दूसरा 'कम्' (ऋग्वेद १० ९९) सूक्त इन्द्र को सम्बोधित है ।

इन्द्र हृद्येति विश्वेषाम् उदित्यृत्त्विकस्तुतिः परम् ।

शक्तिप्रकाशनेनैषां विनियोगोऽत्र कीर्त्यते ॥ १० ॥

इन्द्र हृद्य' (ऋग्वेद १० १००) विश्वदेवों को सम्बोधित है, 'उत् (ऋग्वेद १० १०१) से आरम्भ वाद का सूक्त ऋत्विजों की स्तुति है । इन (ऋत्विजों) की शक्ति के प्रकाशन द्वारा यहाँ विनियोग का कीर्तन किया गया है ।

३-ऋग्वेद १० १०२, १०३ के देवता । नकुल का खिल ।

प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः ।

यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः ॥ ११ ॥

शाकटायन 'प्र' (ऋग्वेद १० १०२) को एक इतिहास-सूक्त मानते

है। श्रावक का विचार है कि वह वृषण अथवा इन्द्र को सम्बोधित है; किन्तु शौनक के विचार से यह विश्वदेवों को सम्बोधित है।

आजयन्नेन भार्ग्यश्च इन्द्रासोमौ तु सुव्रतः ।

अजयद्रुषभ युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघर्णं रथे ॥ १२ ॥

अजने रथ में इन्द्र के एक वृषण और द्रुषभ को संयुक्त करके सुव्रत भार्ग्य ने एक प्रतिस्पर्धा में इन्द्र और सोम को इसी (सूक्त) के द्वारा विजित किया था ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १ २३ 'सुव्रतो भार्ग्यश्च ऋषिर्द्रुषभ च द्रुघर्ण च युक्त्वा सप्तानि व्यावृहत्पञ्चाभि जिगाय', तु० की० ऋग्वेद १० १०२, ५ 'तेन सुव्रत प्रदाने जिगाय', भी ।

युध्यन् सख्ये जयं प्रोप्सुर् ऐन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ ।

आशुरेन्द्रमप्वा देवी अमीषामित्यृचि स्तुता ॥ १३ ॥

एक युद्ध में युद्ध करते हुये विजय की इच्छा ने अप्रतिरथ ऐन्द्र ने इसी (सूक्त) का गायन किया था ।

'आशु' (ऋग्वेद १० १०३) इन्द्र को सम्बोधित है अमीषाम्' (ऋग्वेद १० १०३, १२) ऋचा में देवी अप्वा की स्तुति है ।

चतुर्थी बार्हस्पत्या स्यान् नाकुले च महानिति ।

द्रुचस्तु मारुतः प्रेतेत्य् ऐन्द्री वा ब्रह्म यत्परम् ॥ १४ ॥

चतुर्थ ऋचा को तथा नाकुल के सूक्त की 'महान्' ऋचा को भी, बृहस्पति को सम्बोधित मानना चाहिये ।

अब 'प्रेत' (ऋग्वेद १० १०३ १३) से आरम्भ हो ऋचायें मरुतों को सम्बोधित हैं, जिनमें से प्रथम बैकल्पिक रूप से इन्द्र को सम्बोधित है । जो (सूक्त) बाद में आता है वह 'ब्रह्म' से आरम्भ होता है ।

तन्नानिरुक्तसूक्तावाध् ऋगेका सूर्यमर्चति ।

धर्मपराश्रतस्त्रस्तु सवितारमभीति या ॥ १५ ॥

इसमें, सूक्त के आरम्भ में जहाँ कोई भी देवता व्यक्त नहीं है,^१ एक ऋचा (१) सूर्य की, और जो 'अभि'^२ (४) से आरम्भ होती है वह सवितृ की अर्चना करती है; जब कि (प्रथम) चार धर्म से निकट रूप से सम्बन्ध हैं ।

^१ पितरेव ब्राह्मण १ १०, १ में इस मन्त्र के 'ब्रह्म' की बृहस्पति के रूप में व्याख्या की गई है। यह ऋचा = अथर्ववेद ४. १, १। खिल की अनुक्रमणी में द्वितीय ऋचा 'इय वै पित्रे' की 'वर्म स्तुति' बताया गया है यह = अथर्ववेद ४ १, २। तृतीय ऋचा (महान् मही = तैत्तिरीय संहिता २ ३, १४, ६) की बृहस्पति को सम्बोधित बताया जा चुका है।

^२ यह ऋचा (अमित्र्य देव सवितारम्) = अथर्ववेद ७ १४, १, वाजसनेयि संहिता ४ १५, तैत्तिरीय संहिता १ २ ६, १, सामवेद १ ४६४ जिसका शतपथ ब्राह्मण १६ ५, १, ११ में भी उल्लेख है।

४-ऋग्वेद १० १ ४-१०५ के देवता भूतांश। काश्यप
ऋग्वेद १० १०६।

सूक्तशेषस्य षष्ठ्यः सूर्यायचन्द्रमसौ सह।

तुष्टावेन्द्रमसावीति अष्टकोऽस्मात्परेण तु ॥ १६ ॥

सूक्त की शेष छ ऋचायें सूर्य और चन्द्रमा की साथ-साथ अर्चना करती हैं।

अब 'असावि' (ऋग्वेद १० १०४) से आरम्भ जो सूक्त इसके बाद आता है, उसमें अष्टक ने इन्द्र की स्तुति की है।

कौत्सः कदा वसो सूक्तं दुर्मित्रो नाम नामतः।

सुमित्रश्चैव नाम स्याद् गुणार्थमितरत्पदम् ॥ १७ ॥

इस क वंशज दुर्मित्र नामक व्यक्ति ने 'कदा वसो' (अथर्ववेद १० १०५) सूक्त का दर्शन किया। इसका 'सुमित्र' नाम भी हो सकता है जब कि अन्य शब्द (दुर्मित्र) एक गुण को व्यक्त करेगा।

^१ ७० की० सर्वानुक्रमणी, 'कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः सुमित्रो वा नाम्ना दुर्मित्रो गुणतोः।

भूतांशस्तु प्रजाकामः कर्माणि कृतवान्पुरा।

न हि लेभे प्रजाः काञ्चित् कश्यपो मुनिसत्तमः ॥ १८ ॥

अब सन्तान की इच्छा से प्राचीन काल में भूतांश काश्यप ने कर्म किये, क्योंकि मुनिबों में सर्वश्रेष्ठ इसने कोई भी सन्तान नहीं पाई थी।

उवाच भार्या भूतांशं सुतानिच्छसि यावतः।

तावतो जनयिष्यामि देवता द्वन्द्वश स्तुहि ॥ १९ ॥

वसुकी पत्नी से श्रुतांत से कहा, आपकी जितनी इच्छा हो मैं उसने ही पुत्रों का प्रजनन करूँगी केवल देवों की इच्छा स्तुति करें ।^१

तमभ्ययुस्तु सर्वाणि द्वन्द्वानि स्तुतिकाम्यया ।

तान्यवेक्ष्याथ तत्तत्रो नास्त्यौ सूक्तमग्निौ ॥ २० ॥

अब उनके पास समस्त इच्छा केवल स्तुति की इच्छा से ही जाये । उन्हें देखकर उन्होंने स्तुति (ऋग्वेद १०, १०६ में) की अग्नि इसके सूक्त-मग्नि हैं ।

५-ऋग्वेद १० १०७ । शारमा और पथियों की कथा ।

ऋग्वेद १० १०८ ।

तदेतदन्ततो भावाद् आश्विनं सूक्तमुच्यते ।

न ह्यस्मिन्देवतालिङ्गं प्रागन्त्याद्दृश्यते पदात् ॥ २१ ॥

इसी सूक्त (ऋग्वेद १० १०६) को अश्विनों को सम्बोधित कहा गया है क्योंकि अन्त में यही आते हैं । क्योंकि इस सूक्त में अन्तिम पाद के पूर्व देवता का लिङ्ग नहीं आता ।

सूक्तेन तु परेणात्र स्वयमाविरभूदिति ।

आत्मानमेव तुष्टाव प्राजापत्याथ दक्षिणा ॥ २२ ॥

अब 'आविर अभूत्' (ऋग्वेद १० १०७) से आरम्भ बाद में आनेवाले सूक्त से यहाँ दक्षिणा प्राजापत्या ने अपनी स्तुति की है ।

दातृनत्र स्तुतानेके दक्षिणानां वदन्ति तु ।

दातृत्वादक्षिणानां च भोजाश्रतसृभि स्तुताः ॥ २३ ॥

किर भी किसी का कथन है कि यहाँ दक्षिणा देनेवालों की स्तुति है, और यत यह दक्षिणा देनेवाले हैं, अत उदार दाताओं की पार (ऋचाओं) से स्तुति है ।^१

^१ अर्थात् ऋग्वेद १० १०७, ८-११ में यहाँ 'भोज' के पुरस्कारों का वर्णन है ।

असुरा पणयो नाम रसापारनिवासिनः ।

गास्तेऽपजहुर्दिन्द्रस्य न्यगृह्णन् प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

पणि नाम के असुरगण वे जो रस के उस पार निवास करते थे । इन १८ वृ०

छेगों ने इन्द्र की गायों का अपहरण कर लिया और उन्हें सतर्कतापूर्वक ख़िपा दिया ।

बृहस्पतिस्तथापश्यद् दृष्ट्वेन्द्राय शार्शंस च ।

प्राहिणोत्तत्र दृत्येऽथ सरमां पाकशासनः ॥ २५ ॥

बृहस्पति ने इसे देख लिया और देखने के बाद इन्द्र से बताया । तब पाकशासन (इन्द्र) ने सरमा^१ को वहाँ दूत के रूप में भेजा ।

^१ तु० की० सर्वानुकमणी 'अ वेष्टु सरमा देवशुनीम् द द्रेण महिताम् ।

६- सरमा और पणियों की कथा (क्रमशः)

किमीत्यत्रायुजाभिस्ता पप्रच्छुः पणयोऽसुराः ।

कुतः कस्यासि कल्याणि किवा कायमिहास्ति ते ॥ २६ ॥

'किम्' (ऋग्वेद १० १०८) सूक्त में असुर पणियों ने अयुग्म ऋचाओं^१ द्वारा उससे (सरमा से) पूछा 'तुम कहाँ से (आ रही हो) ? हे कल्याणि तुम किसकी हो ? अथवा तुम्हारा यहाँ क्या कार्य है ?'

^१ तु० की० सर्वानुकमणी 'अयुग्मि पणयो मित्रीय त प्रोचु ।

अथाब्रवीत्तान्सरमा दृत्येन्द्री विचराम्यहम् ।

युदमान्रजं चान्विष्यन्ती गाश्चैवेन्द्रस्य पृच्छतः ॥ २७ ॥

तब सरमा ने उनसे कहा 'मैं इन्द्र के दूत के रूप में विचरण कर रही हूँ, तुम्हें तथा तुम्हारे गोष्ठ और इन्द्र की गायों को खूँट रही हूँ क्योंकि वह (इन्द्र) उनके (गायों के) सम्बन्ध में पूछ रहे हैं ।

विदितत्वेन्द्रस्य दूतीं ताम् असुराः पापचेतसः ।

जुहुर्मा सरमे गास्त्वम् इहास्माकं स्यसा भव ॥ २८ ॥

यह जानकर कि वह इन्द्र की दूती है, पापी असुरों ने कहा 'सरमा तुम जाओ नहीं, यहाँ हम लोगों की वहन के रूप में रहो ।

विभजामो गवां भागं माहिता ह ततः पुनः ।

सूक्तस्यास्यान्त्यया चर्चा युग्माभिस्त्वेव सर्वदाः ॥ २९ ॥

साम्रबीज्जाहमिछामि स्वसृत्वं वा धनानि वा ।

पिबेयं तु पयस्तासां गवां यास्ता निगृह्य ॥ ३० ॥

‘हम गांधी के अपने अपने भाग का विभाजन कर लें, अब से पुनः हमारे लिये अमिश्रित न रहो ।’

और इस सूक्त की अभिनम आवा (ऋग्वेद १० १०८, ११) तथा सभी सुगम आवाओं से उसने (सरमाने) कहा ‘मैं न तो तुम्हारी बहन बनना चाहती हूँ और न तुम्हारा धन ही चाहती हूँ किन्तु जिन गांधी को तुमने वहाँ दिया रक्खा है उनका सुव्यपान करना चाहूँगी ।’

७-सरमा और पाणियों की कथा (शेषोऽंश)

असुरास्तां तथेत्युक्त्वा तवाजहुः पयस्ततः ।
सा स्वभावाच्च लौल्याच्च पीत्वा तत्पय आसुरम् ॥ ३१ ॥
परं संवननं हृद्यं बलपुष्टिकरं ततः ।
शतयोजनविस्ताराम् अतरत्तां रसां पुनः ॥ ३२ ॥
यस्याः पारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम् ।
पप्रच्छेन्द्रश्च सरमां कचिद्वा दृष्टवत्यसि ॥ ३३ ॥

उससे ‘हाँ कहते हुये असुरों ने उसे दूध लाकर दिया । और लालच से उसने उस आसुरी दूध का पान कर लिया जो श्रेष्ठ, मादक, आनन्ददायक, तथा बल को पुष्ट करनेवाला था, और तब वह सौ योजनों के विस्तारवाली रसा को पुनः पार कर गई जिसके उस पार उनका दुर्जय पुर स्थित था । और इन्द्र ने सरमा से पूछा ‘तुमने गांधी को कहीं देखा ?’

सा नेति प्रत्युवाचेन्द्रं प्रभावादासुरस्य तु ।
तां जघान पदा क्रुद्धः उद्गिरन्ती पयस्ततः ॥ ३४ ॥
जगाम सा भयोद्विग्ना पुनरेव पणोन्प्रति ।
पदानुसारिपद्धत्या रथेन हरिवाहनः ॥ ३५ ॥
गत्वा जघान च पणोन् गावश्च ताः पुनराहरत् ।
तेऽवदन्वैश्वदेवं तु ब्रह्मजाया जुहूर्जगौ ॥ ३६ ॥

किन्तु आसुरी दूध के प्रभाव से उसने इन्द्र को नकारात्मक उत्तर दिया । क्रुद्ध होकर उन्होंने उसे पैर मारा । तब दूध का चमन करती हुई भय से उद्गिप्त होकर वह पुनः पणियों के पास गई । अपने रथ पर बैठ कर हरि-

बाहुव (इन्द्र) ने उसके पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए जाकर पणियों को मारा और गायों को वापस लिया ।

अब विश्वेदेवों को समर्पित 'तेऽवदन्' (ऋग्वेद १० १०९) का ब्रह्मजाया छन्द ने गायन किया ।

८-ऋग्वेद १० १०९-१२० के देवता

जामदग्नं समिद्धोऽथ आप्रीसूक्तमतः परम् ।

युगपद्वै व्रजन्तं तं वैरूपा ऋषयस्त्रिभिः ॥ ३७ ॥

इन्द्र प्रतिजगुः सूक्तैः पणीन्प्रति मनीषिणः ।

वैश्वदेवं परं सूक्तं धर्मेत्येकेऽत्र तु स्तुतान् ॥ ३८ ॥

देवानिन्द्रं च मन्यन्ते छन्दांस्यग्निं च मध्यमम् ।

आग्नेयं चित्र इत्येतज् जगादर्विरुपस्तुतः ॥ ३९ ॥

इसके बाद 'समिद्धोऽथ' (ऋग्वेद १०, ११०) से आरम्भ जमदग्नि का आप्री सूक्त आता है ।

'मनीषिण' (ऋग्वेद १० १११, १) से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १० १११-११३) ने वैरूप ऋषियों ने उस समय इन्द्र का गायन किया जब वह पणियों के विरुद्ध गये । 'धमा' से आरम्भ बाद का सूक्त (ऋग्वेद १० ११४) विश्वदेवों को सम्बोधित है । फिर भी, किसी का विचार है कि यहाँ देवों और इन्द्र, छन्दों, और मध्यम अग्नि की स्तुति है । ऋषि उपस्तुत ने 'चित्र' (ऋग्वेद १० ११५) का गायन किया जो अग्नि को सम्बोधित है ।

पिबेन्द्रं स्तौति नेत्यन्नं राक्षोग्नाग्नेयमुत्तरम् ।

इति वै लावमैन्द्रं तद् आप्त्याः षष्ठ्यां निपातिताः ॥ ४० ॥

'पिब' (ऋग्वेद १० ११६) इन्द्र की स्तुति करता है और 'न' (ऋग्वेद १० ११०) अन्न की । बाद का सूक्त (ऋग्वेद १० ११४) अग्नि को सम्बोधित (और) राक्षसज्ञ है । 'इति वै' (ऋग्वेद १० ११९) छत्र को सम्बोधित है । तत्' (ऋग्वेद १० १२०) इन्द्र को सम्बोधित है । इसकी छठवीं आवा में आप्त्यों का निपातिक उल्लेख है ।

९-ऋग्वेद १० १२१-१२९ के देवता । तीन बिना

प्राजापत्यमथाग्नेयं वैन्यमित्यनुपूर्वशः ।

वरुणोन्मृशिसोमनाम् इमं न इति संस्तवः ॥ ४१ ॥ .

इसके बाद कम से एक सूक्त प्रजापति (ऋग्वेद १० १२१) को एक (ऋग्वेद १० १२२) अग्नि को, और एक (ऋग्वेद १० १२३) वेन को सम्बोधित है। 'इम न' (ऋग्वेद १० १२४) में वरुण, इन्द्र, अग्नि, सोम की स्तुति है।^१

^१ तु की० सर्वानुक्रमणी अग्नि-वरुण-सोमानाम् ऐन्द्र्य उत्तमा'।

चतस्रस्त्वत्र सूक्तावाव् आभिरात्मस्तवं जगौ ।

स्तुतः सोमस्तु षष्ठ्या च नवम्या च पदैस्त्रिभिः ॥४२॥

अब इस सूक्त के आदि की चार ऋचाओं (ऋग्वेद १० १२४, १-४) का अग्नि ने अपनी स्तुति में गायन किया, किन्तु छठवीं में तथा नवीं के तीस पादों में सोम की स्तुति है।

वारुण्यस्त्वितरास्तिस्र ऐन्द्रमेवोत्तमं पदम् ।

अहं वाक्सूक्तमर्यम्णो मित्रस्य वरुणस्य च ॥ ४३ ॥

न तं राज्याः परं सूक्तं वैश्वदेवं ममेति यत् ।

नमस्ते वैद्युतं सूक्तम् आशीर्वाद परं तु यत् ॥ ४४ ॥

यां कल्पयन्ति नोऽरयः कृत्यानाशनमात्मनः ।

हिरण्यस्तुतिरायुष्यं नासद्यत्परमेष्ठिनः ॥ ४५ ॥

किन्तु शेष तीन (ऋग्वेद १० १२४, ५, ७, ८) वरुण को, जबकि अग्निम पाद (नवीं ऋचा का) केवल इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'अहम्' (ऋग्वेद १० १२५) वाक् का सूक्त है। 'न तम्' (ऋग्वेद १० १२६) अर्यमन्, मित्र और वरुण का है। बाद का सूक्त (ऋग्वेद १० १२७) रात्रि का है। वह जो 'मम' (ऋग्वेद १० १२८) से आरम्भ होता है, विश्वदेवों को सम्बोधित है। 'नमस्ते' से आरम्भ विद्युत को सम्बोधित सूक्त आशीर्वाद है। किन्तु 'यां कल्पयन्ति नोऽरयः' से आरम्भ जो बाद में आता है वह अभिचार नाशक है। 'आयुष्यम्' द्वारा अपने छिये स्वर्ण की स्तुति है। 'नासद्य' (ऋग्वेद १० १२९) परमेष्ठिन् को सम्बोधित है।

१०-ऋग्वेद १० १३०-१३७ के देवता

वदन्ति भाववृत्तं तद् यो यज्ञ इति चोत्तरम् ।

अपैन्द्रमत्र स्वाश्विन्यौ चतुर्थी पञ्चमी स्मृते ॥ ४६ ॥

लोग इस (सूक्त) को तथा बाद के सूक्त 'यो यज्ञ' (ऋग्वेद १०. १३०)

को मातृवृत्त कहते हैं। 'अप' (ऋग्वेद १० १३१) इन्द्र को सम्बोधित है; फिर भी, यहाँ चौथी और पाँचवीं ऋचा को अश्विनो को सम्बोधित माना गया है।

मैत्रावरुणमीजानं प्रथमायामृचि स्तुताः।

अर्धर्चं द्यौश्च भूमिश्च अश्विनौ चोत्तरे ततः ॥ ४७ ॥

‘ईजानम्’ (ऋग्वेद १० १३२) मित्र वरुण को सम्बोधित है। प्रथम ऋचा की प्रथम अर्ध ऋचा में आकाश और पृथिवी की, तथा द्वितीय अर्ध-ऋचा में अश्विनो की स्तुति है।

प्रो ध्वैन्द्रे वैश्वदेव्यृक् तु नकिर्देवा मिनीमसि।

यस्मिन्वृक्ष इति त्वस्मिन् द्युस्थान स्तूयते यमः ॥ ४८ ॥

‘प्रो धु’ (ऋग्वेद १० १३३, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० १३३-१३४) इन्द्र को सम्बोधित है, किन्तु ‘नकिर देवा मिनीमसि’ (ऋग्वेद १० १३४, ७) ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है। ‘यस्मिन् वृक्षे’ (ऋग्वेद १०, १३५) द्युस्थानीय यम की स्तुति है।

केदयग्नि कैशिनं सूक्तम् उत देवाः पर तु यत्।

देवानामत्र चाद्या स्याद् वातदेवस्तृचः परः ॥ ४९ ॥

‘केदय अग्निम्’ (ऋग्वेद १० १३६) सूक्त कशिना को सम्बोधित है, ‘उत देवा’ से आरम्भ बाद के सूक्त (ऋग्वेद १० १३७) में प्रथम ऋचा को देवों को सम्बोधित मानना चाहिये, बाद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १३७, २-४) के देवता बात है।

आयतां वैश्वदेव्यृक् तु शेषस्त्वन्दैवतः परः।

स्यादेतद्विश्वभैषज्यं रपसो वा विनाशनम् ॥ ५० ॥

‘त्रायस्ताम्’ (ऋग्वेद १० १३७, ५) से आरम्भ ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है, किन्तु इसक बाद जो ऋचायें (ऋग्वेद १० १३७, ६-७) आती हैं उनके देवता अज्ञ हैं। इस सूक्त को ‘विश्व भैषज्य’ अथवा असत्यता का विनाश करनेवाला मानना चाहिये।

११-‘भूमि’ खिल। ऋग्वेद १० १३८-१४२ के देवता

भूमिर्लाक्ष परं सूक्तं तवैन्द्रं सूक्तमुत्तरम्।

सूर्यरश्मिरिति त्वस्मिन् सावित्रः प्रथमस्तृचः ॥ ५१ ॥

बाद का 'भूमि' सूक्त काका को सम्बोधित है। इसके बाद का 'तव' (ऋग्वेद १० १३८) सूक्त इन्द्र को सम्बोधित है। 'सुर्वरसि' (ऋग्वेद १० १३९) सूक्त की प्रथम तीन ऋचाओं सवित्र को सम्बोधित हैं।

'भूमिरमाता, नम पिता, अयमा ते पितामह' से आरम्भ सात ऋचाओं का श्लोक।

आत्मा स्तुतः परोक्षस्तु गन्धर्वेणोत्तरे तृचे ।

इन्द्रो वैष निपातेन अथवा सूर्य उच्यते ॥ ५२ ॥

अब बाद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १३९, ४-६) में गन्धर्व द्वारा परोक्ष रूप से आत्मस्तुति है इसे नैपानिक रूप से इन्द्र अथवा सूर्य कहा गया है।

सूक्तेऽस्मिन्देवतास्तिस्र एता एव प्रकीर्तिताः ।

आग्नेयं त्वग्ने तवेति वग्ने अछेति यत्परम् ॥ ५३ ॥

आग्नेयं वैश्वदेवं च अयमित्यत्र तु दृचाः ।

शाङ्गाश्चत्वार ऋषयो अग्निमार्चन्पृथक्पृथक् ॥ ५४ ॥

इस सूक्त (१० १३९) में केवल इन्हीं तीन देवताओं की प्रशस्ति है। अब 'अग्ने तव' (ऋग्वेद १० १४०) अग्नि को सम्बोधित है, 'अग्ने अछ' (ऋग्वेद १० १४१) से आरम्भ जो बाद में आता है वह अग्नि तथा विश्वदेवों को सम्बोधित हैं। अब 'अयम्' (ऋग्वेद १० १४२) सूक्त में द्वि-ऋचाओं में द्रष्टाओं के रूप में चार शाङ्गा ने पृथक्-पृथक् अग्नि की अर्चना की है।

अर्थात् सवित्र, इन्द्र, सूर्य।

^२ अर्थात् प्रत्येक ने दो दो ऋचाओं से। तु० की० सर्वात्मकमणी, 'अयम् अछोऽदृचा शाङ्गा आसेयम्, देखिये 'दृच की व्याख्या के लिये वङ्गुशशिष्य।

१२ ऋग्वेद १० १४३-१५४ के देवता। शिल्प मेधा सूक्त।

आश्विनं त्यं चिदित्येतद् अयमैन्द्रं ततः परम् ।

इमां खनामीति सूक्तम् इन्द्राणी यत्स्वयं जगौ ॥ ५५ ॥

तदौपनिषदं षट्कं भाषवृत्त प्रचक्षते ।

उत्तानपर्णा पाठां तु स्तौति सूक्ते महौषधिम् ॥ ५६ ॥

'एष चिद' (ऋग्वेद १० १४३) सूक्त अश्विनों को सम्बोधित है। 'अयम्' (ऋग्वेद १० १४४) से आरम्भ इसके बाद का इन्द्र को सम्बोधित

है। 'इमां जनामि' (ऋग्वेद १० १४५) से आरम्भ सूक्त को, जिसको स्वयं बृहदाजी ने गाया है, उन लोगों ने छ ऋचाओं वाला एक औपनिषदिक भाष्यवृत्त कहा है।

अब इस सूक्त में उसने (ब्रह्मा ने) फैली हुई पत्तियों^१ वाली 'पाठा' नामक समर्थ महौषधि की स्तुति की है

^१ औषधि की एक विशिष्टता के रूप में 'उत्तानपर्णा' शब्द ऋग्वेद १० १४५, २ में आता है।

पतिसंवननी त्वन्त्यान्याः सपत्न्यपनोदिकाः ।

अरण्यानीत्यरण्यान्या स्तुतिरैन्द्रे अदुत्तरे ॥ ५७ ॥

अब अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद १० १४५, ६) का प्रयोजन पति का प्रेम प्राप्त करना तथा शेष का सपरिण^१ (सौत) का प्रतिकार करना है।

'अरण्यानि' (ऋग्वेद १० १४६) में अरण्यानी की स्तुति है। 'अस्' (ऋग्वेद १० १४७, १) से आरम्भ बाद के दो सूक्त (१० १४७-१४८) बृहद् को सम्बोधित है।

^१ सर्वांशुकमणी में 'सपत्नी बाधनम्' है, जिसका ऋग्विधान ४ १२, १ के इन शब्दों से तुलना करें 'सपत्नीम् बाधते तेन।

सावित्रं सविता यन्त्रैः समिद्धश्चित्समिध्यसे ।

आग्नेयं अद्भया श्राद्धं मेधासूक्तमतः परम् ॥ ५८ ॥

'सविता यन्त्रै' (ऋग्वेद १० १४७) सवितृ को सम्बोधित हैं। 'समिद्धश्चित्समिध्यसे' (ऋग्वेद १० १५०) अग्नि को सम्बोधित है। 'अद्भया' (ऋग्वेद १० १५१) अद्भ्या को सम्बोधित है। इसके बाद 'मेधा-सूक्त'^१ आता है।

^१ यह एक खिल है, जिसका ऋग्विधान ४ १४, २ में 'मेधासूक्तम्' के नाम से उल्लेख है।

आग्नेयमा सुरेत्येतच्छास ऐन्द्रे ततः परे ।

सोम एकेभ्य इत्येतद् भाषवृत्तं प्रचक्षते ॥ ५९ ॥

आ सूर एतु^१ सूक्त अग्नि को सम्बोधित है। इसके बाद 'शास' से आरम्भ बृहद् को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद १० १५२-१५३) आते हैं। 'सोम एकेभ्य' (ऋग्वेद १० १५४) सूक्त को वह भाषवृत्त कहते हैं।

^१ यह भी एक खिल है जो काश्मीर सग्रह में मेधासूक्त के ठीक बाद आता है।

१३-ऋग्वेद १० १५५-१५९ के देवता

यदरायीत्यलक्ष्मीघ्नं तत्र चत्तो इति द्वेषे ।

प्राधान्याद्वा निपाताद्वा स्तूयते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ६० ॥

इन्द्रश्चैव यदित्यस्यां विश्वे देवाः परीत्यृचि ।

आग्नेयं चाग्निमित्येतद् वैश्वदेवमिमां नु कम् ॥ ६१ ॥

‘अरायि’ (ऋग्वेद १० १५५,) दुर्मायि का नाशक है इसमें ‘चत्तो’ से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद १० १५५, २-३) में ब्रह्मणस्पति की या तो प्रधान देवता के रूप में अथवा नैपातिक रूप में स्तुति है, और ‘यत्’ (ऋग्वेद १० १५५, ४) ऋचा में इन्द्र की तथा ‘परि’ (ऋग्वेद १० १५५, ५) ऋचा में विश्वेदेवों की स्तुति है । और ‘अग्निम्’ (ऋग्वेद १० १५६) अग्नि को सम्बोधित है । ‘इमां नु कम्’ (ऋग्वेद १० १५७) विश्वेदेवों को सम्बोधित है ।

^१ सर्वांनुक्रमणी में यहाँ ‘अलक्ष्मीघ्नम्’ शब्द आता है, तु० की० ऋग्विधान ४ १५ २ ‘अलक्ष्मीनाशनार्थम्’ ।

इन्द्रः प्राधान्यतस्त्यत्र विश्वैर्देवैः सह स्तुतः ।

आदित्यैश्च मरुद्भिश्च तथारूपं हि दृश्यते ॥ ६२ ॥

फिर भी विश्वेदेवों, और आदित्यों और मरुतों के साथ साथ वहाँ इन्द्र की प्रधान स्तुति है, क्योंकि सूक्त का रूप प्रत्यक्षत ऐसा ही है ।

^१ सर्वांनुक्रमणी में ऋग्वेद १० १५७ को केवल ‘वैश्वदेवम्’ कहा गया है ।

सूर्यो न इति सौर्यं तु यत्त्वेनदुदसाविति ।

पौलोमी स्वान्गुणांस्तत्र सपत्नीनां च शंसति ॥ ६३ ॥

अब ‘सूर्यो न’ (ऋग्वेद १० १५८) सूर्य को सम्बोधित है, किन्तु ‘उद् अतो’ (ऋग्वेद १० १५९) में पौलोमी से स्वयं अपने गुणों तथा अपनी सपत्नियों के गुणों की प्रशंसा की है ।

१४-ऋग्वेद १० १६०-१६४ के देवता । ऋषि कपोत नैर्ऋत ।

ऐन्द्रं तीव्रस्य सुञ्चामि भैषज्यं यक्ष्मनाशनम् ।

राजयक्ष्महणं सूक्तं प्राजापत्यं तनुच्यते ॥ ६४ ॥

‘तीव्रस्य’ (ऋग्वेद १० १६०) इन्द्र को सम्बोधित है । ‘सुञ्चामि’ (ऋग्वेद १० १६१) एक यक्ष्मनाशक उपचार है इस प्राजापत्य सूक्त को ‘राज यक्ष्मा’ का विनाशक कहा गया है ।

^१ सार्वानुकमणी और भार्वानुकमणी में इस सूक्त के द्रष्टा को 'प्राजापत्य यक्ष्मनाशनम्' कहा गया है।

^२ सार्वानुकमणी में इसे 'राजयक्ष्मन्' कहा गया है।

ऐन्द्राग्नं मन्यते यास्क एके लिङ्गोक्तदेवतम् ।

राक्षोघ्नाग्नेयमित्युक्तं यस्वेतद्रक्षणेति तु ॥ ६५ ॥

यास्क का विचार है यह सूक्त इन्द्र अग्नि को सम्बोधित है, कुछ के विचार से यह लिङ्गोक्त देवताओं को सम्बोधित है। 'अब' 'ब्राह्मणा' (ऋग्वेद १० १६२) को 'राक्षसघ्न', तथा अग्नि को सम्बोधित कहा गया है।

स्रवतामपि गर्भाणां दृष्टं तदनुमन्त्रणम् ।

वैन्यं तु वेनस्तत्पश्यद् अक्षीभ्यां यक्ष्मनाशनम् ॥ ६६ ॥

इसे जन्म ले रह गर्भ के दृष्ट की स्तुति भी माना गया है। 'वेनस् तत् पश्यत्' वेन को सम्बोधित है। 'अक्षीभ्याम्' (ऋग्वेद १० १६३) यक्ष्म विनाशक है।

^१ यह ऋग्वेद १० १६३ के पहले आनेवाली तीन श्रुताओं का खिल है। अनुक्रमणी में इसे 'वेनस्, तुच वेन। आववृत्त तु' के रूप में व्यक्त किया गया है।

दुःस्वप्नघ्नमपेक्षोति निपातीन्द्रोऽग्निरेव च ।

आसीदृषिर्दार्घतपाः कपोतो नाम नैर्ऋतः ॥ ६७ ॥

'अपेक्षि' (ऋग्वेद १० १६३) दुःस्वप्न विनाशक है इसमें इन्द्र और अग्नि नैपातिक हैं।

कपोत नैर्ऋत नामक एक ऋषि या जिसने दार्घकाळ तक तप किया।

१५-ऋग्वेद १० १६५-१७४ के देवता

अकरोत्कपोतस्तस्याष्ट्रयाम् अग्निधाने पद किल ।

स तमात्महितैर्वाक्यैः कपोतं स्तुतवानृषिः ॥ ६८ ॥

देवा इति तु सूक्तेन प्रायश्चित्तार्थमुच्यते ।

ऋषभं मा सपत्नघ्नं येनेदमिति मानसम् ॥ ६९ ॥

ऐसा कथन है कि एक बरन में कपोत में इनके अग्निधान पर अपना पैर रख दिया था ऋषि ने आत्महितैषी वाक्यों से 'देवा' (ऋग्वेद १० १६५) सूक्त द्वारा कपोत की स्तुति की इसे प्रायश्चित्तार्थक' कहा गया है। 'ऋषभम् मा' (ऋग्वेद १० १६६) सपत्नघ्न है। 'येनेदम्' मानस को सम्बोधित है।

तु० की० सर्वांशुकमणी 'प्रावक्षितम इदम्।

^१ यह ऋग्वेद १० १६७ के पहले आनेवाला एक तीन ऋचाओं का छिद्र है और 'येनेदं भूतं भुवनं भविष्यद्' से आरम्भ होता है।

तुभ्येत्यृषी ददशतुर् ऐन्द्रं गायिनभार्गवौ।

वरुणो विधातानुमतिर् धाता सोमो बृहस्पतिः ॥७०॥

षळेता देवतास्तत्र तृतीयायामृचि स्तुताः।

वातस्येति परेणास्तौद् अनिलः पितरं स्वकम् ॥७१॥

गायिन (विश्वामित्र)^१ और भार्गव (जमदग्नि) इन दो ऋषियों ने 'तुभ्य' (ऋग्वेद १० १६७) से आरम्भ हुम्न को सम्बोधित सूक्त का दर्शन किया। यहाँ तृतीय ऋचा (ऋग्वेद १० १६७, ३)^२ में वरुण, विधात, अनुमति, धात, सोम, बृहस्पति—इन छ देवताओं की स्तुति है। 'वातस्य' (ऋग्वेद १ १६८) से आरम्भ बाद ऋ सूक्त द्वारा अनिल ने अपने पिता^३ की स्तुति की।

^१ तु० की० सर्वांशुकमणी विश्वामित्रजमदग्नी (सर्वांशुकमणी) ऋषिर् गायिन भार्गवौ।

^२ सर्वांशुकमणी 'तृतीया लिङ्गोक्तदेवता', तु० की० षड्गुरुशिष्य।

^३ तु० की० सर्वांशुकमणी १० ८७ 'वातायनो मुनि सूक्त वातस्येति अनिलो जगौ।

मयोभूरिति यत्सूक्तम् अपश्यच्छवर ऋषिः।

नानारूपाः पयस्विन्यो गावस्तत्र तु संस्तुताः ॥ ७२ ॥

'मयोभू' (ऋग्वेद १० १६९) से आरम्भ सूक्त का शबर^१ ऋषि ने दर्शन किया। यहाँ नाना रूपों की पयस्विनियों (दूध देनेवाले पशुओं) की स्तुति है।^२

^१ शबर का नाम सर्वांशुकमणी तथा सर्वांशुकमणी में आता है।

^२ सर्वांशुकमणी इस सूक्त का केवल 'गव्यम्' के रूप में वर्णन करता है।

विभ्राट् सौर्यं त्वं त्यमैन्द्रम् आ याहीत्युषस स्तुतिः।

आ त्वा राज्ञेऽभिषिक्ताय द्वे सूक्ते चानुमन्त्रणे ॥७३॥

'विभ्राट्' (ऋग्वेद १० १७०) सूर्य को सम्बोधित है 'त्वं त्यम्' (ऋग्वेद १० १७१) हुम्न को सम्बोधित है, 'आ याहि' (ऋग्वेद १० १७२) में उषस् की स्तुति है; और 'आ त्वा' से आरम्भ हो सूक्त (ऋग्वेद १०

१७३-१७४) 'अभिषिक्त राजा का अनुमन्त्रण करते हैं।

^१ सर्वानुकम्पी ने इन दोनों को 'राजस्तुति' कहा है। तु० की० ऋग्विधान ४ २२, ४

१३-ऋग्वेद १० १७५-१८१ के देवता।

प्र व इष्युत्तर ग्राव्णां ददर्श स्तुतिमार्बुदिः ।

यत्त्वतः परमाग्नेयं तत्रार्भव्यक् प्र सूनवः ॥ ७४ ॥

पाषाणों की स्तुति के रूप में 'मार्बुदि' ने बाद के 'प्र व' (ऋग्वेद १० १७५) सूक्त का दर्शन किया। अब जो बाद में आता है वह अग्नि को सम्बोधित है यहाँ 'प्र सूनव' (ऋग्वेद १० १७६, १) से आरम्भ तीन ऋचायें ऋतुओं को सम्बोधित हैं।

^१ तु० की० सर्वानुकम्पी 'प्र व' आहुतिर ग्राव्णोऽस्तौय'।

ऋषिर्जगौ पतंगस्तु पतंगमिति यत्परम् ।

तत्सौर्यमेके मन्यन्ते मायाभेदं तथापरे ॥ ७५ ॥

अब बाद में आनेवाले 'पतंगम्' सूक्त (ऋग्वेद १० १७७) का पतंग ऋषि ने गायन किया, कोई इसे सूर्य को सम्बोधित मानता है, जब कि अन्य 'मायाभेदक' मानते हैं।

^१ इस सूक्त का वर्णन करने के लिये सर्वानुकम्पी ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है। तु० की० ऋग्विधान ४ २२, ५ 'मायाभेदनम् ऐतत्'।

मायाभेदे द्वितीयाया पाक् स्तुतेत्याह शौनकः ।

देवी विभर्ति मनसा या वाचं विदितां सतीम् ॥ ७६ ॥

इस माया भेदक सूक्त में, शौनक का कथन है कि द्वितीय ऋचा (ऋग्वेद १० १७७, २) में उस देवी वाच् की स्तुति है जो अपने हृदय से सुविदित^१ बाणी को वारण कर रखती हैं।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० १७७, २ में यह शब्द। 'पतङ्गो वाचम नसा विभर्ति' शीतमानाम।

^२ इससे सम्भवतः ऋग्वेद १ १६४, ४५ में वर्णित चार प्रकार के वाच् से तात्पर्य है 'तानि विदुर् माक्षणा पुरीय वाचो मनुष्या वदन्ति।

तपम् पु ताक्ष्यदैवत्यं सूक्तं स्वस्थयनं विदुः ।

उदैन्द्रे वैश्वदेवं तु प्रथञ्चेति च यत्परम् ॥ ७७ ॥

तपम् उ ऊ' (ऋग्वेद १० १७८) सूक्त की, जिसके देवता ताक्ष्य^१ है, वह लोग 'स्वस्थयन' करनेवाला मानते हैं।^२ 'उत्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० १७९-१८०) इन्द्र को सम्बोधित हैं, जब कि जो कि इसके

बाद में 'प्रथम' (ऋग्वेद १० १८१) आता है वह विन्धेदेवों का सम्बोधित है।

^१ पु० की० ऋग्विधान ४ २३, २ 'एवम् ऊच्यते स्वस्वययनम्'।

१७-ऋग्वेद १० १८२-१८४ के देवता।

आत्मप्रभावमाचल्युस् तत्राद्या ऋषयस्त्रयः।

रथंतरं यथा स्तोत्रं स्तोत्रं चैव यथा बृहत् ॥ ७८ ॥

यथा च संभूतो धर्मः सवितुश्चोपलक्ष्यते।

बृहस्पतिरिति त्वस्मिन् स्तुतः सूक्ते बृहस्पतिः ॥ ७९ ॥

इसमें प्रथम तीन ऋषियों ने स्वयं अपने प्रभाव को व्यक्त किया है किस प्रकार रथतर स्तोत्र और किस प्रकार बृहत् स्तोत्र, और किस प्रकार धर्म सवितु से उत्पन्न हुये, इसका वर्णन निहित है। अब 'बृहस्पति' (ऋग्वेद १० १८२) सूक्त में बृहस्पति की स्तुति है।

आशिषो यजमानस्य केचिदेतां स्तुति विदुः।

प्राजापत्यस्य यत्सूक्तम् अपद्यं त्वा प्रजावतः ॥ ८० ॥

प्रत्यृचं देवता स्तौति लिङ्गैरेवात्र लक्षिताः।

आशिषः पुत्रकामस्य प्रथमा हि वदत्यथ ॥ ८१ ॥

द्वितीया पुत्रकामायास् तृतीयात्मस्तवं त्वृषेः।

यद्विष्णुरिति सूक्तं तु वैश्वदेवं प्रचक्षते ॥ ८२ ॥

कुछ लोग इस (बृहस्पति की) स्तुति को यजमान की स्तुति मानते हैं।

'अपश्यत्वा' (ऋग्वेद १० १८३) से आरम्भ प्रजावत् प्राजापत्य के सूक्त में प्रत्येक ऋचा में लिङ्ग से व्यक्त देवताओं की स्तुति है अर्थात् प्रथम ऋचा में पुत्र की इच्छा रखनेवाले के लिये आशिष है। इसके बाद द्वितीय में पुत्र की इच्छा रहनेवाली स्त्री के लिये, जब कि तृतीय ऋचि की आरम्भस्तुति है। अब 'विष्णु' (ऋग्वेद १० १८४) से आरम्भ सूक्त को वह लोग विन्धेदेवों को सम्बोधित बताते हैं।

^१ तीनों ऋचाओं में क्रमशः यजमान, उनकी पत्नी, और होतृ ही देवता हैं, पु० की० सर्वाङ्गकमणी 'अन्वृचं यजमानपत्नीहोमाशिष'।

^२ सर्वाङ्गकमणी में इस सूक्त को 'विन्धेकदेवत' बताया गया है।

तस्मिन्वक्षारवर्गार्थम् अग्निराशास्त आशिषः ।

परं तु नेजमेवेति गर्भार्थं वा तदुच्यते ॥ ८३ ॥

इसमें ऋषि ने अपनी पत्नी के गर्भ^१ धारणार्थ आशित् कह्य है । अब वाक् का सूक्त 'नेजमेव'^२ है । इसे वैकल्पिक रूप से गर्भार्थक कहा गया है ।

त० की सर्वाङ्कुमणी 'गर्भार्थिणी' ।

^२ यह ऋग्वेद १०-१८५ के पहले आनेवाला तीन ऋचाओं का छिद है ।

१८- 'नेजमेव' छिद । ऋग्वेद १० १८५-१८८ के देवता

अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा घेहि यः पुमान् ।

आशिषो योगमेतं हि सर्वगर्धेन मन्यते ॥ ८४ ॥

एकारमनुकम्पार्थं नास्मि स्मरति माठरः ।

आख्याते भूतकरणं वाक्कला आव्ययोरिति ॥ ८५ ॥

'पुत्र की इच्छा रखनेवाली मेरी इस स्त्री को सन्तान प्रदान करें जो पुरुष हो'—सम्पूर्ण ऋचा के इस अर्धभाग से उनका इन सम्पूर्ण आशित् षोण से तात्पर्य है माठर यह मानते हैं कि (नेजमेव) नाम में 'एकार' का अनुकम्पार्थक तात्पर्य है, जब कि वाक्कों का कथन है कि (आदधे) आख्यात में दो 'एकारों' का 'आख्य' के आशय में भूतकालिक अर्थ है ।

^१ अर्थात् 'आद्रधे' यहाँ = आदधो ।

माहित्रं यन्महि त्रीणाम् आदित्यानां स्तुति बिदुः ।

वरुणार्थमभिप्राणाम् आदित्येष्वितरेषु तु ॥ ८६ ॥

एत एव त्रयो देवा स्तुताः स्वल्पेष्वतोऽन्यथा ।

शान्त्यर्थं सूक्तमेतद्धि पावनं चैव वै श्रुतम् ।

यातामपि स्वस्त्ययने दृष्टं तदनुमन्त्रणम् ॥ ८७ ॥

'महि त्रीणाम्' (ऋग्वेद १० १८५) से आरम्भ सूक्त को वह लोग आदित्यों, वरुण, अर्यमन्, मित्र की स्तुति मानते हैं । अब इसको छोड़कर आदित्यों को सम्बोधित अत्यन्त कम सूक्त ही ऐसे हैं जिनमें केवल इन तीनों देवों की स्तुति हो । श्रुति के अनुसार यह शान्त्यार्थक सूक्त, तथा पवित्र कारक भी है ।

इसे यात्रियों^१ के आमन्त्रण में भी कल्याणकारी माना गया है ।

तु० की० ऋग्विधान ४ २३, २ 'महि वृष्णाय अवीडस्व इति स्वस्त्ययने जपेत् ।
देक्षिये ऋग्वेद ८ ८३, ६ 'क्षिप्रं यान्ती अथवा वा देवा वृषाय हुमहे ।'
सर्वांशुकमणी में भी इस सूक्त को 'स्वस्त्ययनम्' कहा गया है ।

उलोऽस्तीतिपतरं वार्तं वात आग्नेयमुत्तरम् ।

विस्पष्टं जातवेदस्यं प्रेति दाशतयीषु तु ॥ ८८ ॥

'वात' (ऋग्वेद १० १८६) से उल ने अपने पिता की स्तुति की ।
वाद् का सूक्त (ऋग्वेद १० १८७) अग्नि को सम्बोधित है । किन्तु इस
मण्डलों में 'प्र' (ऋग्वेद १० १८८) से आरम्भ एक सूक्त स्पष्टरूप से
जातवेदस् को सम्बोधित है ।

क्योंकि यहाँ केवल 'जातवेदस्' नाम का ही उल्लेख है । अनुक्रमणी में भी इस सूक्त
को जातवेदस्यम् कहा गया है ।

१९-ऋग्वेद १० १८९, १९०, १ 'संज्ञानम्' किल

यत्किञ्चिदन्यत्राग्नेयं जातवेदस्यमुच्यते ।

आयं गौरिति यत्सूक्तं सारपराज्ञी स्वयं जगौ ॥ ८९ ॥

अन्य जो कुछ भी जातवेदस् को सम्बोधित कहा गया है, वह (वास्तव
में) अग्नि को सम्बोधित है । 'आयं गौ' (ऋग्वेद १० १८९) सूक्त का
सारपराज्ञी ने अपने लिये गायन किया है ।

ऊपर १ ६७ में जातवेदस् को मध्यम अग्नि कहा गया है । ऋग्वेद १० १८९ के
अतिरिक्त, सर्वानुक्रमणी ने केवल एक ही अन्य सूक्त (ऋग्वेद १ १९) को
जातवेदस्यम् कहा है ।

२ तु० की० सर्वांशुकमणी 'सारपराज्ञी आत्मदैवत सौर्व वा ।

तस्मात्सा देवता तत्र सूर्यमेके प्रचक्षते ।

मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकदायनः ॥ ९० ॥

त्रिस्थानाधिष्ठितां वाचं मन्यन्ते प्रत्यृचं स्तुताम् ।

भाववृत्तां परं सूक्तं ददर्शाथाघमर्षणः ॥ ९१ ॥

परं न विद्यते यस्माच्च छान्त्यै वा पाबनाय वा ।

यथाश्वमेधः ऋतुराद् सर्वरिप्रप्रणोदनः ॥ ९२ ॥

तथाघमर्षणं ब्रह्म सर्वरिप्रप्रणोदनम् ।

तदादीनीति यच्चातः संज्ञानं ज्ञानसंस्तवः ॥ ९३ ॥

अतः इसमें वही देवता है, कोई सूर्य को (देवता) बताते हैं । मुद्गलः,

साकपूणि और आचार्य साकटावन का विचार है कि यहाँ प्रत्येक ऋचा में तीन स्थानों की अधिष्ठानों के रूप में वाङ् की स्तुति है। बाद के उस भाववृत्त सूक्त (ऋग्वेद १० १९०) का अधमर्षण ने दर्शन किया जिससे समृद्धि अथवा पवित्रता के लिये ओष्ठ अन्य कोई (सूक्त) विद्यमान नहीं है। जिस प्रकार हर प्रकार की अज्ञातता^१ को दूर करने के लिये प्रमुख प्रणोद है, उसी प्रकार अधमर्षण स्तुति समस्त अज्ञातता को दूर करती है। अब इसके (ऋग्वेद १०, १९०) बाद में आनेवाले सूक्तों में से 'संज्ञानम्'^२ से आरम्भ सूक्त में ज्ञान की स्तुति है।

तु० की० सर्वानुकमणी 'अधमर्षणो, भाववृत्तम्'।

^२ तु० की० ऋग्विधान ४ २५, ५ 'पवित्राणां पवित्र तु जपेद् एवाधमर्षणम्'।

^३ काश्मीर समग्र में ५ वें अध्याय का प्रथम खिल है।

२०-दो खिल। ऋग्वेद १० १९१। महानाम्नी ऋचायें।

चतुर्थं यस्तु नैर्हस्त्य तत्सपत्ननिबर्हणम्।

संसमित् प्राध्वराणां चेत्य् आग्नेय्यावेव ते स्मृते ॥९४॥

अब 'नैर्हस्त्यम्' सपरन विनाशक है। 'स सम इत्' (ऋग्वेद १० १९१, १) और 'प्राध्वराणाम्'^२ को अग्नि को सम्बोधित दो ऋचायें माना गया है।

यह खिल काश्मीर समग्र में 'संज्ञानम्' के बाद आता है। इसमें 'नैर्हस्त्य सेनादरणम्' से आरम्भ तीन ऋचायें हैं।

^२ 'यद् प्राध्वराणां पते वसो' से आरम्भ सात ऋचाओं का खिल है जो 'नैर्हस्त्यम्' के बाद आता है।

उशाना वरुणश्चेन्द्रश् चाग्निश्च सविता स्तुताः।

संज्ञाने प्रथमस्यां तु द्वितीयस्यामथाश्विनौ ॥ ९५ ॥

अब 'संज्ञानम्' को प्रथम ऋचा में उशाना, वरुण, इन्द्र, अग्नि और सवितु की, और इसके बाद द्वितीय में अश्विनों की स्तुति है।

तृतीया चोत्तमे च द्वे आशिषोऽभिवदन्ति ताः।

इन्द्रः पूषा सपत्नघ्ने द्वितीयस्यामृचि स्तुतौ ॥ ९६ ॥

तीसरी और अन्तिम दो (३, ४, ५) आशिष की अभिव्यक्ति करती हैं। 'सपत्नघ्न' की दूसरी ऋचा में इन्द्र और पूषन् की स्तुति है।

अर्थात् 'नैर्हस्त्यम्' की। इन दोनों देवताओं का इस खिल की दूसरी ऋचा में उल्लेख है।

देवानामितराः प्रोक्ता आशीर्वादपराश्च याः ।

ससं संज्ञानमित्येते परं संवननं विदुः ॥ ९७ ॥

और अन्य ऋचाओं को, जो कि प्रमुखत आशीर्वादों से सम्बद्ध हैं, देवों को सम्बोधित कहा गया है। वह लोग 'सं सम्' (ऋग्वेद १० : १९१) और 'सज्ञानम्' को सहमति^१ के लिए सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

^१ ऋग्विधान ४ : २४, ४ : ५ में 'सं सम्' का 'सौमित्र करणं महत्' के रूप में और 'सज्ञानम्' का 'सपिंकरम्' के रूप में वर्णन है।

महानान्य ऋचो गुह्यास् ता एन्द्रयज्ञैव यो वदेत् ।

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्ब्राह्मं स राध्यते ॥ ९८ ॥

'महानान्यी ऋचायें गुह्य हैं और वह इन्द्र को सम्बोधित हैं। जो भी इसका आराधन करता है वह सहस्र वर्ष की अवधि वाला ब्रह्म का एक दिन प्राप्त करता है।'^१

^१ तु० की० भागवद्गीता ८ : १७ 'सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् ब्रह्मणो विदुः' जो बोधे परिवर्तन के साथ निरुक्त १४ : ४ में आता है। मनुस्मृति १ : ७३ में भी यह कुछ इस प्रकार परिवर्तित रूप में आता है 'तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्म पुण्यम् अहर् विदुः'।

२१-महानान्यी ऋचायें . सूक्त क्या होता है

तृचाधमं याज्ञिकाः सूक्तमाहुस्

तस्मिन्स्तुतौ दृश्यन्ते याः सूक्तभाजः ।

प्रधानमुक्तं किल देवता याः

सूक्तभाजः सर्वथा शौनकेन ॥ ९९ ॥

याज्ञिका का कथन है कि एक सूक्त में कम से कम तीन ऋचायें होती हैं।^१ इनमें जिन देवताओं की स्तुति^२ होती है वही इनके सूक्तभाज् होते हैं। जैसा कि सुबिहित हैं, शौनक ने यह कहा है कि सूक्तभाज् देवता सर्वैव ही (स्तुति के) प्रधान विषय होते हैं।

^१ इसके अनुसार ऋग्वेद १ : ९९, सूक्त नहीं होगा।

^२ तु० की० ऊपर ४ : १४३ स्तुतौ यस्मैह दृश्यते, और देखिये ६ : १६ भी।

ऐन्द्रीर्ऋचो महानान्यीस्तु विद्यात्

तथा हि इष्टं ब्राह्मणे सूक्तशब्दः ।

१९. दृ० दे०

न दृश्यते सूक्तवादो निषित्सु

यथा प्रैषेष्वाह सूक्ताभिधानम् ॥ १०० ॥

अब यह जानना चाहिये कि महानाम्नी इन्द्र को सम्बोधित ऋचायें होती हैं, क्योंकि एक बार ब्राह्मण^२ में ऐसा ही वक्तव्य आता है।

सूक्त शब्द इनके लिए व्यवहृत दिखाई नहीं पड़ता; 'सूक्तवाद' का उसी प्रकार निषिद्धों के सम्बन्ध में प्रयोग होता है, जैसे सूक्त की अभिधा को प्रैषों के लिये व्यवहार किया जाता है।

^१ यह ऋचायें (= ऐतरेय आरण्यक ४) उस स्थि का निर्णय करती है जो काशमी सप्रह में 'प्राध्वराणाम्' के बाद आता है।

^२ तु० की ऐतरेय ब्राह्मण ५ ७, २ 'इन्द्रो वा एताभिर् महान् आत्मान निरभिमीत तस्मान् महानाम्न्य', तु० की० कौषीतकि ब्राह्मण २१ २, भी।

सूक्तैकदेशा इति तान्प्रतीयाद्

अन्याश्च कुन्त्याः पदशो विशास्ता ।

यथैतशो देवनीथादिसंज्ञा

कुन्तापे तत्सर्वमेकं हि सूक्तम् ॥ १०१ ॥

ऐसा समझना चाहिये कि यह^१ एक सूक्त के एक एक भाग हैं; तथा साथ ही साथ पादों^२ से पृथक् कुन्त्या^३ ऋचायें, जैसे ऐतश प्रलाप, तथा देवनीथ संज्ञक पाद, इत्यादि भी ऐसे ही हैं, क्योंकि कुन्ताप में यह सब एक ही सूक्त हैं।

^१ अर्थात् निषिद् सूक्तों में निषिद् और 'प्रैषिकं सूक्तम्' में प्रैष।

^२ ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि ऐतश प्रलाप (ऋग्वेद ६ ११, १४-१५) और देवनीथ (ऋग्वेद ६ १५, २२) के प्रत्येक पाद को 'ओम्' के साथ निषिद् की भाँति उच्चारण करना चाहिये।

^३ 'कुन्त्या' शब्द अन्यत्र नहीं मिलता। यहाँ इसका अर्थ 'कुन्ताप की ऋचायें' ही होना चाहिये।

पुरीषपदमासां तु प्रथमं स्यात्प्रजापतेः ।

आग्नेयमैन्द्रं वैष्णवं पौरुषं चैव तु पञ्चमम् ॥ १०२ ॥

अब इनमें (महानाम्नी ऋचाओं में) से प्रथम पुरीष पद को प्रजापति का मानना चाहिये, इसके बाद एक अग्नि की, एक इन्द्र की, एक विष्णु की और पौंषवीं पूषन् को सम्बोधित।

अग्नेः प्रयाजानुयाजाः प्रेषा ये च हवींषि च ।

यदैवतं हविस्तु स्यात् प्रेषास्तद्दैवताश्च ते ॥ १०३ ॥

प्रयाज और अनुयाज, प्रेष और हवियों अग्नि के हैं । अब इन हवियों के जो भी देवता हों उन्हें ही प्रेषों का भी देवता होना चाहिए ।

२२-निविद्, निगद्, और छन्दों के देवता

निविदां निगदानां च स्वैः स्वैर्लिङ्गैश्च देवताः ।

निगदेन निगद्यन्ते याश्च कल्पानुगा ऋचः ॥ १०४ ॥

निविदों और निगदों के देवताओं को उनके अपने अपने लिङ्ग के आधार पर जाना जा सकता है, और उन्हीं ऋचाओं का निगद के साथ गायन करना चाहिए जो ऋच के अनुकूल हों ।

अग्नेरेव तु गायत्र्य उष्णिहः सवितुः स्मृताः ।

अनुष्टुभस्तु सामस्य बृहत्यस्तु बृहस्पतेः ॥ १०५ ॥

अब गायत्रियों को अग्नि का, उष्णिहों को सवितृ का, अनुष्टुभों को साम का और बृहतियों को बृहस्पति का माना गया है ।

पक्त्यस्त्रिष्टुभश्चैव विद्यादैन्द्र्यश्च सर्वशः ।

विश्वेषां चैव देवानां जगत्यो यास्तु काश्चन ॥ १०६ ॥

वह जानना चाहिए कि पक्तियों और त्रिष्टुभ सर्वथा इन्द्र^१ को ही हैं और जो भी समस्त जगत्तियों हैं वे विश्व देवों की हैं ।

^१ वाजसनेयि संहिता अनुक्रमणी के अनुसार पक्तियों वरुण की और त्रिष्टुभ इन्द्र के होते हैं 'पक्तेर वरुणस् त्रिष्टुभ इन्द्र ।'

विराजश्चैव मित्रस्य स्वराजो वरुणस्य च ।

इन्द्रस्य निचृतः प्रोक्ता वायोश्च मुरिजः स्मृतः ॥ १०७ ॥

विषये यस्य वा स्याता स्यातां वा वायुदेवते ।

यास्त्वतिछन्दसः काश्चित्ताः प्रजापतिदेवताः ॥ १०८ ॥

विराज मित्र के, और स्वराज वरुण^१ के होते हैं । निचृतों को इन्द्र का बताया गया है और मुरिजों को वायु का माना गया है अथवा वह दोनों^२ उस देवता के हो सकते हैं जिसके क्षेत्र में वह हों, अथवा दोनों के ही देवता वायु हो सकते हैं । किन्तु सभी अतिछन्दस् छन्दों के देवता प्रजापति^३ हैं ।

तु० की० वाजसनेयि संहिता 'विराजो मित्र स्वराजो बरुण ।'

^२ अर्थात् निचूत और भुरिज ।

तु० की० वाजसनेयि संहिता अनुक्रमणी अतिछन्दस प्रजापति ।'

२३-छन्दों, वेशों, वषट्कार, स्वाहाकृतियों के देवता । स्वर ।

विछन्दसस्तु वायव्या मन्त्राः पादैश्च ये मिताः ।

पौरुष्यो द्विपदाः सर्वा ब्राह्मण्य एकपदाः स्मृताः ॥१०९॥

किन्तु विभिन्न छन्दों वाले मन्त्र वायु क होते हैं । और जो पादों में परिमित होते हैं उनमें से सभी द्विपदा पुरुष क लिय होते हैं और एक पदों को ब्रह्मा के लिये माना गया है ।^१

^१ तु० की० वाजसनेयि संहिता अनुक्रमणी 'विछ इमो वायुर् द्विपदाया पुरुष एकपदाया ब्रह्मा ।'

समस्ता ऋच आग्नेय्यो वायव्यानि यजूंषि च ।

सौर्याणि चैव सामानि सर्वाणि ब्राह्मणानि च ॥११०॥

समस्त ऋचायें अग्नि के लिये हैं^१, यजुष् वायु के लिए हैं^२ समस्त समन् और ब्राह्मण सूर्य के लिए हैं ।

^१ तु० की० वाजसनेयि संहिता अनुक्रमणी 'सर्वाऋच आग्नेय्य ।

^२ त० की० बही सामानि सौर्याणि सर्वाणि ब्राह्मणानि च ।

वैश्वदेवो वषट्कारो हिकारो ये यजामहे ।

रूपं वज्रस्य वाक्पूर्वं स्वाहाकारोऽग्निदेवता ॥ १११ ॥

वषट्कार तथा हिकार विश्वदेवों के लिए है ।^१ 'ये यजामहे' वज्र^२ का रूप है जिसके पूर्व में वाक् है । स्वाहाकार क देवता अग्नि हैं ।

^१ 'हिकार' का 'वषट्कार' के साथ अथर्ववेद १ २१, ४ में उल्लेख है ।

^२ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण २ २८, ५ 'आगूर् वज्र' ।

देवानां च पितॄणां च नमस्कारः स्वधैव च ।

क्रुष्टो मूर्धानि विज्ञेयस् तालव्यः प्रथमः स्वरः ॥११२॥

नमस्कार और स्वधा द्रवों और पितरों के हैं ।

क्रुष्ट स्वर को मूर्धा में स्थित मानना चाहिए, प्रथम स्वर तालव्य^१ है ।

^१ तु० की० नीचे ११७ । देखिये वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य ८ ४७ ।

द्वितीयस्तु भ्रुवोर्मण्ये तृतीयः कर्णसंभ्रितः ।

चतुर्थो नासिकाग्रे स्याद् औरसो मन्द्र उच्यते ।

मन्द्रकर्षणसंयुक्तम् अतिस्वारं प्रशंसति ॥ ११३ ॥

किन्तु द्वितीय मीहीं^१ के मध्य में होता है। तृतीय का स्थान कर्ण^२ है, चौथे को नासिकाग्र^३ में मानना चाहिये, मन्द्र को बज^४ में बताया गया है। अतिस्वार^५ को कोई व्यक्ति मन्द्र के कर्षण से संयुक्त बताते हैं।

^१ तु० की० की० नीचे ११७ ।

^२ तु० की० नीचे ११८ ।

^३ तु० की० नीचे ११८ ।

^४ तु० की० नीचे ११९ ।

^५ इस शब्द का यह रूप नीचे ११६ में भी प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अन्यत्र नहीं मिलता। इसका सामान्य रूप 'अतिस्वार्य' नीचे १२० में प्रयुक्त हुआ है, जहाँ तु० की० इसकी यह परिभाषा 'विकर्षेण मन्द्रस्य युक्त'।

२४-स्वरों के देवता ।

वदन्ति देवताः क्रुष्टं मनुष्याः प्रथमं स्वरम् ।

द्वितीयं पशवः सर्वे गन्धर्वाप्सरसः स्वरम् ॥ ११४ ॥

देवगण क्रुष्ट स्वर में बोलते हैं, मनुष्यगण प्रथम स्वर में, समस्त पशु द्वितीय में, गन्धर्व और अप्सरायें (बाद के) स्वर में।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पाश्च चतुर्थमुपभुञ्जते ।

मन्द्रं पिशाचा रक्षांसि असुराश्चोपभुञ्जते ॥ ११५ ॥

अण्डज जीव पक्षी, सर्प, चतुर्थ का व्यवहार करते हैं; पिशाच, राक्षस, और असुर मन्द्र स्वर का व्यवहार करते हैं।

अतिस्वारस्तु सर्वस्य जङ्गमस्थावरस्य च ।

बैश्वदेवः स्वरः क्रुष्टो नित्यं यो मूर्ध्नि तिष्ठति ॥ ११६ ॥

किन्तु अतिस्वार समस्त जङ्गम और स्थावर की विशेषता है।

क्रुष्ट स्वर, जो कि स्थायी रूप से मूर्धा में स्थित होता है, विश्वदेवों के लिये है।

तालव्यः प्रथमः साम्नां स्वर आदित्यदैवतः ।

स्वरो द्वितीयः साध्यानां भ्रुवोर्देशं समाश्रितः ॥ ११७ ॥

प्रथम तालव्य, सामनों के स्वर के देवता आदिस्थ गण है। द्वितीय स्वर, जिसका स्थान अद्देश है साध्यों के साथ सम्बद्ध है।

आग्निस्तु तृतीयोऽत्र स्वरः कर्णो समाश्रितः ।

चतुर्थस्त्वत्र वायव्यो नासिक्यः स्वर उच्यते ॥११८॥

किन्तु यहाँ तृतीय स्वर, जिसका स्थान कर्ण है, अग्निों के लिए है, किन्तु यहाँ चतुर्थ स्वर, जो नासिक्य है, वायु के लिए कहा गया है।

२५-स्वरों के देवता (शेषांश)। प्रस्ताव, उद्गीथ, उपद्रव,

प्रतिहार, निधन के देवता।

पञ्चमस्तु स्वरः प्रोक्तश् चाक्षुषः सूर्यदेवतः ।

यस्तु सामस्वरः षष्ठः स सौम्यो मन्द्र उच्यते ॥११९॥

किन्तु पाँचवें स्वर का, जो चाक्षुष है, सूर्य को देवता कहा गया है। किन्तु छठवें मन्द्र सामन् स्वर को सोम का कहा गया है।

विकर्षेण तु मन्द्रस्य युक्तोऽतिस्वार्य उच्यते ।

स मैत्रावरुणा ज्ञेयो मन्द्रस्थानसमाहितः ॥ १२० ॥

किन्तु जो मन्द्र क कर्षण स बना है उसे अतिस्वार्य कहा गया है। इसे मित्र वरुण के लिये जानना चाहिये। यह मन्द्र-स्थान में स्थित है।

सामस्वराणां सप्तानाम् एतो देवा इहोदिताः ।

त्रयाणामितरेषा तु लोकाधिपतयस्त्रयः ॥१२१॥

इन सबको यहाँ सात सामन स्वरों का देवता कहा गया है किन्तु अन्य तीन के देवता तीन लोकाधिपति^१ हैं।

अर्थात् ऋग्वेद के तीन स्वर।

^२ अर्थात् ऊपर १ ७३ में वर्णित अग्नि के तीन रूप।

वाग्देवत्योऽथवाग्नेयः थस्तावश्चैव सामसु ।

उद्गीथोपद्रवावैन्द्रौ स्याता वा वायुदेवतौ ॥ १२२ ॥

सामनों में प्रस्ताव के देवता वाच हैं, अथवा यह अग्नि का होता है, उद्गीथ और उपद्रव इन्द्र के लिये हैं अथवा इसके देवता वायु हो सकते हैं।

सूर्यः स्यात्प्रतिहारोऽत्र निधनं वैश्वदेवतम् ।

हिङ्गारप्रणवाभ्यां तु पुरस्तादेव कीर्तनात् ॥ १२३ ॥

अब प्रतिहार को सूर्य के लिये मानना चाहिये, मिषन को विश्वेदेवों के लिए, इनके आरम्भ में हिकार तथा प्रणव का उच्चारण करना चाहिए।

^१ प्र० की० देतरेय ब्राह्मण ३ २३, ४ पर सायण 'उद्गात्रा पठितव्य साम्न आसौ हिम् इत्य् एव शब्दो हिकारः ।'

२६-वैश्वदेव सूक्तों के विभिन्न नैपातिक देवता

इति व्यस्तसमस्तानां मन्त्राणामिह देवतम् ।

देवताविदवेक्षेत प्रयोगे सर्वकर्मणाम् ॥१२४॥

इस प्रकार जो देवताओं को जानता है, उसे यहाँ व्यस्त तथा समस्त मन्त्रों के देवताओं को सभी कर्मों के प्रयोग के आधार पर जानना चाहिए।

सप्तर्षयो वसवश्चापि देवा अथर्वाणो भृगवः सोमसूर्याः ।

पथ्या स्वस्ती रोदसी चोक्तमन्त्रे कूङ्गुङ्गूरदितिर्वेनुवध्न्या ॥

असुनीतिरिळा चाप्या विधातानुमतिर्ह या ।

आङ्गिरोभिः सहैताः स्युर् उक्तमन्त्राश्च देवताः ॥१२५॥

सप्तर्षि, वसुगण, देवगण, अथर्वगण, भृगुगण, सोम और सूर्या, पथ्या स्वस्ति, रोदसी जिसके लिये मन्त्र कहे गये हैं, कूङ्गु गुगू अदिति, वेनु, अघ्न्या असुनीति और इळा, आप्यगण, विधातु, अनुमति तथा अङ्गिरसों के सहित, इन सबको ऐसे देवता मानना चाहिये जिनके लिये मन्त्रों की उक्ति है।

वैश्वानरो हि सुपर्णो विश्वस्वान्

प्रजापतिर्यौः सुधन्वा नगोद्यः ।

अपानपादर्यमा वातजूतिर्

इळस्पतिश्चापि रथस्पतिश्च ॥ १२७ ॥

ऋभवः पर्जन्यः पर्वता ग्राश्च

दक्षो भगो देवपत्नीर्दिशश्च ।

आदित्या रुद्राः पितरोऽथ

साध्या निपातिनो वैश्वदेवेषु सर्वे ॥१२८॥

वैश्वानर, सुपर्ण, विश्वस्वत, प्रजापति, सौम, सुधन्वन्, नगोद्य, अपानपाद, अघमन्, वातजूति, इळस्पति, और रथस्पति, ऋभुगण, पर्जन्य, पर्वत, और स्त्रियाँ, दक्ष, भग, देव पत्नियाँ, दिशाओं, आदित्यगण, रुद्रगण

पितृगण, और साध्यगण—यह सभी विरवेदेवों को सम्बोधित सूक्तों में नैपातिक रूप से आते हैं ।

२७-देवता सम्बन्धी विवरण तथा उनका ज्ञान

अनुक्रान्ता देवताः सूक्तभाजो
हविर्भाजश्चोभयथा निपातैः ।

अप्येषं स्यादुभयथान्यथा वा

न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम् ॥ १२९ ॥

सूक्तभाज और हविर्भाज देवताओं को क्रमानुसार कहा गया है और इन दोनों ही के नैपातिक देवताओं को भी (बताया गया है) । चाहे दोनों ही स्थितिषों हों अथवा एक ही, कोई भी मन्त्र उसको प्रत्यक्ष नहीं हो सकता जो ऋषि नहीं है ।

योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्ध्या

बाहुश्रुत्येन तपसा नियोगैः ।

उपास्यास्ताः कृत्स्नशो देवता या

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् ।

यजू षि यो वेद स वेद यज्ञान्

सामानि यो वेद स वेद तत्त्वम् ॥ १३० ॥

इन सभी देवताओं की योग दक्षता, दम, बुद्धि पाण्डित्य, तप तथा नियोग के साथ उपासना करनी चाहिए । जो ऋचाओं को जानता है वह देवताओं को भी जानता है ।

जो यजुष को जानता है वह यज्ञ को भी जानता है । जो सामन् को जानता है वह तत्त्व को भी जानता है ।

मन्त्राणां देवताविधः प्रयुङ्क्ते कर्म कर्हिचित् ।

जुषन्ते देवतास्तस्य हविर्नादेवताविधः ॥ १३१ ॥

वह जो मन्त्रों के देवताओं को जानते हुए किसी कर्म का प्रयोग करता है, उसकी हवि को देवता लोग ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु उसकी हवि को नहीं, जो इन देवताओं से अनभिज्ञ होता है ।^२

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी, भूमिका 'मन्त्राणाम् आर्वेयछन्दोदैवतविष् ।'

^२ तु० की० वाजसनेयि संहिता, अनुक्रमणी, उ० स्था० 'देवताम् अविद्याय यो जुहोति, देवतास्तस्य हविर्न जुषन्ते ।'

अविज्ञानप्रदिष्टं हि हविर्नेहेत दैवतम् ।

तस्मान्मनसि संन्यस्य देवतां जुहुयाद्धविः ॥ १३२ ॥

यत अविज्ञान प्रदिष्ट हवि की देवता इच्छा नहीं करते, अतः मन में देवता को भली प्रकार सज्जिविष्ट भरके ही हवि देनी चाहिए ।^१

^१ तु० की० वाजसनेयि संहिता अनुक्रमणी, उ० स्था० 'स यस्य मनसि देवतां हविर्हूयते ।'

२८-देवताओं को जानने का महत्त्व

स्वाध्यायमपि योऽधीते मन्त्रदैवतविच्छुचिः ।

स सत्त्रसदिव स्वर्गे सत्त्रशङ्गिरपीज्यते ॥ १३३ ॥

पवित्र होते हुए जो मन्त्रों के देवता को जानता और स्वाध्याय करता है, वह स्वर्ग में यज्ञ सत्त्र में बैठे हुए के समान, ऐसों के द्वारा भी प्रशस्ति होता है जो इस प्रकार के सत्त्र में बैठे होते हैं ।^१

^१ तु० की० वाजसनेयि संहिता, अनुक्रमणी, उ० स्था० 'स्वाध्यायम् अपि योऽधीते मन्त्रदैवतज्ञः, सोऽमुष्मिन् लोके देवैर् अपीक्यते ।'

नियमोऽयं जपे होमे ऋषिछन्दोऽथ दैवतम् ।

अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानस् तत्फलाच्चात्र होयते ॥ १३४ ॥

जप और होम में यह आवश्यक हैं—ऋषि, छन्द और देवता, और उनके अन्यथा प्रयोग करने से यहाँ व्यक्ति उनके फल से हीन हो जाता है ।

ऋषिछन्दोदैवतादि ज्ञानं यज्ञादिषु श्रुतम् ।

तदाश्रित्य प्राणदृष्टिर् विपितान्नेति गम्यताम् ॥ १३५ ॥

ऋषि, छन्द, देवता, इत्यादि के यज्ञादि द्वारा अर्जित ज्ञान के सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि इनके आश्रित होने से यहाँ प्राण को देखने की दृष्टि स्थापित होती है ।

अविदित्वा ऋषि छन्दो दैवतं योगमेव च ।

योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ॥ १३६ ॥

ऋषि, छन्द, देवता और योग^१ के ज्ञान के बिना ही जो अध्यापन अथवा जप करता है, वह पापी^२ हो जाता है ।

^१ 'योग' का यहाँ 'प्रयोग' के आशय में व्यवहार हुआ प्रतीत होता है ।

^२ तु० की० शतपथ ब्राह्मण १३ १, ५, ४ ।

अर्थोप्सवः खल्वृषयश् छन्दोभिर्देवताः पुरा ।

अभ्यधावन्निति छन्दो मध्ये त्वाहुर्महर्षयः ॥ १३७ ॥

प्राचीन काल में धन की इच्छा से ऋषियों ने छन्द के द्वारा देवताओं की शरण ली यही कारण है कि महर्षिगण छन्द का मध्य में उल्लेख करते हैं ।

ऋषि तु प्रथमं ब्रूयाच् छन्दस्तु तदनन्तरम् ।

देवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवमिति श्रुतिः ॥ १३८ ॥

अब, सर्वप्रथम ऋषि को बताना चाहिए, उसके बाद छन्द को, और तब कर्म के सन्दर्भ में इस क्रम से मन्त्रों के देवता को, ऐसी श्रुति है ।

आधारं व्याप्यनाधारं विविच्यात्मानमात्मनि ।

ईक्षमाणो शुभौ संधिम् ऋबो दैवतवित्पठेत् ॥ १३९ ॥

आधार^१ और साथ ही साथ, अनाधार के रूप में आत्मा को अपनी आत्मा में जानते हुए जो देवताओं को जानता है उसे सधि तथा ऋबो दोनों पर इष्टि रखते हुए (ऋबोओं का) पाठ करना चाहिए ।

^१ तु० की० वेदान्तसार, १ 'मात्मानम् अखिलधारम् आश्रये' । भगवद्गीता ४ १९ 'तस्य कर्तारम् अपि मां विद्वद्यकर्तारम् अन्ययम्' ।

स ब्रह्मासृतमत्यन्तं योनि सदसतो ध्रुवम् ।

महद्वाणु च विश्वेशं विशति ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४० ॥

ऐसा व्यक्ति उस ब्रह्म में प्रवेश कर जाता है जो अमर, अनन्त, सत् और सत् का ध्रुव कोत, महान् तथा अणु विश्वेश्वर, और परम ज्योतिस्वरूप है ।

॥ इति बृहदेवतायामष्टमोऽध्यायः ॥

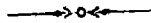
॥ इति शौनकीया बृहदेवता समाप्ता ॥

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

बृहदेवता में उद्धृत वैदिक प्रतीकों की सूची

(काले टाइपों में छपे सन्दर्भ संकेतों से ऋग्वेद का तात्पर्य है, जहाँ किसी अन्य ग्रन्थ से तात्पर्य है वहाँ काले टाइपों में छपे सन्दर्भ संकेतों के मान ग्रन्थ निर्देश भी कर दिया गया है। मादे टाइप में छपे सन्दर्भ संकेतों से बृहदेवता का तात्पर्य है)।



अक्षीभ्याम्, १० १६३ ८ ६६
 अक्षैर्मा, १० ३४, १३ १ १२
 अगाव्युति, ६ ४७, २० १ १११
 अगस्त्यस्य, १० ६०, ६ ७ ९९
 अग्न आयूषि, ९ ६६, १९ ६ ३१
 अग्न इन्द्राच्च, ३ २१, ४ ४ १०
 अग्निना, ८ ३५ ६ ७७
 अग्निनाग्निं सम् इध्यते, १ १२, ६ २
 १४१
 अग्निम्, १ १२, १ २ १४१ १ १२७
 १ ४ ८ ३१, १४ ६ ७१, १०
 १५६ ८ ६१
 अग्निम् उचसम्, ३ २०, १ १ ४ ००
 अग्निर् उक्थे, ८ २७ ६ ६१
 अग्नीपर्जन्यौ, ६ ५२, १६ ११८
 अग्नीषोमौ, १ ९३ ३ १ ४
 अग्ने, १ ४४ ३ १ १
 अग्ने अह, १० १४१ ८ ३
 अग्ने नव, १० १४० ८ ३
 अग्ने नय, १ १८९ ८ ४
 अग्ने महग्नि, ५ ६०, ८ ४ ४८
 अग्ने स शेवत्, ६ ३, १ १ १
 अग्रम्, ४ ४६ १ ४
 अग्ने, १० १ ६ १ ७
 अक्षोर-, १० ८५, ४४ ७ १३७
 अक्षेष् अग्नि, ८ ५६, ५ ६ ८१
 अह, ३ ३३, ३ १०७ ५ ४३, ८
 ५ ४१, ५ ८३ १ ८८

अह्ना वद, ५ ८३ ८१
 अजन्ति, ३ ८ ३ ८ ५ ४३, ७
 ५ ११
 अजन्ति स्वा, ३ ८, १ ८ १००
 अत, १ २२, १६ ३ ०३
 अति द्वय, १० १४, १० ६ ११०
 अदात्, ८ १९, ३६ ६ ११
 अदितिर ह्यौ, १ ८९, १० ३ १२३
 अद्या नो देव सवित, ५ ८२, ४ १ ८९
 अध, ८ ३३, १९ ६ ७६
 अध स्विद् आसीत्, १० १२९, ५
 १ ५
 अधि, ६ ४१, ३१ १ १०८
 अध्वर्यव, ५ ४३, ३ १ ४१
 अनर्वाणम्, १ १९० ४ ६३
 अनस्वन्ता, ५ २७ ४ २९
 अनु न, तैस० ३ ३, ११, ३ ४ ८८
 अनुक्षरा, १० ८५, २३ ७ १३१
 अन्व अस्य स्थूरम्, १ १, ३४ ६ ४०
 अन्व हत्, तैस० ३ ३, ११, ३ ४ ८८
 अप, १० १३१ १ ४१
 अपश्य स्वा, १० १८३ १ ८०
 अपश्यम्, १० ७९ ७ ११७
 अपात् ८ ६९, ११ ६ ००
 अपेहि, १० १६४ १ ६७
 अपजा सन्तु, १ २१, ५ १ ८
 अनुग्रम्, १० ३१ ७ ३१
 अवाधि, १ १५० ८ ८६ ५ १ १ ११

अञ्जाम्, ७ ३४, १६ ५ १६५
 अमि, ५. ४१, १९ ५ ३७, ६ ५०, ६
 ५ ११७, ८ ४९ (खिल) : ६
 ८४ वास० ४ २५ : ८ १५
 अभि न, ५. ४१, १९ ५ ३७
 अभीष्टम्, १० ४८, ७ : १ ४९
 अमूरु, १० २७, ७ ७ २४
 अन्नग्राम, १० ७७ ७ ११६
 अमन्वान्, १ १२६, १ ३ १५५
 अमापुर, १० ३९, ३ ७ ४८
 अभीष्टम्, १० १०३, १२ ८ १३
 अभि- (तमे), २ ४१, १६ २ १३७
 अय य, १० २०, २१ ७ २७
 अय सोम सुदानव, १ ४५, १०
 ३ १११
 अय कुरु, ८ ७९ ६ ९७
 अय देव, ६ ४४, २२ ५ १०८
 अयम्, १ २० ३ ०० ५ ५१, ४
 ५ ४९ ८ १००, १ ४ ६ ११७
 ११८ १० ६०, १२ ७ १०२
 १० १४२ ८ ५४, १० १४४
 ८ ५५
 अय माता, १० ६०, ७ ७ १००
 अरण्यानी, १० १४६ ८ ५७
 अरम्, १ १००, ४ ४ ५३
 अराधि, १० १५५ ६०
 अरुणो मा सकृत् १ १०५, १८
 २ ११२
 अय, ७ ९६, १६ ६ ११५
 अय प्रप्ल, ८ ०६, १६ : ६ ११६
 अविता न, ९ ६७, १० ५ १३१
 अवीराम्, १० ८६, ९ १ ५३
 अवीरुधत्, ८ ८०, १० ६ ९७
 अविना, १ ९२, १६ २ १२४
 अविनी, ५ ७८ ५ ८१
 असत्, १० २७ ७ २३
 असाधि, १० १०४ ८ १६
 असाधि ते, ५ ४३, ५ : ५ ४१

असौ, १ १०५, १६ : ३ १३७
 असौ य एधि, ८ ९१, २ ६ १०२
 अस्तु औषट्, १ १३९ ४ ७
 अस्तेव सु प्र, १० ४२ ७ ४०
 अस्माकम्, २ ३१ ४ ८६
 अस्माकम् उत्तमम्, ४ ३१, १५
 ४ १३९
 अस्मिन्, १० ३८ ७ ३९
 अस्मै, १ ६१ ३ ११८
 अस्य, १ १६४, १ ४ ३२, २ ३२
 ४ ८६ १० ८, ७ ६ १४८
 अस्यवामीय, (सूक्तम्) १ १६४
 ४ ३१
 अस्यै मे पुत्रकामायै (खिल), ८ ८४
 अहम्, ४ २६ ४ १३५, ८ ७४, १३
 ६ ०५ १० १२५ ८ ४३
 अह भुवम्, १० ४८ ७ ५७
 अहं मनु, ४ २६, १ १ ५१
 आ, ४ १६ ४ ७७ ५ ४३, १०
 ५ ४ ५ ४३, ११ ५ ४२ ६
 २८ १०६ ६ ५०, ८ ५
 ११७ १० ३१ ७ ३४, १० ६०,
 १ ७ ०६
 आ गन्त ८ २० ६ ५७
 आग्ने याहि, ८ १०३, १४ ५ १२८
 आ ते, २ ३३ ४ ८९
 आ त्वा, १ १३४, १ ४ ५ ८ ९५
 ६ १०९ १० १७३ ८ ७३
 आ त्वा दधम्, ८ ६८ ६ ९१
 आद् अह स्वधाम् अनु, १ ६, ४
 ७ १३९
 आ धेनव, १, १५२, ६ ४ १७
 आ न, १ ८९ ३ १०२ १ १८६
 ४ ६० ८ ८ ६ ४७ ८ ४६,
 २५ ६ ८०, १० ८५, ४३ :
 ७ १३७
 आ नो अमा, १ ८९, १ ३ १०२

आप, १० ९ ६ १५३ ७ ४७
+ १७४

आपान्तमन्यु, १० ८९, ५ ७ १४८

आ मा पूषन्, ६ ४८, १६ ८ ११४

आ माम्, ७ ५० ६ १

आ मे, ८ १०१, ७ ६ १२६ ८ ८५
६ ९८

आय गौ, १०, १८९ ८ ८७

आ याहि, १० १७२ ८ ७३

आयुष्यम्, (खिल) ८ ४५

आ रुद्रास, ५ ५७, १ १ ४७

आ व, १ ७६ ७ ११६

आ वर्तनि मधुना, ४ ४४, ३ ३ ९७

आ वाम्, ८ ४२, ४ ६ १८

आविर अभूत्, १ १०७ ८ २२

आ शर्म, ८ ३१, १० ६ ७४

आशु, १० १०३ ८ १३

आश्विना (= नौ), १ ३०, १७
३ १०२

आ स, ८ ४६, २१ ८ ८०

आसस्त्राणास, ६ ३७, ३ ५ १०७

आ सूर ण्तु, (खिल) ८ ७०

हृन्ति ३ ३० ४ १०१

हृन्ति त्वा, ३ ३० ४ १०१

इति वै, १० ११९ ८ ४०

इत्था, १ ८० ३ १०१

इदम्, १ ११३ ३ १३८ २ २८

४ ८३ ४ ४९ १ ५ ४ ५१

६ ८ १८ ६ ४९ १० ५६

७ ८१ १० ६१ ७ १००

इन्द्र, ४ ४७, २ १ ४

इन्द्र चक्रा, १० ६०, ५ १ ७ ९६

इन्द्र दद्या, १० १०० ८ १०

इन्द्र मित्रम्, १ १६७, ४६ ४ ४०

इन्द्र भेष्टानि, २ २१, ६ ४ ७४

इन्द्र सोम पिब, १ १५१ ३ ३४

इन्द्रस्व, १ ३२ ३ १०४

इन्द्रा, ४ ४१, १ ५ २

इन्द्राकुत्सा, ५ ३१, ९ १ ५६,
५ ७८

इन्द्रामी, ५ ८६ १, ८९ ३ १२१
४ १०१

इन्द्रावरुणा, ७ ८२ ६ १०

इन्द्रो वा, ८ २१, १७ ६ १९

इम जीवेभ्य, १० ११, ४ ७ ११

इम न, १० १२४ ८ ४१

इम नु, ८ ७६ ६ ९६

इम नो यजम्, ३ २१, २ १ ५१

इमम्, १ ९४ ३ १०६ ३ ५४ ४
१२१ १० ७५, ५ ७ १३७

इमा, १ ११४ ३ १३९ २ २७

४ ८३ १० १८, ७ ७ १२

इमां खनामि, १० १४५ ८ ५५

इमानि, ८ १९ (खिल) ३ ११९

इमा तु कम्, १० १५७ ८ ६१

इमाम्, १० ६७ ७ १०७ १० ८५,
४५ ७ १३७

इमे, ८ ४३ ६ ७९ १० १८, ३
७ ११

इमे वेतार, ७ ६०, ५ ६ ७

इय शुष्मेभि, ६ ६१, २ २ १३७

इयम्, ६ ६१ ११९

इह, १ २१ ३ ०१ १० ८५, ७२१
७ १३७

इह ऋवीतु, १ १६४ ७ ११ ५२

इहेह व, ३ ६० ४ १२२

ईजानम्, १० १३२ ८ ४७

ईमान्तास, १ १६३, १० ४ २७

ईलिष्व, ८ ३३ ६ ६३

ईळे, १ ११२, ११ ३ १३८

ईळे अभिय, ५ ६०, १ १ ४८

उत्, ५ ४२, ३ १ ३७, ८ ७३ ३
९४, १० १०१ ८ १० १० १७९

८ ७७, (खिल) १७ ११८

उत्त, १ ५०, ९-१० ५ ११७, ८ १८,	शतस्य श्लोक, ४ २३, ८ २ ४३
८ ६ ४९, ८ ६७, १० ६ ९०	शतेन, ५ ६२ १ ८१
उत्त देवा, १० १३७ : ८ ४९	शब्दक, ८ १०१, १ ६ १२४
उत्तो हि वाम, ४ ३८, १ ५ १	शमुर् धीर, ९ ८७, ३ ६ १५१
उत् तिष्ठ, १ ४० ३ १०७	शयम मा, १० १६६ ८ ६०
उत् सूर्या, ७ ६२ ६ ५	शय्यो वा इन्द्रम्, तैसं, ३ ५, ९, १
उत् भस्त्रो, १० १५९ ८ ६३	५ ११७
उत् ईरताम्, १० १५ ६ १५९	एक चमसम्, १ १६१, २ ३ ८७
उत् ईर्ष्य मारि, १० १८, ८ ७ १३	एका, ७ ९५, २ २ १३७
उत् उ ज्योति, ७ ७६ ६ ११	एतत् त्यत् ते, ६ २७, ४ ५ १३७
उत् उ त्यत्, ६ ५१, १ १ ११८ ७	एत मे स्तोमम्, ५ ६१, १७ १ ७४
६६, १४ ६ ०	एता उ त्याः, १ ९२ : ३ १२४
उत् उ त्यम्, १ ५० ३ २	एतौ मे, १० २७, २० ७ ५७
उत् उ त्य, ७ ३८ १ १६५	एदम्, ५ २६, ९ १ २६
उद्यन्, १ ५०, ११ ३ १	एष, ५ ४२, १५ १ ४०
उद् वृत्ति, ७ ६३ ६	एष चेति, ५ ६१, १९ १ ७१
उप, २ ३५ ४ १० ३ ५३, ११ ४	एषो, १ ४६ : ३ १
११५ ५ ४२, ७ २१ ६ ४७,	
२९ १ ११	ऐतु, ८ ३१, ११ ६ ७४
उपप्रयन्त, १ ७४ ३ १००	ऐभि, १ १४ ३ ३३, ५१, ८०
उप प्रियम्, ९ ६७, २९ ५ १३	
उप मा षट्, ८ ६८, १४ १ ०	ओ चित्, १० १० ६ ११६
उप सर्प, १० १८, १० १ ७	ओ चित् सखायम्, १० १० ६ ११४
उपोप मे, १ १२६, ७	ओ त्यम्, ८ २२ ६ ६२
उपोप मे परा मृश, १ १२६, ७ ४ ३	
उष्यम्, ८ ६१ ६ ८६	क इमम्, ४ २४, १० ४ १२३
उमाभ्याम्, ९ ६७, २५ ६ १६	क ईम्, ७ ५६ १ ३
उहम्, ७ ९९, ४ ६ ७१	क, ४ ४३ ३ ४ ५५ १ ७
उलूक्यातुम्, ७ १०४, २२ ६ ३२	कङ्कत, १ १९१ ४ ६३
उल्लाना, ५ २९, ९ १ ५७	कतरा, १ १८५ ८ ६१
उल्लान्ता, ७ ९१, २ ६ १८	कदा वसो, १० १०५ ८ १७
उलो बाजेन, ३ ६१ ८ १०४	कद् इत्या, १ १२१ : ३ १४१
	कनिकद्व, २ ४१ ४ ९४
ऊर्ध्वं ऊ पुण ऊतये, १ ३६, १३ ४ १००	कनीनका, ४ ३२, २३ ४ १४४
ऊर्ध्व, ७ ३९, १ १ १२०	कन्या वा, ८ ९१ १ ६ ८०१
ऊर्ध्वम् उच्यमाने, ८ २५, २२ १ ९९	कम्, १० ९९ ८ ०
ऊर्ध्वम्, २ ३० १ ८४	कम् एत त्यम्, ५ २, २ १ ७०
	कया, १ १६५ ४ ८८

कस्तू, १ ३० २० : ३ १०२
कस्तू मूलम्, १ २४ : ३ ९८
किं नः, १ १००, २ ४ ४१
किं नो ज्ञाता, १ १००, ३ ४ १७
किम्, १ १११ ४ ७७, १० १०८, १
८ २६

किम् आत् उतासि, ४ ३०, ७ : ४ १२४
कुह, १० २२ ७ २२
केरय् अग्निम्, १० १३६ ८ ४९
के ह, ५ ६१ १ १ ६०
को अद्य, १ ८४, १६ १ १७
को नु मर्षा, ८ ४५, ३७ ७ १०९
को नु वाम्, ५ ४१ १ ३६
क्रीकम्, १ ३७ ३ १०७
केनस्य, ४ ५७ ५ ७

गणानाम्, २ २३ ८ ८१
गृभ्यामि ते, १० ८५, ३६ ७ १२५
गौ, ८ ९४ ६ १००
गौरी, १ १६४, ४१ ४ ४२

घर्मा, १० ११४ ८ ३८

चक्र, (खिल) : १००
चलो, १० १५५, २ ८ ६०
चन्द्रमा, १ १०५ ३ १२७
चित्र हत्, ८ २१, १८ : १ ४८, ५ ८३७
चित्रः, १० ११५ ८ ३९
चित्रम्, १ ११५ : ३ १२९

जनिह्याः, १० ७३ : ७ ११५
जनीयन्त, ७ ९६, ४ : ३ १९
जराबोध, १ २७, १० ३ ०९
जातवेदसे, १ ९९ ३ १३०
जामये न, = ३ ३१, २ (?) : १ ५७
जीवूतस्य, ६ ७५ : १ १२८
जुषस्व नः, ७ २ ५ १६०
ज्वापोत्तम्, ५ ४४, ८ ५ ४३
ज्येष्ठ आह, ४, ३३, ५ ३ ८७

तव, २ ३०, ११ ४ ८५
तव चक्र, ७ ६६, १६ ६ ५, ६ ९
तत्, ४ ५३ : १ ७ १० १२० ८ ४०
तत्तम्, १ ११०. ३ १३१
तद् वो अद्य, ७ ६६, १२ ६ ६
तन् नु, १ १६६ ४ ४८
तम्, १ १४५ ४ ८६ ८ ८८ : ६ ९१
तम् उ स्तुति, ५ ४२, ११ ५ ३८
त प्रजया, ५ ४४, १ ५ ४४
तव, १० १३८ ८ ५२
तवाग्ने यज्ञः, १० ५१, ९ ७ ७५
तस्य पुमान्, ८ ३१, ३ ६ ७३
तां सु ते, १० ५४ ७ ८१
ता वाम्, १ १५४, ६ ४ २०, ८ २५
६ ६५

तिजः, ७ १०१ ६ २५
तीक्ष्णस्व, १० १६० ८ ६४
तीक्ष्ण, १ २३, १ ३ ९४
तुभ्य, १० १६७ ८ ७०
तुभ्यम्, २ ३६ ४ ९१
वृष्टम् एतत्, १० ८५, ३४ ७ १२४
तेऽवदन्, १० १०९ ८ ३६
ते सत्येन, ७ ९०, ५ ६ १८
त्व चित्, १० १४३ ८ ५५
त्वम् क तु, १० १७८ ८ ७७
त्वान् नु, ८ ६७ ६ ८७
त्रय केसिन, १ १६४, ४४ : १ ९५
त्रायन्ताम्, १० १३७, ५ : ८ ५०
विष् चित्, १ ६४ ३ १०४
ज्री, ५ २९ १ २७
स्व सोम, १ ९१ : ३ १२४
स्वं ह्य अग्न, ६ १ : ५ १०४
स्वं स्वय, १०, १७१ ८ ७३
स्वय, १ ३१ ३ १४, २ १ : ४ ६५,
८ ११ : ६ ४८ ८ ७१ : ६ ९३
स्वम् अग्ने, १ ४५, १ : ३ ११०
स्वम् अग्ने सुहृत्, ८ १०३ : ६ १२७
स्वहा, १० १७ ७ ७

स्वा, ४ २८ ४ १३६
 स्वाम्, ४ १ ४ १२७
 स्वे ह, ७ १८ ५ १६१
 वृक्षस्य, १० ६४, ५ ७ १०४
 वृषहा, ७ ३३, ६ १ ०
 वधिक्राम, ३ २०, ५ ४ १०५
 वध्यह ह मे, १ १३९, ९ ४ १०
 वृक्षा, ५ ४३, ४ ५ ४१
 दाता मे, ८ ६५ १० ६ ८६
 दिवश चित्, ४ ३०, ९ ४ १३७
 दिवस् परि, १० ४५ ७ ४१
 दूरात्, ८ ५ ६ ४५
 हषङ्कयाम्, ३ २३, ४ ० १३७
 देवा, १० १६३ ८ ६०
 देवानाम्, १ ८९, २ ३ १०२ ८ ८३
 ६ ०८ १० २७, २३ ७ ०७
 देवाना पत्नी, ५ ४६, ७ ४१
 देवान् हुवे, १० ६६ १ ५ ४५
 दोग्ध्री धेनुर वोढानङ्गान् आशु ससि
 पुरधिया, वास०, २२ २२ ३ ७०
 छात्रा, २ ४१, २० ४ ९
 छोर् न, ६ २० ५ ०
 द्रप्स, १० १७, ११ ७
 दूर्यो अग्ने, ६ २७, ८ ५ १८१
 द्रयान्, ६ २७, ८ ५ १४०
 द्वे नसु, ७ १८, २२ १६३
 द्वे विरूपे, १ ९५ ३ १०९
 धनु, १० १८, ९ ७ १
 धन्व, ११ ८६, २० २ ६०
 धाता दधातु नो रयिम्, तैस० ३ ३, ११,
 २-३ ४ ८८
 धारावरा, २ ३४ ४ ८
 धीरा, ७ ८६ ६ ८५
 धृतव्रता, २ २९ ८ ८४
 धेनु, ३ ५८ ४ १२२
 ध्रुवास्तु स्वा, ७ ८८, ७ ६ १५

न, १ १७० ४ ५०, ३ २१, २ ४
 १११ १० ११७ ८ ४०
 नकिर् इन्द्र, ४ ३०, १ ४ १३३
 नकिर् देवा मिनीमसि, १० १३४, ७
 ८ ४८
 नकि सुदास, ७ ३२, १० ५ १६२
 न जामये, ३ ३१, २ २ ११३ १ ५७
 न तम, १० १२६ ८ ४४
 न तस्य, १० ४०, ११ ७ ४८
 नदस्य मा, १ १७९, ४ १ ५३
 नम, १ २७, १३ ३ ०० १० ३७
 ७ ३९
 नमस ते, (खिल) ८ १४
 नमस् ते अस्तु विद्यते, अवे० १ १३, १
 १ ५४
 न मृत्युर आसीत्, १० १२९, २ १ ५८
 न विजानामि, १ १६४, ३७ १ ५६
 न स स्व, ७ ८६, ६ १ ५६
 नहि, ८ ८० ६ ९७
 नानानीय (सूक्तम्), ९ ११२ ६ १३९
 नासत्, १० १२० ८ ४५
 नासत्याभ्याम्, १ ११६ ३ १३०
 नि ते, ३ ३३, १० ८ १०७
 नि वर्तध्वम्, १० १९ ७ १०
 नू चित्, १ ५८ ३ ११७
 नून भग, ७ ३८, १ ५ १६८
 नू मे ६ २१, ११ ५ १०६
 नेजमेष, (खिल) ८ ८३
 नेन्द्रो अस्ति, ८ १००, ३ ६ ११८
 नैर्हस्यम्, (खिल) ८ ९४
 पतगम्, १० १७७ ८ ७५
 पयस्वती, १० १७, १४ ७ १०
 परि, १० १५५, ५ ८ ६१
 परेयिवांसम्, १० १४ ६ १५५
 पवित्रम्, ९ ८३ ६ १३४
 पश्वा, १ ६५ ३ ११८
 पान्तम्, ८ ९२ ६ १०७

पावीरवी, ६ ४९, ७ ५ ११६
 पितृम्, १ १८७ ४ ६२
 पिब, ६ १७ ५ १०५ १० ११६
 ८ ४०
 पीवान मेघम्, १० २७, १७ ७ २५
 पुनन्तु माम्, ९ ६७, २७ ६ १२३
 पुनर्न, १० ५९, ७ ७ ९४
 पुरीष्यास, ३, २२, ४ ४ १०४
 पूर्व, १ ९४, ८ ३ १२७
 पूर्वी, १ १७९, १ ४ १८
 पूर्वो देवा, १ ९४, ८ ३ १२६
 पूषा १० १७, ३ ७ ८
 पूषामि त्वा, १ १६४, ३४ १ ५०
 पूथु, १ १२३ ३ १४०
 प्र, १ ३६ ३ १०७ १ १२२ ३ १४
 १ १५९ ४ २६ २ ४१, १९
 ४ ९२ ३ ३३ ४ १०५ ४ ३३
 ५ १, ५ ४३, ९ ५ ४२ ५ ५२: ५
 ३७ ५ ८७ १ ९० ७ ३४ ५
 १६५ ७ ५३ ६२, ७ ९५ ६ १९
 ८ ४, १५ ६ ४३, ८ ७ ६ ४७
 ८ १०१, ५ ६ १२५ १० ३२
 ७ ३४ १० १०२ ८ ११ १०
 १८८ ८ ८८
 प्र कृतानि, ८ ३२ ६ ७५
 प्र केतुना, १० ८ ६ १४७
 प्रजा ह, ८ १०१, १४ ६ १२७,
 ८ १०१, १४ ६ १२८
 प्र तत्, १ १२९, ६ ४ ४
 प्र तद् बु सीमे, १० ९३, १४ ७ १४७
 प्र तारि, १० ५९ ७ ९१
 प्रति, १ १७१ ४ ५५
 प्रति त्यम्, १ १९ ३ ७५
 प्रति वाम्, ७ ६७ ६ ४
 प्रतीचीने, १० १८, १४ ७ १८
 प्र ते, १० ९६ ७ १५४
 प्रत्य् अग्निः, ४ १३ ४ १२९
 प्रथम् च, १० १८१ ८ ७७

प्र देवत्र, १० ३० ३ ७ ३३
 प्र नु बोधा, ६ ५९ १ ११९
 प्र नूनम्, १० ६२, ८ ७ १०३
 प्र-प्र, १ १३८ ४ ७
 प्र मा, १० ३३, १ ७ ३६
 प्र यम्, ३ २६, ४ ४ १०३
 प्र या जिगाति, ७ १०४, १७ २ ३०
 प्र ये, १ ८९ ३ १२१
 प्र य १ १५५, १ ४ २० ५ ४४, ४
 ५ ४३, १० १७५ ८ ७४
 प्र वर्तय, ७ १०४, १९ ६ ३१
 प्र वीरया, ३ ९० ६ १६, १७
 प्र वो महे, १० ५०, १ ७ ६०
 प्र वो वाजा, ३ २७, १ ४ १०३
 प्र सन्नाज ७ ६ १६१
 प्र सन्नाजे, ५ ८५ १ ८९
 प्र सु, १० ७५ ७ ११५
 प्र सु ष विभ्य, ४ २६, ४ ४ १३६
 प्र सुष्टुनि, ५ ४२, १४ १ ३८
 प्र सुनव, १० १७६ १ ८ ७४
 प्र सोता, ७ ९२, २ ६ १८
 प्रस्तोक, ६ ४७, २२ ५ १४०
 प्र हि, १० २६ ७ ७३
 प्र हि कृतम्, २ ३०, ६ ४ ८४
 प्राग्रवे, ७ ५ १ १६१ ७ १३ ५
 १६१, १० १८७ ८ ८८
 प्रात, १ १२५, १ ३ १५३, १ १७५:
 ३ १४० १५०, ७ ४१ ५ १७०
 प्रातर्जितम्, ७ ४१, २ १५ १७०
 प्रावराणाम्, (विल) : ८ ९४
 प्रावेपा, १० ३४ ७ ३६
 प्रावेपा मा, १० ३४ : ७ ३६
 प्रेत, १० १०३, १३ ८ १४
 प्रेहम्, ८ ८४ ६ ९८
 प्रेहि प्रेहि, १० १४, ७ ६ १५८
 प्रेते, १० ९४ ७ १४६
 प्रोतये, ६ २१, ९ ५ १०६
 प्रो बु, १० १३३ : ८ ४८

बट, ५ ८४ १ ८८
 बभ्रु, ८ २९, १ ६ ७१
 बभ्रुर् एक, ८ २९ ६ ६०
 बल इत्या, ५ ८४ १८
 बृहस्पति, १० १८२ ८ ७
 बृहस्पते प्रति, १० ९८ ८ ७
 बोधत्, ४ १५, ७ ४ १२९
 ब्रह्म, (खिल) ८ १४
 ब्रह्मणा, १ १६२ ८ ६५
 ब्रह्मा देवानाम्, ९ ९६, ६ ६ १३६

 भगभक्तस्य, १ २४, ५ ३ ९८
 भगम् उग्र, ७ ३८, ६ १ १६७ १६८
 भद्रम्, १ ८९, ८ ३ १४०, ४ ११,
 १ १ ५८ ५ ३०, १२ ५ ३६
 १० २५ ७ २१
 भद्रा, १० ६९ ७ १०७
 भुक्, अवे० २० १३५, १ १ ५१
 भुव्युम अहस, १० ६५ १२ ७ १०६
 भुवनस्य, ६ ४९, १० १ ११६
 भूमि, (खिल) ८ ५१
 भूरीत्, ८ ५५ ६ ८६

 मक्ष, ८ ३१, १५ १ ७३
 मधु वाता, ९ ९०, ६ ३ १०३
 मनीषिण, १० १११ ८ ३८
 मनोजवा, ८ १००, ८ ६ १२
 मन्यत, ३ २९, ५ ४ १०३
 मन्दस्व, २ ३७, १ ३ २७
 मन्दू समानवर्चसा, १ ६, ७ ७ १४१
 मम, १० १२८ ८ ४४
 मम मते, (खिल) ७ ११७
 मयोभू, १० १६९ ८ ७२
 महत्, १० ५१ ७ ८०
 महद् देवानाम् असुरवम्, ३ ५५
 ४ १२०
 महश्चित्, १ १६९ ४ ४९
 महान्, ८ ६ ४६ (खिल)
 ८ ४

महानग्नी, अवे० २० २७, १ १ ५५
 महि, ८ ४७ ६ ८३
 महि त्रीणाम्, १० १८५ ८ ८३
 मही, ४ ५६ ५ ७
 महीम् ऊ बु, वास० २१ ५, तेस० १
 ५ ११, ५, अवे० ७ ६, २ ७ १०४
 महे, ५ ७९ १ ८८
 महो अग्ने, १० ३६, १२ ७ ३१
 मा, १० ५७ ७ १० १० ८५, ३२
 ७ १२३
 मा चित्, ८ १ ६ ४०
 माता, ८ १०१ १५ ६ १ ७
 माता च, वास० २३ २५ १ ४१
 मा न, १ १६२ ४ ७ ७ ३४, १७
 १ १६१
 मा नो रक्ष, ७ १०४, २३ ६ ३१
 मा नोऽहि, ७ ३४, १७ १ १०१
 माहित्र (सूक्तम्), अर्थात् 'महि त्रीणाम्'
 १० १८५ ८ ८६
 मित्र, ३ ५९ ४ २२
 मित्रम्, १ १५१, १ ४ १७
 मित्राय, १० ६५, ५ ७ १०९
 मित्राय पञ्च, ३ ५९, ८ ४ १ ३
 मुञ्चामि, १० १६१ ८ ६४
 मूर्धानम्, ६ ७ १ १०४
 मैत्रम्, १० १६ ६ १६१
 मोघम् अक्षम्, १० ११७ ६ १ ४९
 मो बु, १० ५९, ४ ७ ९२

 य आनयत्, ६ ४५ ५ १०८
 य इन्द्र ८ १२ ६ ४
 य इन्द्राग्नी, १ १०८ ३ १३१
 य इमा, १० ८१ ७ ११७
 य ई वहन्ते, ५ ६१, ११ १ ७०
 य, ५ ४२ १० ५ ३८ ८ ३१ ६
 ७२ ९ ६७, ३१ ६ १६३ १०
 ३९ ७ ४०
 य कृन्तत्, ८ ४५, ३० ६ ८२

य रश्मिन्ति, १ ४१ ३ १०७
 यश्चिन्ति, १ २५ ३ ९८
 यश्चिद्भि, १ २८, ५ ३ १०१
 यश्चिद्भिस्तस्य, १ २९ ३ ०
 यश्चिद्भि, १० ९२ ७ १४६
 यज्ञो, ७ ९७ ६ ७, १६
 यज्ञेन, २ २ ४ ६१
 यत्, ७ ६० ६ ४ १० ५८ ७ ८३
 ० १० ८५, १४ ७ १ ४ १०
 १५५, ४ ८ ६१
 यत्ते, ९ ६७, २३ ६ १२०
 यत्त्वा सूर्य, ५ ४०, ५ १ ७८
 यत्र १ २१, १ ३ १००
 यथा, ८ ५, ३७ ६ ४५ ८ ३१, १३
 ६ ७८ १० १८, ५ ७ १०
 यथा वरो सुषाम्ने, ८ २४, २८ ६ ६२
 यथा वात ५ ७८, ७ ५ ८६
 यद् अद्य, ७ ६० ६ ५, ७ ६६, ४ :
 ६ ६
 यद् अद्य सूर, ७ ६६, ४ ६ ८
 यद् अर्जुन, ७ ५५, २ ६ १३
 यद् इन्द्र चित्र, ५ ३९, १ १ ४
 यद् इन्द्राहम्, ८ १४, १ १ ५
 यदि वाहम्, ७ १०४, १४ ६ ३०
 यद् उत्तमे, ५ ६०, ६ ५ ४८
 यद् वाक्, ८ १००, १० ६ १२१
 यम्, १ १२९ ४ ४ ८ ३, २१ ६
 ८ ८ १९, ३४ ६ ०
 यस् तस्तम्भ, ४ ५० १ १
 यस्ते, १० ८३ ७ ११७
 यस्मिन् वृक्षे, १० १३५ ८ ४८
 यस्य, १० ३३, ६ ७ ३६
 या, १० ९७ ७ १५४
 या गौ, १० ६५, ६ ७ १०६
 यां कल्पयन्ति नोऽश्व (खिल)
 ८ ४५
 या दम्पती, ८ ३१, ५ ६ ७४
 याव, १ ८०, १६ ३ १२१

यावन्तर, ७ ९१, ४ ८
 युषव, ८ २६, २० १ ७
 युजे, १० १३ ६ १५
 युजे वाम् १० १३ ६ १५
 युजते, ५ ८१ ५ ८८
 युव तम्, १ १३२, ६ ४ ४
 युवम्, १० २०, ४ ७ ७
 युवो, ८ २६ ६७
 युवा रजांसि, १ १८० ४ ५१
 युवोर् उ, ८ २६ ६ ६७
 ये, १० ८५, ३१ ७ १३३
 येन, १ ५०, ६ ३ १ ३
 येनेदम्, (खिल) ८ ६०
 ये पाकशस्त्रम्, ७ १०४, ९ ६ ९
 यो जात, २ १२ ४ ६८
 यो न, २ ३०, ९ ४ ८५
 यो मा, ७ १०४, १६ १ ४० ६ ३०
 यो मे, २ २८, १० ४ ८३
 यो यजाति, ८ ३१, १ ६ ७३
 यो यज्ञ, १० १३० ८ ४५
 यो रजांसि, ६ ४९, १३ १०७
 यो वां परि-, १० ३९ ७ ४६
 यक्षोहणम्, १० ८७ ७ १४२
 यथम्, ५ ५६, ८ ५ ४६
 यथीतम कपर्दिनम्, ६ ५५, २ ५ २१
 यथी, १० ८५, ६ ७ १२३
 यनस्पते वीङ्ग, ६ ४७, २६ १ ११०
 यने न, १० २९, १ ७ १ ४
 यपुरं, ६ ६६ १ १२०
 ययम्, ६ ५३ १ ८ ८ २१ :
 ६ ५०
 यया, १ ५९ ३ ११७
 ययन प्राविता भुवत्, १ २३, ६ ३ ७९
 ययिष्या हि, १ २६, १ ३ ९९
 ययिष्य, १ ६० ३ ११७
 यात या वातु, १० १८६, १ १ १ ५०

वात, १० १८६ / ८८
 वातस्य, १० १६८ १९
 वामम्, ४ ३०, २४ / १३८
 वायव् आ याहि, ५ ५१, ५ ४६
 वायो, ४ ४७, १ ४
 वि क्रोशनास, १० २७, १८ ७ २६
 वि ज्योतिषा, ५ २, ९ २१
 वितता, अवे० २० १३३, १ / ७
 वि तिष्ठध्वम्, ७, १०४, ११ ६ २
 विधु दद्राणम्, १० ५५, ५ ७ ८१
 विभ्राट्, १०, १७० / ७३
 विवस्वन्तम्, १० १४ ५ ६ १५७
 विशो विश, / ७३ १ ९४
 विश्वम्, २ २४, १२ ४ ८१
 विश्वस्माद्, इन्द्र उत्तर १० ८६
 ६७ ७ १६१
 विषेत् ता ते, ८ १००, ६ ६ ११९
 विषेष्वा व सताम्, ६ ६७ १ १०१
 विषो हि, १० २८ ७ १०
 विषो ह्य अन्य, १० २८ ७ ०
 विष्णु, १० १८४ / /
 विष्णोर नु कम, १ १५४
 वि हि, १० १६ ७ १४१
 त्रिहि, ४ ४८, १ ४
 वीळ चित्, १ ६, ५ ० १४०
 वृक्षे वृक्षे, १० २७, २२ ० १११
 १ २७
 वृषा, १० ११ ६ १५५
 वृष्णे शार्धाय, १ ६४ ३ १८
 वेदिष्ये, १ १४० ४ १६
 वेनस् तत् पश्यत्, (खिल) ८ ६६
 वैश्वानरस्य, १ ९८ ३ १ ९
 व्य उषा, ७ ७१ ६ १०
 शतधारम्, ३ २६, ९ ४ १०३
 शतम्, १ ८९, ९ ३ १२२ १ १२६,
 २ ३ १४८ ८ ६, ४६ ६ ४७
 शतेन, ४ ४६, २ १ ४

शन, ७ ३८, ७ १६७
 शनोमित्रीया, १ ९०, ९ ३ ७९
 शम्, ८ १८, ९ ६ ० १० ५९, ८
 ७ ०४
 शश्वत्, १ ३०, १६ ३ १०३
 शुभद् धि वाम्, (खिल) ३ ११८
 शास, १० १५२ / ५९
 शासत्, ३ ३१, १ ४ १११
 शिक्, ८ २, ४१ ० ४२
 शुचिम्, ७ ९३ ६ १९
 शुन वाहा, ४ ५७, ४ ५ ७
 शुन कीनाशा, ४ ५७, ८ ५ ०
 शुन न फाला, ४ ५७, ८ ५ ०
 शुनासीरौ, ४ ५७, ५ ५ ०
 श्रत्, १ १४७ ८ ७
 श्रद्धया, १० १५१ ८ ५८
 श्रुधि, २ ११ ४ ८९
 श्रुष्टी, ६ ६८ ५ १२१
 श्रित्यञ्च, ७ ३३ ५ १६३
 स इद् राजा, ४ ५०, ७
 स, ७ ९५, ३ ६ १९
 सवत्सरम्, ७ १०३ ६ २७
 स सम्, १० १९१ ८ ०७
 स सम् इत्, १० १९१ ८ ९४
 स स्रवन्ति, (खिल) ५ ९२
 स ह यद् वाम्, ५, ३१, ८ ५ २७
 सखाय, ८, २४ ५ ६३
 सखे विष्णो, ८ १००, १२ ६ १२४
 सज्ञानम्, (खिल) ८ ०३, ९५
 सनत्, ५ ६१, ५ ५ ८१
 सप्त, १० २७, १५ ७ ५
 स प्रजया, १ ९६ ३ ८२९
 स भ्रातरम्, ४ १, २ ४ १२८
 सम्, ५ ४२, १८ ५ ४० ६ ६९
 ५ १२१, ८ ४४ (सम्-) ६
 ७९ १० ५९, १० ७ ९४ १०
 ८५, ४७ ७ १३७, १० ९१
 ७ १४५

सम् अश्वपत्नी, ६ ४७, ३१ १ १३
 समित्-समित्, ३ ४ ४ ६
 समिद्ध, १ १८८ ४ ६२
 समिद्ध, १ १४२ ४ १६ ९ ५
 ६ १३०
 समिद्धा चित् सम् इध्यमे, १० १५०
 ८ १८
 समिद्धो अग्नि, २ ३ ४ ६१
 समिद्धो अद्य, १ १८८ १ २२ १०
 ११० ८ ३७
 समुद्रज्येष्ठा, ७ ४९ १ १७५
 समुद्रात्, ४ ५८ १ १०
 समुद्रे, ८ १००, ९ ६ १२०
 स पूषन्, १ ४२ ३ १०८
 स मा, १० ३३, २ ७ ३४
 स यो वृषा, १ १०० ३ १३१
 सरस्वति त्वम्, २ ३०, ८ ४ ८
 स रोहवत्, १० २८, २ ७ ३२
 सविता यन्त्रै, १० १४९ ८ १८
 ससपरी, ३ ५३, १५ ८ १८६
 सह, १ ४८ ३ १ ३
 सहस्रम्, १ १६७ ४ ४०
 स हि रत्नानि, ५ ८२, ३ ५ १६०
 स ते जीवातु, १० २७, २४ ७ २०
 सुकिशुकम्, १० ८५, २० ७ १३०
 सुगु, १ १२५, २ ३ १११, १ १३
 सुत्रामाणम्, १० ६३, १० ७ १०४
 सुदेव, १० ९५, १४ १ १३
 सुनीथो घ, ८ ४६, ४ ६ ८१
 सुरूपकृन्तुम्, १ ४ २ १३९
 सुष्ठुम्, १ १३७ ४ ७
 सुसमिद्धाय, ५ ५ ५ २६

सूर्यरश्मि, १० १३९ ८ ५१
 सूर्यो न, १० १५८ १ ६३
 सोम एकेश्व, १० १५४ ८ १९
 सोमस्य मा, ३ १ ४ ९५
 सोमानम्, १ १८ ३ ६६
 सोमारुद्रा, ६ ७४ १ १२०
 स्तुतास, १ १७१, ३ १ १६
 स्तुपे, ६ ४९ १ ६ ६३
 ५ ११९
 स्तुहि, ८ १ ३० १ ४१
 स्तुहि श्रुतम्, २ ३३, ११ ८ ९०
 स्थिरौ, ३ ५३, १७ ८ ११६
 स्थूर राध, ८ ४, १९ २ ४४
 स्योना, १ २२, १५ ३ ९३
 स्रक्वे, ९ ७३ ६ १३४
 स्वस्ति न, १० ६३, १५ ७ १०१
 स्वस्तिर् इद् धि, १० ६३, १६ ७ १०५
 स्वादुष किलायम्, ६ ४७, १ १ १०९
 स्वादौ, ८ ४८ ६ ८३
 हस, ४ ४०, ५ ५ ३
 हस शुचिषत्, ४ ४०, ५ १
 हन्ताहम्, १० ११९, ९ १ १६
 हये जाये, १० ०५, १ १ १३
 हवि, १० ८८ ७ १४२
 हविषा, १ ४६, ४ ३ ११२
 हिमेनाग्निम्, १ १६, ८ २ १ ०
 हिरण्यकेशो रजस, १ ७९ ३ १२०
 हिरण्यपाणिम्, १ २२, ५ ३ ०१
 हुवे, २ ४ ८ ६१
 होता यक्षत्, १ १३९, १० १ १७
 ह्यामि, १ ३५ ३ ४५, १०५

परिशिष्ट-२

बृहदेयता में उद्धृत आचार्यों के नाम

आष्विन्यव, ७ १०५	भाह्वेयी श्रुति, ५ १५९
आश्वलायन, ४ १३९	
ऐतर, २ १३८	मनुक, १ २४
ऐतरेयक, ५ ३, २१, ११०, ६ १७, १०८, ११७, १२९, ७ ७२	माठर, ६ १०७, ८ ८५
औपमन्यव, ७ ६९	मुद्रल, ८ ९०
और्जवास, ७ १२५	मुद्रल भार्गव, ६ ४६
काथक्य, ३ १००	मैत्रायणीयक, २ १३८
कौषीतकि, ५ ४४	यास्क, १ २६, २ १११, १३२, १३७, ३ ७६, १००, ११२; ४ ४, १८, ५, ८, ४०, ६ ८७, १०७, ७ ७, ३८, ६९, ९३, १५३, ८ ११, ६५
क्रौष्टिकि, ४ १३७	
गार्ग्य, १ २६	रथीतर, १ २६, ३ ४०, ७ १४५
गालव, १ २४, ५ ३९ ६ ४३, १०७, ७ ३८	राथीतर, ५ १४२, ७ १४५, ८ ९०
कुन्दोगाः, ५ २३	लामकायन, ३ ४७
निदान, ५ २३	शाकटायन, २ १, ९५, ३ १५६, ४ १३८, ६ ४३, ७ ६९, ८ ११, ९०
नैरुक्ता, १ २४	शाकपूणि, ३ १३०, १५५, ५ ८, ३९, ६ ४६, ७ ७०; ८ ९०
वात्कला, ८ ८५	शाण्डिल्य, २ १३२
ब्राह्मण, ५ ११, २५, १५७, ७ १४, ८ १००	सौनक, १ २७, २ १३६, ४ १८, ५, ३७, ३९, ४०, ६ ६, ९, १०७, ११६, ७ ३८, १५३, ८ ११, ७६, ९९
भागुरि, ३ १००, ५ ४०, ६ ८६, १०७	श्वेतकेतु, १ २४
भाह्वि-ब्राह्मण, ५ २३	

परिशिष्ट-३

बृहदेवता के अनुसार ऋग्वेद के देवताओं की सूची

(प्रत्येक मण्डल के अन्तर्गत पहले सूक्त सख्या, फिर छोटे दाइयों में ऋचाओं की सख्या, और तब देवता का निर्देश है)।

मण्डल १

- १ अग्नि
२ ^१बायु, ^२इन्द्र बायु, ^३मित्र
वरुण
३ ^१अश्विनौ, ^२इन्द्र, ^३विश्वेदेवा,
^४सरस्वती
४ इन्द्र
५-११ इन्द्र
६ ^१मरुत, ^२इन्द्र और मरुत
१२ अग्नि ^१मिमंथ्य और आहवनीय
१३ आग्निप
^१इध्म, ^२तनूनपात्, ^३नराशस,
^४इळ, ^५बर्हिस्, ^६ह्वारो देव्य,
^७नकोषासा, ^८देव्यौ हातारौ,
^९तिष्ठो देव्य, ^{१०}त्वष्टा, ^{११}वनस्पति,
^{१२}स्वाहाकृतय ।
१४ विश्वे देवा
१५ ऋतव
^१इन्द्र, ^२मरुत, ^३त्वष्टा, ^४अग्नि,
^५शक्र (इन्द्र), ^६मित्र-वरुण,
^७^१अग्नि द्रविणोदस्, ^१नासरयौ,
^१अग्नि
१६ इन्द्र
१७ इन्द्र-वरुण
१८ ^१ब्रह्मणस्पति, ^२सोम इन्द्र मी,
^३सोम, इन्द्र, दक्षिणा भो, ^४सद
सरस्पति, ^५नराशस
१९ अग्नि पार्थिव और मरुत
२० ऋभव
२१ इन्द्र अग्नि

- २२ ^१अश्विनौ, ^२सवितु, ^३अग्नि,
^४देव्य, ^५देवपत्न्यः इन्द्राणी,
वरुणानी, अग्नावी, ^{१३}^{१४}आवा
दृथिष्वी, ^{१५}दृथिषी, ^{१६}विष्णु
अथवा देवा, ^{१७}^{१८}विष्णु
२३ बायु, ^२इन्द्र-बायु, ^३मित्र-
वरुण, ^४इन्द्र मरुतवत्, ^{१०}^{११}
विश्वे देवा, ^{१२}^{१३}एषन् आशुभि,
^{१४}^{१५}आप, ^{१६}^{१७}अग्नि
२४ ^१क, ^२अग्नि, ^३सवितु, ^४अथवा
भग, ^५^{१५}वरुण
२५ वरुण
२६-२७ अग्नि
२७ ^१अग्नि मध्यम, ^२विश्वे देवा
२८ ^१इन्द्र (भागुरि), इन्द्र-उल्लूखल
(यास्क और काश्यप्य), ^२^३उल्लू-
खल, ^४उल्लूखल और मुसल,
^५शरमाधिपवणीय अथवा सोम ।
२९-३० इन्द्र
३० ^{१३}^{१४}अश्विनौ, ^२^{१२}उषस्
३१ अग्नि
३२-३३ इन्द्र
३४ अश्विनौ
३५ सवितु
^१अग्नि, मित्र वरुण, रात्रि
३६ अग्नि
^{१३}^{१४}द्यौः
३७-३९ मरुत
४० ब्रह्मणस्पति

२९०

४१ ^१ वरुण, अर्यमन्, मित्र,
४८ आदित्या

४२ पूषन्
४३ ^१ रुद्र, ^३ मित्र, वरुण, विश्वे देवा
भी, ^१ सोम ।

४४-४५ अग्नि
४४ ^१ अश्विनौ और उपस भी ।

४५ ^१ देवा
४६-४७ अश्विनौ
^१ अश्विन्य भी (यास्क) ।

४८-४९ उपस
५० सूर्य
^१ वरुण (शुभक्ति), ^{११} रोगज्ञ
(रुच), ^{१३} द्विषद्वेष

५१-५७ (कोई उल्लेख नहीं) ।

५८ जातवेदस्

५९ वैश्वानर

६० अग्नि

६१-६३ इन्द्र

६४ मरुत

६५-७३ अग्नि

खिल (रघारह)

१-४, ६-११ (शश्वद् धि वाम)

अश्विनौ, ५ (इमानि = ८ ५९),

इन्द्र वरुण

७४-७९ अग्नि

७९ ^१ अग्नि मप्यम

८०-८४ इन्द्र

८० ^१ दध्यङ्, मनु, अथर्वन् (मि-
तिता)

८५-८८ मरुत

८९-९० विश्व देवा

८९ ^१ देवा, ^१ अदिति

९१ सोम

९२ उपस

^१ अश्विनौ

९३ अग्नि, सोम के साथ ।

९४ जातवेदस्

देवा, ^१ अग्नि अथवा वृ उल्लि
खित देवगण (मित्र वरुण, अदिति,
सिन्धु, पृथिवी, धु) ।

९५ अग्नि औपम

९६ अग्नि द्रविणोवस्

९७ अग्नि शुचि

९८ अग्नि वैश्वानर

९९ जातवेदस्

१००-१०४ इन्द्र

१०५-१०७ विश्वे देवा

१०८-१०९ इन्द्र अग्नि

११०-१११ ऋभव

११२ अश्विनौ

^१ आरापृथिव्यौ, अग्नि

११३ रान्युषसौ

११४ रुद्र

११५ सूर्य

११६-१२० अश्विनौ

१२० ^१ दु स्वप्ननाशिनी

१२१ इन्द्र, स्वरसामनो मे विश्वे देवा

१२२ विश्वदेवा

१२३-१२४ उपस

१२५ स्वन्व भावयन्व के दान की
स्तुति ।

१२६ ^१ भावयन्व ^१ जायापरयो
सप्रवाह ।

१२७-१२८ अग्नि

१२९-१३३ इन्द्र

१२९ इन्द्र

१३२ इन्द्र पर्वत

१३५ वायु

१३५ ^१ वायु, ^४ इन्द्र वायु ।

१३६ ^१ मित्र वरुण, ^१ धु तथा अन्य

उल्लिखित देवता ।

१३७ मित्र वरुण

१३८ पूषन्

१३९ विश्वे देवा

^१ विश्वे देवा, ^२ मित्र-वरुण,
^३ अश्विनौ, ^४ इन्द्र, ^५ अग्नि, ^६ मरुत
^१ इन्द्र अग्नि, अथवा द्रष्टा स्वयं
अपनी अथवा ऋषियों की स्तुति
करता है जिसमें इन्द्र अग्नि निपात
भाज हैं, ^१ बृहस्पति, ^१ देवा

१४०-१४१, १४३-१४४ जातवेदस्

१४२ आग्नेय

^{१३} इन्द्र

१४५-१५० अग्नि

१५१-१५३ मित्र वरुण

१५१ ^१ मित्र

१५२ ^६ अदिति अथवा अग्नि, अदिति =
अग्नि (शीनक) ।

१५४-१५६ विष्णु

१५५ ^{१३} इन्द्र विष्णु

१५०-१५८ अश्विनौ

१५९-१६० द्यावापृथिव्यौ

१६१ ऋभव

१६२-१६३ मेध्यस्य अश्वस्य सस्तव

१६३ ^१ अनेक और विभिन्न अश्व भी ।

१६४ ^{१५} विश्व देवा, ^{१६} ^{१७} सूर्य,

^{५२} सरस्वत् अथवा सूर्य ।

१६५ भारतेन्द्र सवाद्: ^{१२} ^{१३} ^{१४} ^{१५} ^{१६} ^{१७} ^{१८}

^{१०} ^{११} के देवता मरुत, ^३ ^५ ^७ ^९

के देवता इन्द्र ।

१६६-१६८ मरुत

१६७ ^१ इन्द्र

१६९ इन्द्र

१७० ^१ ^२ इन्द्र, ^१ ^३ अगस्त्य

१७१-१७२ मरुत

१७३ ^१ इन्द्र भरतः ।

१७३-१७८ इन्द्र

१७९ सवाद् ^१ ^२ लोपामुद्रा का वचन,

^३ ^४ अगस्त्य, ^५ ^६ एक ब्रह्मचारिन्

१८०-१८४ अश्विनौ

१८५ द्यावापृथिव्यौ

१८६ विश्वे दिवौकस (= देवा)

१८७ अश्व

१८८ आग्नेय

१८९ अग्नि

१९० बृहस्पति

१९१ उपनिषत्

'अपां तृणानां सूर्यस्य स्तुति

केचित् तद् वा विषयम्'

मण्डल २

१ अग्नि

२ जातवेदस्

३ आग्नेय

४-१० अग्नि

११-२२ इन्द्र

२३-२६ ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति

२४ ^{१२} इन्द्र-ब्रह्मणस्पति

२७ आविस्था मित्र-वरुण, दक्ष, असा,

तुविजात, भग, अर्बमन् ।

२८ वरुण

^१ दु स्वप्नाद्यप्रणाशिनी

२९ विश्वे देवा

३० इन्द्र

^१ इन्द्र-सोम, ^२ वाक् मध्वमा,

^३ बृहस्पति ^{११} भरत

३१ विश्वे देवा

३१ ^१ द्यावापृथिव्यौ, ^२ ^३ इन्द्र अथवा

स्वष्टा, ^४ राका, ^५ सिनीवाली,

^६ छ देविषां गुहू, इत्यादि ।

३३ रुद्र

^{११} ऋषिर् सृगम् अस्तौत् ।

३४ मरुत

३५ अषां नपात्
३६-३७ ऋतव
३८ सवितृ
३९ अश्विनौ
४० सोम पूषन्
१ अदिति भी ।

४१ ^१ वायु, ^२ इन्द्र-वायु, ^३ ^४ मरुत
देवता, ^५ हविर्धाने, अग्नि निपात
भाज्, ^६ आवापृथिव्यौ, ^७ हवि-
र्धाने
४२-४३ एक कपिअल के रूप में इन्द्र ।

मण्डल ३

१ अग्नि
२-३ वैश्वानर
४ आग्रय
५-६ अग्नि
आवापृथिव्यौ, उषस्, आप, देवा,
पितर, मित्र (निपाता)
७-२९ अग्नि
८ ^१ पूष, 'विश्वे देवा, ^२ अश्वनी
१२ इन्द्र अग्नि
२० ^१ विश्वे देवा
२२ ^१ क्षिण्णया अग्रय
२५ ^१ अग्नि इन्द्र
२६ ^१ वैश्वानर, ^२ मरुत, ^३ गुरुस्तव
२७ ऋतव
२९ ऋत्विज
३०-५३ इन्द्र
३३ विश्वामित्र और नदियों का सवाद

१३ ७९१११३ मघ, ४६८१
विश्वामित्र, ^१ दो नपातिक देवताओं
(इन्द्र और सवितृ) की स्तुति ।
५३ ^१ इन्द्र पर्वत, ^२ वाष्, ^३ २
अनसोऽङ्गानि, ^४ वासिष्ठ
द्विषिष
५४-५७ विश्वे देवा
५८ अश्विनौ
५९ मित्र
'विश्वे देवा
६० ऋभव
^१ इन्द्र और ऋभव, ^२ इन्द्र
(नपातिक) ।
६१ उषस्
६२ ^१ इन्द्र वरुण, ^२ बृहस्पति, ^३ ९
पूषन्, ^४ सवितृ, ^५ १३ सोम,
^६ मित्र-वरुण

मण्डल ४

१-१५ अग्नि
१ ^१ अग्नि, अथवा अग्नि और वरुण
१३-१४ लिङ्गोक्तदेवत (एक)
१५ ^१ सोमक, ^२ अश्विनौ
१६-३२ इन्द्र
२६ ^१ ऋषि द्वारा इन्द्र के समान
अपनी ही आत्मस्तुति, ^२ श्वेन
स्तुति

२७ ^१ श्वेनस्तुति
२८ इन्द्र और सोम ।
३० ^१ उषा मधमा (चाकटाग्र),
^२ भग, पूषन्, अर्धमन्
३१ ^१ सूर्य (आश्वलायन)
३२ ^१ हव्यस्तुति
३३-३७ ऋभव
३८-४० द्विषिषा

- ३८ द्यावापृथिव्यौ
४० 'अग्नि, वायु, सूर्य, सूर्य (पूतरेय
आह्वण)
४१-४२ इन्द्र वरुण
४३-४५ अश्विनौ
४६ 'वायु, ' इन्द्र वायु
४७ 'वायु, ' इन्द्र वायु
४८ वायु
४९ इन्द्र बृहस्पति
५० बृहस्पति

- 'पुरोधस्तु कर्मशला, ' ' इन्द्र
बृहस्पति
५१ ५२ उषस
५३-५४ सवितृ
५५ विश्व देवा
५६ द्यावापृथिव्यौ
५७ '३ क्षेत्रपति, 'शुन, 'शुनासीरी,
'सीता, 'कृषि, 'कृषिजीवा
मनुष्या, पर्जन्य, धन । अथवा यह
सम्पूर्ण सूक्त कृषि की स्तुति
करता है ।

मण्डल ५

- १-४ अग्नि
५ आप्रिय
६-२८ अग्नि
२६ 'विश्व देवा
२७ 'इन्द्र अग्नि
२९-४० इन्द्र
२९ 'उगना
३१ 'उगना, 'इन्द्र और कुरु
४० 'अग्नीणां कर्म कीर्त्तयते ।
४१-५१ विश्व देवा
४१ 'इन्द्र
४२ 'सवितृ (शौनक), ' बृहस्पति,
'मरुत, 'रुद्र, 'इन्द्रस्पति
(वाकपूणि), पर्जन्य-अग्नि (गालव),
पूषन् (यास्क), इन्द्र (शौनक),
वैश्वानर (भागुरि), 'मरुत,
'अश्विनौ
४३ 'वायु, 'सोम 'इन्द्र 'अग्नि,
'धर्म, 'अश्विनौ, 'वायु और पूषन्
'अग्नि, दिवौकस, 'वाक्
मध्यमा, 'बृहस्पति
४४ 'सोम, अथवा देवा, अथवा इन्द्र,
अथवा प्रजापति, 'वायु, 'आदित्य

- ४६ 'देवपत्न्य
५१ '६ 'इन्द्र-वायु, 'वायु
५२-६१ मरुत
५६ 'रोक्षसी
५७ 'रुद्रा
६० 'पार्थिव और मध्यम अग्नि तथा
मरुत
६१-७२ मित्र वरुण
७३-७८ अश्विनौ
७८ 'गर्भार्थम् उपमिश्रस्तुति
७९-८० उषस्
८१-८२ सवितृ
८२ 'दु स्वप्नमाश्रिनी
८३ पर्जन्य
८४ पृथिवी मध्यमा
८५ वरुण
८६ इन्द्र अग्नि
८७ मरुत, विष्णु के नैपातिक उल्लेख
के साथ ।
खिल १ श्रीसूक्तम्; अग्नि निपातभाज्
खिल २ प्रजावक्
खिल ३ जीवपुत्र
खिल ४ (सज्जन्ति) पयस्विभ्य

मण्डल ६

- १-१ अग्नि
 ७-९ अग्नि वैश्वानर
 १०-१६ अग्नि
 १७-२७ इन्द्र
 २१ ^{१ १ १} विश्वे देवा
 २७ अग्न्यावतिन् और सार्ज्य की दान स्तुति ।
 २८ गवां स्तुति, ^२ इन्द्र
 २९-४६ इन्द्र
 ३७ ^३ वायु और इन्द्र
 ४४ ^{२२ २४} सोम कुक्ष के अनुसार इन्द्र ।
 खिल (चक्षु) शरीर
 ४५ ^{२१ ३३} वृषुस्तुति
 ४७ ^{१-५} सोम, अथवा नैपातिक सोम के साथ इन्द्र, ^२ देवा, भूमि, बृहस्पति इन्द्र, ^{२२ २५} अग्न्यावतिन् और सार्ज्य की दान स्तुति, ^{१६} माववृत्तम्, ^{२६ २८} रथामि मर्शना, ^{२९ ३१} दुन्दुभे सस्तव, ^{३१} इन्द्र ।
 ४८ तृणपाणिक पृथिसुक्तम् ^{१ १} अग्नि, ^{११ १३} मरुत, ^{१४ १५} मरुत अथवा आवित्या अथवा विश्वे देवा, ^{१६ १९} पूषन्, ^{२ २१} मरुत, ^{२२} धु भू अथवा पृथि
 ४९-५२ विश्वे देवा
 ४९ ^१ अग्नि, ^२ वायु, ^३ अश्विनौ, ^४ वाच्, ^{११ १२} पूषन्, ^{१३} स्वष्टा, रुद्र, ^{११ १२} मरुत, ^{१३} विष्णु ।
 ५० ^१ होवसी, ^६ इन्द्र, ^८ सवितृ, ^१ अग्नि, ^{१०} अश्विनौ ।

- ५१ ^{१ २} सूर्य
 ५२ ^{१६} अग्नि-यजम्य
 ५३-५६ पूषन्
 ५५ ^१ कुक्ष के अनुसार रुद्र
 ५७ इन्द्र पूषन्
 ५८ पूषन्
 ५९-६० इन्द्र अग्नि
 ६१ सरस्वती
 ६२-६३ अश्विनौ
 ६४-६५ उषस्
 ६६ मरुत
 ६७ मित्र वरुण
 ६८ इन्द्र वरुण
 ६९ इन्द्र विष्णु
 ७० धावापृथिव्यौ
 ७१ सवितृ
 ७२ इन्द्र-सोम
 ७३ बृहस्पति
 ७४ सोम रुद्र
 ७५ युद्धोपकरणम् सग्रामाङ्गानि
^१ योद्धावर्मी, ^२ धनु, ^३ ज्या, ^४ आर्त्ता
^५ ह्युधि, ^६ सारथि, ^७ रश्मय, ^८ अश्वा, ^९ आयुधागारम्, ^{१०} रथ
^{११} गोपा, ^{१२} रणदेवता, ^{१३} ह्यु, ^{१४} कवच ^{१५} कशा, ^{१६} हस्तत्राणाम्
^{१७} विश्व ह्यु, ^{१८} अयोमुख्वा, ^{१९} वारुणम्
^{२०} अश्वम्, ^{२१} धनुर्मुक्त ह्यु, ^{२२} युद्धा
^{२३} दि, ^{२४} कवचस्य बध्यत स्तुति, ^{२५} थुयुस्तु, ^{२६} आरमन् (ऋपेर)
 आशिष

मण्डल ७

- १ अग्नि
२ आप्रय
३-१७ अग्नि
५, ६, १३ वैश्वानर
१८-३२ इन्द्र महत निपातभाज्
१८ २१ २५ पौजवन की दानस्तुति
३२ १ वही
३३ इन्द्र सूक्त, अथवा इन्द्र के, और
अपने पुत्रों के साथ वसिष्ठ और
अगस्त्य का सवाद
३४-३७ विश्वे देवा
३४ १६ अहि, १७ अहि बुध्न्य
३८ सवितृ
१ १ अहि ६ भग, ७ ८ राजिन
३९-४३ विश्वे देवा
४१ २ ६ भग ७ उपम, अथवा ऋषिया
के न्ये स्तुति
४४ दधिका
१ देवता परिकीर्तना
४५ सन्ति
४६ रुद्र
४७ आप
४८ १ ऋभन्, २ विश्व देवा अथवा
ऋभन्
४९ आप
५० १ मित्र वरुण, २ अग्नि, ३ विश्वे देवा,
४ नद्य
५१-५२ आदित्या
५३ रोदसा (= आकाश और पृथिवी) ।
५४ वास्तावपति
५५ वास्तावपति, २ प्रमगपि य
५६-५९ मरुत
- ५९ १२ इयम्बक
६०-६६ मित्र वरुण
६० १ सूर्य, २ अर्यमन्, मित्र-वरुण
६२ १ २ सूर्य
६३ १ २ सूर्य
६६ ४ १३ आदित्या अथवा सवितृ,
अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमन्,
भग, १४ १५ सूर्य, १६ चक्षु (सूर्यस्य)
एक स्तुति ।
६७-७४ अश्विनौ
७५-७८ उपम
७६ १ मध्यम (अग्नि)
८२-८५ इन्द्र वरुण
८६-८९ वरुण
९०-९२ वायु
९० १ ७, ९१ २ ४ ७, ९२ ३ इन्द्र वायु
९३-९४ इन्द्र अग्नि
९ -९६ सरस्वती
९१ , ९६ ४ सरस्वत्
९७ बृहस्पति
१ इन्द्र, २ ३ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति,
१ इन्द्र और बृहस्पति
९८ इन्द्र
९९-१०० विष्णु
९९ २ इन्द्र भी
१०१-१०२ पर्जन्य
१०३ माण्डूक्य
१०४ इन्द्र-सोम (राक्ष प्रम्) १ सोम,
१ अग्नि, २ विश्व देवा, ३ १३ सोम,
१४ अग्नि, १६ इन्द्र, १७ प्रावाण,
१८ मरुत, १९ १४ इन्द्र, २३ आत्मन्
(ऋषेर्) आशी, १४ इन्द्र ।

मण्डल ८

- १-४ इन्द्र
 १ ^{३ ३३} आसङ्ग की दानस्तुति,
^{३४} आसङ्ग
 २ ^{४१ ४२} विभिन्दु की दानस्तुति
 ३ ^{४१ ४४} पाकस्थामन् की दानस्तुति
 ४ ^{१५ १८} पूषन् (शाकटायन) ^{१५ १६}
^{१७ १८} पूषन् (गालव),
^{१९ २१} कुरु की दानस्तुति
 ५ अश्विनौ
^{३६ ३९} कशु की दानस्तुति
 ६ इन्द्र
^३ अग्नि वैश्वानर (शाकपूणि और
 मुत्तल), ^{४४ ४८} तिरिन्धिर की
 दानस्तुति
 ७ मरुत
 ८-१० अश्विनौ
 ११ अग्नि
 १२-१७ इन्द्र
 १७ ^{१४} वास्तोष्पति
 १८ आदित्या
^{४६ ७} अदिति, 'अश्विनौ, 'अग्नि,
 सूर्य, अनिल ।
 १९ ^{३४ ३५} वरुण, अर्यमन्, मित्र,
^{३६ ३७} ब्रह्मवदयु
 २० मरुत
 २१ इन्द्र
^{१७ १८} विश्व की दानस्तुति
 २२ अश्विनौ
 २३ अग्नि
 २४ इन्द्र
^{१८ ३} उषस्
 २५ ^१ मित्र वरुण, ^{१ २१} विश्वे देवा,
^{२१ २४} वरु की दानस्तुति ।
 २६ अश्विनौ
^{१ २५} वायु
 २७-३१ विश्वे देवा

- २९ पूषन्मस्तुति
^१ सोम, ^२ अग्नि, ^३ त्वष्टा, ^४ इन्द्र,
^५ रुद्र, ^६ पूषन्, ^७ विष्णु, ^८ अश्विनौ,
^९ मित्र वरुण, अन्नय
 ३१ इज्या
^१ शक, यज्ञता पति, ^३ यजुवन्,
^५ वपती, ^१ आशो, ^१ पूषन्,
^{१३} मित्र, अर्यमन्, वरुण आदित्या,
^{१४} अग्नि, ^{१५ १८} यजुवन्
 ३२-३४ इन्द्र
 ३३ ^{११} एक दानवी द्वारा इन्द्र को
 सम्बोधन
 ३५ अश्विनौ
 ३६-३७ इन्द्र
 ३८ इन्द्र अग्नि
 ३९ अग्नि
 ३० इन्द्र अग्नि
 ४१-४२ वरुण
 ४२ ^४ अश्विनौ
 ४३-४४ अग्नि
 ४५-४६ इन्द्र
 ४६ ^४ मित्र, अर्यमन्, मरुत,
^{२१ २४} कानीत पृथुश्रवस् की दान
 स्तुति, ^{२५ १८ ३१} वायु
 ४७ आदित्या
^१ अदिति, ^{१४ १८} उषस् भी
 ४८ सोम
 ४९-५६ इन्द्र
 ५४ ^३ बृहदेवत (प्रगाथ)
 ५५-५६ प्रकस्प्य की दानस्तुति ।
 ५६ 'अग्नि, सूर्य
 ५७-५८ (कोई निर्देश नहीं)
 ५९ (१ ७३ के बाद एक खिल के रूप
 में उल्लेख) ।
 ६० अग्नि
 ६१-६६ इन्द्र

६५ ^१ देवा (भागुरि), ^{१०} ^{१२} विश्वे	८४ अग्नि
देवा (यास्क) ।	८५-८७ अश्विनौ
६७ आदित्या ^१ ^{१२} अदिति ।	८८-९३ इन्द्र
६८-७० इन्द्र	९३ ^{३४} ऋभव
६८ ^{१४} ऋतव , ^{१५} ^{११} ऋष और	९४ मरुत
अश्वमेध की दानस्तुति ।	९५-१०० इन्द्र
६९ ^१ इन्द्र, अग्नि, विश्वदेवा , ^{११} ^{१२}	९६ ^३ ^{१०} इन्द्र, मरुत , बृहस्पति इन्द्र
वरुण	(शौनक), इन्द्र-बृहस्पति (पेत
७१-७२ अग्नि	रेय आक्षण) ।
७२ हविषां स्तुति पय पशोषधीनां च ।	१०० ^४ ^५ इन्द्र आत्मान तुष्टाव, 'सुपर्ण,
७३ अश्विनौ	^१ वज्र, ^१ ^{११} वाच ।
७४ ७५ अग्नि	१०१ ^१ मित्र वरुण, 'अर्घमन् भी, ^५ ^६
७४ ^{१३} ^{१४} ऋषि की आत्मस्तुति, श्रुत	आदित्या , ^७ ^८ अश्विनौ, ^९ ^{१०} वायु,
वन् की दानस्तुति भी, ^{१५} परुष्णी	^{११} ^{१२} सूर्य, ^{१३} उषस् अथवा चन्द्र-
७६-७८ इन्द्र	सूर्ययो प्रभा, ^{१४} पवमान, ^{१५} ^{१६} गो
७९ सोम	१०२-१०३ अग्नि
८०-८२ इन्द्र	१०३ ^{१४} अग्नि मध्यम, मरुत और रुद्रा
८० ^१ विश्वे देवा	के साथ ।
८३ देवा	

मण्डल ९

इस मण्डल के देवता सोम पवमान हैं	^{३१} ^{३२} स्वाध्यायाभ्येतुसस्तव
५ आग्रय	७३ अग्नि रक्षोहन
६६ ^{१९} ^{११} अग्नि	८३ घर्मसस्तव
६७ ^१ ^{१२} पवमान और पूषन्, ^{२३} ^{२४}	८७ ऋभु
अग्नि, ^{२५} सविद्, ^{२६} अग्नि और	११२ इन्द्र ।
सविद्, ^{२७} विश्वे देवा , ^{२८} अग्नि,	

मण्डल १०

१-७ अग्नि	१३ हविषानि ।
८ ^१ ^६ अग्नि, ^{७-९} इन्द्र	१४ यम मध्यम
९ आप	^६ अथर्वान, भृगव, अङ्गिरस,
१० यम और यमी का सवाद	पितर, ^{७-९} प्रेताक्षिपः, ^{१०} ^{१२} श्वानौ
११-१२ अग्नि	१५ पितर

१६ अग्नि कन्यवाहन ।

१७ ^१सरण्यू, ^३पूषन्, अग्नि, ^४पूषन्
^७सरस्वती, आप, ^{११}^{१३}सोम
^{१४}आप

१८ ^१मृत्यु, ^५धातु, ^६त्वष्टा, ^{७-९}मृत्यु,
^१^{१३}पृथिवी, ^{१४}आशिष

१९ गात्र, कुल के अनुसार आप
अग्नि सोम, इन्द्र और अग्नि
निपातभाज्, ^६इन्द्र

२०-२१ अग्नि

२२-२४ इन्द्र

२४ ^४अश्विनौ

२५ सोम

२६ पूषन्

२७-२८ इन्द्र

२७ ^{१५}मरुत, ^{१६}वज्र, ^{१७}अग्नि, इन्द्र,
सोम, पर्जन्य और वायु, ^{१८}अग्नि,
^{१९}सय, ^{२०}इन्द्र और वज्र,
^{२१}इन्द्र का धनुष ^{२२}पर्जन्य,
अनिल, भास्कर, ^{२३}इन्द्र अथवा
सूय ।

२८ ऋषि तथा इन्द्र का मन्त्राद अयुग्म
ऋचाआ मे इन्द्र का सम्बोधित
किया गया है ।

३० आप

^३अग्नि मध्यम की अपा नपात्
के रूप म स्तुति ।

३१ विश्व देवा

३२ इन्द्र

३३ विश्व देवा, ^२इन्द्र ^५कुरुश्रवण
त्रासदस्यव, ^६उपमश्रवम

३४ ^१^{११}अक्षा, ^{१२}कृषि, शय में
अक्षनिन्दा ।

३५-३६ विश्व देवा

३६ ^{१२}^{१४}सवितृ (एके), ^{१५}सवितृ
(शौनक, यास्क, गालव) ।

३७ सूय

^६नैपातिक देवता, ^{११}^{१४}विश्व देवा

३८ इन्द्र

३९ ४१ अश्विनौ

४२-४४ इन्द्र

४४ ^{११}बृहस्पति

४५-४६ अग्नि

४५ ^{१५}द्यावापृथिव्यौ, ^{१६}विश्व देवा

४७ इन्द्र वैकुण्ठ

४८-५० इन्द्र वैकुण्ठ की आत्मस्तुति ।

५१-५३ अग्नि और देवों का सवाव

५४-५५ इन्द्र

५५ ^{१५}सूर्य और चन्द्रमा

५६-५७ विश्व देवा

५७ इन्द्र, ^२अग्नि, ^३मनस, ^४सोम

५८ जीवावृत्ति सुबन्धोर् मनस मन्वो
वा ।

५९ ^१निर्ऋति, ^२सोम, निऋति,
^३असुनीति (यास्क केवल 'म'),
^४भू, द्यु, सोम, पूषन्, ख, पथ्या,
स्वस्ति, ^५रोदसा (इन्द्र),
^६इन्द्र ।

६० ^१एषवाकु, ऐषवाकु के लिये
स्तुति, ^२ऐषवाकु, सुबन्धोर् असुम्
आह्वयन्, ^३अस्य चतसा
धारणाय, ^४लब्धवासु पाणिभिर्
अस्पृशन् ।

६१-६६ विश्व देवा

६२ अङ्गिरसा स्तुति, ^६^{११}मनु सावर्ण्य

६३ ^{१५}मरुत, ^{१६}पथ्या स्वस्ति ।

६४ अदिति

६५ मित्र वरुण, ^६वाच् मध्यमा
^{१५}अश्विनौ ।

६६ ^{१४}^{१५}वाच् मध्यमा और मनु ।

६७-६८ बृहस्पति

६७ ब्रह्मणस्पति

६९ अग्नि

७० आप्रिय

७१ ज्ञान

७२ विश्व देवा, ^२बृहस्पति

७३-७४ इन्द्र
७५ नदिर्वा (कवन्ध)
७६ प्रावाण
७७-७८ मरुत
७९-८० अग्नि
८१-८२ विश्वकर्मन्
८३-८४ मन्वु
खिल १ (मम व्रते) विश्वे देवा
खिल २ (उत) अग्नि
मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि
८५ ^१सूर्या, सत्य, ^२सूर्य, ऋत, और सोम
के साथ, ^३सोम, ^४चन्द्रमस्,
६ ^{१३}सूर्यायै आववृत्तम्, ^{१४} ^{१५}
अश्विनौ, ^{१६}सूर्य, ^{१७}विश्वे देवा,
^{१८}सूर्य चन्द्रमस्, ^{१९}सूर्य, चन्द्र-
मस् (^{१०} ^{११}अश्विनौ औणवाम),
^२सूर्या, ^{२१} ^{२२}गन्धर्व विश्वावसु,
^{२३}दपती, ^{२४} ^{२५}वधू, ^{२६}वर द्वारा
वधू को वस्त्रदान, ^{२७}पति द्वारा
वस्त्र हरण का निषेध, ^{२८}यक्षम
नाशिनी, ^{२९} ^{३०}परिपन्थिन, ^{३१}वधू
के वस्त्र को लेने वाला, ^{३२}आववृत्ति,
^{३३}धनाशिष, ^{३४}सयोगाशिष,
^{३५}विवाहित दपती के लिये
स्तुतिर्वा, ^{३६}प्रजापति, ^{३७}इन्द्र,
^{३८}(= खिल) बृहस्पति ।

८६ वृषाकपि
८७ अग्नि
८८ तीन अग्नि (पाथिव, मध्यम् और
दिव्य) ।
८९ इन्द्र, सोम भी ।
९० पुरुष
९१ अग्नि
९२-९३ विश्वे देवा
९३ ^{१४} ^{१५}राज्ञा दानस्तुति
९४ प्रावा
९५ पुरुरवस् और उर्वशी का सबाध
९६ इन्द्र

९७ ओषधीस्तव
९८ ^{१३}बृहस्पति, ^{१४}देवा, ^{१५}अग्नि
९९ इन्द्र ।
१०० विश्वे देवा
१०१ ऋत्विक्स्तुति
१०२ वृषण अथवा इन्द्र (वास्क),
विश्वे देवा (सौमक) ।
१०३ इन्द्र
बृहस्पति, ^{१२}अन्वा, ^{१३}इन्द्र
अथवा मरुत
खिल १ मरुत
खिल २ (ब्रह्म) ^१सूर्य, ^२धर्म, ^३बृह
स्पति, ^४सवितृ, ^५ ^{११}सूर्य-चन्द्रमस्
१०४ इन्द्र
१०५ इन्द्र
१०६ अश्विनौ
१०७ प्राजापत्या दक्षिणा, कुक्ष के अनु
सार दक्षिणादातार, ^८ ^{११}भोजा
^{१३} ^{१४} ^{१५}सरमा, ^२ ^४ ^६ ^८ ^{११}
पणय
१०९ विश्वे देवा
११० आग्नि
१११-११३ इन्द्र
११४ विश्वे देवा एके देवा, इन्द्र,
छन्दांसि, अग्नि मध्यम ।
११५ अग्नि
११६ इन्द्र
११७ अन्न
११८ अग्नि रक्षोहन्
११९ लव
१२० इन्द्र
आपस्या निपातभाज् ।
१२१ प्रजापति
१२२ अग्नि
१२३ वेन
१२४ ^१अग्नि की आत्मस्तुति, ^२वरुण,
^३सोम, ^४वरुण, ^५सोम इन्द्र ।
१२५ वाष्

१२६ अर्धमन्, मित्र, वरुण	१५४ भाववृत्तम्
१२७ रात्री	१५५ अलक्ष्मीम् ^२ ^३ ब्रह्मणस्पति,
१२८ विश्वे देवा	“इन्द्र, “विश्वे देवा
खिल १ (नमस् ते) विष्णुत	१५६ अग्नि
खिल २ (यां कल्पयन्ति नोऽरय)	१५७ विश्व देवा (इन्द्र प्रमुख देवता हैं,
कृत्यानाशनम्	और विश्वे देवा, आदित्या, मरुत,
खिल ३ (आयुष्यम्) द्विरप्यस्तुति	गौण)।
१२९ परमोष्ठन् भाववृत्तम्	१५८ सूर्य
१३० भाववृत्तम्	१५९ पीलोमी द्वारा अपने, तथा अन्य
१३१ इन्द्र ^४ अश्विनौ	सहपत्नियों के गुणों का स्तुति ।
१३२ मित्र वरुण	१६० इन्द्र
“धु, भूमि, अश्विनौ	१६१ राजयजमन्त्रम् इन्द्र अग्नि (यास्क)
१३३-१३४ इन्द्र	लिङ्गोक्तदेवतम् (एके)।
१३५ कृत्यानीय यम	१६२ स्रवतां गभाणाम् अनुमन्त्रणम्
१३६ केशिन	अग्नि रक्षाहन् ।
१३७ ^१ देवा, ^२ ^३ वान, “विश्वे देवा,	खिल (वेनस् तत् पश्यत्) वेन ।
^६ आप	१६३ यजम नाशनम्
खिल (भूमि) लाक्षा	१६४ दुःस्वप्नम् इन्द्र और अग्नि
१३८ इन्द्र	निपात भाज्
१३९ ^१ सवितृ, ^४ ^६ गन्धर्व की आत्म-	१६५ प्रायश्चित्तार्थम् कपोत
स्तुति, इन्द्र और सूर्य निपात	१६६ सपत्न्यम्
भाज् हैं ।	खिल (येनदम्) मनस्
१४० अग्नि	१६७ इन्द्र
१४१ अग्नि और विश्वे देवा	^३ वरुण, विधातृ, अनुमति, धातृ,
१४२ अग्नि	सोम, बृहस्पति ।
१४३ अश्विनौ	१६८ अनिल ऋषि के पिता (अर्थात्
१४४ इन्द्र	वात)।
१४५ भाववृत्तम् औपनिषदम् सूक्तम्	१६९ गाव
^१ सपत्न्यपनोदिका, ^६ पति	१७० सूर्य
सवनानी ।	१७१ इन्द्र
१४६ अरण्यानी	१७२ उषस्
१४७-१४८ इन्द्र	१७३-१७४ राजेऽभिषिक्त्यानुमन्त्रणे ।
१४९ सवितृ	१७५ प्रावाण
१५० अग्नि	१७६ अग्नि
१५१ श्रद्धा	^१ ऋभव
खिल १ मेघासूक्तम्	१७७ सूर्य अथवा मायामेदम् ^२ वाष्
खिल २ (आ सूर पतु) अग्नि	(शौनक)
१५२-१५३ इन्द्र	१७८ स्वस्त्ययनम् तापय ।

१७९-१८० इन्द्र	१८८ जातवेदस्
१८१ विश्वे देवा	१८९ सापराज्ञो की आत्मस्तुति, सूर्य (एके), वाच (मुद्गल, शाकपूणि, शाकटायन) ।
१८२ बृहस्पति	१९० भाववृत्तम्
१८३ लिङ्गाक्तदेवता	१९१ ^१ अग्नि ^२ संज्ञान खिल १ (संज्ञानम्) ^३ उक्षना, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सवितृ, ^४ अश्विनौ, ^५ आशिष
^१ पुत्रकामी व्यक्ति के लिये स्तुति, ^२ पुत्रकामी स्त्री के लिये स्तुति, ^३ ऋषि की आत्मस्तुति ।	खिल २ (प्राध्वराणाम्) ^१ अग्नि खिल ३ (नैर्हस्यम्) सपत्न्यम् ^२ इन्द्र और पूषन्
१८४ सन्तान के लिये स्तुति विश्वे देवा खिल (नेजमेष) गर्भार्थम्	खिल ४ (महानाम्न्य ऋच) इन्द्र ।
१८५ शान्त्यर्थ पावन सूक्तम् आदित्या, सूर्य वरुण, मित्र ।	
१८६ उल ऋषि के पिता, अर्थात् वात ।	
१८७ अग्नि ।	



परिशिष्ट-४

बृहदेवता में वर्णित कथाओं की सूची

अगस्त्य, देखिये वसिष्ठ और लोपामुद्रा ।	व्यरुण और वृक्ष जान, ५ १३ २२
अग्नि और उनके भ्राता, ७ ६१-८१	त्वष्टा, देखिये ऋभुगण
अग्नि, देखिये ऋगु	
अपाला, ६ ९९-१०६	दध्यज्ज, ३ १८ २४
अभ्यावर्तिन् ५ १२४-१२८	दीर्घतमस, ४ ११ १५
	दैत्यगण, देखिये गृत्समद ।
इन्द्र, देखिये गृत्समद, त्रसदस्यु, त्रिशि रस, विष्णु ।	नाहुष और सरस्वती ६ २० २४
इन्द्र और ऋषिगण, ६ १३७-१४१	पणि, देखिये सरमा
इन्द्र का जन्म और वामदेव के साथ युद्ध, ४ १३०-१३५	पुरूरवस और उवशी, ७ १४७ १५२
कपिलकुल के रूप में इन्द्र, ४ ९३ ९४	प्रगाथ, देखिये कण्व
इन्द्र और मरुद्गण, ४ ४६ ५५	
इन्द्र वैकुण्ठ, ७ ४९-६०	भरद्वाज, देखिये ऋगु
इन्द्र और वयश की बहन, ६ ७६-७७	भृतांश, देखिये काश्यप
उर्वशी, देखिये पुरूरवस्	ऋगु, अग्नि, भरद्वाज, आदि का जन्म, ५ ९७-१०३ ।
ऋभुगण और त्वष्टा, ३ ८३-८८	मरुद्गण, देखिये इन्द्र ।
कक्षीवत् और स्वनय, ३ १४२ १५१	
कण्व और प्रगाथ, ६ ३५-३९	लोपामुद्रा और अगस्त्य, ४ ५७-६१
कपोत नेष्टत, ८ ६७-६८	
काश्यप भृतांश, ८ १८ २०	वसिष्ठ और वरुण का कुत्ता, ६ ११ १५
गृत्समद, इन्द्र और दैत्यगण, ४ ६५ ७८ ।	वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म, ५ १४३ १५९
घोषा, ७ ४२ ४८	वामदेव, देखिये इन्द्र ।
चित्र, देखिये सोमरि ।	विश्वमित्र, गाधिन् के पुत्र, ४ ९५
ऋषि त्रसदस्यु, और इन्द्र, ६ ५१ ५७	विश्वमित्र और शक्ति, ४ ११२ १२०
त्रित, ३ १३२ १३७	विश्वमित्र, सुदास्, और नदिर्घा, ४ १०५ १०८ ।
त्रिशिरस् और इन्द्र, ६ १४७ १५३	विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता, ६ १२१ १२३ ।
	वृक्ष जान, देखिये व्यरुण

व्यश की बहन, देखिये इन्द्र ।

शक्ति, देखिय विश्वामित्र

श्यावाश्व, ५ ५० ८१

सप्तवध, ५ ८२ ८५

सरण्यू, ६ १६३-७ ७

सरमा और पणि, ८ २४ ३६

सरस्वता, देखिये नाहुष ।

सह्य, ३ ११५

सुदास्, देखिये विश्वामित्र

सुबन्धु, ७ ८४ १०२

सोमरि और चित्र, ६ ५८-६२

सोम का पलायन ६ १०९ ११५

स्वनथ, देखिये कर्षीवत्



परिशिष्ट-५

अन्य ग्रन्थों में उद्धृत बृहदेवता के स्थलों की सूची ।

- | | |
|--|--|
| १ २ ऋग्वेद १ १ पर नीतिमञ्जरी । | ४ १०५ १०६ ऋग्वेद ३ ३३, १ पर नीतिमञ्जरी । |
| २ १०५ निरुक्त २ २ पर दुर्गा | ४ ११२ ११६ ऋग्वेद ३ ५३ पर षड्गुरुशिष्य । |
| ३ १८ २३ ऋग्वेद १ ११६, १२ पर नीतिमञ्जरी | ४ ११३ ११४ ऋग्वेद ३ ५३, १५ पर सायण । |
| ३ १०१ ऋग्वेद १ २८ पर षड्गुरुशिष्य और सायण । | ४ १२० ऋग्वेद ३ ५३ पर षड्गुरुशिष्य । |
| ३ १४०, १४२ १५० ऋग्वेद १ १२६, ७ पर नीतिमञ्जरी । | ४ १२६ ऋग्वेद ४ १८, १३ पर नीतिमञ्जरी । |
| ३ १५५ १५८ ऋग्वेद १ १२६, ६ ७ पर नीतिमञ्जरी । | ४ १३० १३१ ऋग्वेद ४ १८, १३ पर नातिमञ्जरी । |
| ४ १३ ऋग्वेद १ १२६, ६ ७ पर नातिमञ्जरी । | ५ ८ ऋग्वेद ४ ५७ पर षड्गुरुशिष्य |
| ४ ११ १५ ऋग्वेद १ १४७, ३ पर नीतिमञ्जरी । | ५ १४ २१, २२, २३ ऋग्वेद ५ २, ९ पर नातिमञ्जरी । |
| ४ २१, २४, २५ ऋग्वेद १ १८, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५ ३३ ३६ ऋग्वेद ४ ३०, १५ पर नातिमञ्जरी । |
| ४ २२, २३, २४ ऋग्वेद १ १५८, ५ पर नातिमञ्जरी । | ५ ५० ५९ (६१, ६८, ७१ को छोड़ कर) ऋग्वेद ५ ६१ पर षड्गुरुशिष्य । |
| ४ ३५ अथर्ववेद १९ ५३, २ पर सायण | ५ ५० ७९ (६४ ६७, ६९ ७१ को छोड़कर) ऋग्वेद ५ ६१, १७ पर नीतिमञ्जरी । |
| ४ ४९ ५३ ऋग्वेद १ १७०, १ पर नातिमञ्जरी । | ५ ७२ ७९ ऋग्वेद ५ ६१, १७ पर सायण । |
| ४ ५७ ६० ऋग्वेद १ १७९, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५ ९७ १०१ ऋग्वेद ५ की भूमिका में षड्गुरुशिष्य । |
| ४ ६६ ६९ ऋग्वेद २ १२, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५ ९७ १०२ ऋग्वेद ५ की भूमिका नीतिमञ्जरी । |
| ४ ६६ ९८ ऋग्वेद २ १२, पर सायण । | ५ १०६ ऋग्वेद ६ २४, ५ पर सायण |
| ४ ९३ ९४ ऋग्वेद २ ४३ पर षड्गुरुशिष्य । | ५ १११ ऋग्वेद ६ ४७ पर षड्गुरुशिष्य । |
| ४ ९६ ऋग्वेद ३ ५, ६ पर षड्गुरुशिष्य । | |

- ५ १२४ १२८ ऋग्वेद ६ २७, ४ पर नीतिमञ्जरी ।
- ५ १२९ १३३ ऋग्वेद ६ ७५, १ पर नीतिमञ्जरी ।
- ५ १३६ १३८ ऋग्वेद ६ २७, ४ पर नीतिमञ्जरी ।
- ५ १३९ ११० ऋग्वेद ६ ४७, २२ पर नीतिमञ्जरी ।
- ५ १४३ १५५ (१५३ को छोड़कर) ऋग्वेद ७ १०४, १६ पर नीतिमञ्जरी ।
- ५ १४९ १५५ ऋग्वेद ७ ३३, ११ पर म सायण ।
- ६ ११ १५ ऋग्वेद ७ ५५, २ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ११ १६ ऋग्वेद ७ ५५, ३ पर सायण ।
- ६ २७ २८ ऋग्वेद ७ १०४ की भूमिका में सायण ।
- ६ २८ ऋग्वेद ७ १०४, १६ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ३२ ऋग्वेद ७ १४, २२ पर सायण ।
- ६ ३५ ३८ ऋग्वेद ८ १ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ४३ ऋग्वेद ८ ४ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ६ ५१ ५७ ऋग्वेद ८ १९, ३७ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ५८ ६२ ऋग्वेद ८ २१, १८ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ६८ ऋग्वेद ८ २७ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ६ ७९ १० ऋग्वेद ८ ४६ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ६ ७९ १० ऋग्वेद ८ ४६, २१ पर सायण ।
- ६ ९१ ९२ ऋग्वेद ८ ६८ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ६ ९९ १०६ ऋग्वेद ८ ९१, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ ९९ १००, १०२, १०५ १०६ ऋग्वेद ८ ९१ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ६ १०९ ११३, ११४-११५ ऋग्वेद ८ ९६, १३ पर सायण ।
- ६ ११० ऋग्वेद ८ ९५, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ १२१ १२४ ऋग्वेद ८ १००, १२ पर सायण ।
- ६ १६२ १६३ ऋग्वेद १ ११६, ६ पर नीतिमञ्जरी ।
- ६ १६२ १६३ ऋग्वेद ७ ७२, २ और अथर्ववेद १८ १, ५३ पर सायण ।
- ७ १ ७ ऋग्वेद १ ११६, ६ पर नीतिमञ्जरी ।
- ७ १ ६ ऋग्वेद ७ ७२, २ और अथर्ववेद १८ १, ५३ पर सायण ।
- ७ ३७ ऋग्वेद १० ३२ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ७ ३७ ऋग्वेद १० ३४ पर सायण ।
- ७ ४२ ४४, ४५ ४७ ऋग्वेद १ ११७, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
- ७ ६१ ८१ ऋग्वेद १० ५० पर षड्गुरुशिष्य की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में ।
- ७ ६१ ६६, ७४, ७५, ७६ ऋग्वेद १० ५१, ८ पर नीतिमञ्जरी ।
- ७ ८९ ९० ऋग्वेद ५ ६०, १२ पर नीतिमञ्जरी ।
- ७ ९७ १०१ ऋग्वेद १० ६०, ७ पर सायण ।
- ७ ९७ ९८ ९९ १०० ऋग्वेद ५ ६०, १२ पर नीतिमञ्जरी ।
- ७ १०९ ऋग्वेद १० ७१ पर षड्गुरुशिष्य ।
- ७ १०९ ऋग्वेद १० ७१, १२ पर सायण ।

- ७ १५५-१५७ ऋग्वेद १० ९८ पर षड्गुरुशिष्य की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में।
 ऋग्वेद १० ९८, ८ पर नोतिमअरी।
- ८ १९ ऋग्वेद १० ९८ पर षड्गुरुशिष्य की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में।
- ८ १, २७ ऋग्वेद १० ९८, ८ पर नोतिमअरी।
- ८ ४० ऋग्वेद १० ११९ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ ६५ ऋग्वेद १० १६१ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ ७३ ऋग्वेद १० १७३ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ ९८ ऋग्वेद १० १९१ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ १३३ ऋग्वेद १० १९१ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ १३५ ऋग्वेद १० १९१ पर षड्गुरुशिष्य।
- ८ १३६ षड्गुरुशिष्य भूमिका, १ २।
 ऋग्वेद भाष्य भूमिका सायण।

परिशिष्ट-६

अन्य ग्रन्थों के साथ बृहदेवता का सम्बन्ध



१ नैषण्डुक

नैषण्डुक ५ १, २ (पार्थिव देवता— अग्नि के रूप और अग्नी देवता)	बृहदेवता १ १०६ १०९ का स्रोत है ।
नैषण्डुक ५ ३ (अन्य पार्थिव देवता)	बृहदेवता १ १०९ ११४ का स्रोत है ।
नैषण्डुक ५ ४, ५ (अन्तरिक्ष देवता)	बृहदेवता १ १२२ १२९ का स्रोत है ।
नैषण्डुक ५ ६ (द्युस्थानीय देवता)	बृहदेवता २ ८ १२ का स्रोत है ।
नैषण्डुक ५ ३ (नद्य से अप्राप्ति तक के नामों का अंश)	बृहदेवता २ ७३-७५ का स्रोत है ।
नैषण्डुक १ १५ (विभिन्न देवताओं के वाहनाश्च)	बृहदेवता ४ १४० १४४ का स्रोत है ।



२ निरुक्त

निरुक्त	बृहदेवता
७ ३ एवम् उवाचैर् अभिप्रायैर् ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति ।	१, ३ तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु ।
७ १ यत्काम ऋषिर् यस्यां देवता यात् अर्थपत्यम् इहन् स्तुतिं प्रयुक्ते, तदैव त स मन्त्रो भवति ।	१ ६ अर्थम् इहन् ऋषिर् देव य यम् आहायम् अस्व इति, प्राधान्येन स्तुवन् भक्त्या मन्त्रस् तद्वपुः स
१० ४२ देवतानामधेयाः १ अनुक्रा न्तानि, सूक्तभाजि	१ १७ (तु० की० ८ १२९) । देवता नामधेयानि मन्त्रेषु त्रिविधानि तु सूक्तमान्द्यम् अथर्वभाजि तथा नपातिकानि तु ।
७ १३ देवता सूक्तभाज ऋग्भा जश्च काश्चिन् निपातभाज ।	
१ २० यद् अन्यदेवते मन्त्रे निपतति नैषण्डुकं तत् ।	१ १८ मन्त्रेऽन्यदेवतेऽन्यानि निगद्यन्तेऽत्र कानि चिन्

निरुक्त

- १ १ पूर्वापरीभूत भावम् आख्या
तेनाचष्टे
- ७ ५ तिस्र एव देवता अग्नि पृथि
वीस्थानो, वायुर वेन्द्रो वान्तरिच
स्थान, सूर्यो द्यस्थान
- ७ ४ आत्मैवैषा रथो आत्मायुधम्
आत्मा सर्वं देवस्य
- ७ १८ यम् तु सूक्त भजते, यस्मै
हविर् निरूप्यत इयम् एव सोऽग्निर्
निपातम् एव एते उत्तरे ज्योतिषी
एनेन नामधेयेन भजते ।
- ७ १९ जातवेदा जातानि वेद,
जातानि वेन विन्दुर, जाने जाते
विद्यत इति वा, जातवित्तो वा
जातधनो, जातविद्यो वा जातप्रज्ञा
- ७ २३ रोहान् प्रत्यवरोहश् चिकीपि
तस् ताम् अनुकृति हाना आग्निमारुते
शस्त्रे वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रति
पद्यते तत् आगच्छति मध्यस्थाना
देवता रुद्र च मरुतश् च ततोऽग्निम्
इहास्थानम् अत्रैव स्तोत्रियं शंसति
- ७ ८ अयं लोक प्रातः सवनं वसन्तो
गायत्री त्रिवृत् स्तोमा रथतर साम
ये च देवगणा समाम्नाता प्रथमे
स्थाने ।
- ७ ११ शरद् अनुष्टुप् एकविंशस्तोमो
वैराज सामैति पृथिव्यायतनानि ।

बृहद्देवता

- १ ४४ य पूर्वापरीभूत इदं एव
आख्यातशब्दन तम् अर्थम् आहु
- १ ६९ अग्निर् अस्मिन् अथाद्रस् तु
मध्यतो वायुर् एव च, सूर्यो दिवाति
विज्ञेयास तिस्र एवेह देवता ।
- १, ७३ तेषाम् आत्मेव तत् सर्वं यद्
यद् भक्ति प्रकीर्यते तेजस स्व
एवायुध प्राहुर वाहन चैव यस्य यत्
- १ ७८ निरूप्यत हविर् यस्य सूक्तं च
भजते च या, सैव तत्र प्रधानं स्यात्
न निपातेन या स्तुता ।
- १ ९२ यद् विद्यत हि जातं स ततर
यद् वात्र विद्यत ।
- २ ३० भूतानि यद् यज जात ।
यच्च चप जातविद्याऽयं वित्त
जातेऽधिपति वा ।
- २ ३१ विद्यते सर्वभूतैर् नि,
यद् वा जातं पुन पुन ।
- १ १०२ १०३ रोहान् प्रत्यवरोहेण
चिकीर्षन्न आग्निमारुत शस्त्रे वैश्वानरी
येण सूक्तेन प्रतिपद्यते । ततस्तु
मध्यमस्थाना देवताम् त्व अनुद यति,
रुद्र च मरुतश् चैव स्तोत्रियेऽग्निम्
इमं पुन ।
- १ ११५ ११६ लोकोऽयं यच्च च प्रातः
सवनं क्रियते मये, वसन्तशरदां
चर्तु स्तोमोऽनुष्टुप् अथो त्रिवृत् ।
गायत्री चैकविंशश् च यच्च च साम
रथतरम्, साध्या साम च वैराजस
आप्याश च वसुभि सह ।

निरुक्त

७ ८ अथऽस्य सस्तविका देवा इन्द्र
सोमो वरुण पर्जन्य ऋतव,
आग्नावैष्णव हविर् न त्व ऋक्
गन्तव्यिकी दक्षनयीषु विद्यते,
अथापि आग्नापौष्ण हविर् न तु
सस्तव ।

७ ८ अथऽस्य कर्म वहन च हविषा
नावाहन च ज्येष्ठानां यच्च च
किं चिद् वाष्टिद्विपथिकम् ।

७ १० अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिन
मवन ग्रीष्मम् त्रिदुप् पञ्चदश
स्तोमो बृहत् साम ।

७ ११ हेमन्त पर्णस् त्रिणवस्तोम
शाकर नाम य् अन्तरिक्षायतनानि

७ १० अथऽस्य मन्तविका देवा अग्नि
सोमो वरुण पूषा बृहस्पतिर् ब्रह्मण
स्पति पर्वत कुक्षो विष्णुर् वायु ।

७ ११ बृहस्पतिर् बृहन् पाता ।

७ १० अथऽपि मित्रो वरुणेन सस्तुयते,
पूष्णा रुद्रेण च सोमोऽग्निना
[वायुना] च पूषा, वातेन च
पर्जन्य ।

बृहदेवता

१ ११७-१२० इन्द्रेण च मरुजिह्व च
सोमैर्न वरुणेन च पर्जन्येनतुभिश्
चैव विष्णुना वास्य सस्तव, अस्यै
वाग्नेस् तु पूष्णा च साम्राज्य
वरुणेन च ।
देवताम् अर्थतस्वज्ञो मन्त्रै सयोज
यद् धवि, अमस्तुतस्मापि सतो
हविर् एक निरुप्यते ।

देवतावाहन चैव वहन हविषा तथा
कर्म, दृष्टे च यत् किं चिद् विषये
परिवर्तते ।

१ १२०-१२१ कुन्दम् त्रिदुप् च
पङ्क्तिश् च लोकानां मध्यमश् च य
ग्नत्वा एवाश्रयो विद्यात् सवन
मध्यम च यत्, ऋतू च ग्रीष्म
हेमन्तौ यच्च च सामोच्यते बृहत्,
शक्नीषु च यद् गीत नास्मा तत्
साम शाकरम् ।

२ १ आह चैवास्य द्वौ स्तोमाव
आश्रयौ शाकटायन, यश् च
पञ्चदशो नास्मा सकथया त्रिणवश्
च य ।

२ २-३ सस्तुतश् चैव पूष्णा च
विष्णुना वरुणेन च
सोम नाटव् अग्नि कुक्षैश् च
ब्रह्मणस्पतिनैव च
बृहत्स्पतिना चैव
नास्मा यश् चापि पर्वत ।

२ ४-५ मित्रश् च भूयते देवो
वरुणेन सहास्कृत्
रुद्रेण सोम पूष्णा च,
पुन पूषा च वायुना
वातेनैव च पर्जन्यो;
लक्षयतेऽन्यत्र वै क्व चित् ।

निरुक्त	बृहदेवता
७ १० अथऽस्य कर्म रसानुप्रदान, बृहन्नवधो, वा च का च बलकृति ।	२ ६ रसानुदानं तु कर्मास्य बृहन्नस्य च निर्वहणम्, स्तुते प्रभुस्य सर्वस्य बलस्य निश्चिन्ता कृति ।
७ २४ आदित्यरश्मय अमुतोऽर्वाङ् पर्यावर्तन्ते ।	२ ८-९ सूर्यस्यैव तु पञ्चय अमुतोऽर्वाङ् निवर्तन्ते प्रतिलोमास् तदाश्रया ।
७ ११ असौ लोकस् तृतीयसवन वर्षा जगती सप्तदशस्तोमो वैरूप साम शिशिरोऽतिछन्दस् त्रयस्त्रिंशस्तोमो रैवत सामैति शुभकीर्ति ।	२ १३ असौ तृतीयसवन लोक, साम च रैवतम्, वैरूप चैव, तर्वाणश्च शिशिरोऽथ ऋतुस् तथा । २ १४ त्रयस्त्रिंशश्च य स्तोमः बलपत्या सप्तदशश्च य, छन्दश्च जगती नाम्ना तथातिछन्दश्च य ।
७ ११ चन्द्रमसा वायुना सवस्सरेण इति संस्तव ।	२ १५-१६ एतस्यैव तु विज्ञेया देवा सस्तविकास् त्रय, चन्द्रमाश चैव वायुश्च य च सवस्सर विदुः ।
७ २३ अथऽपि वैश्वानरीयो द्वादश-कपालो भवति अथऽपि छान्दो भिक् सूक्त सौर्यवैश्वानर भवति अथापि हविष्पान्तीय सूक्त सौर्य वैश्वानर भवति ।	२ १६-१७ के चित् तु निर्वपन्त्य अस्थ सौर्यवैश्वानर हवि सौर्यवैश्वानरीय हि तत् सूक्तम् इव दृश्यते ।
७ १४ अग्नि कस्मात् ? अग्रणीर् भवति, अग्र यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्ग नयति सनममान ।	२ २४ जातो यद् अग्रे भूतानाम् अग्रणीर् अभ्वरे च यत्, नाम्ना सनयते वाङ् स्तुतोऽग्निर् इति सूरिभि ।
८ १ द्रविणोदा कस्मात् ? धन द्रवि णम् उच्यते बल वा द्रविणम् तस्य दाता द्रविणोदा ।	२ २५ द्रविण धन बल चापि प्रायच्छद् येन कर्मणा, तत् कर्म दृष्ट्वा कुरसस् तु प्राहैन दनिनोदसम् ।
८ ५ निपाद् इह्य अनन्तराया प्रजाया नामधेयम् ।	२ २७ अनन्तरा प्रजाम् आहुर् नपाद् इति कृपण्यव ।

निरुक्त

८ ६ नराशंसो यज्ञ इति कारथक्य
नरा अस्मिन् आसीना ससन्ति,
अग्निर् इति शाकपूणि नरै प्रशस्यो
भवति ।

१० ५ यद् अरुदत् तद् रुद्रस्य रुद्र
त्वम् इति काठकम्, यद् आरोदीत्
तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् इति हारि
द्रविकम् ।

१० ८ इन्द्र इरा दृणातीति ।

१० १० पर्जन्यस् (तृपेर् आद्यन्त
विपरीतस्य) तर्पयिता जन्य,
परो जेता वा, जनयिता वा, प्रार्ज
यिता वा रसानाम् ।

१० १२ ब्रह्मणस्पतिर् ब्रह्मण पाता ।

१० २७ ताचर्यस् तीर्णोऽन्तरिक्षे
क्षियति, तूर्णम् अर्थं रक्षत्य् अरनो
तेर् वा ।

बृहदेवता

२ २८ यज्ञे यच्च क्षस्यते नृभि
स्तुवन्य् आप्रीषु तेनेम
नराशस्य तु कारव ।

३ २-३ नाराशसम् इहैके
तु अग्निम् आहुर्,
अथेतरे नरा शसन्ति सर्वेऽस्मिन्
आसीना इति बाध्वरे
एतम् एवाहुर् अन्येऽग्निं
नराशस्योऽध्वरे ह्य अयम्,
नरै प्रशस्य आसीनैर्,
आहुष् चवस्विजो नर ।

२ ३०-३१ देगिये १ ९२ के अन्तर्गत

२ ३४ अरोदीद् अन्तरिक्षे यद्
विद्यद्दृष्टि न्वन् नृणाम्,
चतुर्भिर ऋषिभिस तेन
रुद्र इत्य् अभिसस्तुन ।

२ ३६ इरा दृणाति यत् काले
मरुद्भि सहितोऽम्बर,
रवेण महता युक्तस्,
तेनेन्द्रम् ऋषयोऽब्रुवन् ।

२ ३७-३८ यद् इमा प्रार्जयस्य एको
रसेनाम्बरजेन गा कालेऽग्निर
औवशश्च वर्षी तेन
पर्जन्यम् आहवतु ।
तपयस्य् एष यत् लोकाञ्
जन्या जनहितश्च यत्,
परा जेता जनयिता
यद् वाग्नेयस् ततो जगौ ।

२ ४० पातार ब्रह्मणम् तेन
शौनहोत्र स्तुवन् जगौ

२ ५८ स्तीर्णोऽन्तरिक्षे क्षियति
यद् वा तूर्णं करस्य् असी,
ताचर्य तेनेवम् उक्तवान् ।

निरुक्त

बृहदेवता

११ ६ सृत्पुर् भारयतीति सतो सृत्तं
भ्यावयतीति वा ।

२ ६० यत तु प्रभ्यावयन् एति
द्योषेण महता सृतम्,
तेन सृत्पुम् इम सन्त
स्तौति सृत्पुर् इति स्वयम् ।

१२ १६ अथ यद् रश्मिपोष पुष्यति
तत् पूषा भवति ।

२ ६३ पुष्यन् हिति पोषयति
प्रणुवन् रश्मिभिस तम,
तेनैनम् अस्तौत पूषेति ।

१२ २५ केशी, केशा रश्मयस्, तैस्
तद्भान् भवति, काशनाद् वा प्रका
शनाद् वा ।

२ ६५ प्रकाश करिणै कुर्वस्
तेनैन केशिन विदुः ।

१२ २७ अथ यद् रश्मिभिर् अभि
प्रकम्पयन् ऐति, तद् वृषाकपिर्
भवति वृषाकम्पन ।

२ ६७ वृषाकपिर् असौ
रश्मिभि कम्पयन् एति
वृषा वषिष्ठ एव स ।

१२ १८ अथ यद् विषितो भवति, तद्
विष्णुर् भवति, विष्णुर् विशतेर् वा
व्यरनोतेर् वा ।

२ ६९ विष्णातेर विशतेर् वा स्याद्,
वेवेहेर् भ्यासिकर्मण,
विष्णुर् निरुच्यते ।

१ ४ अथ निपाता उच्चावचेष्व् अर्थेषु
निपतन्ति अथ उपमार्थेऽपि कर्मो
पसंग्रहाथेऽपि पदपूरणा ।

२ ८९ उच्चावचेषु चार्थेषु
निपाता समुदाहृता
कर्मोपसंग्रहाथे च
छ चिच् चौपम्यकारणात् ।

१ ९ पदपूरणास् ते मिताक्षरेष्व्
अनर्थका कम् ईम् इद् व् इति ।

२ ९० मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु पूरणार्थास्
स्व अनर्थका ।

१ ४ तेषाम् एते चत्वार उपमार्थे
भवन्तीति इवेति नेति चिद्
इति तु इति ।

२ ९१ कम् ईम् इद् व् इति विज्ञेया ।
इव न चिन् तु चत्वार
उपमार्था भवन्ति ते ।

२ २ अथ तद्धितसमासेष्व् एकपर्वसु
च प्रविभज्य निर्द्वायाद् दण्ड्य
पुरुषो दण्डम् अर्हतीति ।

२ १०६ समासेष्व् अपि तद्धिते
प्रविभज्यैव निर्द्वायाद्
दण्डाहो दण्ड्य इत्य् अपि ।

१ १ भावप्रधानम् आख्यातम् ।

१ २ चङ् भावविकारा भवन्तीति
वाच्यार्थेभिर आयत्तेऽस्ति, विपरि
णमते, वर्धते, उपवीयते, विनश्य
तीति ।

२ १२१ भावप्रधानम् आख्यातम्,
पङ्क्तिविकारा भवन्ति ते ;
जन्मास्तिरव परीणामो
वृद्धिर् हान विनाशनम् ।

निरुक्त	बृहदेवता
१२ ४० यत् तु किं चिद् बहुदैवतं, तद् वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते ।	२ १३३ वैश्वदेव वदेत् सर्वं यत् किं चिद् बहुदैवतम् ।
२ २३ सरस्वतीः एतस्य नदीवद् देवतावश्च निगमा भवन्ति ।	२ १३५-१३६ सरस्वतीति द्विविधम् ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता नदीवद् देवतावश्च । तन्नाचार्यस् तु शौनकः नदीवन् निगमा षट् ते ।
८ २२ तान्य एतान्य एकादशग्री- सूक्तानि तेषां वासिष्ठम् आग्नेय वाय्वश्च गार्गसमदम् इति नारायण- सवन्ति, मैधातिथि दैघतमस प्रैवि कम् इत्य् उभयवन्ति, अतोऽन्यानि तनूनपास्वन्ति ।	२ १५४-१५७ तेषां प्रैषगर्तं सूक्तं यच्च च दीर्घतमा जगौ, मैधातिथौ यद् उक्तं च त्रीण्य् एवोभयवन्ति तु । ऋषौ गृत्समदे दश्च वाय्वश्च च यद् उच्यते, नारायणसवद् अग्नेश्च ददर्श च यद् और्वशा । तनूनपाद् अगस्त्यश्च च अमवन्तिश्च च यज् जगौ, विश्वामित्र ऋषिर् यच्च जगौ वै कारयपोऽसित ।
२ १८ उवा कस्माद् ? उक्षतीति सत्या रात्रेर् अपर कालः	३ २-३ देखिये २ २८ के अन्तर्गत ।
८ १० नफेति रात्रिनाम अनक्ति भूतान्य् अवययानेन , अपि वा नक्ता अभ्यक्तवर्णा ।	३ ९ तम उक्षत्य् उवा
८ १३ त्वष्टा तूर्णम् अकृत इति नैकृतास् स्विचेर् वा स्याद् दीप्तिकर्मणस् स्वच्छतेर् वा स्यात् करोतीकर्मणः	३ ९ नक्तानक्तीमां हिमबिन्दुभिः अपि वाभ्यक्तवर्णेति नमपूर्वाञ्चेर् इद् भवेत् ।
८ १४ माध्यमिकस् त्वष्टा हृत् आहृ- मध्यमे च स्थाने समाप्तातोऽग्निर् इति साकपूणि ।	३ १६ स्विधितस् त्वच्छतेर् वा स्यात्, तूर्णम् अकृत एव वा, कर्मसुत्तारणो वेति ।
८ ३ एष हि वज्रानां पाता वा पाक- विता वा ।	३ २५ त्वष्टा रूपविकर्ता च योऽसौ माध्यमिके गणे ।
	३ २६ अयं वज्रानां हि पतिः पाता पाकयतीति वा ।

निरुक्त	बृहदेवता
८ २ को द्रविणोदा ? इन्द्र इति क्रौटुकि स बलधनयोर् दातृतम ।	३ ६१ पार्थिवो द्रविणोदोऽग्नि पुरस्ताद् यस् तु कीर्तित , तम् आहुर् इन्द्र दातृत्वाद् एके तु बलवित्तयो ।
८ २ बलेन मध्यमानो जायते ।	३ ६२ जायते च बलेनाय मध्यस्य ऋषिभिर् अच्वरे ।
८ २ ऋत्विजोऽत्र द्रविणोदस उच्यन्ते हविषो दातारस, ते चैन जनयन्ति 'ऋषीणा पुत्र इत्य अपि निगमो भवति (बलेन मध्यमानो जायते) तस्माद् एनम् आह सहसस पुत्र, सहस मूनु सहसो यदुम् ।	३ ६३-६४ हवींषि द्रविणम् प्राहुर् हविषो यत्र जायते दातारश्च चत्विजस् तेषा, द्रविणोदास् तत स्वयम् । 'ऋषीणा पुत्र' इत्य एषां दृश्यते, 'सहसो यदो' ।
८ २ अयम् एवाग्निर् द्रविणोदा इति शाकपूणिर् आग्नेयेष् एव हि सूक्तेषु द्रविणोदसा प्रवादा भवन्ति ।	३ ६५ द्रविणोदोऽग्निर् एवाय द्रवि णोदास् तदोच्यते आग्नेयेष् एव दृश्यन्ते प्रवादा द्रविणोदस ।
११ १६ ऋभुर विश्वा वाज इति सुध न्वन् आङ्गिरसस्य त्रय पुत्रा बभूवु ।	३ ८३ सुधन्वन आङ्गिरसस्यासन् पुत्रास् त्रय पुरा ऋभुर विश्वा च वाजश् च, दिप्यास् त्वष्टुश् च तेऽभवन् ।
१ ५ अगस्त्य इन्द्राय हविर् निरुप्य मरुद्भ्य सप्रदितां चकार, स इन्द्र एतथ परिदेवयां चक्रे ।	४ ४८-५० स [अगस्त्यस्] तान् अभिजगामाशु, निरुप्येन्द्र हविस् तदा मरुतश् चाभितुष्टाव सूक्तैस् तन न्व् इति च त्रिभि तिरुत तद् धविष् चैन्द्र मरुद्भ्यो दातुम् इष्टति विज्ञायावेक्ष्य तद्भावम् इन्द्रो नेति तम् अब्रवीत् ।
२ २४ विश्वामित्र ऋषि सुदास पैजवनस्य पुरोहितो बभूव स वित्त गृहीत्वा विपाट् छुतुद्रथो स सभेदम् आययौ स विश्वामित्रो नदीस् तुष्टाव 'गाथा भवत्' इति अपि द्विवद् अपि बहुवत् ।	४ १०६ पुरोहित सख इत्यर्थं सुदासा सह यज् ऋषि विपाट्-छुतुद्रथा सम्भेदं शम् हस्य एते उवाच ह । प्रवादास् तत्र दृश्यन्ते द्विवद् बहुवद् एकवत् ।

निरुक्त

- ६ ३१ कस्कती पूषेति सोऽदन्तक-
अदन्तक पूषेति च ब्राह्मणम्
- ७ ४ माहाभाग्याद् देवताया एक
आत्मा बहुधा स्तूयते एकस्यात्म
नोऽप्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति
(तु० की० बृहदेवता १ ७३ के
अन्तर्गत ७ ४ भी) ।
- ९ ४० शुनासीरौ शुनो वायु (शु
एत्य् अन्तरिक्षे), शीर आदित्य
सरणात् ।
- ३ १७ अचिवि भृगु सम्बभूव
अङ्गारेष्वा अङ्गिरा ।
- ५ १३ उर्वर्य् अप्सरा तस्या दर्श
नान् मित्रावरुणयो रेतश् चस्कन्द ।
- ५ १४ सर्वे देवा पुष्करेष्वा आधारयन्त
- २ १७ अहिर् अयनाद् एत्य् अन्त
रिक्षे, अयम् अपीतरोऽहिर् एत
स्माद् एव निहसितोपसर्ग आह-
न्तीति ।
- १० ४४ योऽहि स बुध्नो, बुध्नम्
अन्तरिक्षं तन्निवासात् ।
- ६ ५ शकटं शक्तिनी गावो जालम्
अप्यन्वदन् वनम्,
उदधि पर्वतो राजा
दुमिक्षे नव वृक्षय ।
- १२ १ काव अश्विनौ ? चावापृथिव्याव्
इत्य् एके, अहोरात्राव् इत्य् एके,
सूर्याचन्द्रमसाव् इत्य् एके ।

बृहदेवता

- ४ १३९ कस्कतीति पूषोकोऽदन्तक
स इति ध्रुते ।
- ४ १४३ आयुधं बाहन चापि स्तुतौ
यस्येह हरयते, तम् एव तु च
विद्यात् तस्यात्मा बहुधा हि सः ।
- ५ ८ वायु शुन सूर्य एवात्र सीर
शुनासीरौ वायु-सूर्यौ वदन्ति ।
- ५ ९९ ततोऽचिभ्यो भृगुर् जज्ञे अङ्गा
रेष्वा अङ्गिरा ऋषि
- ५ १४९ तयोर् आदित्ययो सस्त्रे,
दृष्ट्वाप्सरसम् उर्वशीम्
रेतश् चस्कन्द, तत् कुम्भे
न्यपतद् वासतीवरे ।
- ५ १५५ सर्वत्र पुष्कर तत्र विश्वे देवा
अधारयन् ।
- ५ १६६ अहिर् आहति मेवान्, स
एति वा तेषु मध्यम् ।
योऽहि स बुध्नो, बुध्ने हि सोऽन्त
रिक्षेऽभिजायते ।
- ५ १३८ शकटम् शक्तिनी गाव
कृषिर् अप्यन्वदन् वनम्,
समुद्रं पर्वतो राजा
एव जीवामहे वयम् ।
- ७ १२६ सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि,
प्राणापानौ च तौ स्मृतौ,
अहोरात्रौ च ताव एव
स्यातां ताव एव रोदसी ।

निरुक्त

- १२ १४ सूर्यं सतैर् वा सुवतेर् वा
स्वीयतेर् वा ।
- ११ ५ चन्द्रमाश् चायन् द्रमति,
चन्द्रो माता, चान्द्र मानम् अस्येति
वा, चन्द्रश् चन्दते कान्तिकर्मण
चारु द्रमति, चिर द्रमति चमेर्
वा पूर्वम् ।
- २ १० देवापिश् चाष्टिवेण शान्तनुश्
च कौरव्यौ आतरो बभूवतु । म
शान्तनु कनीयान् अभिपेचय चक्रे ।

देवापिस् तप प्रतिपेदे । तत
शान्तनो राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो
न वर्ष । तम् ऊचुर् ब्राह्मणा
अधर्मस् त्वया चरितो ज्येष्ठ भ्रात
रम् अन्तरित्याभिषेचितम् तस्मात्
ते देवो न वर्षतीति । स शान्तनुर्
देवापि शिक्षिष्य राज्येन । तम् उवाच
देवापि पुरोहितस् तेऽसानि याज
यानि च स्वेति । तस्यैतद् वर्षकाम
सूक्तम् ।

बृहदेवता

- ७ १२८ सूर्यं सरति भूतेषु सु वीरयति
तानि वा ।
- ७ १२९ चारु द्रमति वा चायश् चाय
नीयो द्रमत्य उत, चमे पूर्वम्,
समेतानि निमिमीतेऽथ चन्द्रमा ।
- ७ १५५ आष्टिवेणस् तु देवापि कौर
व्यश् चैव शान्तनु
आतरो कुरुषु त्व एतौ
राजपुत्रौ बभूवतु ।
ज्येष्ठस् तयोस् तु देवापि
कनीयाश् चैव शान्तनु
त्वद्दोषी राजपुत्रस् तु
आष्टिवेण सुतोऽभवत् ।
राज्येन छन्दयाम् आसु
प्रजा स्वर्गं गते गुरौ ।
स सुहृतम् इव ध्यात्वा
प्रजास् ता प्रत्यभाषत् ।

- ८ १ न राज्यम् अहम् अहामि,
नृपतिर् वोऽस्तु शान्तनु ।
२ ततोऽभिषिक्ते कौरव्ये
वन देवापिर् आविशत्
न वर्षाय पञ्चदो
राज्ये द्वादश वै समा,
३ ततोऽभ्यगच्छद् देवापि
प्रजामि सह शान्तनु,
प्रसावयाम् आस चैन
तस्मिन् धर्मव्यतिक्रमे ।
४ शिक्षिष्य चैन राज्येन प्रजामि
सहितस् तदा । तम् उवाचाथ
देवापि प्रह्ण तु प्राञ्जलिस्थितम्
न राज्यम् अहम् अहामि त्वद्दोष-
पहतेन्द्रिय याजयिष्यामि ते राज्यम्
वृष्टिकामेज्यया स्वयम् ।

निरुक्त	बृहदेवता
९ २३ मुद्रलो भाम्यश्च ऋशिर्बृषभ च द्रुघण च युक्त्वा सग्रामे व्यवहृत्याजि जिगाय ।	८ १२ आज्ञाव् अमेन भाम्यश्च इन्द्रा- सोमी तु मुद्रल अजयद् बृषभ युक्त्वा ऐन्द्र च द्रुघण रथे ।

३. आर्षानुक्रमणी

आर्षानुक्रमणी	बृहदेवता
१ २ अत्राग्निस् ईळ इत्यादि प्रथम मण्डल प्रति, शतचिनम् तु विजेया ऋषय सुवसिद्धये ।	३ ११६ प्रथमे मण्डले ज्ञेया ऋषयस् तु शतचिन, छुद्रसूक्तमहामूक्ता अन्ये, मध्येषु मध्यमा ।
२ १ मध्यमेष्व ऋषयो ज्ञेया मण्डलेष्व अथ मध्यमा ।	(न० की० सर्वांनुक्रमणी, २ २, भूमिका शतचिन आद्ये मण्डले ऽन्ये छुद्रसूक्तमहामूक्ता मध्यमेषु माध्यमा) ।
१० १ दशम मण्डल प्रति छुद्रसूक्ता महामूक्ता विजेया ऋषयस्त्व इति ।	७ १५५ आष्टिषेणस् तु देवापि ।
१० ४५ अष्टिषेणस् तु देवापि ।	८ ८० प्राजापत्यस्य यत् सूक्तम् 'अपश्य त्वा' प्रजावत ।
१० ९५ प्राजापत्यस्य सूक्तं तद् 'अपश्य त्वा' प्रजावत ।	२ ८२-८४ घोषा गोषा विश्ववारा अपालोपनिषन् निषत्, ब्रह्मजाया जुहुर् नाम, अगस्त्यस्य स्वसाविति, इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी, लोपामुद्रा च वयम्ना च यमी नारी च सश्वती, अरीर् लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् अद्धा मेधा च दक्षिणा रात्री सूर्या च सवित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिता ।

४. अनुवाकानुक्रमणी

अनुवाकानुक्रमणी	बृहदेवता
अनुव २१ गौतमाद् औशिज , कुत्स परुल्लेपाद् ऋषे पर कुरसाद् दीर्घतमा ह्यत् एव तु बाष्कलक क्रम	३ १२५ गौतमाद् औशिज , कुत्स परुल्लेपाद् ऋषे पर , कुरसाद् दीर्घतमा शश्वत् ते द्वे एवम् अधीयते ।

५ ऋग्विधान

ऋग्विधान	बृहदेवता
१ १, १ नमस्कृत्वा मन्त्रहग्न्य	१ १ मन्त्रहग्न्यो नमस्कृत्वा
१ १, २ समान्नायानुपूर्वश	समान्नायानुपूर्वश
३ ८, ६ दशाक्षर तु शान्त्यर्थम्	७ २१ दशाक्षर तु शान्त्यर्थम् ।
३ २२, ३ सूर्यायै भाववृत्त तु	७ १२३ सूर्यायै भाववृत्त तु ।
४ १, ५ बृहस्पते प्रतीत्य् एतद्	८ ७ बृहस्पते प्रतीत्य् एतद्
४ २४, २ यथाश्वमेध ऋतुराट् सर्व पापापनोदन , तथाघमर्षण सूक्त सर्वपापापनोदनम् ।	८ ९२-९३ यथाश्वमेध ऋतुराट् सर्व- रिप्रप्रणोदन तथाघमर्षणं ब्रह्म सर्व रिप्रप्रणोदनम् ।

६. सर्वानुक्रमणी

सर्वानुक्रमणी	बृहदेवता
१ ३ एता प्रउगदेवता	२ १३५ एता प्रउगदेवता
१ ४ सुरूपकृन्तु (दश) ऐन्द्रम्	२ १३९ सुरूपकृन्तु इत्य् ऐन्द्रम् ।
१ १२ पादो द्व्यग्निदैवतो निर्मथ्याह वनीयौ	२ १४५ पादस् तन्न द्विदैवत निर्म थ्याहवनीयाथौ ।
१ १३ इति प्रत्यञ्च देवता	२ १४६ प्रत्यञ्च वास् तु देवता ।
१ १४ ऐभिर् वैश्वदेवम्	३ ३३ आग्नेयं सूक्तम् ऐभिर् यद् वैश्वदेवम् ।

सर्वानुक्रमणी

- १ १८ चतुर्थ्या इन्द्रश्च च सोमश्च पञ्चम्या दक्षिणाश्च ।
- १ २३ अम्या अप्यर्धा आग्नेयी ।
- १ २४ आदौ काट्याग्नेय्यौ सावित्रस्त्वच अस्याम्या भागी वा ।
- १ ४० उत् तिष्ठ ब्राह्मणस्पत्यम् ।
- १ ४१ य रक्षन्ति नव वरुणमित्र अर्घ्यणा मध्ये तृच आदिष्येभ्य ।
- १ ५० अम्यस्त्वचो रोगन्न ।
- १ ९१ त्व सोम सौम्यम् ।
- १ ९२ एता उत्या उषस्य तृचोऽम्य आश्विन ।
- १ ९४ पूर्वो देवास्त्रय पादा देवा
- १ ९५ द्वे औषसाय वाग्रये ।
- १ ९६ स प्रजया द्रविणोदसे ।
- १ ९८ वैश्वानरस्य वैश्वानरीयम् ।
- १ ९७ अप नो शुचये ।
- १ ९९ जातवेदसे जातवेदस्यम्, एत दादीन्व् एकभूषांसि सूक्तसहस्रम् एतत् करयपार्श्वम् ।
- १ १०८ य इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्र तु ।
- १ ११० तत आर्भवं तु ।
- १ ११४-११५ इमा रौद्र चित्र सौर्यम् ।
- १ १२० अम्या दुःस्वप्ननाशिनी ।
- १ १४२ समिद्ध आग्निथ अन्वैग्नी ।
- १ १६४ अक्षस्तव त्व् एतत्

बृहदेवता

- ३ ६८ चतुर्थ्या सोम इन्द्रश्च पञ्चम्या दक्षिणाधिका ।
- ३ ९७ अप्यर्धा अम्या अग्निदेवता ।
- ३ ९८ काट्य आद्या आग्नेय्य् अक्, सवितुस्त्वच 'मगभक्त्य' भागी वा ।
- ३ १०७ उत् तिष्ठ ब्राह्मणस्पत्य य रक्षन्ति त्रयस्त्वचा वरुण अर्घ्यम मित्राणां मध्य आदिष्यदेवत ।
- ३ ११३ रोगन्नस्त्वच उत्तम ।
- ३ १२४ त्व सोम सौम्यम्, औषसम् एता उ त्यास्त्वचोऽश्विनो ।
- ३ १२६ पूर्वो देवा इत्य् अचो । देवदेवास्त्रय पादा
- ३ १२९ द्वे विरूपे सूक्तम् औषसाग्रये स प्रजयेति द्रविणोदसेऽग्रये । वैश्वानरस्येति वैश्वानरीयम्, अस्मात् पूर्व शुचयेऽग्रये पुन ।
- ३ १३० जातवेदस्य सूक्तसहस्रम् एके ऐन्द्रात् पूर्व करयपार्श्व वदन्ति । जातवेदसे सूक्तम् आद्य तु तेषाम् एकभुयस्त्व अन्वये शाकपुणिः ।
- ३ १३१ त्रीण्य् ऐन्द्राग्रे य इन्द्राग्नी ततम् इत्य् आर्भवे परे ।
- ३ १३९ इमा रौद्र, पर सौर्य चित्रम् ।
- ३ १६९ अम्या दुःस्वप्ननाशिनी ।
- ४ १६ समिद्ध आग्निथोऽन्वैग्नी ।
- ४ ७३ सूक्तम् अक्षस्तव त्व् एतत् ।

सर्वानुक्रमणी

- १ १६४ गौरीर् इति एतदन्त वैश्व
देवम् ।
- १ १६४ इन्द्र मित्र सौर्यौ वान्स्या
सरस्वते सूर्याय वा ।
- १ १६५ अयुजो मरुताम् ।
- १ १७९ ब्रह्मचार्यन्त्ये अपश्यत् ।
- १ १९० अनवाण बार्हस्पत्यम् ।
- २ २९ एतन्नता वैश्वदेवम् ।
- २ ३२ द्वे द्वे राका-सिनीवास्यो ।
- ३ २, ४ वश्वनरीय तु समित्समिद्
आप्रिय ।
- ३ २० अग्निम् उपसम् (आद्यान्त्ये)
वश्वदेव्यौ ।
- ३ ५३ अभिशापास् तावत्सिद्धेपिण्य,
न वत्सिष्टा शृण्वन्ति ।
- ३ ५८ ५९, ६० धेनुर् मित्र
इहेह व ।
- ४ १३ लिङ्गोक्तदैवत त्व् एके ।
- ४ १५ ऋषिर् बोधद् इत्य् आभ्यां
सोमश् साहदेव्यम् अभ्यवदत् ।
- ४ १५ पराभ्याम् अस्याश्विनौ ।
- ४ ५३, ५५-५७ तत् सावित्र तु
को वैश्वदेवम् मही द्यावापृथि
वाय, चेत्रस्य तिल चैत्रपत्या ।
- ४ ५८ सौर्यं वाप वा गन्ध वा घृत
स्तुतिर् वा ।

बृहद्देवता

- ४ ४२ गौरीरन्त वैश्वदेवम् ।
- ४ ४२ इन्द्र मित्रमित्रे सौर्यौ,
सौरी वान्स्या सरस्वते ।
- ४ ४४ मरुताम् अयुज ।
- ४ ५९ ब्रह्मचार्युत्तमे जगौ ।
- ४ ६३ बृहस्पतेर् अनवाणम् ।
- ४ ८४ एतन्नता वैश्वदेवम् ।
- ४ ८७ द्वे द्वे राका-सिनीवास्यो ।
- ४ ९६ वैश्वनरीये समित् समिद् आप्रिय ।
- ४ १०४ अग्निम् उपस वैश्वदेवी ।
- ४ ११७, ११८, ११९ वत्सिष्टेपिण्य
स्मृता, अभिशापा इति स्मृता,
वत्सिष्टास् ता न शृण्वन्ति ।
- ४ १२२ धेनुर् मित्र इहेह व
- ४ १२९ लिङ्गोक्तदैवते सूक्ते, एके ।
- ४ १२९ ऋषिर् बोधद् इति द्वाभ्यां
स्तौति सोमकम् एव तु ।
- ४ १३० पराभ्याम् अश्विनौ स्तुतौ,
- ५ ७ : तत् सावित्रे द्वे तु, को वैश्वदेवम्,
५ ७ मही द्यावापृथिवीय परं तु यत्,
५ ७ चेत्रस्येति तिलस् तु चैत्रपत्या ।
- ५ ११ अपां स्तुतिं वा यदि वा घृत-
स्तुतिं गन्धम् एके सौर्यं एतद्
बद्धम् ।

सर्वानुक्रमणी

बृहदेवता

५ २७ ' नात्मात्मने दद्यात् ।	५ ३१ आत्मा हि नात्मने दद्यात्
५ ६१ वेददक्षी तरन्त पुरुमीळ्हौ ।	५ ६२ तरन्त पुरुमीळ्हौ तु राजानौ वेददक्षी ऋषी ।
५ ८५ प्र सन्नाजे वारुणम् ।	५ ८९ वारुण तु प्र सन्नाजे इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्रम् उत्तरम् ।
५ ८६ इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्रम् ।	५ ९० विष्णुन्यङ्ग पर प्रेति मारुतम् ।
५ ८७ प्र वो मारुतम् ।	५ ११४ अन्त्या धावाभूम्योर् वा पृथेर् वा प्रभये वा ।
६ ४८ अन्त्या धावाभूम्योर् वा पृथेर् वा	५ ११४ अन्त्या धुम्बो कीर्तना प्रभये वा ।
६ ६८ श्रुष्टी वाम ऐन्द्रावरुणम् ।	५ १२१ श्रुष्टीति चैन्द्रावरुणम् ।
६ ६९ स वाम ऐन्द्रावेष्णवम् ।	५ १२१ सम् ऐन्द्रावेष्णव परम् ।
१ १६६ मित्रावरुणयोर् दीक्षितयोर् उर्वशीम् अप्सरस इङ्गा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत् ।	५ १४९ तयार् आदित्यो सस्त्रे ह्यू प्सरसम् उर्वशीं रेतश् चस्कन्द, तत् कुम्भे न्यपतत् वासतीवरे ।
७ ६० यद् अद्य सौर्य आद्या ।	६ ५ यन् अद्यैकात् सूर्यस् तिस्र उद वेनात् अधपञ्चमा सौर्य ।
७ ६२ उन् सूर्य तिस्र सौर्य ।	
७ ६३ उद् वेतीति चार्धपञ्चमा ।	
७ ६६ चतुर्थाद्या दशादित्यास, तिस्र सौर्य ।	६ ८ यद् अद्य सूर इत्य आद्या दशा दित्या ऋच स्मृता ।
७ ९९ उरुम् इत्य ऐन्द्रवक् च तिस्र ।	६ ९ स्तुता उद् उ रयद् इत्य पुतास तिस्र सौर्यस् तत परा ।
७ ९७ यज्ञे ऐन्द्रवादि अन्वैन्द्री च तृतीयानवम्याव ऐन्द्राग्राहणस्पत्ये ।	६ २५ उरुम् ऐन्द्रवक् च तिस्र स्यु ६ २६ यज्ञ आघेन्द्रम् पुवास्तौत्, अन्त्या त्व इन्द्रागृहस्पती । ६ २७ तृतीया नवमी चैव स्तौतीन्द्राग्राहणस्पती ।
७ १०४ ऐन्द्रासोम राक्षोऽग्रम् ।	६ २७ ऐन्द्रासोम परं तु यत् । ६ २८ ऋपिर् ददर्श राक्षोऽग्रम् ।
७ १०४ प्र वर्तयेति पञ्चैन्द्रय, मा नो रक्ष इत्य ऋषेर् आत्मन आशी ।	६ ३१ प्र वर्तयेति पञ्चैन्द्रय ५ ३१ ऋषिस् त्व आशिपम् आशास्ते ५ ३१ मा नो रक्ष इति त्व ऋचि ।

सर्वानुक्रमणी	बृहदेवता
८ ५ : अम्याः पञ्चार्धर्षाश्चैद्यस्य कशोर् दानस्तुति ।	६ ४५ इत्थं अर्धर्षो दृक्चक्षुः चान्मभः कशोर् दानस्तुति स्मृता ।
८ ४६ प्रगाथौ च वायव्यौ ।	६ ८० आ न प्रगाथौ वायव्यौ ।
८ ४७ अम्याः पञ्चोपसेऽपि ।	६ ८३ अम्याः पञ्चोपसेऽपि स्यु
८ ६८ ऋषाश्चमेधयोर् दानस्तुति ।	६ ९२ ऋषाश्चमेधयोर् अन्न पञ्च दान स्तुति परा ।
८ ७२ हविषां स्तुतिर् वा ।	६ ९३ अथवा सूक्तम् उत्तरं हविषां स्तुति ।
८ १०० अथ ते नेमो भागव ।	६ ११७ नेमोऽयम् इति भागव ।
८ १०१ वायव्ये सौर्यो उपस्था ।	६ १२६ वायव्ये सौर्ये उपस्था ।
९ ६७ सावित्र्य् आग्निसावित्री वशन्नेत्री	६ १३२ उभाम्याम् इति सावित्री आग्निसावित्र्य् ऋग् उत्तरा ।
	६ १३३ पुनन्तु मा वैश्वदेवी ।
१० १७ द्वे सरण्यूदेवते ।	७ ७ सरण्यूदेवत द्वे ।
१० १९ अग्नीषोमीयो द्वितीयोऽर्धर्ष ।	७ २० । अर्धर्षं प्रथमायास् तु अग्नीषोमीय उत्तर ।
१० २५, २६ भद्रम् सौम्य, प्र हि पौष्णम् ।	७ २३ भद्र सौम्य, प्र हि पौष्णम् ।
१० ३३ द्वे कुरुश्रवणस्य त्रासदस्य वस्य दानस्तुति मृते मित्रातिथौ राज्ञि तस्मिन्नेहाद् ऋषिर् । उपमश्रवस पुत्रम् अस्य व्यशोकयत्	७ ३५ कुरु श्रवणम् अर्चत परे द्वे त्रास दस्यवम् । मृते मित्रातिथौ राज्ञि तज्जपातम् ऋषि परे । ७ ३६ उपमश्रवस 'वस्य' चतुर्भि स व्यशोकयत् ।
१० ४७ विकुण्ठा नामासुरी, इन्द्रतुल्य पुत्रम् इच्छन्ती, महत् तपस् तेपे, तस्या स्वयम् एवेन्द्र पुत्रो जज्ञे । स सप्तगुस्तुतिसहस्र आत्मानम् उत्तरंस् त्रिभिस् तुष्टाव ।	७ ४९ प्राजापत्यासुरी त्व् आसीद् विकुण्ठानाम नामत, सेच्छन्तीन्द्रसम् पुत्र तेपेऽथसुमहत् तप । ७ ५० तस्या येन्द्र स्वय जज्ञे । ७ ५७ सप्तगुस्तुतिहविष आत्मानम् एव तुष्टाव अह भुवम् इति त्रिभि ।

सर्वाङ्गकमणी

- १० ५० : वषट्कारेण वृषणेभु आत्तुषु
शौचीकोऽग्निर् अप प्रविरय ।
- १० ५६ द्वैपदे त्व अग्निमण्डले ।
- १० ५६ ऐषवाको राजासमाति ।
- १० ५६ बन्धादीन् पुरोहितांस्
त्यक्त्वा ।
- १० ५६ सन्धौ मायाविनौ श्रेष्ठतमौ
मत्वा पुरोदधे ।
- १० ५६ आतरस्त्रय मा प्र गामेति
स्वस्थयन जप्त्वा यत् ते यमम्
इति मनआवर्तन जेषु ।
- १० ६० आ जनम् इति चतसृभिर्
असमातिम् अस्तुवन् ।
- १० ६० अगस्त्यस्य स्वसा मातेषा
राजानम् अस्तौत् (तु० की०
आर्षाङ्गकमणी १० २४) ।
- १० ६० सुबन्धोर् जीवम् आह्वयन् ।
- १० ६० तम् अन्धया लब्धसज्जम्
अस्पृशन् ।
- १० ६२ षळ अङ्गिरसां स्तुति ।
- १० ७१ बृहस्पतिर् ज्ञान तुष्टाव ।
- १० ८१ य इमाः वैश्वकर्मणम् ।
- १० ९८ अर्हियेनो देवापि (तु० की०
आर्षाङ्गकमणी १० ४५) ।

बृहदेवता

- ७ ६१ वषट्कारेण वृषणेभु आत्तुषु ।
- ७ ६२ सौचीकोऽग्निर् इति श्रुति
- ७ ६२ स प्राविशद् अपकम्प ।
- ७ ६२ ऋतून् अपो वनस्पतीन् ।
- ७ ८६ द्वैपदा वेऽग्निमण्डले ।
- ७ ८५ राजासमातिर् ऐषवाकु ।
- ७ ८५ पुरोहितान् ।
- ७ ८६ म्युदस्य बन्धु प्रभृतीन् ।
- ७ ८६ ततो मायाविनौ द्विजौ ।
- ७ ८७ असमाति पुरोऽध्वत
वरिष्ठौ तौ हि मन्मते ।
- ७ ८९ आतरस्त्रय ।
- ७ ९० जेषु स्वस्थयन सर्वे मेति
गौपायना सह , मन-अवर्तन तस्य
सूक्त यद् इति तेऽम्बधु ।
- ७ ९६ अग्निभर् ऐति चतसृभिस्
तत् ऐषवाकुम् अस्तुवन् ।
- ७ ९७ अगस्त्यस्येति माता च
तेषां तुष्टाव त नृपम् ।
- ७ १०० सुबन्धोर् असुम् आह्वयन् ।
- ७ १०२ लब्धासु चायन् इत्य अस्यां
पृथक् पाणिभिर् अस्पृशन् ।
- ७ १०२ षळ अङ्गिरसां स्तुति ।
- ७ १०९ तज् ज्ञानम् अभितुष्टाव
सूक्तेनाथ बृहस्पति ।
- ७ ११७ य इमा वैश्वकर्मणे ।
- ७ १५५ अर्हियेनस् तु देवापि

सर्वानुक्रमणी	बृहदेवता
१० १०१ उद्बुध्यन् ऋत्विक् स्तुति ।	८ १० उद् इत्य ऋत्विक्स्तुति परम् ।
१० १०३ आशु ऐन्द्रोऽप्रतिरथश्चतुर्थी बार्हस्पत्या ।	८ १३ ऐन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ । ८ १४ चतुर्थी बार्हस्पत्या स्यात् ।
१० १०७ दक्षिणा वा प्राजापत्या ।	८ २२ प्राजापत्याथ दक्षिणा । (आर्षा० १० ५० 'प्राजापत्या दक्षिणा वा')
१० १०९ तेऽवदन् जुहूर् ब्रह्मजाया वैश्वदेवम् ।	८ ३६ तेऽवदन् वैश्वदेव तु ब्रह्मजाया जुहूर् जगौ ।
१० १२४ अग्निवरुणसोमानाम् ।	८ ४१ वरुणेन्द्राग्निसोमानाम् ।
१० १३२ ईजान मैत्रावरुणम् ।	८ ४७ मैत्रावरुणम् ईजानम् ।
१० १५५ अरायि अलक्ष्माग्नम् ।	८ ६० यद् अरायीत्य् अलक्ष्मीग्नम् ।
१० १५७ इमा नु क वैश्वदेवम् ।	८ ६१ वैश्वदेवम् इमा नु कम् ।
१० १६४ अपेहि तु स्वप्नम् ।	८ ६७ दुःस्वप्नम् अपेहीति ।
१० १६६ ऋषभम् सपत्नम् ।	८ ६९ ऋषभ मा सपत्नम् ।
१० १७०, १७१ विभ्राट् सौर्यं त्व त्वम् ।	८ ७३ विभ्राट् सौर्यं त्व त्वम् ।
सर्वानुक्रमणी, भूमिका २ ७ अर्थेप्सव ऋषयो देवताश् छन्दोभिर् अभ्यधावन् ।	८ १३० अथप्सव सत्त्वं ऋषयश् छन्दोभिर् देवता पुरा अभ्यधावन् ।

७. कात्यायन : वाजसनेयि संहिता की सर्वानुक्रमणी

वासं० सर्वानुक्रमणी

- ४ १० सर्वा ऋच आग्नेय ।
सामानि सौराणि
सर्वाणि ब्राह्मणानि च
देवताम् अविज्ञाय यो जुहोति
देवतास्तस्य हविर न जुषन्ते ।
सन्धस्य मनसि देवता हविर हूयते ।

स्वाध्यायम् अपि योऽधीते मन्त्र
देवतज्ञः, सोऽमुष्मिन् लोके देवैर्
अपीक्यते ।

तस्माच्च च देवता वेद्या
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नत
मन्त्राणां देवताज्ञानम्
मन्त्रार्थम् अभिगच्छति ।

न हि कश्चिद् अविज्ञाय
याथातथ्येन देवता
श्रौतानां कर्मणां विप्र
स्मृतानां चाक्षते फलम् ।

बृहदेवता

- ८ ११० समस्ता ऋच आग्नेय्यो
वायव्यानि यजूषि च;
सौर्याणि चैव सामानि
सर्वाणि ब्राह्मणानि च ।
८ १३१ जुषन्ते देवतास्तस्य
हविर नादेवताषिद् ।
८ १३२ अविज्ञानप्रदिष्ट हि हविर
नेहेत देवतम् । तस्मान् मनसि
सन्धस्य देवता जुहुयाद् ध्रुवि ।

७ १३३ स्वाध्यायम् अपि योऽधीते
मन्त्रदेवतविष्णुषि । स सन्नसद्
इव स्वर्गे सन्नसन्निर अपीक्यते ।

१ २ वेदितव्य देवत हि
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नत
देवतज्ञो हि मन्त्राणां
तदर्थम् अवगच्छति ।

१ ४ न हि कश्चिद् अविज्ञाय
याथातथ्येन देवत
लौक्यानां वैदिकानां वा
कर्मणां फलम् अभूते ।

८. भगवद्गीता

भगवद्गीता

- ८ १७ सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् यद्
ब्रह्मणो विदुः ।
(पटुराशिष्य, 'सहस्रयुगपर्य
न्तम् अहर् न ब्रह्म उच्यते) ।

बृहदेवता

- ८ १८ सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् ब्राह्म
स राध्यते ।

९. हेमचन्द्र : अभिधानचिन्तामणि

अभिधानचिन्तामणि

बृहदेवता

बौटलिङ्ग सस्करण का अन्तिम
श्लोक ।

इयन्त इति संख्यान निपातानां न
विद्यते प्रयोजनवशाद् एते
निपात्यन्ते पदे पदे ।

२ १३ इयन्त इति संख्यान निपाता-
नां न विद्यते वशाद् प्रकरमस्मैते
निपात्यन्ते पदे पदे ।

परिशिष्ट-७

संस्कृत शब्दों और नामों की अनुक्रमणिका

अंश, ४ ८२, ५ १४७, ७ ११४

अशुमती, ६ ११०

अस, ४ २२

अकर्मक, १ ३१

अकस्मात्, ४ १५

अक्ष, १ ११०, ७ ३७

अक्षय, ६ ५१, ७ ६०

अक्षर १ ६२

अक्ष सस्तति, १ ५२

अक्ष-स्तुति, ७ ३६

अखिल, ६ १२, ८६, १२४

अगस्त्य, २ ८२, १३१, १५६, ३ ५७,
१२८, ४ ४७, ५१ ५३, ५८, ६१,
६४, ५ १५०, १५२

अग्रायी, १ ११२, २ ७५ ३ ६, ९२

अग्नि, १ ५, ६९, ८२, ८६, ९७, ११८,
१२६, २ २, २२, २४, २७, ३७
१२४, ३ ३७, ८६, (तापस्) ३ ५८,
(त्रय) ६ १६०

अग्नि देवत ३ ९७

अग्नि देवस्थ, २ १४५

अग्नि धान, ८ ६८

अग्नि भूत, १ ६४, ६७

अग्नि त्रायु विपश्चत्, बहु०, ४ २७

अग्नि सूर्य अनिल, बहु०, ६ ५०

अग्नि इन्द्र-सूर्य, बहु०, २ ७०

अग्नीषोमीय, ७ २०

अग्नी, २ २४

अग्ने-स्वर, ६ ५२

अग्नेय, २ ७७

अग्ने-मर्दन, ८ ९१, ८ ९३

अघ्न्या, १ १२८, २ ७८, ८ १२१

अक्ष, ३ १३५, ४ ११६, ७ ७७

अङ्ग-देव, ४ २४

अङ्ग राज-गृह, ४ २४

अङ्गार, ५ ९९, १०२

अङ्गिरस्, ३ ११५ ५ ९९, १०३, १
१२७, ४ ९८ ६ १५६, १५७, ७
१०२, ८ १२६

अज एकपाद, २ ११

अज, ४ १४१

अजायिक, ३ १४७, ५ ६४

अजि, अज धातु, ३ ९

अज अनन्ता, ३ ९

अजुन कर्मन् ७ १२

अजुन्ति-सूक्त, ३ २८

अनिष्ठ, २ ३२

अणु, ८ १४०

अण्ड-ज, ८ ११५

अतिक्रम, ५ ७०

अतिगम, २ ४९, ५०, ५५

अतिछन्दस, २ १४, ८ १०८

अतिरिक्त, २ १००

अतिस्वार, ८ ११३, ११६

अतिस्वाय, ८ १२०

अत्यवभुत, (कर्मन्) ६ २४

अत्यय, २ ६४

अत्रि, २ ३६, १२९, १५६, ५ २९, ३१,
५०, ६४, ६५, १०१, बहु०, ४ ९८,
५ १२ १३, २८, ७ ९८ (=
मण्डल ५)

अत्रि-पुत्र, ५ ५२, ५७

अत्रि-मण्डल, ७ ८६

अत्रि संस्तव, ६ ७२

अत्रि - गा ६ ९९

३२८

अधर्षन्, २ १२, ३ १८, १२१; बहु०,
अधर्षाण १ १२५, ६ १५६, ८
१२५
अधर्षाङ्गिरस = अधर्ष-वेद, २ १४३, बहु०
(मन्त्रा) ५. १६
अध्वस्तक, ४ १३९
अध्वान, ५ ६५
अध्वस्, (दिव्य), असौ (अग्नि), ५
४८, ७ १४२, अमुम् (लोकम्)
३ १३
अदिति, १ ११४, २ ४५ ७६, ८२, ३
५७, १२३, ४ ९८, ५ १४४, १४६,
७ १०४, ११४, ८ १२५, अदिते
सुता ६ ८९
अधुर्वल, ५. ५७
अद्वय, ५ १५६
अद्वैत भाष्य, ४ ६४
अदेवता-विद्, ८ १३१
अदभुत, ४ ५०
अद्यन्तन, ४ ५०
अधर्षणीय, ५ १२७
अधि, ३ १३
अधिय, बहु० (त्रय), ४ ४१
अधिवासस्, ४ ३०
अधीयान, २ २१, ६ १४२
अध्ययन, २ १४२
अध्यर्ष, ३ ९७
अध्यापयत्, २ २१
अध्यापित, ५. ५३
अध्येषण, ५ ३०
अध्वन्, ३ १४२
अध्वर, २ २४, ३ २, ३, ६२, ७ ७३
अध्वर्यु, ७ ७०
अध्वर्यु, ३ ५०, ७९, ४ ११६
अमन्त्र, २ १५
अमपायिन्, ६ ५५
अमर्ष, ६ ११३
अमर्षक, २ ९१

अमर्ष-विद्, ७ १११
अमल्पवास, २ ९२
अमलशाम, २ १०८, ११५
अमलशाली, ६ १०४
अमस्, ४ ११६
अमस्यु, ६ १४२
अनागत, ७ ३०
अनागास्, ४ ६०
अनाधार, ८ १३९
अनाष्टि, ६ १३७
अनियुक्त, ४ २८
अनिरुक्त, ७ १६
अनिरुक्त सूक्तादि, ८ १५
अनिल, ७ २८, एक ऋषि, ८ ७१
अनु, २ ९५
अनुकम्पार्थे, ८ ८५
अनुकीर्तयत्, २ २१
अनुकीर्तित, ४ २८
अनुक्रम, १ ७९, ८५
अनुक्रमतस्, १ ४६
अनुक्रान्त, ८ १२९
अनुग, ३ १३
अनुगच्छत्, ३ १३२
अनुज्ञा, ६ ३५
अनुपदिष्ट (कर्मन्), ३ ४९
अनुपानीया, ५ ११०
अनुपूर्वशस्, ५. १७३, ८ ४१
अनुमत, ५ ६३
अनुमति, १ १२९, २ ७८, ४ ८८,
८ ७०
अनुमन्त्रण, ५ ८६, ८ ६६, ७३, ८७
अनुयाज, ७ ७४, ८ १०३
अनुयाग, १ ३६५२
अनुराग, ७ १४८
अनुवाक, ६ १४६
अनुवासन, ७ १३४
अनुष्टुप्, १ ११५, ८ १०५
अनुषि, ५ ५८, ५९, ८ १२९

अनेक, २ ११२
 अनेकधा, ३ ४४
 अनेकार्थ, २ १०८
 अनेकार्थक, २ ९१
 अन्त, ५ १०१, ३ ४९, ५२, ६ १०१,
 १४४
 अन्त परिधि, ७ ९८
 अन्त काल, २ ५३
 अन्तनस्, ८ २१
 अन्तर, २ ९५
 अन्तर, ६ १२३
 अन्तरिक्ष, २ ३३, ५८, ५ १६६
 अन्तारस, २ ४२
 अन्तिक, ६ १२२
 अन्त्य (कर्मन्), ७ १०, (मण्डल)
 ३ ११६
 अन्त्य-कर्मन्, ७ १५
 अन्त्र, ४ १२६, ७ ७९
 अन्धता, ४ १५
 अक्ष, १ ८४, २ ४०, ३ ५, ८ ४०
 अक्ष काम, ३ ३२
 अक्षाद, ६ १५१
 अन्वधा, ८ ०२९
 अन्य देवस्य, २ १२६
 अन्य देश, ५ १६
 अन्य-देवत, १ १८
 अन्योन्य-योमि ता, १ ७१
 अन्विष्यन्ती, ८ २७
 अप, बहु०, आप, १ ८३, ११२; २ ७३,
 अप २ ५९, ७ ६२, अपाम् २
 ५५, ५६, ३ ९७; ४ ६३, ५ १७५,
 ६ १००, १०१, ७ ९, २०, ३३
 अर्द्ध ३ २४, अप्सु ५ १५४
 अपक्रमण, ५ १७
 अपक्रम्य, ४ १०९, ७ ६२
 अपक्रान्त, १० ३
 अपनुत्ति, ३ ११४; ६, १५३
 अपबोधन, ७ ९१

अपर, ८ ७५
 अपराध, ५ ८२, ८३
 अपरयत्, -स्ती, ५ ७४
 अपहत, ६ १०६
 अपहृत्य, ५ १२
 अपहृत्य, ७ १८
 अपहृत्य, १ ३८, ५६, ५७
 अपाक्रिया, ७ ६०
 अपा नपात्, १ १२४, ७ ५३; ८ १३७
 अपाला, २ ८२, ६ ९९
 अपूप, ६ १०३
 अप्रगृह्य, ४ १४४
 अप्रतिरथ (येन्द्र), ८ १३
 अप्राप्य, ७ १५२
 अप्वा, १ ११२, २ ७४, ८ १३
 अप्सरस्, ५ १४९, ७ १४७, बहु० १
 २१ ७ ७१, ८ ११४
 अबहुयत्, ३ ८२
 अय देवत, ७ १०
 अय देवत, ८ ५०
 अभि, ७ ८७, ९७
 अभिघात, ७ ८८
 अभिचारक, -रिका, ४ ११८
 अभितप्य, ६ १२१
 अभिघान, ३ ७७; ५ १५४; ७ ९५
 अभिघातक, ५ ९४, ९५
 अभिनिर्दिश्य, ७ १०१
 अभिमान, ६ ६०
 अभिरूप, ७ १५१
 अभिज्ञाप, १ ५८, ४ ११८
 अभिविक्त (राजन्), ८ २, ७३
 अभिष्ट, १ ३९
 अभिसमित, १ ४४
 अभिसम्बन्ध, ६ ९६
 अभिहत, ७ ८४
 अभीप्सत्, -स्ती, ६ १५४
 अभीष्ट, १ ११०
 अभ्यावतिन्, ५ १२४, १३८, १३९

अभ्यूह, २ १२२
 अभ्युत्थ, ४ १२२
 अभति, ४ ११४
 अमितौजस्, ७ ५५
 अमु, देखिये अदस्
 अमुतस्, २ ९, ३ १ ५ २
 अमुत्र, २ १९
 अमृत, १ ८१
 अमृत, ३ ८५, ७ १०९, १, १४०
 अमृतत्व, ३ ८८
 अम्बर, २ ३९
 अम्बर-गभ ओघ, २ ५६
 अम्बर ज, २ ३६
 अम्बा, १ ५८
 अयम, देखिये इवम्
 अयुज्, ४ ४४
 अयुज, ८ २६
 अयुत, ५ ३०, ६ ६१
 अयोमुखी, ५ १२२
 अरण्य, ५ ६७
 अरण्य गोक्षर, ३ १८२
 अरण्यानी, १ ११२ २ ७४, ८ ५
 अरिष्टनेमि, २ ५७
 अरिष्टि, ४ ७२, ७ ७३
 अरि सेना, ६ ११२
 अरुण, ७ १४५
 अरुण, -णी (गाव) ४ १४१
 √अच = अक्षति ३ ५१, ७ २५, १२३,
 १२४, १४६ ८ १५ अक्षत ७ ३५
 अक्षन्ति, ३ ४८, आर्चन्, ८ ५४
 आक्षयत्, ४ १
 अक्षनानस्, ५ ५१, ५२ ५३, ७५
 अक्षि, १ ९४, ५ ९
 अथ १ ६, २ ९९, १०२, ११४ ११५
 ११७, ११८, ४ १ ६ १०१, ७
 १४३ अथाय ४ १३०, ७ १०४
 अथ ६ १००
 अथ तस्व ज्ञ, १ ११८

अर्थतस्, १ १०
 अथय, १ ९
 अर्थ वश, २ ९९
 अथ वाक्, ३ ५३, १०४
 अर्थ-विवेक, २ ११८
 अर्थ-सञ्चार, ४ ५१
 अथ सूक्त, १ १५
 अथिन्, ३ ९६
 अथप्सु, ८ १३७
 अध, ३ १२६, अध (= मध्ये) ४ १३४
 अध पञ्चम, ६ ५
 अधच २ ५, १७, १३३, १४०, ३ ७८,
 ११२, ११४, १२७, ४ ६ ५ ४२
 अधाष्टिम, ३ ९७
 अनुद, ७ १४६
 अयमन् ५ १४७ ६ ८ ७ ११४ ८
 १२७
 अवाञ्छ, २ ९
 √अह, ५ ५९, ११९ ६ ६१, ६२ ७
 १३४ ८ १ ५
 अलक्ष्मी स्त्र, ८ ६०
 अलक्ष्य अपनुद, ५ ९१
 अक्षपशस्, ४ १४३
 अक्षप-स्तव, ४ ४३
 अवका, ७ ७९
 अवत्सार, २ १२९, ३ ५७
 अवमुक्ष्य, ५ ७२
 अवयव, १ ७४ २ १०३
 अविज्ञात, २ ११४
 अविज्ञान, ७ २
 आविज्ञान मन्त्र ८ १३२
 अविदित्वा ८ १२६
 अविशेष्य १ २०
 अवक्ष ८ २०
 अव्यक्त-वर्ण, ३ २
 अकण्ठ, १ ४५, ६, ३०
 अव्ययीभाव, २ १०५
 √अक्ष अश्रुते, ३ १६, ७२, ६ १४६,

अरजुवाले, ७. १२७
 अरलीक, ६ १५३
 अश्व, १ ८४, १०९, ४ २७, ५. १२३,
 १३१, बह्नु ४ १४०, १४२
 १ अश्वमेध, ८ ९२
 २ अश्वमेध, ५. १३, ३१, ८३, ६ ९२
 अश्व-रश्मि, ५ १४
 अश्व रूपाणी, ७ ३
 अश्व-नात, ५ ८०
 अश्व सस्तुति, ३ ५१
 अश्व, ७ १
 अश्वजनी, १ १११
 अश्विन, १ ८२, २ ८, ३ २०, २२, ८६,
 ९१, ९६ ४ ९८, ७ ६
 अश्वोष्ट्र, ६ ५२
 अश्व्य, ६ ७९
 अष्टक (सूक्त), ३ ९०, ७ ११८
 अष्टक, एक ऋषि का नाम, ८ १६
 अष्ट-भासिक, २ ५५
 √अस् वि उद्, ७ ८६, स-नि-, ८ १३२
 प्र-, ५ ९९, सम ३ ३१
 अस्तुत, १ ११९, ३ ४८, ८१
 असंज्ञत, ४ २९
 असत्, १ ६२, २ १२०, ८ १४०
 असमाति, ७ ८५
 असभव, ७ १७
 असित, २ १५७
 असु, २ ५४, ७ ८९, ९८ ९९
 असुनीति, १ १२४, २ ५४, ७ ९२,
 ८ १२६
 असुर, ६ ८२, १४९, १५०, ७ ५५, ६३,
 ८ ११५, बह्नु ७ ६३, ८ २४,
 २६, २८, ३१
 असुर माया, ७ ५४
 असुयत्, ७ १४८
 असृज, ७ ८०
 असौ, देखिये अद्वय
 अस्तम, २ ६८

अस्तुति, ४ ९७
 अस्त (वारुण), ५. १३३
 अस्थि, ७ ७८
 अस्थि सञ्चय-कर्मन्, ७ १८
 अस्मत्तस, ७ ६५
 अस्थ्यन्दन, ६ १२६
 अस्यवामीय (सूक्त), ४ ३१
 √अह, आह अनु-, ७ १०५
 अहस्, ५ १७५, ७ १८, १९, ८ ९८
 अहि, १ १२६; ५ १६५, १६६
 अहि बुध्य, १ १२६, ५. १६५
 अहित, ८ २९
 अहि-द्वय, ५ १६८
 अहोरात्र, ४ ३४ ७ १२६
 आकर्ष्य, ६ ११९
 आसु, ६ ५९
 आसु राज, ६ ६०
 आख्यात, १ ३९, २ ९४, १२१, ८ ८५
 आख्यात-शब्द, १ ४४
 आख्यान, १ ५३, ७ ८४, १५३
 आख्याय, ५ १२५
 आगच्छत्, ३ १३४
 आगत, बह्नु (देखा), ७ ३०
 आगामिन्, ७ १९
 आग्नि-भास्त, १ १०२ ३ ७५
 आग्नि-साधित्र, -त्री ६ १३२
 आग्नेय, -त्री, ४ १०२
 आग्नेय, १ ९९, २ ७५, १२६, ३ ८,
 ६५, -त्री ३ ८, ९८, ५ ११७
 आहूति, ३ ९५, ९६
 आघ्रात मात्र, ७ ६
 आह्निरस, ३ ८३ १०६ १२६, १४५, ६
 १३९, -सी ४ २, ६ ४०
 आचार्य, २ १३२, १३६, १४३, ४ १३८,
 ५ ३९, ६ ९, ८ ९०, ५ ११२, ७
 ३८, १११
 आचार्यक, ४ ११९

आचिखवास, १ ३६, ५८
 आजि, ८ १२
 आज्ञाय, ५ ७५
 आज्य सूक्त, ५ ११
 आत्मन्, १ ७३, २ ८६, ८७, ४ १०,
 १४३, ५ ३२, ५३, ६७, ७०, ७३,
 १३५, ६ ३२, ९५, ११९, १४२; ७
 ५७, ६०, १२०, ८ २२, ४५, ५२,
 १२९
 आत्म प्रभाव, ८ ७८
 आत्मवत्, ६ १३४, १३६, ७ ८२
 आत्म वादिन्, ७ ७१
 आत्म प्रस्ताव, ४ १३५
 आत्म स्तव, २ ८७, ८ ४२, ८२
 आत्म हित, ८ ६८
 आत्म हितैषिणी, ४ १३१
 आत्म अङ्ग, ४ २३
 आत्म आदान, ६ ९६
 आत्रेय, ५ ५१
 आदान, २ ६, ६ ९६
 आदाय, ६ ११४
 आवि, ३ ४९, ५२, ५ १७१
 आदितस्, ५ ११३
 आदित्य, २ १२, ६ १२५, ८ १२८
 अदित्य देवस्य, ६ २, ४९, १२६
 अदित्य देवत, ३ १०८, ६ ८३, ८७,
 ८ ११७
 आदेश, ३ ३९, १०९
 आध् अन्त, १ २२
 आद्यान्वय, ३ ८९
 आधार, ८ १३९
 आध्वर्यव, ७ १०५
 आनीस्वा, ५ १८
 आनीय, ५ १८
 आनुपूर्वी, २ १००
 आनुपूर्व्य, १ १०५
 आनुमत, ७ ९३
 आनुमानिक, -की, १ ६०
 आन्त्र, ७ ७९

/आप् अच्-, ७ ४४, प्र-, ६ ९०;
 ७ १५२
 आपगा, ६ २३
 आप्त्य, १ ११६, १२८, ८ ४०, १२६
 आप्य, ५ १७४
 आप्री, बहु०, आप्रिय, ४ १६, ६५, ५
 २६, ७ १०७, ८ ३६, आप्रव,
 ४ ९६, ५ २५ १५९, ६ १३०;
 आप्रीषु २ २८, १५१
 आप्री सूक्त, २ १५२ ८ ३७
 आभरण भूषित, ३ १४६
 आयुष्यायण, १ २५, २६
 आयत्, ६ १११
 आयस्य, ६ १४४
 आयस, ७ ५२
 आ यात्, ६ ११२
 आयुध, १ ७४, ३ ८५, ४ १४३
 आयुधागार, ५ १३१
 आयुस, ४ १३०, ७ ४४, ७३, १०३
 आ-राध्य, ७ ४४
 आरोग्य, ७ ४४
 आरोहती, ७ १३०
 आर्तव, ३ १५, ३४, ४ ९१
 आर्त्त, १ ११३, ५ १३०
 आर्त्विज, ७ ८३, १३८
 आर्त्विज्य, ५ ३३, ५१, ८ ६
 आर्त्तुदि, ८ ७४
 आभव, ३ १३१, ४ २७, १२३, ५ १७४,
 ६ १३५, -वी ६ १०८, ८ ७४
 आप, १ १४, ३ १३०, ४ ९४, ५ ७४
 आषक, २ १२६
 आष्टिषेण, ७ १५५
 आलुच्य, ७ ८९
 आवाम्, ३ २१
 आवि, ८ ८५
 आशा, ४ ९३
 आशिस, १ ७, २६, ३२, ३५, ४७, ५०,
 ५८, ३ १५३, ५ ३०, १३५, १७०;

इ ९, ३१, ७४, ७ १२, १२, ९६,
१३६, ८ ८०, ८१, ८२, ८४, ९६
आक्षीर्वाद्-बाध, ३ ८२; ५ ९१, ९३, ७
१०, ८ ४४
आक्षीर्वाद्-पर, ८ ४७
आक्षीर्वाद्-बहुल, ७ ११७
आयु, ३ २१, ५०, ७९, ६ १५०, ७ ३
आश्रम, ५. ६४, ६ ९२
आश्रम्य, २ १४२
आश्रमेधिक, २ १५३
आश्रित, २ १२७, ३ १०२, १०४, ११२,
११९, -जा ५ ११७
आश्रिता-मृत्, ३ १०२
आश्रय, ३ २१, २२, २३
आह्वी, ८ ६८
✓आस् आसते,
परि उप, २ ४९
आसक, ३ ९५
आसङ्ग, ६ ४१
आसन्धी, ५ २०
आसीन, ३ २
आसुर, ६ १६१, ८ ३१, ३४-री, ७ ४९
आस्य, ८ ८
आह्वयस्या, १ ३७, ५५
आह्वयनीय, २ १४५
आह्वय, ४ ११४
आह्वान, ७ १५३
✓इ इति, ३ ९६
अधि-, ४ ७२, ८ १३३,
अध्यापय, ८ १३६
उद्- इयाय, ५. १५२
प्र-, ७ १२०
प्रति- ३ १५४, ८ १०१
उप- : इयाय, ५ ७६
इक्ष्म्यी, ७ ४९
इक्ष्वा, ६ ७२
इक्ष्वाक्य, ४ १०६
इक्षि, इक्षि, ३ ४

इक्षर, ७ १५, १८, इक्षरद्, ८ १७
इक्षरेत्त, ७ १५३
इतिहास, ३ १५६, ४ ४६, ६ १०७,
१०९, ७ ७, १५३
इतिहास सूक्त, ८ ११
इक्ष्म, २ १२०, अक्ष्म (अक्षि) ५ ४८,
= १ ९
✓इक्ष्
सम्- इक्ष्मते, २ १४५, १५८
इक्ष्म, १ १०६, २ १४७, १५८, ३ ५
इक्ष्म, १ १२४, १२६
इक्ष्म, १ ५, ६८, ६९, ८२, ११७, २ ७,
२२, ३१, ३४, ३५, ६७, १०७, ३
३७, ६१ ६९, ८१, ९०, ५ १४८,
७ ११४, इक्ष्मादि
इक्ष्म चिकीर्षित, ६ १००
इक्ष्म प्रसाद, ७ ५९
इक्ष्म मातु, २ ८३
इक्ष्म राजन्, ३ १५५
इक्ष्म वज्र, ७ २७
इक्ष्म वय, ७ १४८
इक्ष्म वायु, ३ ९४
इक्ष्म सम, ३ ११५, ७ ४९
इक्ष्माक्षी, ३ १६१
इक्ष्माणी, १ १२९, २ ७७, ८३, ३ ९२,
८ ५५
इक्ष्मा पर्वत, ४ ४
इक्ष्मा पूषन्, ४ ३१
इक्ष्मा-वृक्षस्पति, ५ ५, ६ २३
इक्ष्मा-वृक्षस्पति, ४ ८१, ६ २७
इक्ष्मा-वृक्ष, ३ ११९
इक्ष्मा विष्णु, ४ २०
इक्ष्माभय, १ १२२
इक्ष्मा-सोम, २ १०७; ४ ८४
इक्ष्मिक, ४ ४०
इक्ष्मिकल, ३ १००
इक्ष्म, २ ९३
इक्ष्म (= इक्ष्मिकी), ६ ९०

इरा, २ ३५

इव, २ ९१

√इष ४ ४९

इष्यते २ ९९, ३ १२२

अनु-, ५ १९

इपि कृत् (रूप), ३ ४

इषु, १ १११ ५ १३२, १३३, १३४

इषुधि, १ ११०, ५ १३०

इत्, १ १०७, २ १४७ ३ ४

इत्स्पति, ३ ७१, ८ १२७

इत्ता, १ ११२, १२६ ३ १३, ८ १२६

इत्तावत्, ३ ४

√ईक्ष

उप- ईक्षेत, १ २२, ७६

अव- ईक्षेत, १ १२४

अनु अव- पक्षन्त, ७ ३

इक्षमाण, १ १३९

इड इड्यते, ८ १२३

इडि, इड, ३ ४

ईरयत्, ४ १२२

√ईक्ष ईष्टे, २ ३५

√इष ईषते, २ १०९

√इह ईहेत, ८ १२२

इलित, २ २७

उक्त प्रयोग, २ ९६

उक्त-मन्त्र, ८ १२५, १२६

उक्तन्, ४ ४१ ५ ३१

उग्र, ६ १४१

उत्थय ज, ४ १४

उत्थय-हृत्स्पति, ४ ११

उत्थय भार्या, ४ ११

उत्थावत्, २ ८९

उत्थावत् मध्यम, ३ १५४

उच्छती, ३ ९

उत्तम, २ ३८, ८ १४०, -मा (स्वच्),

६ १०६

उत्तर (अग्नि), ७ ६७, -रा (स्वच्),

६ १०६, (वेदि), ७ ३२

उत्तर मूक, ३ १४८

उत्तरण, ७ १२७

उत्तान वर्ण, १ ५६

उत्तारण, ३ १६

उत्थाय, ४ २५

उत्सङ्ग, ६ ३६

उत्सग-काल, ४ १२

उत्क, ६ १४१

उत्-कुम्भ, ६ १००

उद्य, २ ९, ५८, ३ १०, ७ १२१

उदक, ३ १२८

उदाहृत, ६ १५८

१ उदित, २ ६२

२ उदिन, ३ १४८

उद्योन्माहित, ४ २३

उद्गातृ, ७ ७०

उद्गिरत्, -न्ती, ८ ३४

उद्गीथ, ८ १२२

उद्गिरय, २ ४४

उद्यत्, ६ १२, १२३

उन्मत्तवत्, ७ १२०

उपजक्षितुम्, ४ ५७

उपदेश, १ ३८, ५२

उपद्रव, ८ १२२

उपनिषत् स्तुति, ५ ८२

उपनिषद्, २ ८२, ४ ६३

उपग्रेष, १ ३८, ५६

उपमश्वस्, ७ ३६

उपमाथ, २ ९१, ९२, ४ ९७

उपलक्ष्य, १ ४५

उपवसन, १ २५, २८, ३२

उपसगृह्य, ५ ७६

उपसर्ग, १ ३९, २ ९३, ९५, १०३

उपस्तुत, ८ ३९

उपास्य, ८ १३०

उपोत्तम, ७ ११९

उभयथा, ८ १२९

उभयवत्, २ १५५, ३ ३१

एव-प्रकार, १ ५९

एव-प्रकृति, १ ४०

एवयामस्तु आख्यात, ५ ९०

ऐकाम्य, २ १८

ऐषवाक, ५ १४, ७ ८५

ऐषवाकु, ५ १४, ७ ८५, ९६, ९९

ऐतश, १ ५५, ८ १०१

ऐन्व-बी, ४ ४

ऐन्द्र, १ ११२ २ १२५, १२७, ३ ६६,
-द्री ६ २५, ३१

ऐन्द्र वाचव, २ १२७, -बी, ४ ९२

ऐन्द्र वायव्य, ५ ४, ६ १६

ऐन्द्र-सूक्त, ६ ७७

ऐन्द्राग्न, ३ १३१, ५ ८९, ६ १९, ७८
८ ६१, -द्री ४ ९, ७ ११९

ऐन्द्राग्नेय, ४ ९९

ऐन्द्रा पावत, -ती, ४ ११०

ऐन्द्रा पौष्ण, ५ ११०

ऐन्द्रा वार्हस्पत्य, ६ ११७

ऐन्द्राभव, ४ १२३

ऐन्द्रा-वरुण, ३ ६६, ४ १२४, ५ ३, १२१

ऐन्द्रा बणव, ५ १२१

ऐन्द्रा सोम, ६ २७, -मी ६ ३१

ऐश्वर्य, ७ ४४, ६०

ओं कार, २ १२५

ओजस, ४ १३०

ओषधि, ७ १२२, बहु० १ ११२, २
७३, ६ ९४

ओषधी स्तव, ७ १५४

औचध्य, ३ १४६

औचित्य, २ ११८

औपनिषद्, ८ ५६

औपम्य, १ ३०

औपम्य-कारण, २ ८९

औरस ८ ११३

औवश (= वसिष्ठ), २ ३६, ४४, ५६
३ ५६

औशिज (= कशीवत्), ३ १२५

ओषम, ३ ४५, ११३, १२४, (अग्नि)

१२९, १४०, ४ १२४; ५. ६, १२०,

६ ६३, -सी ७ १४०

क, १ १२२, २ ४७, १२१, ३ ७०,
५ ९१

क कोऽपि, ३ १५, केचिद्, ८ ८०

कशीवत्, २ १३०, ३ ५६, १४२, १५०

कशीवत् प्रमुख, ४ २५

कश्चिद्, / ३३

कण्व, ६ ३५, ३६, ३७; बहु०, ४ ९८

कण्व पक्षो, ६ ३५

कथना, १ ३५, ५१

कथय, ३ ७३ ४ ३४

कथित ३ ६९, १२३, १५४ ४ ६,
६ १०१

कथित द्रव्य, ५ ५

कद्रु, ५ १४३

कनीयस्, ४ १२ ६ ३६ ७ १३

कन्या, ३ १४६ ५ ५६, ६० ६६, ७६,
६ ५४, ७६, ९९

कन्या-दान, ३ १४४

कपिल, ४ ९३ ६ १५१

कपिल, २ ६६, ७ १४१

कपात, ७ ८४, एक श्रुति, ८ ६७, ६८

✓कम् चक्रमे, ६ ९९, कामयाम् आस
६ ७६

कम्पयत्, २ ६७

कर, ७ ५६

कर्ण, ८ ११८

कण सश्रित, ८ ११३

कत्, ३ २०, ४९

कत्-व, ४ ४५

कर्मन्, १ ७, २३, २५, २६, २८, १२०,

३ १६, ७८, १०४, १३१, ५ १६४;

६ ६९, १२०, १३७, ७ २३, ५८,

१०३, ८ १८, १ ४, २१, २ २०,

६ १६०, ७ १०, १४, ११३, ८ ६,

१३१, १३८, ३ ८४

उरस्, ४ २२
 उरत्राग्निनी (= उर्वशी), २ ५८
 उर्वशी, १ १२८, २ ७७, ८३; ५ १४९,
 ७ १४७, १११
 उर्वी, २ ५६
 उह, ८ ८८
 उह्यस्वल्, १ १११, ३ १००, १०१
 उमिज्, ४ २४
 उपस्, १ १२८, २ ८, ९, ६०, ७४, ८०,
 ३ ८, ९, १०, ४ १३८ (मध्यमा)
 १४१ ६ ८३, ७ १२१, ८ ७३
 उपस्य, ३ १०२, ५ ८८, १००, ६ १२६,
 ७ १२०
 उष्ट्र, ६ ५२
 उष्णिह, ८ १०५
 उन, २ ९०
 उर्जाहुनि, १ ११४
 ऋच, ६ ९२
 ऋग् भाज, १ १७, १८, २ ७९
 ऋग् मन्त्र, बहु०, ४ ३९
 ऋच, बहु० ३ १५, ४ ८, = ऋग् वेद,
 ८ ११०, १३०, १३९
 ऋजिश्चन्, २ १२९, ३ ५५
 ऋणचय, ५ १३, ३३
 ऋत, १ १२४, २ ४२
 ऋतावृध, ३. ३८
 ऋतु, ३ ३४, ४ ५७, १ ११५, १३१
 बहु० १ १७, २ ४१, ३ ३५, ३६,
 ४ ३४, ६ ९१, ७ ६२
 ऋतु-प्रप-सूक्त, ३ ३६
 ऋते, ३ १०४; ६ १४०
 ऋत्विक् स्तुति, ८ १०
 ऋत्विज्, बहु०, १ ८४, ३ ३, ७ ७०
 ऋदि कर्मन्, ३ ४
 √ ऋध्
 प्रति- जाधि, ७ ७५
 सम-, १ २१
 ऋषीस, ५. ८४

ऋभु, ३ ८३, पङ्क्तु १ ८२, ११७;
 ८ १२८
 ऋपि, १ ६, २ ८६, ८७, ८८, ८ १३४,
 १३६, १३८, बहु० १ ८१, ३ ११६,
 ६ १३७, १३९, (त्रय) ८ ७८
 ऋषि-कृन्, ३ ४
 ऋषि-गत, ७ ११२
 ऋषि-हो-होतादि, ८ १३५
 ऋषि पुत्र, ४ ११; ५ ६६
 ऋषि श्रद्ध, ७ ५५
 ऋषि-ससद्, ४ १३३
 ऋषि पक्ष्म, ४ ७८, ५ १५१
 ऋषि सूक्त, १ १४
 ऋष्टियेज-सुत, ७ १५६
 एक, २ ११२, एकस्मिन् १ १३, एके,
 १ ६१, ५ १०८, ११९, १७०, ८
 २३, ३८, ६५, ७५, ९०
 एक ज, ३ २०
 ए- जात त्व, १ ९८
 ए-वेवस्य, २ १४२
 एक देश, ५ २५
 एक पदा, बहु०, ८ १०९
 एक-प्रधान, ४ ८
 एक भूयस्त्व, ३ १३०
 एक-रथ, ६ २०
 एक-वत्, ३ ८१ ४ १०७
 एक विंश, १ ११६
 एक शत, ४ ९५
 एक शस्त्र, ६ २१
 एकाम्भराय, २ १४०
 एकाञ्च त्रिसत्, ५. १०५
 ए-कार, ८ ८५
 एकीकृत्य, २ ११३
 एकीकृषास्, २ ६५
 एतद् रूप, ५ ८७
 एत्य, ७ ३२
 एनस्, ४ ५९
 एनस्विन्, ५ १५

कर्म-गुण, बहु०, १ ७०
 कर्म-ज, २ २१, ३ ४१, ४३, ६०
 कर्म-तत्, १ २७; ७ १६, १७
 कर्म-धारय, २ १०५
 कर्म-सत्ता, ५. ६
 कर्म-संस्था, बहु०, ३ ८२; ५ ९३
 कर्म-समुत्प, १ २९
 कर्मोपसंग्रहार्थ, २ ८९
 कलविद्, ६ १५१
 कलक, ५ १५१
 कला, ३ ८
 कल्प, १ ४१
 कल्पानुग, ८ १०४
 कल्याण, स्त्री०-णी, ८ २६
 कवच, ५ १३४
 कवच-स्तुति, ५ १३२
 कव्य-वाहन, ६ १६१
 कक्षा, ५. १३२
 कक्षिपु, ५ २०
 कशु, ६ ४५
 करयप, ३ ५७; ५ १४३, १४५
 करयपार्थ, ३ १३०
 काकुत्स्थ, ६ ५४
 काशीवत, ३ १४०, १५२, ७ ४२,
 स्त्री०-ती, ७ ४८
 √कांच ४ २०
 काञ्चन, ५. ३४; ७ ७८
 काण्व, ६ ३९, ५८, स्त्री०-वी, ४ ९९
 काम, ३ ७०, ७ ५०
 कामतस्, ६ ५५
 काम्या, ४ २४, ५७, ५ १३७; ६ ७७,
 १४९, ७ ५, ८ २०
 काव, स्त्री०-वी, ३ ९८
 कार, २ २२, २८
 कार्य, ५ ५१ ८ २६
 कारु, ३ ८, ६ १३७
 कालकेय, बहु०, ७ ५३
 काला, ५ १४४

काश, बहु०, ७ ७९
 काश्य, ६ ४२
 कारयप, २ १५७; ८ १८
 कितव, ७ ३७
 किरण, २ ६५
 किराताकुलि, ७ ८६
 कीर्तिन्, ३ ९६
 कीर्तन, ४ ३१ ३२, ११९; ८ १२३
 कीर्तना, ५ ११४
 कीर्तय, ४ ३५, ७. ५८; ७ ४८;
 अनु- कीर्तयेत, ४ १९
 प्रति- कीर्त्यन्ते, ७ १३९
 कीर्तित, ४ ३०, १२०
 कुत्स, २ २, २५, ३ ५८, १२५, १२६,
 १२८, ४ १८
 कुत्सित नामन्, १ ३३
 कुन्ताप, ८ १०१
 कुम्भ, ८ १०१
 कुमार, ३ १४५, ७ ६
 कुमार-रूप, ५ २१
 कुम्भ, ५ १४९, १५१, १५३, १५४
 कुरु, ७ १५५; बहु० ६ ११०
 कुरु-सेन, ६ ५८
 कुरुङ्ग, ६ ४४
 कुरुभवन, ७ ३५
 कुश, ७ ७९
 कुशिक, बहु०, ४ ९८, ११४, ११५
 कुसीदिन्, ३ ५८
 कुहू, १ १२८, २ ७६; ४ ८७; ८ १२५
 कूप, ३ १३२
 कूपेष्टका, ३ १३५
 कूर्म, ७ ७९
 कृकलास, ६ १०६
 कृष्ण, ६ १४०
 √कृत् अकृन्तत
 नि-, ४ २२
 कृतवत्, ६ ४१; ७ ५८, ८ १८
 कृताकृत, २ ७७

कृताञ्जलि, ५. ७६
 कृति, ३ ३०, (बलस्थ) २ ६
 कृत्त, ३ २३
 कृत्यानामान, ८ ४५
 कृतकशस्त्र, ८ १३०
 कृद् अन्त, १ ४५
 कृन्तत्र, २ १८
 कृपपयु, २ २७, ३२
 √ कृष चकष्य
 -निष्ठा-, ६ १०५
 कृषि ५ ९, १०, ६ १३८, ७ ३७
 कृषि जीव, ५ ९
 √ कृष कल्पते, ७ १५४, कल्प्यन्ते,
 ३ ७४।
 सम- कल्पस्व, ४ ५२
 वि- कल्पते, २ १५१
 कलस, ७ १०
 कलसि, २ ३
 केस, बहु०, ७ ७९
 केसिन्, १ ९४, २ १२, ६५, बहु० (त्रय)
 १ ९५
 केसिन, ८ ४९
 कौत्स, ८ १७
 कौरव्य, ७ १५५, ८ २
 कलु, ३ ४५, बहु० ३ ७४
 कलु-राज, ८ ९२
 √ कम्प, २ ५५; ६ १२
 √ कम्प
 अप-, ७ १, ६२
 उप-, ४ १२, ७ ४
 कम्प, २ ११६
 क्रिया, १ ४४, ४५
 क्रिया योग, २ ९४, ९५
 क्रियाधर्म, ३ १४३
 कुक्ष, ६ ३७, ८ ३४
 √ कुक्ष मा कुक्ष, ५ ७८
 कुष्ट, ८ ११२, ११४, ११६
 कूर्, ३ १३२

क्रोध, ५ १६
 क्रोधा, ५ १४४
 क्षत्र, ५ १२६
 क्षत्र बन्धु, ५ १२६
 √ क्षत्र क्षमस्व, ५ ७८
 क्षय, ५ ८१
 √ क्षर क्षरति, २ ५७
 √ क्षि क्षियति, २ ५७
 क्षिनि, २ ४१, ५०, ६३, बहु० २ ४१
 √ क्षिप्
 उद्- अक्षिपन्, ६ ८८
 सम उद्- अक्षिपन्, ४ २४
 क्षीर, ६ १४५
 क्षुद् भय, ८ ९०
 क्षुद्रसूक्त-महासूक्त, बहु०, ३ ११६
 क्षुद्र, ४ ५३
 क्षेत्र, ४ ४०
 क्षेत्रज्ञ, ४ ४०
 क्षेत्रज्ञान, ४ ३६
 क्षेत्रपति, १ १२३
 क्षेत्रस्य पति, २ ४०
 क्षेप, १ ३९, ४९
 क्षेत्रपत्य, ५ ७
 क्षय, ७ ०३
 क्षिप्र, ४ २१
 √ क्षया
 आ- चक्षुषी, ५ ३६, चक्षु ८ ७८
 क्षयात, ६ १८६
 क्षयापयन्, १ ५१
 गच्छत्, ३ १४२
 गज, ५ १२३
 गण, १ १२०, १२१, १२७, २ ७, ८५;
 ५ ४७, बहु० ५ ४९
 गण-स्थान, ५ १७२
 गतास्तु, ७ ८९
 √ गद् जगद्, ३ १२६, १३७; ४ ३,
 ९५, ६ ६८, १०३

मि—, गच्छते, १ १८; ५ १७४, ६ ११५; ७ १३८; ८ १०४
 गदित, ७ ९५
 गन्धर्व, ७ ७१, १३०, ८ ५२
 गन्धर्व-अप्सरस्, बहु०, ८ ११४
 गन्धर्व-उरग राक्षस, बहु०, ५ १४५
 ✓गम् जगाम, ७ ३, गम्यताम् ८ १३५
 जधि—, ३ १४२
 जव— गच्छति, ७ १२१
 जमि आ— जगाम, ४ १, २
 गय, २ १३०, ३ ५५
 गग, ५ १४०
 गर्भ, २ ११३, ४ १२, १३, १३०, ५ ८६, ८७ ७ ५, ८ ६६
 गर्भ कर्मन्, ५ ९२
 गर्भ वत, ५ ८५
 गर्भार्थम्, ५ ८२, ८५, ८ ८३
 गवाक्ष, ५ ६४
 गव्य, ५ ११
 १ ✓गा, जगौ, २ १५४, १५६, १ ७; ५ ११७, ६ ८५; ८ ३६, गीयते २ १४०, ६ ५
 प्रति, ८ ३८
 २ ✓गा गा, ८ २८
 अप— गा, ४ ७३
 गात्र, ४ ३०
 गाधिन्, २ १३१
 गाधिन (= विश्वामित्र), ३ ५६, ८ ७०
 गाधि पुत्र, ४ ९५
 गाधि-सूनु, ४ ११२
 गाधत्र, १ १२८, ३ ३३
 गाधत्री, १ ११६, बहु०, ६ ११४; ८ १०५
 गिरि, ६ ८२
 गीत, १ १३१
 गीता, ६ १५५
 गुम्गुल, ७ ७८
 गुण, ४ ८७; ८ १२५
 गुण, १ ८८, २ १०३; ३ ४१, ४३, ६०; ६ ७०; ८ ६३; ९ १०८

गुणतस्, ५ १५६
 गुण-भूत, ५ ९६
 गुण-भेद, ५ ४९
 गुण-विग्रह, २ १०२
 गुण अभिधायक, ५ ६५
 गुणार्थम्, ८ १७
 गुप्त, ७ ९९
 गुरु, ३ १४२, ४ ६०, ५ १०३, १३९, ६ ३५, ४ ६०, ७, १४७
 गुरु-स्तव, ४ १०३
 ✓गुह नि—, ८ २४, ३०
 गुह्य, ८ ९८
 गुणस्, ४ ७८
 गुप्तसद, २ ५४, १५५; ३ २७, ३६, ५८, १२८, ४ ६५, ७०, ७८, ९८
 गुह, ६ १०३, ७ ४२, बहु०, ४ ११६, ११७, ५ ८०, ६ ११, ७, १३१; ४ २०
 गृह-पति, ७ ६१
 गृहीत, २ ९७
 गृहमाण, ५ १५४
 गैरिक, ७ ८०
 गो, गौ, १ १२९; २ ७८; ६ १२७; बहु० गाव, ४ १४१; ६ १३८, ८ ७२, गा, ३ १३२, ६ ८२, ८ २४, २७, ३३, ६६; गवाम्, ५ ३०, ९०६, ६ ५१, ६०, ७ २०; ८ २९, ३०; गोम्याम्, ५ ३१, गाम्, २ ३७, ४ ९५
 गोतम, २ ४५, १२९, ३ ५५, १२५, बहु० ४ ९८
 १ गोधा, ६ १०६
 २ गोधा, २ ८२
 गो-पति, ७ १२०
 गीतम्, १ ५८, ४ १२७, १३३
 गीपायन, बहु०, ७ ८०, ९०, १००
 गौरी, १, १२९, २ ८१; ४ ३६
 गौरी-धन्व, ४ ४२

आ, बहु०, ८ १२८
 आम्ब, २ ९०, ९२; ५ २३
 आह्, ५ ३२, ७, ६५
 आह, ३ २१
 नि- अमाह, ६ ६१
 प्र- गृह्णति, २ १४२
 प्रति-, ५, ७८, ६ २३
 सम्- : अमाह, ५, १४
 ग्रहन, २ ९७
 ग्राह्य, ७ १४६; बहु० १ ८४, ११०; ७ ११६; ८ ७४
 ग्राह्य, स्त्री०-णी, ६ ३०
 ग्रीष्म, १ १३१
 घर्म, ५, ४१; ८ १५, ७९
 घर्म-संस्तव, ६ १३४
 ✓घस् अङ्ग, ६ ५८
 वृणि, ३ ९५
 वृत्, ६ २३, ७ ७४
 वृत्-वृद्ध, ४ ३३
 वृत्-वत्, २ ५०
 वृत्-स्तुति, ५, ११
 घोर पुत्र, ६ ३५
 घोष, २ ६०
 घोषा, २ ८२, ७ ४२, ४८
 घोर, ६ ३९
 ✓घ्रा
 अघ- अग्रतु, ४ ६०
 उप- अग्रिमात्, ७ ५
 चक्र, ५, १२३, ६ ७३
 चक्र वत्, ४ ३५
 चक्र-वर्तिन्, ५ १२३
 चक्षुस्, २ १९, ४ ९४, ५ ७४, ७ ७१
 ✓चक्ष्
 आ- चक्षे, ३ २०
 प्रत्य आ-, ५ ५९, ७७, ६ १५४
 प्र चक्षते, ६ १०९
 चतुर् बहु०, चतुभि = चतसृभिः, २ ४४, ५ १६३ ६ ४१, ४२; ७ ३६

चतुर्-वृत्, ६ १८
 चतुर्थ (स्वर), ८ ११८
 चतुर्-युज्, ३ १४०, १४९
 चतुर् विध, २ ३४
 चन्द्र, १ ८२, ८८, ३ १७
 चन्द्र-मस्, १ १२६, २ १६, ३. १३१;
 ७ १२३, १२९
 चन्द्र-सूर्य, ६ १२६
 चमस, ३ ८७
 चामि, 'चम्' वातु, ७ १२९
 ✓चर्, ६ २०, ७ २४, १२७, १४७
 (चर्मन्), १५०, १५१
 चा-, ६ ११
 चि-, ८ २७
 चरण, ४ २
 चरु, ४ २९
 चर्म अभिव्यवणीय, ३ १०१
 चक्षुष, ८ ११९
 चान्द्रमस्, ७ १२५
 चावत्, ७ १२९
 चावनीय, ७ १२९
 चावमान, ५ १२४, १३८
 चारु, ७ १२९
 चिकीर्षत्, १ १०२, ४ ६८
 चिकीर्षित, ४ ५८, ६ १००
 चित्र, ६ ५९, ६०
 चित्र भातु, ७ ६५
 चिद्, २ ९१
 चिन्तयत्, ५, ६७; ७ ४६
 चिन्ता, ७ ४३
 चुमुरि, ४ ६७
 चेतस्, ४ ११३, ७ १०१
 चोदित, ५ २४
 ✓चुन्द् चुन्द्यान् आतुस्, ७ १५७
 चुन्दस्, १ १४, १३०, २ १४, ४४, ८ ३९, १३४, १३६-१३८
 चुन्द-सूक्त, १ १६
 चुन्दो-ग, बहु०, ५ ३३

छाग, ४ ३१

छान्दस, २ १०१

छान्दोमिक, ६ १०८

✓छिद् : अछिनत्, ५ १५, अछिदत्
६ १५०

जगत्, १ ९६, ४ ३७

जगती, २ १४ ८ १०६

जघन्य ज, २ ६०

जङ्गम स्थावर, १ ६१, ८ ११६

जठर, १ ६५

✓जन् जज्ञे, ३ ११, ५ ९९, ७ ५०,
जायते, ३ ७८, ८ १३६, जनन,
४ २५, ७ २, ८ १९
अभि जायते, ५ १६६

जन, ४ १३

जनयितु, २ ३७

जन हित, २ ३७

जन्मन, ३ ११, ४ ७३, ५ १६४,
७ १०३

जन्मास्ति त्व, २ १२१

जन्य, २ ३७

✓जप्, ७ १५ ९०, ९१, ८ १३६

जप, ८ ९३४

जमदग्नि, २ १५६, ४ १२५, बहु०,
४ ११४

जय, ८ १३

जरा, ७ ४३

जरायु, ५ ८७

जल, ५ १५१, १५२, ६ ८८

जात, १ ९२

जात मात्र, ४ १३१

जात विद्या, २ ३०

जात-वेदस्य, १ ६७, ९७, १०६, २ ३०,
३३, ४ १६, ९७, ८ ७

जात वेदस्य, १ ९९, ३ ११७, १२६,
१३०, ४ ६५, ८ ८८, ८९

जाति, ५ १४६

जान, ५ १४, १८

जामदग्नि, स्त्री०-ग्नी, ५ २५, ८ ६६, ३७

जामात्, ५ ५७, ५८, ५९

जाया, ५ १२

जाया पति, ३ १५५, १५६

जाल, ६ ८८

✓जि जयेवहि, ५ १२६

जिगमिषु, ४ ९६

जिघांसु, ६ ११२, ७ ५०

जिज्ञासु, २ ११९

जित, ५ १२४

जीर्ण, ४ २१

✓जीव ३ १९, ६ १३७, १३८ सम्-
५ १६, ७, १९

जीवनार्थम्, ७ ११०

जीवपुत्र, ५ ९२

जीव आवृत्ति, ७ ८५

✓जुष् ७ ६६, ८ ३१

जुहू २ ८२, ३ ५८, ८ ३६

जेतु, २ ३७

जोष्ट्री, १ ११४

✓ज्ञा

अनु- जज्ञे, ५ ८०

अति वि- जानन्ति, २ १९

जाति, ७ १३४

ज्ञान, ३ १३७, ४ ४६, ७ १०९, ८
१३५

ज्ञान-सस्तव, ८ ९३

ज्या, १ १११

ज्याभिमग्निणी, ५ १२९

ज्यायस्, ६ १६३

ज्येष्ठ, ६ ७७, ७ १५६

ज्येष्ठ वत्, ४ ११२

ज्योग जीवन, ७ ११

ज्योतिस्, १ ९०, ६ १४४, ७ १०९,
१२७, ८ १४०, बहु० (जितु), ३ १२

✓उवल्

उद्- अवल्, ५ २१

तय, ८ १३०

तस्वतस्, ४ ४७
 तस्व-वर्णिन्, १ १०
 तस्व-पुरुष, २ १०५
 तस्व-पूर्व-सूक्त, ३ १२७
 तस्व-प्रधान, १ ७२
 तथा, ४ ७५, ५ १०१, १२७, १२८, ६
 २३ १२३, ८ १, ३१
 तथा रूप, ५ ८७, ६ ९४, ८ ६२
 तद्-गत, ५ ९५
 तद्-गुण, २ ९९
 तद्-देव, १ ६
 तद्-देवत, ८ १०१
 तद्-धित, १ ३
 तद्धित, २ १०६
 तद्-रक्त, १ ७२
 तनन, २ २६
 तनय, ५ १६४, ७ ५३
 तनु, २ २६, ३ १, ४ ७२
 तनूनपात्, १ १०६, २ २६, १४७,
 १५६, ३ १
 तनूनपाद् द्वितीया, ३ ३१
 तन् नपात्, ७ ३५
 तन् नामन्, २ ७७, १२८
 तन्-नेत्र, ४ १५
 तन्-मनस्, ६ १४४
 √तप् ५. १५५, ६ १४०, १४१, ७
 ४९, अमि- अतपत्, ४ १५
 तपस्, ४ ४७, ५९ ६६, ७१ ९५, ५
 १५५, १५६, ६ १००, १४०, १४१,
 १४२, ७ ४९, ८ १३०
 तपस्विन्, ५ १५०
 तमस्, २ ६०, ६२, ६४, ३ ९, ४ १४,
 ५ १२
 तमस्वती, ३ १०
 तरन्त, ५. ६१, ६३, ८०
 तरन्त पुरुमीकह, ५ ६२
 तरु वत्, ३ २८
 तात, ७ ४४

तापस (मन्थु), २ ५३, (अमि),
 ३ ५८
 तापस्य, १ १२३; २ ५७
 तापस्य देवस्य, ८ ७७
 तालव्य, ८ ११०, ११५
 तावत्, ३ १४७
 तिम-तेजस्, ६ ८४
 तित्तिरि, ६ १५१
 तिर्यग् योनि, ६ ६२
 तिस्र तिस्र (देवता), १ ६९,
 (देव्य), २ १४९, ३ १२, ६ १३६
 तुरासाह्, ४ ७५
 तुरीय, ६ १२९
 तुल्य नामन्, १ ९२
 तुल्य रूप, ५ ६७
 तुल्य-व्ययस् ५ ६८
 तुविजात, ४ ८२
 √तुष् तोषय, ४ ५८
 तुर्णस्, २ ५७, ३ १६
 √तृ अतरत्, ८ ३२
 तृच, २ १७, १२६
 तृचाक्षम, ८ ९७
 तृण, ४ ६३
 तृणपाणिक, ५ ११३
 तृतीय (स्वर), ८ ११३, ११८
 तृतीय-सवन ३ ८९
 तेजस्, १ ९८, २ ६३, ६ ३७, ७ २
 तेजस्, १ ८८
 तरिन्दिर, ६ ४७
 तयाज्य, २ १००
 त्रयस्त्रिंश (स्तोम), २ १३
 त्रसदस्य ५ १३, ३१, ६ ५१, ७ ३५
 त्रि त्रय (अप्रय) ७ १४२, (अधिपा),
 ४ ११, (अधय), ८ ७८, (लोका-
 धिपतय), ८ १२१, (स्वरा) ८
 १२१, त्रीणि (तिरासि), ६ १५०,
 त्रिषु ३ ३१
 त्रिणव, २ १

त्रित, ३, ५८, १३६, १३७, १५२, ६ १४७
 त्रि-दिव, ७ १००
 त्रिधा, १ ६३, ६४, ४ ३५, ७ १२०
 त्रि-वन्धुर, ३ ८६
 त्रि विक्रम, २ ६४
 त्रि-विध, २ ७२, ३ १२, १४, ४२
 त्रि विधा, ४ ३५ (त्रिधा)
 त्रि वृत्, १ ११५
 त्रिशिरस्, ६ १४७, १४९, १६२
 त्रिशोक, ६ ८१
 त्रिष्टुभ, १ १३०, ८ १०६
 त्रिस्, ६ १०५
 त्रि सवत्सरिक ५ ९७
 त्रि स्थान, १ ६५, ३ १२
 त्रिस्थान अधिष्ठित, ८ ९१
 त्रैतन, ४ २२
 त्रैपद, ४ ८
 त्रैवृष्ण, ५ १३, १४
 त्र्यम्बक, ६ ३
 त्र्यरुण, ५ १४, ३१ ३३
 त्व पद, ६ ११४
 त्वक्षति, 'त्वक्ष धातु, ३ १६
 त्वग् दोषिन्, ७ १५६, स्त्री-नी, ६ ९९
 त्वग् दोषोपहतेन्द्रिय, ८ ५
 त्वक्, ६ १०६
 त्वत् प्रमादतस्, ६ ५६
 त्वष्ट, १ ८४, १०८, १२१, २ १४९; ३
 १५, ७, २५, ३७, ८३, ८४, ८८,
 ५ १४८, ६ १६२, ७ ७
 त्वाह (कर्म), ३ ८४, (त्रिशिरस्),
 ६ १४७, स्त्री-प्री, ४ ८६, ७ ३, १२
 त्विष्, ६ १२१
 त्विषि तस्, ३ १६
 वक्ष, ४ ८२, ७ ११४, ८ १२८
 वक्ष सुत, ३ ५७
 वक्षिण, ४ ७५, ४ २३, ७ ६७, ११५
 १ दक्षिणा, २ ८४, ३ ६८, ८ २२

२ दक्षिणा, ५ १५९, ८ २३
 दक्षिणीयतम, ५ १५८
 दक्षिणेन, ७ १२७
 दण्डार्ह, २ १०६
 दण्ड्य, २ १०६
 दत्त, ५ १४१
 ददत्, २ ३४
 दधि, ३ ९५
 दक्षिणा १ २५, २ ५५
 दध्यक्ष, २ १२ ३ २२, २३, १२१
 दनायु, ५ १४४
 दनु, ५ १४४
 दम, ८ १३०
 दपति, ६ ७४ ७ १३१
 दपित, ७ ५४
 दर्शन, ४ १९
 दश, २ १०८ ३ १४६
 दशम (अहन्), ५ १७५
 दशाक्षर, ७ २१
 दष्टुम्, ६ १२
 दक्ष, ७ ६
 ✓दह् अदहत, ५ २२
 ✓दा, ३ १४८, ५ ३१, ३२, ३४, ५६,
 ५८, ७२, १३९, १४५, ६ ५१, ६६,
 ८२, १२३
 परी ददे, ४ ११७
 प्र- अदात्, ३ १८, १५६, ४ ५३,
 ५ ६३, ६ ७९, ८५
 दाक्ष्य, ८ १३०
 दाट्, ८ २३
 दाट्त्व, ३ ६१, ८ २३
 दाक्षिण, ५ १, १७३
 दान, ३ १४०, १५३ १५४; ४ १११,
 ५ १४०, १४१, १६२, ६ ४१, ४४,
 ४७, ८०, ९५, १२०, ७ १४७।
 दान तुष्ट, ५ २९
 दान-शक्ति, ६ ५२
 दान स्तुति, ६ ४५, ९२

दानव, ७ ५०, ५१, स्त्री०-नी, ६ ७६
 दार, बहु०, ६ ५३
 दार-संग्रह, ५. ८२
 दार्ढ्य, ५. ५०, ७६, ७७
 दाक्षतयी, ३ १५४, ८ ८८
 दास, ४ २१, स्त्री०-सी, ४ २५
 दिग्ध, ५. १३३
 दिति, ५. १४४
 दिक्षु, ५. ५६
 दिदृष्ट, ४. १
 दिधक्षत्, ६ ३७
 दिन, ४ ३४, १३२
 दिनाम्न, ७ १२१
 दिव् क्षीत्, ६ १३३, ७. ९३, ८ ४७,
 १२७; दिधि, ३ १४, ४ ६६; ७ ५३
 दिवाकर, २ ६१
 दिव्-आदि, ४ ६
 दिवीकस्, ४ ६२; ५ ४२; ७ ११८
 दिव्य, ३ ११, ८६, १०३, स्त्री०-ज्या
 (वाष्), २ ७२
 दिव्यात्मन्, ७ ७७
 √दिक्
 डव- : दिरवते, ३ १४१
 दिक्, बहु०, ४ ९८, ८ १२८
 दीक्षिष्यत्, ६ २०
 दीप्त-तेजस्, ५ ६५
 दीप्तमक्षर, ३ १८
 दीप्त, ४ १४, ७ ७३
 दीर्घ-तपस्, ८ ६७
 दीर्घ-तमस्, २ १२९, १५४, ३ १४६,
 ४ १४, २१, २३
 दुःक, ७ ८८, १५२
 दुःख-लोक परीतात्मन्, ६ ३३
 दुःखुमि, १ ११०; ५. ११२
 दुर्गे, ६ १३७
 दुर्गा, २ ७७
 दुर्भाग, स्त्री०-गा, ७ ४२
 दुर्मित्र, ८ १७

दुर्वस्तु, २ १२९; ३ ५६
 दुष्-कृत्, २ ११९
 दु स्वप्न प्र, ८ ६७
 दु-स्वप्न नाशिन्, स्त्री० नी, ३ १३९, ५ ८९
 दु-स्वप्नाद्य प्रणाशिन्, स्त्री०-नी, ४ ८३
 √दुह् दुबुहे, ६ २३
 दुहित्, ४ ११० १११, ५ ७३, १४५
 दूती, ८ २७, २८
 दूरय, ८ २५
 दूरात्, ७ ६४
 √१ द, आ द्वियेत् २ १५४
 √२ द दणाति (हराम्), २ ३५
 दति, ३ ९५, ९६, ९७
 √दक्ष्, ४ १८, ६ ९४, दर्शय ५ ६३,
 ६ ११९, प्र-, २ १३२
 दष्ट, ५ ८६, ८ ६६, ८७, १००
 दष्ट लिङ्ग, ४ ८०
 दष्ट-वत्, स्त्री०-नी, ८ ३३
 दष्टि-हीन, ४ २१
 देव, बहु०, १ ८३, ६ ९८, ७ ५४,
 ६३, ६४, ६८, ७१, ७२, ८ ९, ४९,
 ११२, १२५
 देव-गण, ४ ६६; ६ १५६
 देव-गुरु, ६ ११३
 देवता, १ ११८; २ ८८, ७ १३९; ८
 ८, १३८
 देवता-नामधेय, १ १७
 देवता नाम्, १ ११
 देवता आर्ष अर्थ कृन्द्स् तस् १ १४
 देवता वत्, २ १३६
 देवता वाहन, १ ११९
 देवता विद्, ८ १२४, १३१
 देवता लिङ्ग, ८ २१
 देवत्व, १ ९८
 देव दार, ७. ७८
 देव देव, १ १०४, ३ ८८; ३ १२६
 देव-देवत्व, ३ ११२
 देव-वीथ, ८ १०१

देव यज्ञी, बह्व०, २ १२, ७८, १४३, ३
९२, ५ ४५, ८ १२८
देव प्रहित, ३ ८६, ७ ६५
देवर, ७ १४
देवर्षि पितृ पूजार्थम्, ४ १२६
देव वत्, ६ ६०
देव-सुतोपम, ३ १४४
देवापि, ७ १५५, १५६, ८ २, ३, ४
देवासुर, ५. १४५
देवी, ५. ७५, ८ ८, ७६, ३ ९२,
(तिच्छस्), १ १०८, ३ ८
देश, ८ ११५
देश काल तत्, २ ११८
दैत्य, ४ ६७, ६ ११५, ७ ५०, ५४
दैर्घ्यतमस, स्त्री०-सी, ३ १५२
दैव, २ १२५, (अग्नि), ६ १६१
दैवत, १ १, २, ४, ५, २ १२४; ३
१०९, ८ १३४, १३६
दैवत ज, १ २
दैवत विद्, ८ १३९
दैव्य, (होताव) ४ १०४, (होतासी),
२ १४९, ३ ११
दोग्ध्री, ३ ५०, ७९।
दोषा, ३ १०
दौत्य, ५ ७४
द्यावापृथिवी, ३ ९३, ३ १३८
द्यावापृथिवीय, ५. ७
द्यु भक्ति, ३ ११३; ६ १५६
द्यु-भू, ५ ११४
द्यु मत्, ८ ८
द्यु-वत्, २ ८१
द्यु-स्थान, २ ७; ८ ४८
√द्रम् द्रमति, ७ १२९
द्रविण, २ २५, ३ ६३
द्रविणो-द्, ३ ६१, ६२, ६५, ३ ६३
द्रविणो-द्वस्, १ १०६; २ २५; ३ ३८,
६५, १२९
द्रव्य, १ ४२, ४५

द्रष्टु, ५. १७०
द्राविणोद्वस्, ३ ६४
द्रुघण, १ १११, ८. ११, १२
द्रु, १ १३
द्रुह, २ १०५, ५. १४८, ८ २०
द्रुह भूत, १ ११३
द्रुह शस्, ६ २१, ८ १९
द्रावकाक, ३. ३४
द्रावकाधा, ४ ३५
द्रावकार्क, २ १४६
द्रार्, (वेष्), १ १०७; २ १४८;
३. ६
द्रिगु, १ १०५
द्रि चत्वारिंशक, ६ ८१
द्रि-ज, ७ ८६, ८७
द्रितीय (स्वर), ८ ११३, ११४, ११७
द्रि-देव, ३ १२८
द्रि-देवत, २ १४०, १४२
द्रि देव, ३ ४१, ८०
द्रि देवत, २ १४५, (मन्त्र), ३ ८१
द्रि धातुज, २ १०३
द्रि-पद्, ३ ८२, ४ ८
द्रि-पदा, ६ ६९; ८ १०९
द्रि प्रधान, ४ ५, ८
द्रि-वत्, १ ७५; ४ १०७, १०८
द्रि-वत्-स्तुति, ४ ५, ३ १३
द्रि-वत्-देव, ३ ११४; ४ ११८
द्रुघ, २ १७; ३ १५५; ६ १३६, ८ ५४
द्रुघद्, ३. ८०, ७ ८६, ९८
धन, २ २५; ५. ३१; ८. ३९
धन-काम, ५. १०
धन-कुण्य, ३ १४७
धनाशित्, ७. १३५
धनुर-आदान, ७ १५
धनुर-मुक्त, ५. १३४
धनुष्मत्, ६ ११२
धनुस्, १ ११०; ५ १२५; (वेष्),
७. २७

धान्विन्, ७ ५३
 धम ४ ३६, ७ १४७
 धम काम, ५ १०
 धर्म-व्यक्तिक्रम, ८ ३
 ✓धा दधुस्, ७ १९
 अभि, १ ३०
 अव, ४ २१
 नि अधत्ताम्, ३ २२
 सम दध्यात्, २ १००
 धातु, २ १०२, ७ ८०
 धातु ज, २ १०४
 धातु विभक्ति, २ १०१
 धातु उपसर्ग अवयव-गुण शब्द, २ १०३
 धातु, १ १२५ २ ५६, ४ ८८, ५ १४७ ७ ११४
 धाना, ७ ३१
 धारण, ७ १०१
 ✓धाव् अधावत्, अधावन्
 अभि-, ६ १२, ८ १३७
 उप-, ७ ५५
 धावत्, ६ १२
 धिष्ण्य (अग्नीन्), ४ १०४
 धीवर, ६ ८८, ९०
 धुनि, ४ ६७
 धूम, ४ ४१
 ✓ध धारय, ५ १५५
 नि- ५ ८४
 धेनु, १ १२९, २ ७८, ३ ५०, ७९, ८५,
 ४ ३६ ८ १२५
 धैर्य काय, ४ १३४
 ध्मात्, २ १५८
 ध्माति, २ १५८
 ✓ध्या ध्यायेत्, ६ १४५
 ध्रुवम्, ३ ७
 न, २ ९१
 न कार, २ ९२
 नक्ता, ३ ९

नक्तोषस्, १ १०८, २ १४८, ६ ८
 नल्ल, ७ ७९
 नगोद्वा, (= अगोद्वा), ८ १२७
 नञ् पूर्व, ३ ९
 नदत्, ६ १२
 नदी, ६ ११०, १ ११२ २ ७३, ८३,
 ४ २४, १०५, १०७, १०८, ६ १, २१
 नदी तोय, ४ २१
 नदी वत्, २ १३६
 नपात्, २ २७, ३ १, ५ १०३, ७ ३५
 नपुसक, १ ४०, २ ९६
 नप्त्, २ ५५
 नभाक्, ३ १२८
 ✓नम्
 सम- नमेत् २ १०१
 नमस्, ५ ७८
 नमस्कार, १ ३७, ५४, २ १२३, ८ ११८
 नमस् कृत्वा, १ १
 नर, २ ६५, ३ २, ३
 नराशस, १ १०७, ११०, २ २८, ११५,
 १४७, ३ २, ३, ६७
 नराशस वत्, २ १५६, ३ ३१, ३२
 नवक्, २ ८५, ३ ६६, ७५, ११७
 नवति, ६ ११५, ८ ५१
 नवम्, २ ५६, ६ १३०
 ✓नश्, ५ १७
 नष्ट, ७ ६३
 नष्ट रूप, ४ ६४
 नष्ट-सश्, ७ ८४
 नाक्, २, ६६
 नाकुल, ८ १४
 नानानीय (सूक्त), ६ १३९
 नानान्वयोपाय, २ ९९, ११९
 नानाप्रकार, १ ३४
 नाना रूप ५ ९२, ६ ३२, ८ ७२
 नाभाक्, ३ ५६
 नाभानेदिष्ट, २ १३०

नाम-तत्त्वं, ७ ४९; ८ १७
 नामधेय, १ ८७, ८८
 नामधेयानुकीर्तन, १ ८९
 नामन्, १ ७६, ८५, २ ९६, ५ १२५,
 ८ ८५
 नाम-लक्षण, २ ७५
 नामाख्यात विभक्ति, २ ९४
 नामान्य-त्व, १ ७०, ७२
 नामाङ्गान, १ ८६
 नाराक्षस, ३ १५४, ७ १३९
 नारी, २ ८३, ६ ४०
 नाशन, ८ ४५
 नाशनार्थम्, ७ ९५
 नासत्य, ७ ६, ३ २१, ३९, ७ ४८ (?)
 ८ २०
 नासिकाग्र, ८ ११३
 नासिक्य, ८ ११८
 नाहुष, ६ २०, २२
 निरुक्त-य, ६ ८२
 निरूप्य, ७ १
 निगद, ८ १०४
 निगद्य, ७ १३
 निगम, २ १३६
 निगृहीत, ४ ११३
 निष्पत्, ८ १०७
 निदशन, २ १०७, ११०
 निदाघ-भासातिगम, २ ४९, ५४
 निदान-संज्ञक, ५ २३
 निधान, २ ११३
 √निन्द् निन्दन्ति, ७ ३७
 निम्बा, १ ३५, ४९
 निपात, १ ३९, ७८, २ ३, ८२, ८९,
 ९३, ३ २५, ३६; ४ ५४, ९६; ५
 १६२, ६ ८६, १३५; ७ १४५; ८
 ५२, ६०, १२९
 निपात-भाज्, ४ १०, ९२, १२८; ५
 ९१, ९३, १०७, ११०, ६ १३०,
 ७ १४५

निपात-भाज, १ ९३, २ ७५, ८१
 निपात स्तुति, ३ ११९
 निपातित, २ १३४; ३ ६७, १२१, ५
 १०५, ७ २१, ८ ४०
 निपातिन्, ४ ११०, १२४, १२८, ८
 ६७, १२८, ३ ५३; ७ ३९
 निपात्यर्थ, ४ ९७
 निषर्हण, २ ६
 निष्पत्, २ १०
 नियम, ८ १३४
 नियुक्त ४ २८; ५ ३
 नियुत्, ४ १४०
 नियोग, १ ३६, ५१, ५ ७५; ८ १३०
 निरर्थक, १ ३१
 निरुक्त, ४ ७४, ६ १३४
 निरुक्त-वत्, २ १११, ११२, ११३
 निरुत्, ४ ४९
 निरूप्य, ४ ४८
 तिर्हति, ७ ९१
 निर्णय, २ ११७
 निमग्न्याहवनीयार्थ, २ १४५
 निर्वक्तम्, १ ९६
 निर्वचन, २ २३
 निर्वचस्, २ १०६
 निर्वाच्य, २ १०४
 निर्वाच्य-लक्षण, २ १०३
 निर्हति, १ ४४, ४५
 निवास, १ २५, २९
 निविद्, ३ ५०, ७८; ८ १००, १०४
 निष्ठाचर, ६ ३२
 निष्ठास्त, ८ १०१
 निष्ठीय, ३ १०
 निषण्ण, ५ २०
 निषद्, २ ८२
 निष्क, ३ १४८, १४९
 √नी, १ ९०, २ ५३
 नीयमान, ४ २७
 नु, २ ९१

√नुद् अनुदत्, ४ २३

परा, ४ १३४

नृ, १ ९१, ३ ३, ७ ६०

नृप, ४ ३

नृप-वच, ५ १९

नृपर्षि कुल-ज, ५. ५७

नेजमेव, ३ ५९

नेम (भार्गव), ६ ११७, ११८

निपातिक, १ १७, १९, २ ७१, ७९

नैरुक्त, २ ११९, १ २४

नैश्चत, ७ ९२, ८ ६७, ७ ९२

नोधस्, ३ १२८

पचिन्, ८ ११५

पचि रूपिन्, ४ ९४

पङ्क्ति, १ १३०, ८ १०६

√पच् पपाच, ४ १२६, अपच्यन्त,
५ १७

पच्छस्, ४ १०७, ६ ५०, ७ ४१

पञ्च (जना), ७ ६६, ६९

पञ्चदश, २ १

पञ्चधा, ४ ३५

पञ्चम (स्वर), ८ ११९

पञ्चार्च, ४ १३६ ५ २८, ८२, १०९, १६९

पञ्चाशत्, ६ ५१, ५४

√पठ्, ८ १३९

पणि, ८ २४, २६, ३५, ३६, ३८

√पत्, ३ २३, ७ ५, ८८

अभि-, ४ ६७, ७ ८८

नि-, ५ १४९, निपात्यते, २ ९२, ९३

पतङ्ग, ८ ७५

पति, ६ ७३, १५९, १ ७५, १ १२९,

६ ४०, ५२, ७ ४३, १३०

पतिन, ५ १५१, ७ ८९, १०१

पति व्रत, ४ ३

पति सवननी, ८ ५७

पत्नी, ७ ११९, २ ८, ३ ६

पथि, ५ ३५, १४०, ७ ६५

पथ्या, १ १२८, २ ७८, ७ ९३, १०५,
८ १२५

√पद्

प्रति-, १ १०२, ३ १५०

प्र-, ६ २२, ७ ४३

पद्, ८ ३४, ६ ८५

पद, २ ६३, ९३, ८ ६८, ४ १२१, २

१००, १०३, १०४, १११, ११३, ११७,

१४२ ३ ४६, ८ १७, ६ १७, ८५,

८ २१, ४२, ४३

पद जाति, २ ११४

पद-व्यवाय, २ ११३

पदशस्, ८ १०१

पद-संघात-ज, २ ११७

पदानुसारिन्, ८ ३५

पदाथ, २ १०८

पद्धति, ८ ३५

पद्म निधि, ६ ५५

पयस्, ६ २३, ९४, ८ ३०, ३१, ३४

पयस्विनी, ५ ९२, ८ ७२

पर (मधु), ३ ११७, (मद्य), ६ १४४,

८ ९२, ८ ९७

परम, ३ १२३

परमेष्ठिन्, २ १२५, ८ ४५

पराकदास, ७ ११८

पराङ्मुख, ६ १५२

परामश, ५ २४

परामृष्ट, ५. २३

परावृत्त, ४ ४६

परिकीर्तन, ३ ४७

परिचारिन्, ४ २१

परिदेवना, १ ३५, ५०

परिधि-कर्मन्, ७ ११

परिमिद्धित-कर्मन्, ३ ८४

परि वृद्धित, ३ ५

परिमाण, ५. १५४

परिवर्तिन्, ४ ३४

परिष्वज्य, ४ ६०

परिसंख्या, २ ७१
 परीक्षा, ५ ९४
 परीक्ष्य, ३ ८०, ५ १३
 परीणाम, २ १२१
 परुल्लेप, २ १२९, ३ ५६, १२५
 परुष्णी, ६ ९६
 परोक्ष, ३ १४१, ५ २, ७ १, ९, ८ ५२
 परोक्षवत्, ७ ३१
 परोक्षवैश्वदेव, ५ ४४
 परोक्षोक्त, ४ ३२
 पर्जन्य, १ ८२, ११७, १२२, २ ५, ३६,
 ८ २, १२८
 पर्जन्याग्नि विवस्वत्, ४ ३८
 पर्जन्य अनिल भास्कर, ७ २८
 पवत, २ ३, ३ २३, ६ १३८ ८ १३८
 पर्वत वत् ४ ५
 पलायन, २ १०९
 पलित, ४ ३३
 पवमान (अग्नि), १ ६६, २ २९,
 (सोम), ६ १३०
 पवमान वत्, ६ १३०
 पवित्राक्यान, १ ३६
 पशु पश्यति, ३ १३५, अपश्यत्,
 ६ ११७
 अनु-, ७ ६४
 पशु, २ १३८, ६ ९४, ७ ७४, ८ ११४
 १ पा पाति, २ ३९, ४ ३४, ५
 १२६, ७ २४
 २ पा, ३ ९०, ६ १०२, ११४, ७
 ३१, ८ ३०
 पाक-क्लासन, ६ ७६, ७ १४८, ८ २५
 पाक स्थामन्, ६ ४२
 पाठा, ८ ५६
 पाणि, ४ ७५ ७ १०२
 पातु, २ ३९, ३ २६
 पाद, २ ५, १७, ९०, १३३, १४५, ३
 ७८, १०५, १२६, १२७, १३८, ५
 ७६, १११, १३३, १३५, ६ ३७,
 १२५, १२९, १३५, १५७, ७ ८, ९३,

१२७, १४०, ८ १०९, (वय),
 ७ ९२
 पाद-सूक्त ऋगर्धच नामन्, २ ९८
 पादाध्व, ४ ८
 पाद्यअभ्य मधुपर्क, ५ ७९
 पाप, ४ २२, ६८, ६ १४२
 पाप-कृच्छ्र, ७ ९५
 पाप चेतस, ८ २८
 पाप-रोग, ७ ७२
 पापाभिवाङ्गा, ६ ३७
 पापीयस, ८ १३६
 पाप्मन्, ६ १५३
 पायु, ५ १२७
 पार, ८ २४, ३३
 पार्जन्य, ६ २५
 पार्थ, ३ ५७
 पाथिव, १ ९९, १०५ २ २९, ३
 १५, ६१, ७४, ७६, ५ ४८, ६१, २
 ७२, ३ ९३, ७ १७
 पाथिव मध्यम, १ १०१, ३ ११
 पार्श्व, ५ ६७
 पार्श्वतस्, ७ १५१
 पार्श्वस्थ, ७ १४९
 पालन, ६ ३२
 पालय पालयति, ३ २६
 पावक, ४ ४१, ७ ६१, ९९
 पावन, ८ ८७, ९२
 पावमान, ६ १४५, १४६, ६ १२७,
 १४१, १४४
 पात्र, ६ १४, १५
 पितापुत्र, ५ ६४
 पितु, १ १११
 पितु, ३ १५०, १५१, ५ १०९, १२८,
 (देव), ६ ३, (वरुण), ६ १४,
 १५, (विवस्वत्), ६ १५७, (वात),
 ८ ७१, ८८, १ १२७, २ १२३, ६
 १४७, १५६, १५७, १५८, १५९, ७
 १९, ६८, ७१, ८३, ८ ११२, १२८

पितृत्व, ६ ३८
 पितृ देव असुर, ६ १६०
 पितृ, ७ ८०
 पित्र्य, ६ १५९
 पिशाच, ५ १४६, ८ ११५, ५ १९, २२
 पीति, ३ ७७
 पीत्वा, ६ ११५, ८ ३१
 पुम, १ ४०, २ ९६, ५ ४९, ६ ४०
 पुत्र, ३ ८३, ११५ ५ ७८, १०२, १२७,
 ६ ६८, १४९, ७ ४३, ४९, (गृहपते),
 ७ ३७
 पुत्रक, ४ ६०
 पुत्र काम, ८ ८१, ८२, ८४
 पुत्र काम्या, ४ २४
 पुत्र ता, ३ ११५
 पुत्र शत, ६ २८, ३४
 पुत्र शोक परिप्लुत, ६ २८
 पुत्रिका, ४ ११०
 पुनर् ग्रह, २ ९७
 पुर, ८ ३३
 पुरदर, ४ ७६ ५ १३७, ६ ८१, १०४
 पुरधिया, ३ ७९
 पुरस्, √कृ के साथ, ७ ७६ √जा के
 साथ ५ १८, ७ ८७, ८ ६
 पुरस्तात्, ८ १२३
 पुरा, ५ ७७, २ ९, ७ १२०
 पुरी, ७ ५२
 पुरीष पद, ८ १०२
 पुरुमीळह, ५ ६१, ६८, ८०
 पुरुष (देखिये 'मेघ'), २ १५३
 पुरुष विग्रह, ५ ६८
 पुरुष सूक्त, ७ १४३
 पुरुवरस्, १ १२४, २ ५८, ७ १४७
 पुरोधातु, ५ ६
 पुरोधस्, ६ १४९
 पुरोहित, ४ १०६; ५. १४, १५, १२६,
 ७ ८५
 पुष्कर, ५. १५४, १५५

पुष्पवत्, ६ ५६
 पुस्त्यत्, २ ६३
 √पू पुनाति, ६ १४२
 √पूज्
 प्रति-, ४ ११५
 पूजयित्वा, ५ ७९
 पूजा, ५ ६२
 पूत, ६ १४३
 पूरणाय, २ ९०
 पूरुषाद्, २ १११
 पूर्ण, ३ ९५, ९६
 पूर्व, ६ १०६
 पूर्व ज, ७ ७३
 पूर्व युग, ४ ३६
 पूर्वयुगीन, ४ ३६
 पूर्व सम्भूत, ४ १३
 पूर्वापर, ६ १४२
 पूर्वापरी भूत, १ ४४
 पूषन्, १ ८२, ११८, २ २, ४, १०, ६३,
 ३ ९५, ९६, ५ १४८
 पृथक् कर्म स्तुति, ६ ७०
 पृथक्त्व, १ ९५, २ २८, ७१, ३ ४९,
 ५ १२८
 पृथक् पृथक्-स्तुति, ३ ४०
 पृथक्-स्तुति, ३ ४२, ४३, ४ ४२
 पृथग्-देवत, ४ १२४
 पृथिवी, १ ११२, १२९, २ ११, ७४,
 ८१, ७ ५३
 पृथिवी जात, ७ ७२
 पृथिवी-स्थान, १ १०५
 पृथिव्य् अन्य आश्रय, १ १२०
 पृथिव्य् आदि, ७ ५२
 पृथु श्वस्, ६ ७९
 पृथि-मातृ, ५ ७१
 पृथि-सूक्त, ५. ११३
 पृथ्वी, ४ १४१
 पृथग्, ६ ८५
 पृष्ट, ५ ३६

पृष्ट वत्, ५ ७१
 पृष्ट, ५ ७५
 पैजवन, ५ १६२
 पैतामह, ७ १४८
 पौरुष, २ १५, (सूक्त), ७ १४३, ८ १०९
 पौलोम, ७ ५३
 पौलोमी, ८ ६३
 पौष्ण, ३ १०८, ५ ११८; ६ ४३, ८ ८, २३, ५ ११४, ६ ७१, ७४
 पौष्ण स्वावित्र सौम्य, ४ १२५
 प्रउग देवता, २ १३५
 प्रकरण, २ ९३, ९६, ११८
 प्रकल्पित, ३ ८९
 प्रकाश, २ ६५ ५ २२
 प्रकाशयत्, ५ २२, ६ ५९
 प्रकीर्तन, ४ ३०
 प्रकृत, ३ १२७
 प्रकृति, २ १०८
 प्रक्रिया, १ ९५
 प्रक्षिप्य, ३ १३२, ६ ८८, १०५
 प्रगाथ, ३ १११, ६ ३५, ३८ ४३, ५०, ८०, ८४
 प्रचोदित, ५ ७५
 प्रच्यवयत्, २ ५९
 √प्रक्ष, ५ ६९ ६ १३७, ८ २६, २७, ३३
 प्रजा, २ २७, ३ १, २ ४६, ७ १५७, ८ १, ३, ४, १८
 प्रजा काम, ५ ९७, ८ १८
 प्रजापति, १ ६२, ८३, १२५, २ १२४, ३ ६९, ७२, ८८ ५ ४४, ९७, १००, १०१, ७ १७, ४८, १३७, १४१, ८ १०२, १२७
 प्रजापति-तस्, ७ ५०
 प्रजापति देवता, ८ १०८
 प्रजाधिन्, ३ ३२
 प्रजावज्-जीवपुत्र, ५ ९२
 प्रजावत्, ८ ८०

प्रणव, ८ १२३
 प्रणीत, ७ ६७
 प्रति गृह्य, ३ १५०, ५ ३५
 प्रतिपूजक, ५ ९०
 प्रतियोग, ३ ५२
 प्रतिराध, १ ३७, ५५
 प्रतिलोम, २ ९
 प्रतिवाक्य, १ ३७, ५०
 प्रतिषेध, १ ३८, ५२, २ ९२
 प्रतिहार, ८ १२३
 प्रतीची, ७ ११५
 प्रतीचीन, ७ १८
 प्रखवत्, ६ ४६
 प्रत्यक्ष, १ ११ ८ १२९
 प्रत्यवरोह, १ १०२
 प्रत्याख्यात, ५ ६०
 प्रत्यश्रुचम्, २ १४६, १५१, ३ ३४, ६ १ ८ ८१, ९१
 प्रथम (स्वर), ८ ११२, ११४
 प्रदर्शित, ५ २५
 प्रदाय, ७ ९९
 प्रदिष्ट, ३ ४८, ४९, ८१, १४१, ५ ११
 प्रधान, १ ७८, २ ९९, ४ ४, ५, ५, ९६, ८ ९९
 प्रधान-गुण-भूत, ५ ९६
 प्रधान तस्, ५ ११०, ७ ११६
 प्रपद्यमान, ७ १३१
 प्रपन्न, ६ १५२
 प्रबोध, ७ ५५
 प्रभव, १ ६१
 प्रभा, ६ १२६
 प्रभाव, १ ३४, ८ ३१
 प्रभूत्व, २ ६, ७ ६०
 प्रभूत, ७ ६०
 प्रमाद्, १ ३, ५६
 प्र-यत्, ७ १९
 प्रयज्ञ तस्, ८ २४
 प्रयाज, ७ ७४, ८ १०३

प्रघात, ५ ७२
 प्रयुक्त, २ ६९
 प्रयुञ्जान, ८ १३४
 प्रयोग, १ ९०, ५ ९४, ७ १८, ११०, १५४,
 ८ १२४
 प्रयोग तस्, १ ५९
 प्रयोग विद्, १ १२
 प्रलय, १ ६१
 प्रलाप, १ ३७, ५५
 प्रवचयत्, ५ ७३
 प्रवर्त्य, ५ ३५
 प्रवर्तिका, १ ३५, ५७
 प्रवाद, २ १८, ३ ४६, ६५ ४ ३२, १०७
 प्रवाद-बहुल-स्व, ४ ४३
 प्रविभज्य, २ १०६
 प्रविश्य, ७ ४७
 प्रव्यथित, ५ १८
 प्रशासा, १ ३५, ४८
 प्रशास्य, ३ ३ ४ ६०
 प्रशस्य, ४ ९५
 प्रश्न, १ ३५, ५०
 प्रसङ्ग, ३ ४७, ५२, ६८, ४ १९, २८, ८१,
 ५ १४२, ६ ७२, ३ ५३
 प्रसङ्गज, ३ २८
 प्रसङ्ग-तस्, ५ १७१
 प्रसङ्ग परिकीर्तन, १ १२
 प्रसन्न, ५ १९, ६ ८९
 प्रसाद्य, ५ १८, ५०, १२५
 प्रसूति, १ ९६, ३ ३०
 प्रस्कण्व, ६ ८५
 प्रस्ताव, ८ १२२
 प्रस्तोक, ५ १२४
 प्रस्वापिन्, ६ २
 प्रहसित मनस्, ६ ६०
 प्रहित, ४ २५, ६ १४९
 ग्रहष्ट, ४. ३
 ग्रहाव-तनय, ७ ५३
 ग्रह, ४ ७१; ५ ७६, ६ ५४, ८ ४

प्राउग, ४ ९२, ६ १७
 प्राक्, ३ १०, ८ २१
 प्राच्, ७ ११५
 प्राजापत्य, ३ ६९, ५ १४३, ८ २२, ४१,
 ६४, ८०
 प्राजापत्य आश्वमेधिक, २ १५३
 प्राञ्जलि, ५ ५१, ६ ३८
 प्राञ्जलि स्थित, ८ ४
 १ प्राण, २ ३५, ४ ३९, ४०
 २ प्राण, ७ ७१ ६ १४४
 प्राण दृष्टि, ८ १३५
 प्राण भूत, २ ५१
 प्राण वत्, ७ ८२
 प्राण-अपाण, ७ १२६
 प्रात सवन, १ ११५
 प्रादाय, ३ २४
 प्रादुर्, √अस् के साथ ५ ६७ ७ ४५ ६३
 प्राधान्य, १ ६, ७५, ७ १३८ ३ ७
 ६ १७, ८ ६०
 प्राधान्य तस्, ५ १०७ ८ ६२
 प्रायशस्, ३ १५१
 प्रायश्चित्ताथस्, ८ ६९
 प्रासाद, ६ ५६
 प्रास्त, ५ १७
 प्रिय, ७ १४९
 प्रियकाम्या, ६ १४९
 प्रियत्त्व, ४ ७०
 प्रीत, ३ १०३, ५ ७१, १३७; ६ १०४,
 ७ ४६, ७६, ७७, १००, ८ ८
 प्रीतात्मन्, ४ ५५
 प्रीति, ५ १, ७ १४९, १५०
 प्रेत, ७ १३, १५, १८
 प्रेतानुगमन, ७ १४
 प्रेताशिस ६ १५८
 प्रेप्सु, ८ १३
 प्रैष, १ ३५, ५७, २ १५२, ३ ३६, ८
 १००, १०३
 प्रैष-गत, २ १५४

प्रैव सूक्त, २ १५३, १५४

फल, ८ १३४

फल प्रदर्शन, ३ १५१

बद्ध, ६ १४, ७ १३५

बद्धा, ४ २१ ६ ८८

बध्यत्, ५ १३४

बन्ध,

प्रति अबध्यत्,

बन्धु प्रभृति, ३ ५९, ७ ८६

बभ्र, ५ ३३

बर्ह

नि बहय, ४ ६९

बहिस, १ १०० २ १४८ ३ ५

बल, १ ८७ २ २५, ३ ६२, ४ ११३,

१३२ ६ ११४

बल-काम, ३ ३२

बल कृनि, १ ८७

बल पुष्टि कर, ८ ३२

बलवत्तर, ५ ९४

बल वित्त, ३ ६१

बहु, १ १३, ३ ८२

बहत्वेकत्व-लक्षित, ३ ३५

बहु देवता १ ७५ ४ ७

बहु दैव, ३ ८०

बहु दैवत, २ १२८, १३३, ३ ४१, ४३,

१२८ ६ ८४

बहुधा, ४ १४३, ५ ३९, १५१

बहु प्रकार, १ १९

बहु प्रधान, ४ ८

बहु रूपत्व, ६ ५५

बहु वत्, ३ ८२ ४ १०७, १०८

बहुवत् स्तव ३ ८९

बहु विध, ५ ६३

बहु व्रीहि, २ १०५

बहु शस, ४ ८, ६ १५७

बह्वेक भातु ज, २ १०३

बाधितुम्, ७ ५४

बाध्यमान, ७ ५५

बार्हस्पत्य, २ ९, १२४ ६ २५

बाल, ४ १२०

बाल भाव, ४ ३

बाष्कल, ८ ८५

बाहुश्रु य, ८ १३०

बाह्य (मन्त्र), ५ २४

बिभ्यत्, ४ ८९

बुद्धि, ८ १३०

बुध्वा, ५ ७० ७ ५७

बुध् बुध्येत, ३ ४८ अबुध्यत, ५

६९ बुबुधे ६ १००, १५०

अनु-, ५ १११, ६ ३६

बुध्न, ५ १६६

बुध्न्य ५ १६६

बृबु, ५ १०८

बृहत् (स्तोत्र), ८ ७८, (साम), १ १२१

बृहती ८ १०५

बृहदुक्थ, २ १३१ ३ ५५

बृहस्पति, १ ८२, १२२ २ ३, ३९, ३

८६ १३३, १३७ १५६, ४ १२, १३,

५ १०२ ६ ११०, ११२, ११६,

७ १३७

बृहस्पति प्रचोदित, ३ १३६

बृहस्पति-स्तुति, ४ ८५

बोधित, ८ ७

ब्रह्म कमन्, ५ १५८

ब्रह्म चारिन्, ४ ५९

ब्रह्म जाया, २ ८२ ८ ३६

ब्रह्मणस् पति, १ १२२, २ २, ३ ६६ ७१

ब्रह्मन्, १ ६२, २ ४०, ११९ ७ १०९,

८ १४०, ३ १८, ८ ९३ ५ १२६

५ १२० ७ ७०

ब्रह्मविता, ४ ९५

ब्रह्म वादिन्, २ ८४

ब्रह्म हन्, ६ १२२

ब्राह्म, २ १०५, ८ ९८, ४: ११३, ६

१५२, ८ १०९

ब्राह्मण, १ ४१, ५ २५, १५७, ६ ११७,
१२९, ७ ७२, ८ १००, ११०,
५. १५८
ब्राह्मण कुमार, ५ १५
ब्राह्मण शास्त्र, ७ १४
ब्राह्मणस्पत्य, ३ १०७
ब्राह्मण उक्त, ५ ११
ब्रुवत्, ६ २०
ब्रू अब्रूताम् ३ २१
निर- ब्रयात्, २ १०६

जक्त, ४ २५
भक्ति, १ ६, ७३, ७६, ७७
भक्ति तत्स, ५ १७२
भक्त भक्तयेत, ७ ३१
भक्त्यस्त्वा, ६ १०३
भंग, २ १०, ६२, ५ १४७, ६ ८, ७
११४, ८ १२८
भग देवत, ५ १६९
भगवत्, ५ ७८
भग अन्तर, ७ ४६
भज्, १ ५, १८, ७८, ८८, ११३ २
७३, ७४, ७६, ८०, ८१, ३ १४, ७
६५, १४३, ७ ११२, ८ २९
भण् भण्यते, ३ ५४
भयोद्विग्न, ८ ३५
भरद्वाज, २ ६३, ३ १२८, ४ ९८, ५
१०२, १२४, १३७, १३९, १४०
भर्तु, ७ १, ४७, १३३
भवत्, १ ६१, ५ १२६
भविष्य, १ ४०, ४ २९
भव्य, १ ४०, ६१
१ भाग, ३ ८९, १३६, ६ २१, २२,
८ २९
२ भाग, ३ ४५, ५१ ५, १६७, ३ ९८
भाज् (सूक्तस्य), १ १००
भात्, २ ६३
भारत, ५ ८३

भारती, ३ १३, ५. १०१
भार्गव, २ ५१, ८ ७०, ४ ११
भार्ग्यश्च, ६ ४६, ८ १२
भार्या, ५ ५९, ८ १९
भाह्वेयी, ५ १५९
भाव, १ ७५, ३ २१, ४ ५९, ६८, ७३,
६ ३८, ८ २१
भाव प्रधान, २ १२१
भात्रयस्य, ३ १५०, १५१, १५६
भात्रयस्य सुत, ३ १४३
भाव-विकार-ज, २ १२२
भाव वृत्त, २ ८६, १२०, ५ ८७, ११२,
७ १२३, १४०, ८ ४६, ५६, ५९,
६५, ९१
भाव-वृत्ति, ७ १३५
भाव्य, ३ १४०
भाष आभाषत
अभि-, ५ १००
प्रति-, ४ १२
भासयत्, २ ६२
भास्कर, ७ २८
भित्त्वा, ७ ५२
भिद् विभिद्, ६ ६४ भिन्दि, ७
१४९, अभिनत्, ७ १५०
भिन्न (सूक्त), १ २४
भिषज्, ७ १५४
भीत, ४ ६९, ८९
भीम-पराक्रम, ४ ६७
भुज् भुजते
उप-, ८ ११५
भुरिज्, ८ १०७
भुवन, ७ ६०
भू, २ ७३, ७ ५, ९३, १०१
भू भूत्, ६ ५७, ९०
सम्-, ५ १५०, ७ ६
१ भूत, १ ४०, ६१
२ भूत, २ २४, ३ २४, ३०, ७ १२८
भूत-करण, ८ ८५

भूत-वत्, ४ २९
 भूतांश, ८ १८, १९
 भूति, ३ ३२
 भूपति, ५ १९
 भू म, ५ १११, १२३, ८ ४७
 भृ बिभर्ति, ८ ७६
 भृगु, ५ ९९, १ १२८, ४ ९८, ६ १५६, ८ १२५
 भृशम, ४ २३
 भेषजार्थम्, ७ ९१
 भेषज्य, ८ ६४
 भोज, ६ ४२, ४ ९८, ८ २३
 आज आजते, १ ९३
 आनृ (मध्यम), ४ ३३, (यवीयस्) ४ ११२, (कनीयस्), ७ १३, ७ १५५, (चत्वार), ३ ५९, (त्रय) ४ ३२ ७ ८९, (मरुत) ४ ५१, (वृक्षणा), ७ ६१, (पूर्वजा), ७ ७३, ७७
 अ, ८ ११३, ११७
 मख, १ ११५, ३ ४५
 मङ्गल, १ २५, ३२
 मज्ज मज्जति
 नि, ३ २४
 मज्जा, ७ ७९
 मणि, ५ १२३
 मण्डल, ३ २८, ११६, ५ १०३, ६ ३९, १३०, १४५
 मण्डक, १ १०९ ६ २७
 मत, ३ १२२, ५ ५६
 मति, ३ १४४
 मत्त, ७ २३
 मत्स्य, ५ १५२
 मथ् मथ्यति, ३ ६२
 मथ्यमान, ३ ६४
 मद् मादयसे, ४ ७८
 मद् गृह, ६ ५५

मद् देवत, ७ ७४
 मद्-देवत्य, ७ ७४
 मधु, ३ १७, १९, २१, ९६, १२३, ४ १२६, ६ १४५
 मधुलुन्दस्, २ १२६, ३ ५७
 मध्य, ३ ११६, ४ १३४, ८ ११३, १३७
 मध्यहिन, २ ९, ७ १२१
 मध्य भाग, २ ३१
 मध्यम, १ ६६, ६९, ९३, ९४, ९९, १३०, २ २६, ३८, ४१, ४३, ४५, ७२, ८५, ३ ७६, ९९ (अग्नि), ११६, १२० (अग्नि), ४ ३३, ५ १० (अग्नि), ३५ (अग्नि), ४३ (वाच्), ४८ (अग्नि), ४९ (वाच्) ८८ (पृथिवी) १६६, ६ ११ (अग्नि), १२८, १२९, १५५ (यम), ७ ३३ (अग्नि), १०६, १०७ (वाच्) १४२ (अग्नि), ८ ३९ (अग्नि)
 मध्यम-स्थान, १ १०३, १२१, २ ७, ३ ७४
 मन् मन्वते, १ २४, मन्वते, ३ ७६, ११२, १३०, १५५, १५६, मन्वते, ३ १००, ४ ४, १८
 मन आवर्तन, ७ ९०
 मनस्, ५ ५४, ५५, ६०, ६५, ७३ ७ ७१, ८२, ८५, ८ ७६, १३२
 मनु, २ १२, १३०, ३ ५५, १२१ ७ २, १०३, १०७
 मनुष्य, ५ ९, ७ ६८, ७१
 मनो वाग्-देह भोजन, ६ १४३
 मन्त्र, १ ८०, ८६, ८७, ११९, २ २०, २१, ६८, १०१, ११०, ११२, ११८, १३२, ३ ३७, ४६, ४८, ५ ५८, ९४, ९५, ९६, ६ १५७, ७ १६, ४५, ११०, १३८, ८ १०९, १२३, १३१, १३८, २ १३२, ८ १२९
 मन्त्र तस्, ७ १७
 मन्त्र दक्षिन्, १ ३४, ५ ६६

मन्त्र-दश, १ १, ५ ५८
 मन्त्र दृष्टि, १ ३
 मन्त्र वैवस्व विद्, ८ १३३
 मन्त्र प्रयोग, ५ ९४
 मन्त्रय
 अनु- अमन्त्रयत्, ५ १२८
 अप- मन्त्रया चक्रे, ५ २०
 मन्त्र वित्तम, २ १२२
 मन्त्र विद्, १ २२, ९०, ५ ९३
 मन्त्रविन् मन्त्रवित्तम, ३ १३३
 मन्दु २ १४१, -दू, २ १४२
 मद्र (स्वर), ८ ११३, ११५, ११०, १२०
 मन्द्र कर्षण-सयुक्त ८ ११३
 मन्द्र-स्थान समाहित, ८ १२०
 मन्यमान, ४ १२१
 मन्यु, १ १२३ २ ५२, ४ १२४
 मन्त्रान् ६ ११२
 ममता, ४ ११
 ममता सुत, ३ ५६
 मरगि, ५ १४३
 मरुत, १ ८३, १०३, ११७ १२७, २ ३५ ३ ३७, ७४, ७५, १०७ ७ १०५
 मरुत णति, ६ ११३
 मरुत्वत्, ३ ९४, ४ ५६
 मरुत् गण, २ १०४, ५ ६७
 मरुत् गण प्रधान, २ १४१, १४३, १४४
 मह, ८ १४०
 महविन्, ७ ११३
 महर्षि, १ ८१, ५ ६५ ८ १२४
 महातपस, ४ २५
 महा दोष, ४ ११९
 महा द्युति, ५ १४७, १५२
 महा नद्गी, १ ५५
 महा नदी, ६ ९६
 महा नास्त्री (ऋच), ८ ९८ १००
 महा यज्ञ, ४ ११२
 महा य स, ५ १५२
 महा १२, ५ ३४, ३५
 मन्मिन् ५ १६४

महिषी, ५ ५६, ६३
 महेंद्र २ १४४
 महेंद्र सदन, ४ ७६
 महौषधि, ८ ५६
 मा मीयते, ५ १५३
 निर- मिमीते, ७ १२९
 मास, ४ २९, ७ ७८
 माता पुत्र, ४ ३९
 मातृ, ६ ९० ७ ९७
 मातृ त्व, ९ ३८, ९१
 माध्यमिक (गण), ३ २५
 मान, ५ १ ३
 मानस, ७ २१ ८ ६९
 मान्य, ४ ५२, ५ १५३
 मान्यव, ७ ११७
 मामक, ७ ४४
 माया २ ४२
 माया बल ७ ८८
 माया भन् ८ ७५ ७६
 मायाविन् ७ ८८
 मारीच ५ १२३
 मारुत ३ १०७
 मारुतेन्द्र, ४ ४४
 माम, मामि मामि, २ २
 मास, २ ५६, ४ ३४
 माम कृत्, २ ११२
 मामिक, २ १६
 माहात्म्य, १ ७०
 माहित्र (सूक्त), ८ ८६
 मित, ८ १००
 मिताक्षर, २ ९०, ९२
 मित्र, १ १२३ २ ४, ४८ ५ १४७, १४८, ७ ११४
 मित्रातिथि, ७ ३५
 मित्रार्यमन्, ६ ८१
 मित्रा वरुण, १ ८३ ३ ९४
 मित्रा वरुण-दक्षाश तुविजात-भगर्गमन् ४ ८२
 मित्री-कृत्य, २ ४८

मिथुन, ६ १६२; ७ १

✓मी : मीयन्ते,

प्र-, ४ १२०

मीन, ६ ८८

मुख, ५ १, ६ १०२, १५१

मुख्य, ३ ३७

मुख्यतम, २ ८

✓मुच् मुमुक्षु, ६ ८९

प्र- मोक्षिरे, ६ १५

मुद्, ५ ५३

मुद्गल, ६ ४६, ८ १२, २०

मुधा, ७ ४३

मुनि, ३ १०६, ११५, ५ १४४, ७ ४७

मुनि सत्तम, ८ १८

मुसल, ३ १०१

मुसलोल्लसल, १ ११३

✓मुह मुमोह, ७ ८८

मुहूर्त, ४ ६६, ५ १४९, ७ १५७

मृत, २ ३२

मूर्तिमत्, ७ १४६

मूर्धन्, ४ ६०, १२०, ८ ११२, ११६

मूर्धन्वत्, २ १८

मृग, ४ ८९

मृत, ७ ३५

मृत पत्नी, ७ १३

मृत शिष्ट, ७ ११

मृत्यु, १ १२२, २ ५९, ७ १०, १६

✓मृत् ममर्ष, ४ १३

मेघ, ४ ४१, ५ १६६

मेदस्, ७ ७८

मेघ (पुरुषस्य), २ १५३

मेधा, २ ८४

मेधातिथि, २ ६४, १३०, १५५, १५७;
३ ५५

मेघा-सूक्त, ८ ५८

मेघ्य (जम्भ), ४ २७

मेजी, ४ १७, १२३

मैत्रावरुण, २ १२७; ३ १०५; ४. १२५,

२५ वृ०

-जी, ६ ६५, ७२, १२४

मैत्रावरुणि, ५. १६०

मैथुन, ४ १२, ६ १५४, ७ ४, १३३

मोहित, ७ ५४

यक्ष, ७ ६८

यक्षम नाश, ७ १५४

यक्षमे नाशान, ८ ६४, ६८

यक्षम नासिन्, ७ १३३

यक्ष्यमाण, ५ ५०

✓यज्, ८ १११, ६ २१, ७ ५९, ८

७, ५ ५३, ८ ५

यजत्, ६ ५८

यजमान, ६ ७२, ७ ७०, ८ ८०

यजुस्, २ १५२, १५३, १५४, ८
११०, १३०

यज्ञ, ३ १३६, ५ १५८, ७ ३१, ७४,
७७, ११३, ८ १३०, १३५

यज्ञार्थम्, ७ १४३

यज्ञिय, ७ ७२

यज्वन्, ६ ७३, ७४

✓यत् यतेत, २ ११९

यथा-क्रमम्, २ ७१

यथा न्यायम्, २ २३

यथा रूपम्, ७ १३८

यथा वाक्यम्, २ १२२

यथा विधि, ८ ६

यथा स्थानम्, २ ७२, ७ ५२

यश्छया, ५ ९९

यद्-दैवत, ८ १०३

✓यस् यङ्गति, ३ १

प्र- अयङ्गत्, २ २५; ६ १६२

यम, १ १२३, २ ११, ४७; ३ ५८, ६
१५४, १५५, १५७, १५८, १५९, १६३;
८ ४८

यम (यमज), ६ १६३

यम पुत्र, २ ६०

यम-यमी, ६ १६३

यमी, १ १२८, २ ७४, ८३, ६. १५४
 यव, ६ ५८
 यविष्ठ, ७ ६१
 यवीयस्, ४ ११२
 यशस्विनी ४ ५७, ५ ५४
 यहु, ३ ६४
 ✓या
 अनि अवात्, ६ ११० ७ १०४,
 अयुस, ७ ९०; ८ २०
 ✓याच् अयाचतम्, ३, २०
 याचना, १ ३५, ४९
 याजमान, ७ १३८
 याज्ञिक ८ ९९
 याज्य ५ ५५
 याज्या, २ १३८
 याज्यार्चित, ५ ६४
 यात्, ८ ८७
 याथातथ्य, १ ४
 यादृक्चि, १ ३०
 यादृश्, ७, १३४
 यावत्, ८ १९
 युक्त, ४ २४
 युग, ६ १०५
 युगपत्, ५ ९८, ६ ५४, ८ ३७
 युग-पर्यन्त, ८ ९८, -म्, ३ २४
 युग्म, ४ ४४, ७ ३०, ८ २९
 ✓युज्
 नि अयोजयत्, ५ ७४
 प्र युज्यन्ते, ७ १५, युक्ते, ८ १३१
 सम् यजयेत्, १ ११८
 युद्ध, ४ १३१
 युद्धादि, ५ १३४
 युद्धोपकरण, ५ १२८
 युष्, ५ १२४, १२५, ७, ६३
 युष्यत्, ८ १६
 युयुस्सु, ५ १३५
 युव-काम्या, ६ ७७
 युवम् युष्मान्, ८ २७
 यूप, ४ १०१

यूपयत्, ३ २८
 योग, ७ ८८, १०९, ८ ८४, १३०, १३६
 योगित्व ३ ११५
 योग्यमान, ६ १११
 योद्धृ, ५ १२७
 योध्ययत्, ४ १३२
 योनि, १ ६२, ८ १४०
 योप, -पी, ४ १००
 यौवन, ६ ५५; ७ ४४
 रक्षस्, ८ ११५
 रक्षो भूत, ६ ३४
 रक्षो-हन्, ६ १३४
 रजत, ७ ७८
 रजस (त्रीणि), २ ६३
 रण-देवता, ५ १३१
 रति, ६ ५५
 रत्न, ५ १२३, ६, ५२
 रथ, १ ८४, ११०, ३ ८६, ९५, १४७,
 १४९, ५ १४, १५, १२३, ८ १२, ३५
 रथ-गोप, ५ १३१
 रथ-ङ्गि, ६ १०५
 रथतर, १ ११६, ८ ७८
 रथ-प्रोष्ठ, ७ ८५
 रथवीति, ५ ५०, ७३, ७४, ७७
 रथस्थिति, ८ १२७
 रथाभिमर्शन, ५ ११२
 रथीतर, ४ ७३
 रपस्, ७ ९५ ८ ५०
 ✓रभ् रेभे
 आ, ७ ५४
 ✓रम् रमये, ६ ५४
 रम्य, ५ ७५
 रयिमत्, ४ ७२
 रव, २ ३५, ४२
 रवि, ३ १०, १७
 रश्मि, १ ६३, ६८, ९४, २ ६२, ७७,
 ३ १७, ४ ३८, ५ १३०, (सप्त)
 ४ ३३

रस, १ ६८, २ ३२, ७ १२७
 रसादान, २ ६
 रसा-पार निवासिन्, १ २४
 रहस्व, ६ १२९
 रह सयांग काश्या, ४ ५७
 राका, १ १२८, २ ७८
 राका सिनीवाली, ४ ८७
 राक्षस, ५ १४५, ७ ६८
 राक्षोम, ६ २८
 राक्षोम आम्रय, ८ ४०, ६५
 राजन् (वरुण), ६ १४, (नाहुष)
 २०, (कुरुक्ष) ४४, १३८
 राज पुत्र, ७ १५५, १५६
 राज पुत्री, ५ ५३, ५४
 राज यक्षम हन् ८ ६४
 राजवि, ३ ५४, ४ ९८, ५ २९, ५०, ६
 ५१, ७ २, १४७
 राज्ञी, ४ २
 राज्य ७ ५४, १५७, ८ १, ४, ५
 रात्रि, ४ १३२, ५ ८४, ६ १९
 रात्रि-सस्ताव, ३ १०५
 रात्री, १ ११२, २ ७४, ८४, ५ ७४,
 ७५ ८ ४४
 राज्य उपस्, ३ १३८
 √राध् राधयत, ८ ९८
 राङ्ग, ८ २
 रासभ, ४ १४१
 राहूगण, २ ४५
 रिकथ, ४ ११
 √रिम् रिभयत, ३ ९६
 रिरसु, ४ ५८, ५९
 रकम, ५ १०२
 रकम वक्षस्, ५ ६८
 √रुद् अरोदीत्, २ ३४
 रुद्र, १ १०३, १२२, २ ४, ३३, १ १२७,
 ५ ४७, ८ १२८
 रुद्र पानी, ५ ४६
 रुद्र सुत्तु, ५ ६९

रुवत्, २ ५९
 √रुह् रोहति, ७ १३
 अधि-, २ ६७
 आ- रुहोह, ७ ४
 रुहि-गत, २ १०२
 रूप, २ ११९, ३ ७६, ४ १८, ८ १११
 २ १५८, ३ ४
 रूप कृत्, १ ८४
 रूपवत्ता, ७ ४५
 रूपवद् भाव, २ १०७
 रूप विकर्तु, ३ २५
 रूप वीर्य, ४ १३४
 रूप-सपक्ष, ३ १४४
 रेतस्, ४ १११, ५ १४९
 रैवत, २ १३
 रोग म, ३ ११३
 रोगापनुत्ति, ३ ११४
 रोदसी, १ १२९, २ ७८, १४३, १ ८३
 ११३, ४ ६, ९८, ७ ९४, ९५, १२६,
 ८ १२५
 रोमन्, ४ २, ७ ७८
 रोमशा, २ ७७, ८३, ३ १५५, १५६
 रोह १ १०२
 रोहित, ४ १४०
 रौदसी, ५ ११७
 रौद्र, ३ १३९, ५ १७३, -द्री, ३ १०८,
 ५ ३८
 रौद्र-सौर्य-औषस्, ४ ९९
 रौप्य, ७ ५२
 राशम, ५ ३४
 √लक्ष, ५ १५४, ७ १४०
 उप-, १ १२, ८ ७९
 लक्षण सपद्, १ ११
 लक्षित, ८ ८१
 लब्ध-वत्, ५ ६६
 लब्धवासु, ७ १०२
 √लम्, ६ ६८, ७ ५०, ८ १८
 उप-, २ १३४, ४ ५२

काच, ८ ५१

काचा, १ १२९, २ ८४

काच, ८ ४०

लिङ्ग, १ ४५, ८६, ८७, २ ९६, ९७,
१००, १०२, ११८, ३ ११०, ८ २१,
८१, १०४

लिङ्ग तस, १ २०, ३ ३९, ६ ६९

लिङ्ग भाज, ३ १११

लिङ्ग वाक्य, ५ ९३

लिङ्ग-वाक्य विकार, ७ १०८

लिङ्गोक्त-देवत, ४ १२९, ८ ६५

लुप्त, २ १२९, ३ ५५

लोक, १ १३०, २ ६२, ७ १२७, (अथ),
१ ९०, १०१, २ ५०, ६ १२१,
१ ९२

लोकाधिपति (अथ), १ ७३

लोकाधिपति (अथ), ७ १२१

लोप, २ ११६

लोपामुद्रा, २ ८३, ४ ५७

लौकिक, २ १०१

लौक्य, १ ४

लौक्य, ८ ३१

वशाज, ६ ३९, ५८

वश्य, ६ १४२

वस्तु काम, ७ ८४

✓वच वक्ष्यामि, १ १, ४ ३२, (मा)
वोच, ३ १९, ऊच, ७ ६, उच्यते,
३ १५३

प्र- वक्ष्यामि, १ ८५

प्रति- ऊचु, ६ २१

वचन लिङ्ग, १ ४३

वज्र, १ ८४, ८७, ३ २३; ४ ५, ६ ८२,
१२३, १५०, ७ २५, १२९, १५०

वज्र छक्, ७ ३२

वज्र-संस्तव, ६ १२०

वज्रिन्, ३ २३, ११५

✓वद् वदति, ४ १७

अभि- वदन्ति, ८ ९६, अवाद्य
यताम्, ५. ६५

वि-प्र-, ४ १०

सम्- ऊदे, २ ८५, ऊदिर, ४
१०५, ६ ८९; ७. ८१

वध् (मा) वधीः, ४ ५२; वधीत्
३ २१

वधू, ३ १४७, ६ ५१, ७ १३१, १३२

वधूमत्, ३ १४९

वन, ६ ३५, १०१, १३८, ८ २, वनानाम्
(पति), ३ २६

वनस्पति, १ ६६, १०९, २ १५०, ३
२६, २७, ७ ६२

✓वन्द् ववन्दे, ४ २

✓वप्

निर्- उच्यते, १ ७८, ११९, वपन्ते,
२ १६

वपुस्, ४ ६६

वयस्, ५ १४६

वर, ३ २४, ४ ७१, ७४, ६ ५४, ७
५०, ६५, ७६

वर-दात्र, ७ १३२

वरिष्ठ, ७ ८७

वरिष्ठा, ५ १४४

वरुण, १ ११७, ११८, १२२, २ २, ४,
११, ३२, ५ ९८, १४७, १४८, ७ ११४

वरुण देवत, ६ ९३

वरुण मित्र-देव, ४ ६

वरुणानां, ३ ९२

वरुण अर्धम मित्र, बहु०, ३ १०७, ६
५०, ८ ८६

वरुण इन्द्र अग्नि सोम, बहु०, ८ ४१

वर्ग, १ ५, २ ८५ ८६, ८७, ७ ११६

वर्ण, २ ११६, ७ १५

वर्ण-भोग आदिक, ३ १४५

वर्ण-भोग अविरोध, ३ १४४

वर्ण-संवात, २ ११७

वर्तन्ती, ६ १३७

वर्तिन्, नी, ३ १२
 वर्मिन्, ५ १२९
 वर्ष, बहु०, ७ ४२
 वर्ष-सहस्र, ६ २०
 वर्षा, बहु०, २ १३
 वर्षिष्ठ, २ ६७
 वल, ६ ६४
 वला, २ ९३
 वला, ६ ७९
 वषट्कार, ७ ६१, ८ १११
 √वस् वसति ३ १३४, उवास ७ ४३,
 ऊषत्, ६ ३५
 नि, ७ १४७
 वसत्, ६ ३६
 वसति, वस घातु, ५ १५६
 वसन्त, १ ११५
 वसन्ती, ६ ४०
 वसिष्ठ, २ ६२, १३०, ३ १२८, ४ ९८,
 ११९, ५ १५०, १५१, १५४, १५७,
 १५८, १६३, ६ ११, ३४
 वसिष्ठ-द्वेषिन्, नी, ४ ११७
 वसिष्ठ-क्षाप, ७ ५९
 वसिष्ठ-अगस्त्य, ५ १६४
 वसु, ५ ६३, १३९; ६ ८५
 वसु, बहु० १ ११६, २ १२, ८ १२५
 वसुकण, ३ ५५
 वसुक, ७ ३०
 √वह्, ६ २१, २२, ७ ६५
 आ अवाहयत्, ३ १३३
 वहन, १ ११९
 वाक् पूर्व, ८ १११
 वाक्-प्राण, ४ ३९
 वाक्य, २ ८८, ८९, १००, ११७, ८ ६४
 वाक्य-अ, २ १०४
 वाक्यार्थ-निर्णय, २ ११७
 वाक्यार्थ-वृत्तान्तार्थि, १ ४१
 वाक्-सूक्त, ८ ४३
 वाग्-देवस्य, २ १२५; ८ १२२

वाग् विद्वास्, ७ १११
 वाष्, १ ७४, १२८, २ ३९, ४४, ५०,
 ७२, ७६, ७९, ८१, ८४, १३८, ३
 १२, १४, ४ ३६, ३९, ७२, ८५,
 ११३, ११४, ११५, ११६; ५. २, ९८,
 १००, ६ १२१, १५२, ७ ७१, १०६,
 १०७, ८ ८, ७६, ९१
 वाचस्पति, १ १२५, २ ४४; ३. ७१
 वाच्य, १ ६२, २ ९६
 वाज, ३ ८३, ६ १३५
 वाजिन्, ७ ३, बहु०, २ १२; ४ १४१,
 १४२
 वाजिन देवत, ५ १६७
 वात, १ १२५, २ ५
 वातजृति, ८ १२७
 वात-देव, ८ ४९
 वाधूय, ७ १३४
 वाध्वस्य, २ १५५
 वाम, ४ ३३
 वाम-तस्, ४ ८९
 वामदेव, २ ४०, ३ ५७, ४ १३२
 वायव्य, १ ८७, २ १२७, ८ ४९
 वायु, १ ५, ६८, ६९, ८२, १२२, २ २,
 ४, १६, ३२, १२४, ३ ९४
 वायु देवत, ८ १०८, १२२
 वार्, ४ ३८
 वारुण, ३ ९८, (जन) ६ १३
 वारुणि, (= वसिष्ठ), ६ २४, ३३
 वारुणित, बहु०, ५. १२४, १२५, १३६,
 १३७
 वारिषाकप (= वार्षाकप), २ ६९
 वार्य, ४ ७४
 वार्षसहस्रिक, ६ २२
 वार्षाकप, ७ १४१
 वार्षिक, ८ ६
 वास् ववाश, ४ ९३
 वासतीवर, ५. १४९
 वासस्, ४ ३०, ४१; ६. ५२; ७ १३२

वासिष्ठ, ५. १५९
 वास्तु, २ ४३
 वास्तोष्पति, १ १२३, २ ४३, ६ ४८
 वास्तोष्पत्य, ६ २
 वाहन, १ ७४, ३ ८५, ४ १४३
 वाहनाय ३ १४७
 विंशति, २ ९४, ५ ३०
 विकर्ष, ८ १२०
 विकार, २ १२१, ७ १०८
 विकुण्ठा, ७ ४९
 विक्रम्य, ६ १२२
 विक्रीणत्, ४ १३३
 विग्रह, २ १०६, ११२
 √विच्
 वि वेचयन्ति, २ ९४
 विचिकित्सित, २ १०१, १४४
 विचेतन, ४ ११३
 विछन्दस्, ८ १०९
 विजन, ६ ९९
 विज्वारोग, ७ ४७
 विज्ञान, ३ १३३, ७ ११०
 विज्ञाय, ७ ३
 वितत (यज्ञ), ५ ५३
 वित्त, २ ३०
 १ √विद्
 अधि वेत्ति, २ ३०
 २ √विद्
 अनु, ७ ११२
 विदधि, ५ १०२
 विदित, १ ३३, ८ ७६
 विदित्वा, ४ १, ६ ३८, ७ ४, ८ २८
 विद्या, ३ १४२
 विद्युत्, १ ५४, ९४, २ ३३
 विद्वत्, ७ ११२, ११३
 विधात्, १ १२६, ५ १४७, ८ ७०, १२६
 विधि, ५ ९४
 विधि दृष्ट, ४ ७७, ५. २४
 विधि यत्, ६ ११४

विभूय, ७ ७७
 विनता, ५ १४४
 विनाशन, २ १२१, ८ ५०
 विनिश्चिप्य, ५ ८४
 विनिषोग, ७ ११३, ८ १०
 विनिर्जित, ५ १२५
 विनिश्चय, ३ २९
 विपाट्-क्षुत्तुप्री, ४ १०६
 विपाश, १ ११४
 विपुल, ५ ७०
 विप्रकृष्ट, २ १००
 विप्रवाद, २ १३१
 विफल, ५ ८२
 विभक्त, ४ ६
 विभक्त-स्तुति, ३ ४१, ८२
 विभक्ति, १ ४३, ४५, २ ९४
 विभज्य, ७ १२०
 विभव, ७ १३२
 विभाग, २ २०
 विभिन्दु, ६ ४२
 विभु, ६ ११३
 विभूति, १ ७१, ३ १२३, ४ ३७
 विभूति-स्थान जन्म, १ ९६
 विभूति-स्थान सभव, १ १०४, २ २०
 विभवन्, ३ ८३
 विमद, ३ १२८
 विमान, १ १२१
 वियोगार्थम्, ७ १४९
 विराग, ७ १३२
 विराज्, ८ १०७
 विलपत्, ६ ३३
 विलपित, १ ३६
 विलाप, १ ५३
 विवर, ६ १२३
 विवस्वत्, २ ४७, ५ १४७, ६ ६१,
 १६२, १६३, ७ २, ४, ७, ११९,
 ८ १२७
 विवस्वत् सुत, ६ १५४
 विविकि, ३ २०

विचिष्य, ८ १३९
 विचिष्य, ४ ३१, ५ १३९, ७ ५०
 विचिष्यायुध, ७ १११
 √विष् : विवसति, ८ १४०
 आ- अविवसत्, ८ २
 प्रा अविवसत्, ६ १२, ७ ६२
 उप- विवेका, ५ २२
 नि-, १ १००
 विवसति = √विष्, २ ६९
 विवस्य, ४ ३०
 विशोष, २ १०९
 विशोष-तस्, ७ १३८
 विशोष-वायिन्, २ ११०
 विश्व, २ १३४, विश्वे (देवा), २
 १२, ७ ४१, (देवा), १ ८४, ३
 ९५; ४ ९८, ५ ९७, १५५, ७ ७६,
 ८ १०६, (द्विचौकसस्), ७ ११८,
 विश्वान् (देवान्), ३ ४४, विश्वे,
 ३ ६०, (देवै), ८ ६२, विश्वे
 वाम्, ३ ६, ८ १०६, (देवानाम्),
 ८ १०
 विश्व-कर्मन्, १ १२३, २ ४९, ६ ५६
 विश्व भैषज्य, ८ ५०
 विश्व रूप, ४ १४२; ६ १५२
 विश्व-रूप षक्, ६ १४९
 विश्व लिङ्ग, २ १२८, ३ ३३, ४२, ४३
 विश्ववारा, २ ८२
 विश्वा, ५ १४४
 विश्वात्मन्, ४ १२१
 विश्वानर, १ १२७, २ ६६
 विश्वामित्र, २ ४८, १३१, १५७, ४ १०५,
 ११५, ११९
 विश्वामित्र-वचस, ४ १०८
 विश्वावसु, ७ १३०
 विश्वे देव गण, ३ १३६
 विश्वेका, ८ १४०
 विष, ७ ४४
 विष-ज, ४ ६४

विषय, १ १२०; ८ १०७
 विष-साङ्गा, ४ ६४
 विष्णाति = √विष्, २ ६९
 विष्णु, १ ८२, ११७ २ २, ११, ६४,
 ७०, ३ ५९, ५ १४८, ६ १२२, १२३
 विष्णु न्यङ्ग, ५ ९०
 विस्वाद, ५ ९५
 विस्वा, ४ ३८
 विस्वजत्, १ ९३, २९ ५८
 विस्तर, १ ७९, ८०
 विस्तार, ८ ३२
 विस्पष्ट, ८ ८८
 विस्मय १ ३८, ५७
 विस्मित, ५ ६९
 विहृष्य, २ १३१, ३ ५७
 विहित, ८ १३५
 विहीन, ७ १५०
 वीङ्गु, ३ १४७
 वीय, ७ ५४, ६०
 वीर्य-वत्, ५ १४९
 √वृ, ५ ३३, ५१, ६ ३८, ५४
 वृक्ष, ७ ६१
 वृक्ष-वर्हिस्, १ ६५
 वृक्ष द्रोणी, ५ ८३
 √वृत्
 अनु वर्तन्ते, ३ ६
 उप वर्तत, ६ १४५
 नि अवर्तत, ५ ६०, वर्तताम्,
 ५ ६१
 परि वर्तते, १ १२०
 वृत्, ४ २३, ७ १५१
 वृत्, ५ ६०
 वृत्ति, २ १०९
 वृत्त, २ ६; ६ ११२, १२१, १२२
 वृत्त-अवार्धित, ६ १०९
 वृत्त-साङ्गा, ७ ११३
 वृत्त-वृत्, ४ १२६; ६ ११६
 वृद्धि, २ १२१

ब्रूया (जान), ५ १४, १८, १९
 √बृष्, वर्षति, १ ६८, ४ ३४, ७ २४,
 ववर्ष, ८ २
 बृषन्, २ ६६, ६७, ७ १४१
 बृषम, १ १११, ३ १४८, ६ ५२,
 ८ १२
 बृषाकपायी, २ ८, १०, ८०, ७ १२०
 बृषाकपि, २ १० ६७, ६८
 बृष्ट, २ ३३
 बृष्टि-कामैज्या, ८ ५
 बृष्ट्य अर्थम्, ८ ९
 वेग, ७ ५
 वेद, ५. ५८, २ ४४
 वेद पितृ, ५. ५८
 वेदार्थ तत्त्व, ७ ११०
 वेदि, ७ ३२
 /वेन् वेनति, २ ५१
 वेन, २ ५१
 वेवहि, २ ६९
 वेखानस, २ २९
 वेदवशि, ५ ६२
 वेदिक, १ ४, २३
 वेदेह, ७ ५८, ५९
 वद्यत, ३ ७७, ८ ४४
 वेन्य, ८ ४१
 वैराज,, १ ११६
 १ वरूप, २ १३
 २ वरूप, ८ ३७
 वेरूप्य, १ २६
 वैवाहिक ७ १३८
 वैविध्य, १ १४, १६
 वशकर्मण, ७ ११७
 वैश्वदेव, २ ८१, १२५, १२८, १३२,
 १३३, ३ ३३, ४२, ४७, ५१, १२२,
 १३१, १४१, ४ ७, ८, ३१, ४२, ५
 १७५, ८ १२८, —शी, ३ ९९, ४ ९,
 १२३, ५ १०६, १७४, ६ १३३
 वैश्वदेवक, २ १२७

वैश्वदेवत, ८ १२३
 वैश्वदेव्य, ७ ३९
 वैश्वानर, १ ६७ ९७, १०६, २ ११, ४
 ९७, १०२, ५. १०४, ६ ४६, ७
 ६१, १४२, ८ १२७
 वैश्वानर-स्तुति, १ ९९
 वश्वानरीय, १ ९९, १०२, ३ ११७,
 १२९, ४ ९६ ५ १६१
 वैष्णव ३ ९३, ८ १०२
 वैष्णव्य, ८ १०२
 वोळह, ३ ५०, ७९
 व्यस, ६ ७७, ७ ५८
 व्यञ्जन, २ ११६
 व्यञ्जित, १ ६४
 व्यतिकीर्ण, २ १०४
 व्यत्यय, ६ १७
 व्यपेक्षा, ५ २४
 व्यपोहितुम्, ६ १४०
 व्यवस्थित, २ ३४ ६ १११, ११२;
 ७ ५२
 व्यस्त, २ १२३, १२४, ३ १४, ६०,
 ८ १२४
 व्याख्यात, ६ १२९
 व्यातिमत्त्व, १ ९८
 व्याहृति, २ १२३
 व्याहृति-वैषत, २ १२३
 व्युत्पत्ति, २ १०८
 व्योमन्, १ ९३, २ ३२, ४२, ५६, ३
 १४, ४ ४६, ६६
 √वज् अवजत्
 वजु-, ४ ३
 वज, ८ २७
 वजत्, २ ५२, ३ १४३, ४ ११७
 वजित, ३ १३५
 वजनी, ४ १०१
 वायु, ५ १०९
 √वास्, ३ २, १०४, १४०, १५०, ४

१७, ५, १४०; ६ ५३, १२०, १३९,
१६०, ७ २३, ९६
अनु- : शासति, १ १०३
प्र- शासति, ३ १०१
✓शक् अशकन, ६ १२२
शक्, ४ ४१
शकट, ५ ३१, ६ १०५, १३८
शकुनि, १ १०९
१ शक्ति, २ ३२
२ शक्ति, ४ ११२
शक्ति-प्रकाशन, ८ १०
शक्ति-मत्-ता, ७ ६०
शक्र, ३ ३८, ४ ३, ७०, ६ ५३, १०४,
११४ ७ २९, ३०
शक्वरी, १ १३१
शङ्ख मिषि, ६ ५५
शचीपति, ३ २०, ४ ७४, ५ १३८, ६
५३, १३७
शची सहाय, ४ १
शत, ३ १४८, १४९, ८ २
शत क्रतु, ४ ४६, ५२ ६ १५२
शत धा, ४ १२०
शत-योजन, ८ ३२
शतचिन्, ३ ११४, ११६
शत्रु, ५ १२७, ७ ६०, ८४
शत्रु, ७ १५५, १५६, ८ १, ३, ६
शान्तिमित्रीय, -या, ३ ७९
✓शप् शपते, ६ ३३
शत-काम, ६ ३७
शबर, ८ ७२
शब्द, २ ९९, १०९, ३ ८०
शब्द रूप, २ १०८
शम्या मात्र, ५ १५२
✓शम् शामयत्
प्र-, ४ ५३
शरद्, १ ११५
शरीर, ४ ४०, ७ १०१
शरीर पात, ६ ८९

शरीरिन्, -जी, ५ ९८
शर्कर, ७ ७९
शर्म, २ ४६
शर्यणावली, ३ २३
शस्यक, ६ १०६
शसीयसी, ५ ६१, ६४, ८०
शश्वती २ ८३, ६ ४०
✓शास शस्यते, ३३, ५ १७५,
६ १०८
शास्त्र, १ १०२, ४ २२, ५ १७५
शाकिनी, ६ १३६
शाकर, १ १३१
शान्ति, ८ ९०
शान्त्य-अर्थम्, ७ १५, २१ ९४, ८ ८७
शाप १ ३९, ४९, ६ ३४
शाङ्ग, ८ ५४
शार्याति, २ १२९, ३ ५५
शालामुख्य ७ ६७
शाश्वत, ३ १०६, ५ १२६
✓शास्
अनु- अशात्, ४ १३१; शासति,
४ ३, ७ ३७
आ- शास्ते, ५ १३५, ६ ३१, ७
११, १२, १९, १३४, १३६,
८ ८२
शास्त्र विद्, ३ ४८
✓शिक्ष, ३ ८४, ८ ४
शितामन्, २ ११४
शिरस्, ३ २१, २२, २३, ४ २२, ५
१५, ६ ३६, १५०
शिशिर, २ १३
शिशु, ५ १६, ६ १३९
शिष्य, ३ ८३
शीतोष्ण-वर्ष दात्, ७ २८
१ शुक्र, ४ १२, ५ ९९, १५१; ७ ५,
६ ७८
२ शुक्र, ६ १४४
शुक्र-प्रतिषेध, ४ १३

शुक्र-सकर, ४ १३

शुक्ल, ५. ८०

शुचि (अग्नि), १ ६६, ३ १२५

शुशुम्नी, १ १४

शुन, ५ ८

शुन-देवी ५ ७

शुन शेष, १ ५४, २ ११५, ३ १०३

शुनासीर, ५ ८, १ ११४; ५ ८, ९

शुभस् पति, ५ ८४, ७ ४३

शुभ्रु, ६ १४२

शूल स्थूणा, ४ ३०

शाय ८ ५०, ७ ३७

शैवल, ७ ७९

शोकय

अशोकयत्, ७ ३६

शौनहोत्र, २ ४०, ४ ७८

रमजान, ६ १६०, ७ १५

रथाव ३ १४७, ६ ५२, ४ १४२, -वी,
३ ८

रथावाश, ५ ५२, ५५, ५६, ६०, ६४, ६५
६९, ७२

रथेन, १ १२६, ४ १३६

रथेन रूप, ४ १२६

अद्, २ ९५

अद्वा, १ ११२, २ ७४, ८४

अवण, ३ ११९

आद्ध, ८ ५८

अी, २ ८३

अी पुत्र, ५ ९१

अी सूक्त, ५. ९१

✓ अशु शुभाश, ३ १३३ अयन्ते, ७ ७२

शुत, ४ १२०; ५ ५०, ८ ८७, १३५

शुत बन्धु, २ ५३

शुतर्वन्, ६ ९५

शुति, ४ १३९, ५. २३, ८३, १५९, १६७,
६ २४, १४८, ७ ६२, ८ १३८

अष्टय-कर्मन्, ५ १५६

ओत्र, ७ ७१

भीत, ३ १०२

श्लाघा, १ ३६, ५३

श्लोक, २ ४२

श्वन्, ४ १२६, ६ १२, १५२

श्वशुर, ७ ३१

शस्, ४ ५०

षट्क, ८ ५६

षड्विंश, ६ ८४

षड्विंशति, २ २२

षट् (विकारा), २ १२१

षाष्ट (वर्षाणि) ७ ४२

षष्ट्युवाधिक, ३ १४९

षष्ठ, ५ १३०, (स्वर), ८ ११९

षष्ठ्य, ३ २७

षोडशार्च, ३ १२६

षोडहा, ४ ३५

सयुक्त, ७ ८४

सयोगार्थ, ७ १३६

सवत्सर, २ १६, ४ ३५, ६ २७

सवनन ३ ५९, ४ ५३, ८ ३२, ९५

सवतयत्, २ ६१

सबाद्, २ ८८, ४ ४४, ४७, ५ १६६,
१६४; ६ १५४, ७ २९, १४८, १५३

संविज्ञान पद ५ ९५

संविद्, ७ १४७

सद्य, १ ३५, ५१

सस्कार्य-मेत-सयुक्त, ६ १५८

सस्तव, १ ११७, ३ १०९; ४ २७, १३६,
५ १७२

संस्तविक २ १५

सस्तुत, २ २; ३ ३६, ८३, ११०, ४
६, २८

सस्तुत बद्, ३ ८१

सस्तुति, १ ७५; ६ १६१

सस्था, ३ ८२; ५. ९३

सस्थित, ५. ६७

सकल, २ १४४
 सक, ५ ५५
 सकु, ६ १०३
 सखि, ४ १, ७ ५६
 सखित्व, ४ २, ७५, ७७
 सली, ७ १५१
 सख्य, ३ १०६, ७ १०३
 सकल्प, १ ३७, ५५
 सकल्पवत्, १ ५४
 सकुसुम, २ ६०
 सखा, १ ४५, ८ १३
 सख्यान, २ ९३
 सगति, ५ ७७
 सगृहीत्वा, २ ४७
 सग्रामाङ्ग, ५ १३६
 सचतुर्दश, ६ १४६
 √सज् असज्यत
 सम, ७ ५१
 सजूर, ३ ४६
 सज्जोषस्, ३ ४६
 सज्जस-वत्, ४ २९
 सज्ञा, २ १३४, ३ ८२, ५ ९३, ८ ९९
 संज्ञान, ८ ९५
 सज्जर, १ ३८, ५६
 १ सत्, १ ९२, ७ २३
 २ सत्, १ ६२ २ १२०
 सञ्ज, ५ ९७, १४९, ६ २२, ७ ५९
 सञ्ज सद्, ८ १३३
 सञ्ज, १ २३, ८१
 सञ्ज-सगति, १ २९
 सत् पति, ३ ७०
 सत्य, २ ४०, ४२
 √सद् सीदति, सीदत्
 भव, १ ९०, ४ ११३
 वियुत, ७ ५३
 प्र, ८ ३
 सद्-असत्, ८ १४०
 सद्सत्-पति, ३ ६७, ७०

सदस्य, ५ १५९
 सदसा, २ ९७, ७ १
 सदस्य, ५ ७३
 सनातन, ६ १४४
 सनामन्, १ ९१
 सताप, १ ३६, ५२
 सत्यज्य ५ १६
 संदधत्, ७ १२८
 सधि, ८ १३९
 संनिधि, ६ १३९
 समिधात, २ १३२
 सपञ्च, ८ ६९, ९४
 सपञ्च निबहण, ८ ९२
 सपत्नी, ६ ५७, ८ ६३
 सपत्न्य-अपनोदिक, ८ ५७
 सपुत्र, ५ ५२, ५३, १०३
 सपुरोहित, ३ १४४
 सप्त (रजानि), ५ १२३, (स्वरा),
 ८ १२१
 सप्तक, ७ ५१, ११६
 सप्तगु, ७ ५५, ५६, ५७
 सप्तति, ६ ५१
 सप्त-तुल्यसप्त, ६ ४५
 सप्तदश (स्तोम), २ १४
 सप्तर्षि, २ ११, ३ ५८, ८ १२३
 सप्ति, ३ ५०, ७९
 सकल, ५ ८५
 सवर, ३ ८५
 सवर-बुधा ३ ८५
 सभार्य, ३ १४३
 समग्र, २ ७६
 समर, ६ ११५, ७ ५१
 समस्त, २ १२३, १२४; ३ १४, ६०; ५
 १७५, ८ ११०, १२४
 समस्तार्थ-ज, २ १०४, १४४
 समा, ८ २
 समादाय, ६ १००
 समान-द्वन्द्वस्, १ १६
 समान-धर्मिन्, ३ १२८

समान-वचस्, ५ ६८
 समामन्त्र्य, ३ ८८
 समाज्ञाय, १ १
 समायात्, ५ २२
 समाधित, ८, ११७, ११८
 समास, १ ७९, २ २८, १०६
 समाहित, ८ १२०
 समुत्थाय, ३ २४
 समुत्पन्न, ६ ६२
 समुद्भूत्य, ५ ८५
 समुद्र, २ ११, ६ १३८
 समुद्र गा, ६ २०
 समेत, ७ १२९
 सपद्, १ ११, २ १५८
 सप्रवाद, ३ १५५
 सप्रेक्ष्य, ४ ९४, ५ ७४
 सबन्ध, ३ ६८
 सबोध्य, ३ १४५
 सभव, १ १०४, २ २०, ३ १
 समूत ५ १५१, १५२, ८ ७९
 समृत्, २ ५६
 समेद, ४ १०६
 समत, ४ ११९
 समन्त्र्य, ५ ५९
 समित, ५ १५३
 समोह, ७ ८४
 सम्यग भक्ति विद्वद्भ्य, ३ ७३
 सयूध्य, ४ २८
 सरण्य २ १०, ८०, ६ १६२, १६३;
 ७ १, ३, ४
 सरण्य-देवता, ७ ७
 सरमा, १ १२८, २ ७७, ८३ ८ २५,
 २७, २८, ३३
 सरस्, ७ ५०, ३ २३; ७ १५०
 सरस्वत १, १२३, २ ५१, ४ ३९, ४२,
 ६ १९
 सरस्वती, १ १२८, २ ५१, ७४, ७६,
 ८१, १३५, १३७; ३ १३; ४ ३६,
 ३९, ६ २२, २३, २४, ५९, १३५

सर्प, ७ ७२, ८ ११५
 सर्पिस्, ६ १४५
 सर्व, ३ १०३
 सर्व-कर्मन्, ५ १५८, ८ १२४
 सर्व-कार्य, ७ १२८
 सर्व-गत, ६ १२१
 सर्व हवत्त्व, ३ १३४
 सर्व नामन्, २ ९७
 सर्व भूत, २ १९
 सर्वभूत हन, ७ ४४
 सर्व रिप्र प्रणोदन, ८ ९२, ९३
 सर्व-वेद, ५ ५३
 सर्वाङ्ग-शोभन, ५ ६६
 सर्वान्तर, २ ६९
 सर्वावासि, २ १३४
 सलक्षण, ७ ३
 सलिल, ४ ४१, ४३, ५ १५५, ६ ८१
 सवन, ३ ९०, (तृतीय), २ १३,
 (मध्यम), १ १३०
 सवर्चस्, २ १४१
 सवर्णा, ६ ६८
 सवितृ, १ ८४, १२५; २ १२, ६२, ३
 ८८, ९८
 सध्य, ३ ११४, ११५
 सघ्नीक, ७ ९७
 सखर्परी, ४ ११३
 ससोम, ३ १२४
 सहमान, ५ २२
 सह-रक्षस्, ६ १६०
 सहस् (बहु), ३ ६४
 सहसा, ५ २१, ६ ८८
 सह-सुत, ८ ६१
 सहस्र ३ १४९, ६ ६१; (त्रीणि),
 ७ ७५
 सहस्र तम, ३ १७
 सहस्र दक्षिण, ५ ३३
 सहस्र-युग-पर्यन्त, ८ ९८
 सहित, ४ ७६, १४१, ५ ९७, १३८, ६
 ३५, ६९, ६३, ७ ७७, ८ ४

१. मा स्वन्ति, स्वेष्व
 त्रि अव, १ ८६, ८९
 साङ्गोपाङ्ग, १ ५३
 साध्य, १ ११६, २ १२, ४ ३६, ९७,
 ७ १४३, ८ ११७, १२८
 साधुग, ३ १४३
 सानुलिङ्ग, ३ १५२
 सान्त्वयित्वा, ६ १३
 सान्त्वय, ४ ३
 सामन्, १ ११६, १३१, २ १३, ८
 ११०, ११७, १२२, १३०
 सामर्थ्य, १ १०२
 साम-स्वर, ८ ११९, १२१
 सामान्य, २ ११०
 सामान्य वाचिन्, २ १०९
 सामानिक, १ ७९
 सम्राज्य, १ ११८
 मायम, २ ६४
 मायाङ्ग काल, २ ६८
 सायुज्य, २ २१
 मायध, ४ ६७
 सारथि, ५. १३०
 सारमेय, ६ १२
 सारस्वत, २ १३५, १३८, ५ १२९, ६
 १९, ८८, ७ ५९
 सार्ज्य, ५ १२४, १३९
 सार्थ १ ९
 सार्ध, ४ १०८
 सार्धम, ५ २०, ७ ५१
 सापराज्य, २ ८४, ८ ८९
 साम्राज्य-सुत, ३ १३०
 सालोक्य, १ १९, ९८, २ २१, ५ १७१,
 ७ १४४
 सावर्ध, ७ १०३
 सावित्र, ३ ४५, १०५, -त्री, ३ ५०, ७८;
 ६ १३२
 सावित्र सौम्याश्विन-मास, ४ ९९
 सावित्री (सूर्या), २ ८४; ७ ११९
 साहचर्य, १ १९, ३ ७५, ५ १७२; ७,
 १४४

साहाय्य काम्य, ५. १३७
 सिद्धिका, ५ १४४
 सिद्धा (=सिकता), ७ ७९
 १. निष्
 अमि, ६ १५३, ८ १
 १. सिध
 नि विशेष, ३ १९
 प्रति, ७ १३, ११०, १३३
 सिनीवाली, १ १२८, २ ७७
 सिन्धुद्वीप, ६ १५३
 सीता, १ १२९, ५ ९
 सीर, ५ ८
 १. सु सुबुवे, ३ १३३, सुषाव, ६ १०२
 २. सीति, २ ६२
 सु ईर्यत्व, ७ १२८
 सुग्य, २ ४६
 सुग, ७ ८५
 सुगन्धि वेजन, ७ ७८
 सुत (साम), ४ ५४, ३ १८, ४ ११२,
 ५ १००, १४६, ७ ४७, ११४, ८ १९
 सुता, ५ ५६ ७ ४८
 सुत्वच्, ६ १०४, १०५
 सुदास्, ४ १०६, ११२
 सुदाम, ६ ३४
 सुदुर्जय, ८ ३३
 सुधन्वर, ३ ८३, ८ १२७
 सुपर्ण, १ १२४, ८ १२७, ७ ४८
 सुप्रिय, ७ ५६
 सुप्रीत, ३ १८, ६ ११९
 सुवन्दु, ७ ८५, ८७, ८८, ८९, ९४,
 ९९, १००
 सुभग, -गा, ७ ४७
 सुमनस्, ७ ६५, ७६
 सुमहत्, ६ १४०, ७ ४९
 सुमहायकस्, ७२
 सुमित्र, ८ १७
 सुर, ६ ११
 सुर द्रुम, ६ ५६

सुरभि, ५ १४४
 सुरा पाण, ६ १५१
 सुलोमन्, ६ १०४
 सुवीर, ४ ७२
 सु-वीर्य, ७ १२८
 सुवामन्, ६ ६७
 सुसहस्र, ६ १११
 सहस्र्य, ७ ४७
 सूक्त, १ १३, ३ २५, ८ ९९
 सूक्त प्राय, ३ ८०
 सूक्त भागिन्, ८ २०, -नी, १ १९, ६०,
 २ ७७; ३ ५३
 सूक्त-भाज, १ १७, १८, ९९, ४ ९९, ५
 १४२; ६ १५९, ८ ९९ १२९
 सूक्तार्ग-अर्धार्ध पाद, १ १
 सूक्त-वाद, ८ १००
 सूक्त-शत, ६ १४५
 सूक्त-शब्द, ८ १००
 सूक्त शेष, ३ ९३, १३८, ४ १४४, ७
 १०१, ८ ९, १६
 सूक्त सहस्र, ३ १३०
 सूक्तादि, ३ ४५ ८ १५, ४२
 सूक्ताम्न, ७ ३९
 सूक्त अभिधान, ८ १००
 सूक्त एकदेश, ८ १०१
 सून् (= सूना), ४ २९
 सूनु, ३ १५३
 सूरि, २ २४
 सूर्य, १ ५, ६१, ६९, ८२, ८८, १००, २
 १, १०, २२, ६१, ७०, १२४, ४ ६६,
 ७ ११४, १२८
 सूर्य जय, ४ ११४
 सूर्य देवत, ८ ११९
 सूद मसूत, १ १०१
 सूर्य वत्, ६ १२४, १३६
 सूर्य सस्त्य, ३ ४४
 सूर्य-मस्त्य-संयुक्त, ३ ४२
 सूर्या, २ ८, ९, ७९, ८१, ८४, ३ ४२,
 ७ ११९, १२१, १३०
 सूर्या अन्द्रमस्, ७ ८१, १२६, ८ १६
 सूर्य अनन्त सम धृति, ५ १०१

सूर्य अनन्त, ७ २८
 सूर्य-अनुग, १ ७७
 सु सरति, ७ १२८
 सु ससृगे, २ ५३
 उत्-सृजामि, ३ १९
 सोमरि, १ ४८, ६ ५८
 सोम, १ ८२, ११७, १२६, २ २, ४,
 १०७, ६ १०१, १०२, १०९, १११,
 ११३, १३०, १६६, ७ ९, ७४
 सोमक, ४ १२९
 सोम देवत, ७ ८३
 सोम पति, ७ ५८
 सोमपान, ६ १५१
 सोम रायिन्, ४ ५४
 सोम प्रधान, ४ १३७
 सोम भाग, ५ १५६
 सोम सूर्य, ८ १२१
 सोमा पौष्ण, ४ ९१
 सोमेन्द्र, ३ ६७
 सोमोक्त, ७ ६२
 सोमामण, २ १५३
 सोदास, ६ २८
 सोन, ४ २९
 सोपण, -र्ग, ६ १२०
 सोपण्य, ३ ११९
 सोभाग्य, ७ ४५
 सोम, -मी, ५ ४१, ४४
 सोम्य, ३ १११, १२४, ६ २९, १४६
 (मण्डल), ७ २३, ९२, ८ १११
 सोर, -गी, ४ ४२, ११३, ५ ११८, ६
 ५, ९
 सोर्य, १ ८७, २ ७; ३ ११३, १६९,
 ८ ११०, -र्या, ६ ६, १२६
 सार्य बन्धानर, २ १६
 सौर्य बन्धानराशि, २ १८
 सौर्य बन्धानरीय, २ १४
 सौर्या आन्द्रमस्, -स्त्री, ७ १२४
 सौर्यर्ण, ५ ३१, ३५, ६ ५६
 स्कन्द चस्कन्द, ५ ९९, १४९
 स्कन्ध, ७ ८४

स्त्रीर्ण, २ ५७

स्त्रु : स्त्रोप्येते, ७ ४५; अस्त्रीत्, ३, ३७; ४ १६, ६ २६, ६२, ८ ७१

स्य- स्त्र्यन्ते, ३ ७

अभि-स्य- ३ ४२

स्तुत-वन, ८ ६८

स्तुति, १ ६, १४, ३५, ४७, ६५, २ १३१, ३ ७

स्तुति-कर्मन्, ३ ४

स्तुति काव्य, ८ २०

स्तुति हविर्, ७ ५७

स्तुत्य-आशिस, १ ८

स्तुयमान, ३ १०३

स्तोकीया, ५ २५

स्त्योत्, १ २२

स्तोत्र, ८ ७८

स्तोत्रिय, १ १०३

स्तोम, १ ११५, २ १, १३

स्त्री, १ ४०, २ ९६, ६ ४१, ७ १, १३२, १३५, ५ ४९, ७ १२

स्त्री धम, ७ १५

स्त्री लिङ्ग, ६ ७६

स्थल, ५ १५१, ६ ८८

स्थविर ३ ४७

स्था

अभि- अतिष्ठन्, ६ ११०

आ- तस्थे ७ ४३

प्र-, ५ १३६

स्थान, १ ७६, २ २१, २६

स्थान लोक, ३ ६१

स्थान विभाग, १ ७०

स्थावर, १ ६१, ८ ११६

स्थास्तु ब्रह्म, ४ ३०

स्थित, ७ १२१

स्थिति, २ ११८

स्नात, -ता, ४ ५७

स्नायु, ७ ७८

स्नाया, ५ ५४, ७९, (हृन्द्मस्य), ७ ३०

स्पर्धा, ६ ५७

स्प्रष्टा, ७ ५६, १०२

स्पृष्टा, १ ३५, ५३

स्मृ स्मरति, ८ ८५

स्त्रवत् ५ ८६, ७ ६६

स्त्रवस्त्री, ७ ११५

स्व, ३ २२, ५ ८५; ६ ४१, १२१, ७ २३

स्वक, ८ ७१

स्व जग्मन्, ४ १०

स्व दार गर्भार्थम्, ८ ८३

स्वधा, ८ ११२

स्वधिति, ४ ३०

स्वजन्य, ३ १४३, १५०, ४ १

स्व मिल्य, ३ १४२

स्वप् ३ १४२ ४ ६९, ५ ८५, ६ ३६
प्र-, ६ १३

वि- असुप्त्रवत्, ६ १३

स्वप्न, ६ ११

स्वप्नान्त, ६ १४८

स्वप्न, ६ ११

स्व बाहु वीर्य, ७ ५२

स्व भाव, ८ ११

स्व माया, ७ १५०

स्वयम्, ८ ८९

स्व युध्य, ४ २८

स्वर, २ ११५, ८ ११२, ११४, ११६, ११७, ११८, ११९, १२१

स्वर रश्मि, २ ६५

स्वर सामन्, ३ १४१

स्वराज, ८ १०७

स्वर्ग, १ ८, ६ ९०, ११४, ७ ११२, ११७, ८ १३३

स्वर्ग जिगीषु, ६ १४१

स्वर्ग आयुर् धन पुत्र, १ ७

स्वर्भातु-दृष्ट, ५ १२

स्वर्ग, ८ ८७

स्वर्ग धीर्य, ६ २५

स्व वसु, ५ ७२

स्व-वास्य, २ ५८

स्व शरीर, ४ ११७

स्वस्त्य, २ ८२, ६ ७७, १४९, ८ २८

स्वस्त्य, ८ ३०

स्वप्नि, १ १२८, २ १८, ७ १३, १५५	हृदय, ४ ५०, ७ ८५
८ १२५	हृदय कम्प-वह, ६ १६०
स्वस्वयम्, ७ ९०, ८ ७७, ८७	हृदय-वाहन, ७ ६३, ७७
स्वस्वयम्, ६ ५१	हस्त, ७ १३५
स्वाध्याय, ८ १३३	हस्त-प्र, १ ११०
स्वाध्याय फल, ६ १४३	हस्त-प्राण, ५ १३२
स्वाध्याय अभ्येतु स्तव, ६ १३३	✓हा हीयते, ८ १३४
स्वाध्याय, २ ६८	हान, २ १२१
स्वामिधेय, २ ११७	✓हि अहिनीत
स्वाहा, ३ ३०	प्र-, ८ २५
स्वाहा-कार, ८ १११	हिंकार, ८ १११, १२३
स्वाहा कृति, १ १०९, २ १००, ३ २९	हिताधिन्, ७ ९९
स्विष्ट-कृत, ७ ७५	हिम-विन्दु, २ ९
हत, ६ २८, ३३	हिमवत्, ५ ७५
हनन्, ६ १५२	हिम शब्द, २ ११०
हन्, ६ ३२, ११५, १२२, ७ ५१,	हिरण्य, ३ १०३
५०, ६३; ८ ३४, ३७	हिरण्य-गर्भ, २ ४६
अप अहन्, ४ २२, ११४	हिरण्य स्तुति ८ ४५
ग- हन्ति, ५ १६६	हिरण्यस्तुता, ३ १०६
विआ- हन्ति, ४ ९९	हीन, २ १००
हन्, ३ ४४	✓हु, ८ १३०
हन्त, ५ ६६, ७८	हुत, ५
हन्, ४ २५	✓हु अहरत्, ३ २२
हय-रूपिन्, ७ ४	अप-, ३ १३२, ८ २४
हर, ५ १९	आ-, ५ ९३ (सत्त्व), ८ ३१, ३६
हरण, ७ १९, ४ ३८, ७ १३३	विआ- जहार, ४ १४
हरम्, ५ २१; ५ १७	हृदय गम, ४ ७२
हरि, ३ ८६, ४ १४४, ४ १००	हृद्य, ८ २२
हस्ति, ४ १४०	हृष्ट, -ष्टा, ४ २
हस्ति-स्त, ४ १	हृष्टात्मन्, ४ ११५, ६ ६१
हरि वाहन, ४ ७७, ५ १५५, ८ ३०	हमन्त, १ १३१
हर्षपीया नदी-तट, ५ १३८	है- रौप्य प्रायस, -सी, ७ ५२
हर्ष, ५ ६६	होत, ७ १२, ७०; (दृष्ट्यौ) १ १०८;
हृषित्, ३ १५३	३ ११
हृदि धाम, १ ११३, ३ ९२, ५ १५५	होत्र, ७ ६६, ७७
हृदि भाज, ८ १२९	होत्रा, १ ६५
हृदि पक्षि प्रधान, १ ८६	होम, ८ १३४
हृदय, १ ७८, ११८, ११९, २ १६,	✓हु हृयसे, ३ ७७
५२, ३ ७, ६३, ७४, ८ २९, ६	आ-, ४ १३१; ६ १०२; ७ १००
७८, ९३, ७ ७३, १४२, ८ १०३,	अप-, ६ ८४
१०१, १३२	

